शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त पत्रिका

शोध अंक 38 दिसंबर 2017 200.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फोन : 01342-263232, 07838090732
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा
डॉ॰ मीना अग्रवाल
बी-203, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फ़ोन : 0124-4076565, 07838090237

दिल्ली एन॰सी॰आर॰
डॉ॰ अनुभूति
सी-106, शिव कला
बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा
फोन : 09560554612

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ॰ शंकर क्षेम

उपसंपादक
डॉ॰ रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ॰ अनुभूति

उपसंपादक
डॉ॰ अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

शुल्क
आजीवन : व्यक्तिगत : पाँच हजार रुपए
संस्थागत : छह हजार रुपए
वार्षिक शुल्क : छह सौ रुपए
यह प्रति : दो सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, MorrisVille, NC-27560 USA
डॉ॰ सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
प्रो॰ हरिशंकर आदेश, भारतीय प्राच्य विद्या संस्थान, कनाडा
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फ़ेज-1, दिल्ली 110052
डॉ॰ आर॰पी॰ सिंह, पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय एवं पूर्व प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ॰प्र॰)
प्रो॰ अशोक चक्रधर, जे-116, सरिता विहार, नई दिल्ली
प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय, निदेशक केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ॰प्र॰)
प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)
प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोशाबाद) उ॰प्र॰
प्रो॰ बाबूराम, पूर्व अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)
प्रो॰ रामसजन पांडेय, हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, मीरपुर, रेवाड़ी (हरियाणा)
प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
डॉ॰ दामोदर खड़से, पूर्व कार्याध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई (महा॰)
प्रो॰ शंकर बुंदेले, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय, अमरावती
प्रो॰ आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
प्रो॰ अर्जुन चव्हाण, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा॰)
डॉ॰ माया टाक, पूर्व प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ अनिलकुमार जैन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
डॉ॰ अवनिजेश अवस्थी, हिंदी विभाग, पी॰जी॰ डी॰ए॰वी॰ कालेज, नेहरू नगर, नई दिल्ली
प्रो॰ हनुमानप्रसाद शुक्ल, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्ध
प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)
डॉ॰ मुकेश गर्ग, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो॰ जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
डॉ॰ माला मिश्रा, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, अदिति कालेज (दिल्ली विश्व॰), बवाना
प्रो॰ श्यामधर तिवारी, हिंदी विभाग, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
डॉ॰ दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
डॉ॰ शाहबुद्दीन शेख़, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰, औरंगाबाद (महा॰)
डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
डॉ॰ महेशचंद्र, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
श्री राकेशकुमार दुबे, पत्रकारिता और जनसंचार विभाग, उड़ीसा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट (उड़ीसा)
डॉ॰ महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)
डॉ॰ अरुणकुमार भगत, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा (उ॰प्र॰)
डॉ॰ एम॰एस॰ विमल, सहायक प्राध्यापक अँग्रेजी, शासकीय महाराजा पी॰जी॰ महा॰, छतरपुर (म॰प्र॰)

आजीवन सदस्य

उत्तर प्रदेश/ उत्तराखंड

डॉ॰ रामानंद शर्मा
पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिंदू (पी॰जी॰) कालेज
9, जिगर कालोनी, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)

डॉ॰ मधुलिका तिवारी
रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एल॰आर॰ पी॰जी॰ कॉलिज, साहिबाबाद
गाजियाबाद (उ॰प्र॰)

श्री हरिराम 'पथिक'
स्नेहगंगा, विष्णुधाम कालोनी,
गली नं॰ 3, न्यू माधोनगर, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ वंदना सेमल्टे
टी॰एफ॰ 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स,
गांधीनगर, गाजियाबाद 201001

डॉ॰ मनमोहन शुक्ल
147, मायापुरी, आवास योजना
झूँसी, इलाहाबाद 211019

श्री अरुणकुमार भगत
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
'माध्यम' सी-56, ए/5, सेक्टर-62
नोएडा 201301 (उ॰प्र॰)

डॉ॰ विपिनकुमार गिरि
पुराना माधवनगर, भारद्वाज गली,
सहारनपुर (उ॰प्र॰)

प्राचार्या
आर॰बी॰डी॰ महिला महाविद्यालय
बिजनौर (उ॰प्र॰) 246701

डॉ॰ सुधारानी सिंह
सी-54, सेक्टर-3, सुशांत सिटी,
दिल्ली बाईपास, मेरठ (उ॰प्र॰)

डॉ॰ प्रेमव्रत तिवारी
सरस्वती सदन, बेतियाहाता, गोरखपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ पूनम भारद्वाज
17 प्रेम विहार, मुजफ़्फ़रनगर 251001
09997100697

श्रीमती अल्पना
द्वारा श्री अरुण कपूर, III एच 288 नेहरूनगर
पवन सिनेमा के पीछे, राकेश मार्ग
गाजियाबाद 201001

डॉ॰ वंदना श्रीवास्तव
के 83 सी आशियाना, लखनऊ 226012
09415917170

प्रो॰ धर्मेंद्रकुमार द्विवेदी
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय
पुँवारका, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ महेंद्रपाल सिंह
सहायक प्रोफेसर, हिंदी
सेठ पी॰सी॰ बागला पी॰जी॰ कॉलेज, हाथरस

डॉ॰ अर्चना वालिया
286, जौनपुर दक्षिण, स्नेहकुंज कालोनी,
कोटद्वार (गढ़वाल) उत्तराखंड 246149

डॉ॰ सुचित्रा मलिक
37 गांधी आश्रम, विष्णु गार्डन
कनखल (हरिद्वार) उत्तराखंड

डॉ॰ श्रीकांत अवस्थी
राजीव गांधी विद्यालय
कोटा बाग, नैनीताल (उत्तराखंड)

सुरेंद्रकुमार जैन
हिंदी विभाग,
स॰ भगतसिंह राजकीय स्नातकोत्तर महा॰,
रुद्रपुर (नैनीताल)

मध्य प्रदेश

डॉ॰ राजेंद्र मिश्र
14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)

डॉ॰ स्मृति शुक्ला
ए-16 पंचशील नगर, नर्मदा रोड, जबलपुर (म॰प्र॰)
डॉ॰ सुरेंद्र यादव
102 नवदीप अपार्टमेंट, 7 शंकर नगर (साकेत)
इंदौर 452018 मो॰ 09009566220
डॉ॰ ज्योतिसिंह
213 अनूपनगर
सी॰एच॰एल॰ अपोलो हास्पिटल के सामने
ए॰बी॰ रोड, इंदौर 452008 (म॰प्र॰)
09926300355
डॉ॰ चंदा तलेरा जैन
जी-17, रेडियो कालोनी, इंदौर (म॰प्र॰) 452001
09425944773
डॉ॰ वंदना अग्निहोत्री
194 सुखदेव नगर, एरोड्रम रोड,
इंदौर (म॰प्र॰) 452001
09926477787
डॉ॰ पुष्पा शाक्य
110, सुंदरनगर मेन, सुकलिया, इंदौर (म॰प्र॰)
09827281203
डॉ॰ चंद्रकिरण अग्निहोत्री
108, रेडियो कालोनी, इंदौर (म॰प्र॰) 452001
डॉ॰ पंकज विरमाल
अध्यक्ष हिंदी विभाग, इंदौर क्रिश्चियन कालेज
इंदौर (म॰प्र॰) 452001
प्राचार्य,
शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई
कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किला भवन, इंदौर (म॰प्र॰)
डॉ॰ निशा तिवारी
650 नैपियर टाउन,
भँवरताल वाटर टैंक के पीछे
जबलपुर 482001 (म॰प्र॰) मो॰ 09425386234
डॉ॰ नीना उपाध्याय
प्रो॰ हिंदी विभाग
868, इंदिरा गांधी वार्ड, अंजनी बिल्डर्स के पास
गढ़ा, जबलपुर (म॰प्र॰) 482003
मो॰ 09424305641

प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया
6 दीप्ति विहार, इंदौर रोड
उज्जैन (म॰प्र॰) 456010
मो॰ 9826214024

पंजाब/ हरियाणा

श्री हेमांशु शर्मा
हिंदी विभाग, साईंदास ए॰एस॰सी॰ सी॰से॰ स्कूल
पटेल चौक, जालंधर शहर (पंजाब)
प्राचार्या
कमला नेहरू कालेज फॉर वुमैन
फगवाड़ा (कपूरथला) पंजाब
प्राचार्या
कन्या महाविद्यालय
विद्यालय मार्ग, जालंधर (पंजाब) 144004
डॉ॰ विद्या चौधरी
मिर्जापुर फार्म, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136119
डॉ॰ विजय इंदु
1608 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 10 ए, गुड़गाँव (हरियाणा) 122001
डॉ॰ कविता यादव
पुत्राी श्री सुनिलकुमार,
ग्राम व पोस्ट पालावास
जिला रेवाड़ी (हरियाणा) 123035
डॉ॰ राजाराम अग्रवाल
ग्राम व पोस्ट शेखपुर दरौली
जिला फतेहाबाद (हरि॰) 125053
मो॰ 09896789100
डॉ॰ पुष्पा अंतिल
203, टॉवर-9, फ्रेस्को
निर्वाणा, सेक्टर 50, गुड़गाँव (हरि॰) 122018
मो॰ 096547444800
प्राचार्य
राजकीय महाविद्यालय, सिध्रावली (गुड़गाँव)
प्राचार्य
द्रोणाचार्य राजकीय महाविद्यालय, न्यू रेलवे रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)

ISSN 0975-735X

प्राचार्य
हरद्वारीलाल राजकीय महाविद्यालय,
तावडू (मेवात)

डॉ॰ ऋषिपाल
ऐसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिंदी-विभाग, बाबू अनंतराम जनता महाविद्यालय,
कौल, कैथल (हरियाणा)

प्राचार्य
बाबू अनंतराम जनता महाविद्यालय,
कौल, कैथल (हरियाणा)

महाराष्ट्र

डॉ॰ मेहमूद रसूल पटेल
दारुल अमन, काशीनगर,
जालना रोड, बीड़ (महा॰)

डॉ॰ शहाबुद्दीन नियाश मुहम्मद शेख़
(प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰औरंगाबाद)
अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ
78/484 सिविल हडको,
अहमदनगर 414003
09850119687

प्रो॰ शेख़ मुहम्मद शाकिर शेख़ बशीर
अध्यक्ष हिंदी विभाग
पूना कालेज ऑफ़ आर्ट्स, कामर्स एंड साइंस
कैंप, पुणे 411201 (महा॰)
09423017017

प्रा॰ डॉ॰ अभयकुमार रमेश खैरनार
मु॰पो॰ जुनवणे, तह॰ जि॰ धुले (महाराष्ट्र)

प्रा॰ अनंत नानाजी केदारे
5 पार्वती अपार्टमेंट, अयोध्या कॉलोनी
दातेनगर, गंगापुर रोड
नासिक 422005 (महा॰)

डॉ॰ मंजूर चाँदभाई सय्यद
'गुलसिता' 223 औदुंबरनगर, अमृतधाम
पंचवटी, नासिक 422004 (महा॰)
09822991516

डॉ॰ शोभा साहेबराव राणे
17 स्वर समृद्धि अपार्टमेंट,
नंदनवन लॉन के सामने
आशाराम बापू आश्रम मार्ग, सावरकर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक (महा॰) 422013

डॉ॰ लियाक़त मियाँ भाई शेख़
अखिलेश नगर, प्लाट क्र॰ 11
नए बस स्टैंड के पास,
गंगापुर, (औरंगाबाद) महा॰ 09423933402

डॉ॰ संजय विक्रम ढोढरे
7, मोतीरामनगर, वाडीभोकर रोड,
देवपुर, धुले 424002 (महाराष्ट्र)

डॉ॰ अशोक द्रौपद गायकवाड़
'कृतज्ञता', अवधूत पार्क, आरोह निसर्ग के पास
कादंबरी नगर क्रमांक 1 के पास
पाइप लाइन रोड, सावेडी
अहमदनगर (महा॰) 414003
09822941330

डॉ॰ अश्विनीकुमार 'विष्णु'
अध्यक्ष अँग्रेशी विभाग
सीताबाई आर्ट्स कालेज, अकोला (महा॰)

प्रा॰ दत्तात्रााय माधवराव टिलेकर
द्वारा संतोष मेडिकल, साई प्रेस्टिज, फ्लैट नं॰ 13
पाटील अली, ओतूर
तह॰ जुन्नर, शिला पुणे (महा॰) 412409
09860229544

डॉ॰ मजीद मुनीर शेख़
ग्राम व पो॰ साष्ट, पिंपल गाँव,
(वाया अंकुशनगर) तह॰ अंबड
शिला जालना (महा॰) 431212
09765944586

डॉ॰ भरत त्रायंबक शेणकर
द्वारा होटल जय महाराष्ट्र
ग्राम, पो॰ व तह॰ अकोले
शिला अहमदनगर (महा॰) 422601
09423164521

डॉ॰ पोपट विट्ठल कोटमे
फ्लैट नं॰ 5, सत्यसंगम
कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी
श्री जयनगर, इंदिरानगर, नासिक (महा॰) 422006
09850760866

डॉ॰ एस॰एन॰ देवरे
प्लाट नं॰ 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा॰) 424002

डॉ॰ श्रीमती विजयालक्ष्मी नारायण रामटेके
सुशीला सोसायटी, प्लाट क्र॰ 5
अजय जिम के पीछे, तेलरांधे के सामने
जरी पटका रिंगरोड, जरी पटका पोस्ट ऑफ़िस
नागपुर 440014 (महा॰)

सुश्री शारदा बी॰ जावरे
ओमकार, समृद्धि डेपलपर, फ्लेट क्र॰ 402
प्लाट नं॰ 26, सर्व क्र॰ 137/1 ए,
बराटे स्कूल के पास, वारजे, मालवाडी,
पुणे 411058 (महाराष्ट्र)
08805616654

प्रा॰ (श्रीमती) ऐनूर अजीजभाई इनामदार
स्वामी समर्थनगर, राजूरी रोड, कोल्हार 413710
तहसील राहाता, जिला अहमदनगर (महा॰)
09011449636

प्रो॰ डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग,
एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विश्वविद्यालय,
कर्वे रोड, पुणे 411038 (महाराष्ट्र)

सुश्री कामिनी अशोक न्यायाधीश
661 अरुणोदय कालोनी, सिडको एन-5
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09975773345

प्रा॰ अशोक शामराव मराठे
116, सखाराम नगर,
पेरेजपुर रोड, साक्री, तह॰ साक्री,
जिला धुले 424304 (महाराष्ट्र)

प्रा॰ पंजाबी ममता नानकचंद
19/20, त्रिमूर्ति नगर,
मोरे अस्पताल के पास,
साक्री, तहसील साक्री,
जिला धुले 424304

प्रा॰ डॉ॰ योगेश गोकुळ पाटिल
प्लॉट नं॰ 12, नयना सोसायटी,
नकाणे रोड, देवपुर
धुले 424002

प्रा॰ उषा पुंडलिक शिरोळे
द्वारा श्री शशिकांत हरी बागड़े
गुरुकृपा हास्पिटल, डाक पारीपत्यदार
सावतानगर मालेगाँव, तह-मालेगाँव
जिला नासिक (महा॰)

प्रा॰ करुणा दत्तात्राय अहिरे
व्ही॰यू॰ पाटिल कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,
साक्री, तह॰ साक्री,
जिला धुले 424304

प्रा॰ डॉ॰ प्रमोद गोकुळ पाटील
मु॰पो॰ मोराणे (प्र॰ल॰)
तह॰ जिला धुले 424001 (महाराष्ट्र)

प्रा॰ डॉ॰ अश्फाक सिकलगर
जीएफ-102 ताज अपार्टमेंट,
चालीसगाँव रोड, धुले (महाराष्ट्र)

प्रा॰ डॉ॰ महेंद्रसिंह रघुवंशी
सरस्वतीनगर, प्लॉट नं॰ 10,
वाघेश्वरी मंदिर के पास,
नंदुरबार 425412

डॉ॰ रेखा वसंत पाटील
सीतामाईनगर, चालिसगाँव
शिला जलगाँव (महा॰) 424101

प्रा॰ डॉ॰ मंजू तरड़ेजा (सिंघाणी)
ब्लॉक नं॰ आर-10, रूम नं॰ 10,
कुमारनगर, साक्री रोड, धुले 424001

ISSN 0975-735X

प्रा॰ डॉ॰ चंद्रमादेवी पाटील
59, ध्नदाईनगर, गोंदुर रोड, वलवाडी,
देवपूर, धुले 424005 (महाराष्ट्र)
डॉ॰ संजयकुमार नंदलाल शर्मा
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा, जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413
श्रीमती वर्षा सुभाषचंद्र देशमुख
बी-6, चंद्रवेल अपार्टमेंट, गोविंदनगर होटेल
प्रकाश्या भागे, मुंबई नाका,
नासिक (महाराष्ट्र) 422010
डॉ॰ देवकीनंदन महाजन
1 टेलीफोन कालोनी,
धुले रोड, अमलनेर (जलगाँव) महाराष्ट्र
डॉ॰ कल्पना राजेंद्र पाटील
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी, तलोदा
जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413
सुश्री निर्मला पुरुषोत्तम तोमर
फ्लेट नं॰ 12, एस नं॰ 137/2
वारजे मलवाडी
पुणे 411058
08087612123
प्रा॰ डॉ॰ रामचंद्र माली
अध्यक्ष हिंदी विभाग,
क॰वा॰वि॰ महाविद्यालय
नवापुर, शिला नंदुरबार (महाराष्ट्र)
डॉ॰ सुषमा कोंडे
81/ए, प्लाट नं॰ 9/ए,
गिरिदर्शन हाउसिंग सोसायटी, बानेर रोड
पुणे 411007 (महाराष्ट्र)
09822848464
प्राचार्य
विद्यावर्धिनी महाविद्यालय,
धुले (महा॰) 424001
डॉ॰ हेमलता कांचनकर
43 नंदनवन कालोनी (कैंट)
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09730202528

सुश्री नेहा संदीप घोरपड़े
द्वारा सुश्री सुनीता पवार
फ्लैट नं॰ 404, प्रकाश मेमाराइज
एस नं॰ 73, दूध डेयरी, पुणे-411046
सुश्री भारती मधुकर पाटील
मु॰पो॰ सावलदे, तहसील शिरपूर
जिला धुले (महा॰)
प्रा॰ शिंदे नवनाथ सर्जेराव
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
कडलास रोड, सांगोला (सोलानुर) 413307
09763602304
डॉ॰ मीनल प्रमोद बर्वे
7, गिरिजात्मक, अष्टविनायक रेजिडेंसी,
के॰जे॰ मेहता कालेज के पास, नासिक-पुणे हाईवे
नासिक रोड (महाराष्ट्र) 422001
09423968189
प्रो॰ अमानुल्लाह मो॰ शेख़
श्रद्धा रेजिडेंसी, बिल्डिंग ए, बिंग ए-201
आई॰टी॰आई॰ कालेज के पास
पो॰ मुकिंदपुर, तह॰ नेवासा
जिला अहमदनगर (महा॰)
श्री शेख शिराज हसन
पोस्ट बोरी, तालुका खंडाला (सतारा)
415521 (महा॰)
मो॰ 09011444059
प्रा॰ ईश्वर पदमसिंग ठाकुर
जनशक्ति कालोनी
रिंग रोड, फैजपुर, तहसील यावल (जलगाँव)
डॉ॰ दीपक विश्वासराव पाटील
मुकाम सौंदाणे
निकट कलाविश्व कंप्यूटर सेंटर
पो॰ बडजाई (धुले) महा॰ 424002
099923811609

डॉ॰ अनिता मधुकर अंतरे
मयूर सोलर ऐजेंसी
स्वामी समर्थ मंदिर के पास
पो॰ लोनी बी के, तालुका रहाता
जिला अहमदनगर (महाराष्ट्र) 413736
09970343766

डॉ॰ विट्ठलसिंह नंदरामसिंह ढाकरे
'सी' टाइप कालेज
शास्त्राीनगर, लासलगाँव
जिला नासिक (महाराष्ट्र) 422306
08888590156

डॉ॰ उर्मिला मानसिंह गायकवाड
प्लॉट नं॰ 290-292, सेक्टर-29
गुरु स्मृति अपार्टमेंट, ए-विंग,
फ्लैट नं॰ 303 रावेत निकट डी-मार्ट
पुणे 412101, मो॰ 07620225839

डॉ॰ एफ॰एम॰ शाह
द्वारा श्री टी॰एम॰ धुवारे
छोटा दत्त मंदिर के पास, टी॰बी॰ टोली
गोंदिया (महा॰) 441614
मो॰ 07620042772

डॉ॰ शैला पांडुरंग चव्हाण
फ्लेट नं॰ 1, सुविधिनाथ हाउसिंग सोसायटी
मुख्य फायर ब्रिगेड आफिस के सामने
हीरा-मोती शोरूम के पीछे,
सिंघाड़ा तालाब, नासिक (महा॰) 422001
मो॰ 09850827138

प्राचार्य
कला, वाणिज्य व कंप्यूटर
एप्लीकेशन महिला महाविद्यालय
डोंगर कठोरे, यावल,
जिला जलगाँव (महा॰)

प्रा॰ पुरुषोत्तम कुंदे
हिंदी विभाग, न्यू आर्ट्स कामर्स एंड साइंस कालेज
शेवगाँव (अहमदनगर) 414502 महाराष्ट्र
09850947267

प्रा॰ अमृता भरत पाटिल
प्लाट नं॰ 23, बालाप्पा कॉलोनी
अशोकनगर के पास, जमनागिरि रोड
धुले (महा॰) 424001

डॉ॰ सचिन कदम
हिंदी विभाग, संगमनेर महाविद्यालय
संगमनेर (महाराष्ट्र)
रूपाली नामदेवराव रिंगे
द्वारा बालाजी संभाजी कदम
फ्लैट नं॰ 12, साईं श्रद्धा रेसिडेंसी, प्लॉट नं॰ 78
सी॰डी॰सी॰ पूर्णनगर, चिंचवड,
पुणे 411019 महाराष्ट्र
09420848635, 07276268922

प्रो॰ मनोहर हिलाल पाटिल
प्लॉट नं॰ 1, परिजात कॉलोनी
निकट इंदिरा गार्डन, देवपुर धुले 424002 (महा॰)

गुजरात

श्री गुलाबराव शांताराम बाविस्कर
201, के-टॉवर, श्रीनंदनगर
सोखड़ा रोड, छाणी,
बड़ोदरा (गुजरात) 391740
09624501415

कर्नाटक

डॉ॰ जुबैदा हाशिम मुल्लाँ
बैतुल हाशमी, म॰नं॰ 152, ताजनगर
हुबली 580031 (कर्नाटक)

तमिलनाडु

Dr. V. Jayalakshmi
Mathura, Plot No. 38
5th Cross Street, Gokul Nagar
Perumbakkam, Chennai-600100

डॉ॰ कैलाशंद्र शर्मा 'शंकी'
प्रोफेसर कॉलोनी, स्टेडियम रोड
चरखी दादरी (भिवानी) हरियाणा 127306
मो॰ 09812121233

ISSN 0975-735X

संपादकीय

गोपाल चतुर्वेदी के साहित्य में राजनीतिक व्यंग्य

जनतंत्रात्मक शासन होने के कारण भारत में प्रत्येक व्यक्ति को विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता है। वह अपने भाव-विचारों को साहित्य, चित्रकला, नृत्य, संगीत, वास्तुकला आदि के माध्यम से व्यक्त कर सकता है। विचार-स्वातंत्र्य होने के कारण व्यंग्य की जड़ें भी मजबूत हुईं तथा व्यंग्य के क्षेत्र का विस्तार भी हुआ। रामराज्य की कल्पना साकार न होने तथा राजनेताओं की कुर्सी-लोलुपता के कारण व्यंग्य का सबसे अधिक शिकार राजनेताओं एवं राजनीतिज्ञों को ही बनना पड़ा है। राजनीतिक परिवेश निरंतर कलुषित होता जा रहा है। नेताओं की कथनी और करनी में पर्याप्त अंतर है। लोकतंत्र के स्थान पर भीड़तंत्र व भेड़तंत्र का वातावरण बनता जा रहा है। शासक अवसर मिलते ही धन जुटाने लग जाता है और जनता को उपदेश देता है—सादगी का, संयम का। नेताओं के दर्शन केवल चुनावों के समय होते हैं। व्यंग्यकारों ने इन विडंबनाओं पर अपनी लेखनी का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। स्वतंत्रता से पूर्व जनता के दु:ख-दर्द को दूर करने का आश्वासन नेताओं ने दिया, लेकिन आज वे नेता ही जनता के दु:ख का कारण बन गए हैं।

आम चुनावों में पैसा पानी की तरह बहाया जाता है। आखिर क्यों? कहाँ से आता है इतना धन? कहाँ से वसूल करेंगे यह धन? निश्चित ही सत्ता के दुरुपयोग द्वारा। चुनावों के बाद टैक्सों का बढ़ना, व्यभिचार, भ्रष्टाचार को बढ़ावा, कार्य के लिए भेंट-उपहार लेना, चुनावों में जातिवाद, सांप्रदायिकता, पूँजी एवं अनुचित साधनों का प्रयोग आदि ऐसे विषय हैं, जिन पर चतुर्वेदीजी ने अपनी कलम चलाई है।

चुनावों से पहले किए गए वायदों का कुर्सी मिलते ही भूल जाना, विधानसभाओं और संसद में व्याप्त भ्रष्टाचार, नेताओं की भाषणबाजी, अवसरवादिता, दल-बदल की सिद्धांतहीन राजनीति, नैतिक पतन, चापलूसी, स्वार्थपरता आदि ने राजनीति और राजनेताओं के चरित्र पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है।

आज की राजनीति में एक नई धारा का उद्‌गम हुआ है। वह धारा है दल-बदल की। दल-बदल के मूल में कोई सिद्धांत नहीं, पदलिप्सा की प्रवृत्ति ही मुख्य है। उसके लिए किसी विचार, किसी आदर्श, किसी सिद्धांत या औचित्य की भी आवश्यकता नहीं। दलबदल मात्र स्वार्थ के वशीभूत होकर कुर्सी पाने के लिए किया जा रहा है। प्रतिदिन नए-नए दल बनते हैं और राजनीतिक क्षेत्र में अस्थिरता पैदा होती है। पार्टी की नीतियों के आधार पर ही जनता अपने प्रतिनिधि का चयन करती है, लेकिन नेताओं को जनता की चिंता नहीं। उन्हें देश और जनता से कोई सरोकार नहीं। उन्हें तो सिर्फ अपने स्वार्थ की चिंता है। उनके लिए दल-बदल एक वस्त्र को उतारकर दूसरे वस्त्र को धारण करने के समान है। इसी कारण दल-बदलुओं के लिए 'आयाराम, गयाराम' जैसे मुहावरे बन गए।

प्रशासन की ढुलमुल नीति से किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो पाता। भारत में लालफीताशाही का विस्तार हुआ है। अफसरों की मनमानी ने प्रशासन को कमजोर बनाया है। नेताओं ने देश को खोखला किया है। जनता के सेवक की जगह नेता और अफसर उसके स्वामी ही बन गए हैं।

राजनीतिक व्यंग्य के विविध आयाम

भारत को स्वाधीन कराने के लिए प्रयुक्त किए गए हथियारों में एक अमोघ अस्त्र था–सत्याग्रह। सत्याग्रह से तात्पर्य है–सत्य बात के लिए आग्रह, सत्य बात के लिए किसी के सामने न झुकना। आज सत्याग्रह का स्थान हड़ताल ने ले लिया है। अब कुछ प्राप्त करना है तो हड़ताल, कोई माँग मनवानी है तो हड़ताल; दाखिला चाहिए तो हड़ताल। 'राष्ट्रीय हित और हड़ताल' में हड़ताल के स्वरूप का चित्रण करते हुए श्री गोपाल चतुर्वेदी लिखते हैं–'मुरारी बाबू के निर्देश पर बाबुओं ने 'कलमबंद' आंदोलन छोड़कर अपनी इज्जत बचाई।...अफसर ने मुरारी बाबू से माफी माँग ली। अब जाड़ों भर दफ्तर में बाबू-अफसर आराम से आते हैं। रजिस्टर पर चिड़िया बनाकर सामने के पब्लिक पार्क में भाईचारे की भावना से धूप सेकते हैं और सर्दी के प्रतिकूल प्रभाव से बचने के लिए सूरज ढलने के पहले घर कूच कर जाते हैं। सरकार में बाबू-अफसर के निरंतर बढ़ते सौहार्द में हड़ताल की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।' (नैतिकता की लँगड़ी दौड़, पृ॰ 136)

हड़तालों का प्रभाव सर्वत्र व्याप्त है। हड़तालों का शुद्ध लाभ भी हड़तालियों को नहीं, उनके नेताओं को मिलता है। नेता मालिकों के साथ समझौता कर लेते हैं। हड़ताल करनेवालों को बहुत साधारण से लाभ से संतोष करना पड़ता है। हड़ताल तभी तक चलती है, जब तक श्रमिक नेता की मुट्ठी गरम न हो जाए। इन्हें मजदूरों की सुख-सुविधा से कुछ लेना-देना नहीं। उनको तो केवल अपनी जेब भरने से मतलब है।

चतुर्वेदीजी ने 'राष्ट्रीय हित और हड़ताल' में इस स्थिति की ओर व्यंग्य किया है–'देश में सरकारी प्राध्यापक भी हड़ताल में किसी से कम नहीं हैं। देखने में आया है कि उनकी 'स्ट्राइक' से शिक्षा का स्तर सुधरता है और समाजवाद कमजोर होता है। हड़ताल सरकारी उपक्रमों का बुनियादी अधिकार है और उसे चुपचाप सहना जनता का कर्त्तव्य है।' (नैतिकता की लँगड़ी दौड़, पृ॰ 137)

भ्रष्टाचार का सबसे अधिक प्रयोग राजनीतिक क्षेत्र में हुआ है। शासक, प्रशासक, मंत्री, सांसद, वोटर सभी भ्रष्ट तरीकों का प्रयोग करते हैं। राजनीतिक वातावरण दिन-प्रतिदिन प्रदूषित होता जा रहा है। नेता (मंत्री) के लिए किसी प्रकार की शिक्षा की जरूरत नहीं है। उनके लिए बस आवश्यक है–भाषण कला और जोड़-तोड़ में पारंगत होना। 'बचुआ' की शिक्षा में इस स्थिति का व्यंग्यात्मक चित्रण हुआ है।

राजनीतिक परिवेश में सबसे अधिक अस्थिरता दल-बदल की राजनीति से है। दल-बदल के कारण सरकार डाँवाँडोल हो जाती है। मंत्री-विधायक दल-बदल करके सरकार के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पारित कराते हैं। चतुर्वेदीजी ने 'हमारा दुनिया में नायाब होना' में दल-बदल विखंडन पर तीखा व्यंग्य किया है–'लो प्यारे, हमारे बंधुआ एम॰पी॰ आपके साथ हैं। बना लो सरकार। थोड़े दिन बाद इसको हटाओ, उसको बैठाओ की शर्तें लगाकर फरमाते हैं, 'आपका टर्न हो गया! हमें भी तो मौका दो।' (आजाद भारत में कालू, पृ॰ 110)

दल-बदल के पीछे सिद्धांत नहीं, वरन् धन और पद का प्रलोभन है। दल-बदल करते समय उन्हें किंचित् ग्लानि नहीं होती है। नेता कहते हैं कि वे आत्मा की आवाज पर दल-बदल कर रहे हैं, जबकि वह वस्तुतः पदलोलुपता की आवाज होती है, धनलिप्सा की आवाज होती है। दल-बदल की नीति इतना गहरा रंग लायी है कि प्रत्येक विधायक उसका शिकार हो रहा है। यह खरीद का कार्य भी ऐसा है कि एक-एक विधायक कई-कई बार बिक जाता है। आज आपका, कल दूसरे का तो परसों तीसरे का हो जाता है। जो सबसे बड़ी बोली बोलता है, विधायक उसी के हो जाते हैं।

अब व्यक्ति का नहीं, कुर्सी का सम्मान है। जब तक व्यक्ति के स्थान पर कुर्सी का महत्त्व रहेगा, समाज में भ्रष्टाचार भी रहेगा। कुर्सी प्राप्त करने के लिए भ्रष्ट और सत्-असत् सभी तरीकों का प्रयोग करके व्यक्ति उसे प्राप्त करके बनाए रखना चाहता है। चतुर्वेदीजी ने कुर्सी-लोलुपता पर सटीक व्यंग्य किया है–'उसके बाद से चमचे भी बुद्धि की श्रेष्ठता में यकीन रखने लगे। चमचे अहसान-फरामोश नहीं हैं। वे आज भी अपने धंधे में जवाहरलाल और उनके खानदान के योगदान का अहसान मानते हैं। यह बुद्धि की भावना पर विजय का प्रभाव है कि आज के चमचे किसी व्यक्ति की चमचागिरी सिर्फ उसकी कुर्सी की ख़ातिर करते हैं। वह उस कुर्सी से हटा और दूसरा आया, तो वे उसके चमचे हो जाते हैं। यानी वे सिर्फ कुर्सी के चमचे हैं, किसी विशेष के नहीं।'[6] (आजाद भारत में चमचे, पृ॰ 89)

मंत्रीपद पाने के लिए हर समय मंत्रिमंडल में उखाड़-पछाड़ चलती है। सत्ताधारी दल का प्रत्येक विधायक मंत्रीपद पाने के लिए लालायित रहता है। जैसे ही किसी मंत्री का पद रिक्त होता है, राजनीतिक सरगर्मी प्रारंभ हो जाती है। मंत्री टी॰ए॰, डी॰ए॰ के रूप में लंबी-चौड़ी रकम डकार जाते हैं। 'नेता की नाक' में भी चतुर्वेदीजी ने शासकों की स्वार्थी मनोवृत्ति को व्यंग्य का निशाना बनाया है।

वोटर से लेकर मंत्री तक चमचे हैं। सरकार में भी चमचों का ही बोलबाला है। जब समाज में चाटुकारिता बढ़ जाती है और सत्परामर्श देनेवाला कोई नहीं रह जाता, तब सरकार का पतन निश्चित है। 'आजाद भारत में चमचे' में चतुर्वेदीजी ने इस स्थिति का बड़ा ही जीवंत चित्रण किया है–'चमचातंत्र में राजनीतिक दलों का पूरा संगठन चमचागिरी पर आधारित है। ऐसा नहीं है कि जाति, रिश्तेदारी और संप्रदाय की भूमिका पदों के बँटवारे में अपना महत्त्व खो बैठी है। पर पुत्र, भाई, साले, भतीजे भी वही आगे आते हैं जिनका चरित्र चमचा-प्रधान है।' (आजाद भारत में चमचे, पृ॰ 157)

भ्रष्ट नेता चंदा लेकर उद्योगपतियों को लाइसेंस व कोटा देते हैं। 'आजाद भारत में चमचे' में बताया गया है कि किस प्रकार पूँजीपति सुरक्षा फंड में धन देकर मंत्रियों को प्रसन्न करते हैं। मंत्रीजी भी चंदा लेकर उन्हें अपना गोरखधंधा चलाने की पूरी छूट दे देते हैं। मंत्री बनने के बाद धन बटोरने के हजारों हथकंडे हैं।

सफल नेता वह है, जिसके पाँव में चाँदी का जूता हो। यह ऐसा जूता है कि जिससे वह जिसे चाहे उसे खरीद सकता है। विधायकों को खरीदकर मंत्री तक बन सकता है। मंत्री बनकर पैसा बटोरता है। नेताओं द्वारा प्रयुक्त भ्रष्ट साधनों में एक साधन है चुनाव में खड़े होकर दूसरी पार्टी से प्रचुर धनराशि लेकर चुनाव मैदान से हट जाना। इस प्रकार बिना विधायक बने ही लाखों

रुपये मिल जाते हैं। 'बचुआ की शिक्षा' (भारत और भैंस, पृ॰ 102) में चतुर्वेदीजी ने इस स्थिति का पर्दाफाश किया है।

नगरपालिकाएँ राजनीति का अखाड़ा बन गई है। उनके सदस्यों को अपनी राजनीति से ही अवकाश कहाँ है, जो वे शहर की स्थिति का निरीक्षण करें। स्थान-स्थान पर कूड़े के ढेर, उनसे उठती बदबू, मक्खी-मच्छरों का अखंड साम्राज्य, सड़कों की दुरवस्था, बिजली-पानी की अव्यवस्था। यह है आज के नगरपालिका राज में नगरों की स्थिति। 'भारत में दान-चंदा' (नैतिकता की लगड़ी दौड़, पृ॰ 157) में नेताओं के भ्रष्टाचार एवं अवसरवादिता पर तीखा प्रहार किया गया है।

जनतंत्रात्मक शासन में प्रति पाँच वर्ष बाद सरकार बनाने के लिए आम चुनाव होते हैं। हमारे देश में इस क्षेत्र में भी भ्रष्टाचार बढ़ा है। चतुर्वेदीजी ने वोटर के बिकने की प्रवृत्ति पर तीखा प्रहार किया है। नगरपालिका जैसे लघु स्तर के लिए भी जब वोट खरीदे जाते हैं या शराब आदि पिलाकर वोटरों को अपने पक्ष में किया जाता है तो फिर अन्य बड़े चुनावों का तो कहना ही क्या? मतदाता भी इतना चतुर हो गया है कि माल किसी का खाता है और वोट किसी और को देता है। मतदाताओं के मत केवल शराब व नोट से ही नहीं खरीदे जाते, वरन् अन्य प्रलोभनों से भी खरीदे जाते हैं। जैसे चुनाव के दौरान गरीबों को रजाई, कंबल, साड़ी आदि तथा बेरोजगारों को नौकरी का लालच देकर वोट के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया जाता है। इस युक्ति पर चतुर्वेदीजी का व्यंग्य देखिए–'जाने आपको पता है कि नहीं। हमने पिछले पाँच साल में आप लोगों के भले के लिए पाँच हजार फाइलें खुलवाई हैं। वह सब सरकार में इस दफ्तर से उस दफ्तर के चक्कर काट रही हैं। इन्हीं कागजों में पचास हजार नई नौकरियों, रेल की नई लाइन, खेल का स्टेडियम और एक दर्जन कारखानों के प्रस्ताव हैं। हमें इस बार आपका आशीर्वाद प्राप्त हुआ तो हमारे और आपके ये सब सपने साकार होंगे।' (भारत और भैंस, पृ॰ 158)

कोई भी दुर्घटना हो, नेता सिर्फ मुसकराता रहता है। जीतने के बाद उसे किसी से कुछ नहीं लेना देना–'वैसे हमें मुसकराते, खिलखिलाते, ठहाका लगाते नेता पसंद आते हैं। बाढ़-सूखा, गरमी, दुर्घटना, हारी-बिमारी, दंगा-फसाद कुछ भी हो, नेता हँसता दिखता है। दिखना भी चाहिए। इतनी भीषण दुर्घटना हो गई और कुल सौ डेढ़ सौ ही मरे। इतने प्रयास से दो संप्रदायों में लड़ाई कराई और बस, दस-बारह की ही मौत आई। यह कोई कम संतोष का मसला है क्या। रोना परिवारवालों का काम है। दंगा हो या प्राकृतिक आपदा, सबका शिकार सबसे औसत और हाशिए पर खड़ा इंसान ही होता है।' (राम झरोखे बैठ के, पृ॰ 105)

चुनाव के समय वोटर ही प्रत्याशी का भगवान होता है। 'बचुआ की शिक्षा' में चतुर्वेदीजी ने इस स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है–'अरे महाराज! इस बार दर्शन नहीं दोगे? हमने तो आते ही आपके दरवाजे पर मत्था टेका था।' उन्होंने पंडितजी को निमंत्रित किया। इसके बाद बचुआ के साथ अपनी गाड़ी पंडितजी को लेने भेजी। पंडितजी पधारे तो नेताजी ने श्रद्धापूर्वक उनके चरण छुए, मिठाई मँगाई और निवेदन किया, 'भगवान्! जाटव और यादव सम्मेलन हमारे समर्थन में हो चुके हैं। एक ब्राह्मण सम्मेलन भी करवा दीजिए। भोजन-पानी की व्यवस्था हमारी और अध्यक्षता आपकी। काफी हिसाब-किताब के बाद पाँच लाख में पंडितजी से सौदा पटा।' (भारत और भैंस, पृ॰ 105)

गाँवों की राजनीति शहरी राजनीति से कुछ बातों में भिन्न है। वहाँ शिक्षा का अधिक प्रसार न होने के कारण वोटर को डरा-धमकाकर भी वोट प्राप्त किए जाते हैं। दादा बनकर ही मौज की जा सकती है। आम चुनाव की प्रक्रिया इतनी दोषपूर्ण हो गई है कि जिसकी लाठी उसी की भैंस वाली कहावत चरितार्थ हो रही है।

सरकारी उद्योग-धंधों में बढ़ती लापरवाही पर भी चतुर्वेदीजी ने तीखा प्रहार किया है– 'हमने एक किडनैपर भाई से सहानुभूति जताई, 'आप इतनी महनत-मशक्कत करते हैं। इससे तो बेहतर है कि कोई इंडस्ट्री लगा लें।'

उन्होंने अपनी शंका मिटाई, 'अपना धंधा भी अब उद्योग बन चुका है। पूरे मुल्क में इसकी शाखाएँ हैं। फैक्टरी-कारखानों में धरा ही क्या है, रोज किसी-न-किसी घटिया इंस्पेक्टर की खुशामद करो। उसको और उसके अफसरों को खिलाओ-पिलाओ। मूँछ पर ताव देते हैं और माल को खरीदते-बेचते हैं।' (आजाद भारत में कालू, पृ॰ 103-104)

सरकारी तंत्र में बढ़ती लालफीताशाही से जनता त्रस्त है। कोई भी कार्य समय पर नहीं होता। दस चक्कर काटिए, तब भी कार्य हो जाए तो गनीमत है। सरकारी नियंत्रण की किसी वस्तु को लेने के लिए परमिट चाहिए, तो पहले प्रार्थना-पत्र दो फिर महीनों बाद उसका उत्तर मिलेगा। वह भी जितनी वस्तु की माँग की गई है, उसकी आधी भी स्वीकृत नहीं होती।

'कभी सरकार के सैकड़ों हाथी थे, अब हजारों हाथी हैं। सुरक्षा, गुप्त सूचना, जाँच-पड़ताल, प्रशासन, कानून-व्यवस्था, विकास, निर्णय-अनिर्णय सबका जिम्मा हाथियों का है, पर कहीं भी जवाबदेही उनकी नहीं है। बस, रेल, आदमी, जहाज, किसी का भी अपहरण हो, सरकारी हाथी उसके बाद पूरी साजिश का खाका खींचकर प्रशंसा के हकदार हैं। वे गर्व से बताते हैं, 'हमें तीन महीने से सूचना थी कि पड़ोसी देश की खुफिया एजेंसी आदमी, जहाज या ट्रेन को अगवा करने की योजना बना रहे हैं। हमने उनपर पूरी निगरानी रखी। बस अंतिम दिन हमें विदेश जाना पड़ा और घोड़ा घोड़े बेचकर सो गया। इसी चूक से दुश्मनों को सफलता मिल गई।' कोई हाथी से यह जानने की गुस्ताखी नहीं करता कि भैया, तीन महीने तक तुम सूचना को सेते क्यों रहे? कोई 'एक्शन' ही ले लेते। पर हाथी से ऐसे बदतमीजी के सवाल कौन पूछे।' (राम झरोखे बैठ के, पृ॰ 31)

चतुर्वेदीजी ने पंचशील की प्रभावहीनता पर भी व्यंग्य किया है कि बहरा व्यक्ति सुन नहीं सकता, अंधा देख नहीं सकता, लँगड़ा भाग नहीं सकता, लूला हाथ नहीं चला सकता, नंगे के पास है ही क्या जो उसे कोई लूटे। इसी प्रकार पंचशील का सिद्धांत बहरा, अंधा, लूला, लँगड़ा और नंगा हो गया है, जो कि उसकी निरर्थकता को सिद्ध करता है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से लेकर आज तक संप्रदाय-संघर्ष के समाप्त न होने पर चतुर्वेदीजी ने तीक्ष्ण प्रहार किया है–यह हमारे सामूहिक दृष्टिकोण के सुखद परिवर्तन का खुशनुमा नमूना है कि इंसान की जान का दर्द जैसे दकियानूसी जज्बात हमने बहुत पहले से तज दिए हैं। हमने उसे जाति-धर्म में बाँट दिया है। लोग बहस करते हैं कि अपना टें बोला या पराया। हमारी जाति का या दूसरी का। हिंदू या मुसलमान। संतों और नेताओं की प्रतियोगिता है कि माहौल में नफरत का जहर कौन ज्यादा भरे।' (आजाद भारत में कालू, पृ॰ 110)

जनता और राजनेता दोनों ही उनके सटीक प्रहारों से बच नहीं सके। व्यंग्य-बाणों का

सर्वाधिक शिकार राजनेताओं को बनाया गया है, क्योंकि उनके व्यवहार में सबसे अधिक विसंगतियाँ हैं।

चतुर्वेदीजी के व्यंग्य में कहीं भी अश्लीलता नहीं है। व्यंग्य स्वच्छ एवं उच्चस्तरीय है। व्यंग्य का उद्देश्य भी पाठकों, श्रोताओं को देश-विदेश में व्याप्त गतिविधियों से परिचित कराके उन स्थितियों का सामना करने योग्य बनाना है। चतुर्वेदीजी इस कार्य में पूर्णतः सफल रहे हैं। उनके व्यंग्य मात्र तिलमिलाहट ही पैदा नहीं करते, वरन् मीठी मार भी करते हैं। उस मार में आनंद का स्वाद और लोकहितैषणा भी अंतर्निहित है।

राजनीति और प्रशासन पर व्यंग्य

'अगर आप दुनिया की मशीनों को समुद्र में डूबो दें, तो दुनिया भूखों मर जाएगी और यदि आप दुनिया के राजनीतिज्ञों को समुद्र में फेंक दें तो पत्ता भी न खनकेगा।' (युगधर्म, दिनांक 10 दिसंबर 1978, पृ॰ 5) सिंगापुर के संसद सदस्य श्री सियाकट हुई द्वारा नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रमंडलीय देशों के संसदीय-सम्मेलन में दिए गए भाषण के उपर्युक्त कथन से राजनीति और नेताओं के प्रति जनता में आक्रोश और नैराश्य की भावना सच्चे अर्थों में प्रकट होती है। आज का व्यंग्यकार यही बात ठीक इसी शब्दावली में कहता है-'राजनीतिक नेताओं ने सारे देश की लुटिया डुबो रखी है। यदि भारत के समस्त नेताओं को कहीं बाहर भेज दिया जाए तो भारत की सारी समस्याएँ एक ही दिन में और रात में सुलझ जाएँगी और भावात्मक एकता का विकास होगा सो अलग।' (श्री सुदर्शन मजीठिया, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, पृ॰ 41)

राजनीति की इस गदंगी की सफाई करने के लिए चतुर्वेदीजी ने अपनी लेखनी उठाई। उन्होंने नेता की असलियत उजागर करने और हथकंडों का सामना करने का कष्ट उठाया-'कइयों का विचार है कि नेता एक चिकना घड़ा है। उस पर इतना कीचड़ उछल चुका है कि इलजामों के पानी से अब सिर्फ कीचड़ धुलता है। उस पर असर हो तो कैसे हो। कई ऐसे भी हैं, जो इस शक्तिशाली युगपुरुष को केवल इधर से उधर लुढ़कने वाला थाली का बैंगन मानते हैं। हमें दुःख होता है, पर क्या करें। नेता के भी दूसरे आदमियों की तरह एक नाक, लंबी जुबान, दो आँख-कान-हाथ पैर हैं। वह भला तरकारी-भाजी कैसे हो सकता है। फिर सब्जी का तो उपयोग है। उसे लोग खाते हैं। नेता का तो कोई उपयोग नहीं हैं। बतानेवाले बताते हैं कि वह चारों और मुँह मारता है। कुछ भी खाता रहता है। जो उसे सब्जी नहीं मानते हैं, वह उसे सरकारी सांड का दरजा देते हैं।' (भारत और भैंस, पृ॰ 143)

राजनीतिक ठगों की निर्लज्ज लूट ने आम भारतीय नागरिकों के मन को कैसे तोड़ दिया और उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई, जनता के मानस में क्या बिंब उभरें, चतुर्वेदीजी ने अपने व्यंग्यों में इस स्थिति के जीवंत चित्र प्रस्तुत किए हैं।

चतुर्वेदीजी की रचना है, 'पान, परिवार और पॉलिटिक्स।' इसमें वे नेताओं का एक चित्र प्रस्तुत करते हैं-'कुछ लोग देश के लिए जीते हैं, बाकी अपने लिए। जैसे हमारे नेता, अधिकारी पुलिस के जनसेवक आदि देश की खातिर अपना जीवन कुरबान करते हैं और हमारे जैसे सामान्यजन अपनी दाल-रोटी के लिए। आततायी जी हमारे आराध्य हैं। देश उनकी प्रमुख चिंता है। वह देश के लिए उठते-बैठते, बोलते और खाते हैं। उनके फैले-फूटे शरीर को देखकर कभी-कभी हमें शक होता है कि वह अपने मिशन में जरूरत से ज्यादा कामयाब रहे हैं। इन्होंने

देश को काफी खा लिया है। (रामझरोखे बैठ के, पृ॰ 45)

लेखक ने नेता की उपमा बगुला से की है। यदि बगुले को गौर से देखो, स्थानीय नेता-सा लगता है, शिकार पर नजरें रखे, विनय की प्रतिमूर्ति, ऊपर से धीर-गंभीर, अंदर से महाचालू और चालाक। जहाँ राजनीति का सवाल है, परमपद तो प्रायः बगुलों को ही प्राप्त होता है।

आजादी के बाद मानों नेताओं की बाढ़-सी आ गई है। आपको आवश्यकता हो न हो, पर नेता हाजिर है। अनुयायी हों न हों, पर नेताओं का अभाव नहीं है। देश की धरती नेता पैदा करना जानती है। नेताओं को ही लीजिए, गाँव तहसील और प्रांत के स्तर के नेताओं की जब जहाँ जरूरत होती है, वह वहाँ पैदा हो जाता है।

कभी शास्त्रकारों ने 'त्रिया-चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम्' कहकर स्त्री के चरित्र को अनसुलझी गुत्थी कहा था, किंतु उसका साक्षात्कार यदि आज के नेता से हुआ तो वह नारी-चरित्र से ज्यादा गोप्य और दुरूह नेता चरित्र मानते हैं। चरित्र के सारे मानदंड यूँ भी नेता के सम्मुख नतशिर हैं। नेता के मामले में चरित्र कहीं आड़े नहीं आता। नेतृत्व अपने-आपमें चरित्र है। आजकल चरित्रहीनता नेतृत्व को अधिक उभारती है। 'चरित्रवान्' व्यक्ति इस देश के प्रजातंत्र में वोटर से अधिक कुछ नहीं हो सकता।

उद्घाटन और नेता भी एक-दूसरे के पर्याय हैं। यदि यह नेता मंत्री हो तो सोने में सुहागा। 'उद्घाटन का दिन' नामक व्यंग्य में चतुर्वेदीजी ने इस उद्घाटनी संस्कृति पर प्रहार किया है। उद्घाटन मानो नेताओं का जन्मसिद्ध अधिकार है। आजकल नेता उद्घाटन में इतने व्यस्त रहते हैं कि वे यह भूल जाते हैं कि आज किस चीज का उद्घाटन है। मंत्रीजी ने अपने पास बैठे रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष से कहा, 'चलिए, नई इमारत को देख लें। फिर मुझे वापस भी जाना है।'

जब तक अध्यक्ष महोदय कुछ उत्तर दे पाते, मंत्रीजी के निजी सचिव आगे आ गए। उनके चेहरे पर घबराहट थी, 'सर! स्टेशन बिल्डिंग का उद्घाटन तो कल मथुरा में है, यहाँ तो एक और बुकिंग ऑफिस खुला है।' (फार्म हाउस के लोग, पृ॰ 104)

नेताओं ने आजादी के संघर्ष में जो कष्ट भोगे या जेलयात्राएँ कीं, आजादी के बाद वे और उनके बेटे ब्याज-सहित उसकी कीमत वसूलने लगे।

राजनीति में जाति-वर्ग और धर्म का दुरुपयोग

स्वाधीनता के बाद राजनीति ने व्यक्ति का महत्त्व एक वोट से ज्यादा नहीं रहने दिया, इसलिए पार्टी का टिकट भी उसी व्यक्ति को दिया जाता है, जो ज्यादा से ज्यादा वोट खींच सके। धन-शक्ति, गुंडों की ताकत और पोलिंग बूथ पर कब्जा आदि बातों के अतिरिक्त जातिवर्ग और धर्म के आधार पर चुनाव के समीकरण बैठाए जाते हैं। अपनी-अपनी जातियों के आधार पर नेता लोग वोटबैंक तय करते हैं। कितनी बड़ी विडंबना है कि जिस देश का संविधान और चुनाव कानून जाति-पाँति, धर्म, भाषा, संप्रदाय या क्षेत्र के नाम पर वोट माँगने को असंवैधानिक मानता हो, वहाँ इन्हीं आधारों पर वोट प्राप्त किए जाते हों। राजनीतिक दल अपने प्रत्याशी का चयन इसी आधार पर करते हैं और जातीय या धार्मिक आधार पर विजय के समीकरण बैठाए जाते हैं।

व्यंग्यकार इस स्थिति को भली-भाँति समझता है। इन प्रवृत्तियों पर गहरी चोट भी करता है। चतुर्वेदीजी ने 'ढकोसलावाद' में बताया है कि आजकल नेता किस प्रकार देश पर राजनीति

करते हैं–'इन सफल और महत्त्वाकांक्षी लोगों के पास धंधे-पानी की ऐसी व्यवस्था है कि बीवी-बच्चों तक के लिए तो फुरसत है नहीं, देश की कौन सोचे! ढकोसलावाद का अहम उसूल है मुँह खोलो तो सिर्फ मुहावरे और आदर्श बोलो। नेता सिर्फ भाषण में इंसान को महान् व समान मानता है। व्यवहार में उन्हें जाति और संप्रदाय में बाँटता है। यह मुस्लिम इलाका है, जिन्ना कैंप लगाओ। यह ब्राह्म क्षेत्र है, राजर्षि बन जाओ। कहीं अगड़ों को पटाओ, कहीं पिछड़ों से लड़ाओ। देश बँटता है बाँटो। आदर्श थूको, कुरसी चाटो। आपस में प्रतियोगिता है तो एक। कौन सच के अंदाज में कितने विश्वसनीय तरीके से झूठ बोलता है।' (आजाद भारत में कालू, पृ॰ 24)

जाति के साथ-साथ धर्म का राजनीति से मेल आज की राजनीति की विशेषता हो गई है। 'चुनाव के बाद' नामक रचना में चतुर्वेदीजी ने धर्म और जाति को राजनीति से जोड़े जानेवाले कटु यथार्थ को बेवाक ढंग से प्रस्तुत किया है–'विद्वान् बताते हैं कि शुरुआत में हमारी जाति-प्रथा पेशे पर निर्भर थी। क्षत्रिय रक्षक था तो ब्राह्मण भक्षक। जो कुछ न था, रियाया था। रोना यही है कि तब जनतांत्रिक व्यवस्था न थी, नहीं तो जनसेवकों और नेताओं की भी जरूर अलग जाति होती। नाम से आदमी का काम पहचाना जाता। बड़े लोगों का सरनेम चुनाव सूर्य और चाँद होता, छोटों का चुनाव तारा। जैसे रामचंद्र चुनाव चंद्र और ताराशंकर चुनावतारा। वैसे अब भी समय है। राजनीति के पेशे में परिवारों के प्रवेश को वर्ण-व्यवस्था के अंतर्गत लाया जा सकता है।' (आजाद भारत में कालू, पृ॰ 160)

साक्षात भगवान भी यदि चुनाव के महासागर में कूदें तो उन्हें जातिवादी-राजनीति के समीकरण बैठाने ही पड़ेंगे। धर्म भी राजनीति की बंदरबाट करनेवालों का एक अस्त्र बन गया है–'यदि यही सब करना होता तो क्यों कोई भी दल अजगर का सहारा लेता या ब्राह्मण ठाकुर की गोट बिठाता। कहने को सबके सब खालिस समाजवाद लाते हैं। कोई पूछे कि फिर क्यों चुनाव के वक्त सबको अपने-अपने धर्म, वर्ण, गोत्र और संप्रदाय याद आते हैं? कोई रामराज्य के ख्वाब दिखाता है तो कोई बाबा से आशीर्वाद में लात खाता है। हमने गलती से एक बार योग्य उम्मीदवार को वोट देने की बात की तो हमारे बुजुर्ग ने हमें समझाया, नागपंचमी का मौका हैं इलैक्शन। किसी न किसी साँप को दूध पिलाना है। पर इसका यह मतलब नहीं कि नागनाथ और साँपनाथ में कोई फर्क है।' (आजाद भारत में कालू, पृ॰ 160)

संतरी से लेकर मंत्री तक भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे हुए हैं। चतुर्वेदीजी का मत है कि 'देश को राजनेताओं के बाद डुबाने का श्रेय अगर किसी को दिया जा सकता है तो कलर्कों या बाबुओं या लिपिकों को दिया जा सकता है। क्या क्लर्क, क्या अफसर सभी एक ही रंग में डूबे हुए हैं। (नैतिकता की लँगड़ी दौड़, पृ॰ 19)

चतुर्वेदीजी की एक रचना है–'किस्सा छबीलदास का', जिसमें अफसरों को छोटे कर्मचारियों द्वारा पेट काटकर दिए गए अंशदान की प्रक्रिया पर करारा प्रहार किया गया है–'चीफ इंजीनियर से उसका वार्षिक करार है। अगर दस करोड़ का काम हुआ तो वह ईमानदारी से उसे डेढ़ दो परसेंट का चढ़ावा चढ़ाते हैं। निरीक्षक-सुपरवाइजर की आँख पर उनका उसूल पैसे की पट्टी बाँधने का है।' (फार्म हाउस के लोग, पृ॰ 73)

प्रशासन और घूसखोरी एक-दूसरे का पर्याय बन गए हैं। घूस का इतना प्रभाव है कि मनुष्य तो क्या भगवान को भी नहीं बख्शा जाता–'संकट की घड़ी में हमें संकटमोचन याद आने लगा।

 ISSN 0975-735X

हमने मन ही मन हनुमान चालीसा बुदबुदाया और प्रभु को पटाने के लिए प्रसाद की उचित राशि तय करने लगे। 'जान है तो जहान है' का ध्यान रखते हुए हमने ग्यारह रुपये की बाजी लगा दी।' (फाइल पढ़ि-पढ़ि, पृ॰ 50) जब भगवान को घूस दी जाती है तो मंत्री-अधिकारी इससे वंचित क्यों रहें!

आप लोगों को साहब से मिलना है न, 'उसने विषय बदला। हम सबने कोरस में कहा– 'हाँ।' 'हमें क्या मिलेगा?' उसने अर्थपूर्ण दृष्टि से हमें ताका। 'कितना चलेगा,' मैंने रेट पूछा। 'जो भी हुजूर दे दें। हम तो बस इनाम के भूखे हैं। घूस-कमीशन तो हमारे बड़े खाते हैं।' उसने अपनी नैतिक श्रेष्ठता बयान की। सौदा पाँच रुपये में पटा। कुछ देर बाद हम सब साहब के मंदिर में हाथ जोड़े खड़े थे।' (फाइल पढ़ि-पढ़ि, पृ॰ 47)

आचार्य विनोबा भावे ने भ्रष्टाचार के बढ़ते प्रभाव के कारण इसे शिष्टाचार मानकर स्वीकार करने की बात कही थी। यह है नंगी हकीकत हमारी कार्यालयीन कार्य-व्यवस्था में व्याप्त रिश्वतखोरी की, जिसे अनावृत किया है श्री गोपाल चतुर्वेदी ने।

रिश्वतखोरी की तरह दूसरी बड़ी बुराई है भाई-भतीजावाद। घूसखोरी से पोर-पोर बजबजाई प्रशासनिक व्यवस्था में भाई-भतीजावाद कोढ़ में खाज की तरह है। व्यक्ति की योग्यता, प्रतिभा, कार्यकुशलता आदि के स्थान पर नियुक्ति में यह देखा जाता है कि वह किसका आदमी है। व्यंग्यकार चतुर्वेदीजी ने शासकीय सेवा में भाई-भतीजावाद की स्थिति को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–'भतीजे। पहले क्यों नहीं आए? हमने तो हमेशा अपनों का ध्यान रखा। कुछ काम ही करवा देते। अपने खातिर होते किसलिए हैं।'

'कोई काम ही नहीं पड़ा, सर।'

यह तो कहने की बातें हैं। तुम्हें क्या पता। जब हम राज्य सरकार में थे तो तुम्हारी चाची के मौसेरे भाई के भांजे का साला इंजीनियर था। उसके ऊपर बारह लोग थे। प्रमोशन की पोस्ट एक। अब अपने तो अपने होते हैं न। हमने बारह के बारह सस्पेंड कर दिए और अपने को तरक्की दे दी।'

शासकीय कार्यालय अपने निठल्लेपन और गैरजिम्मेदाराना कार्यों के पर्याय बन गए हैं। धींगामुस्ती, धाँधली और अंधेरगर्दी का ऐसा आलम है कि जनसेवा के केंद्र आम जनता की नफरत और घृणा के पात्र बन गए हैं। चतुर्वेदीजी ने शासकीय कार्यालयों को परिभाषित करते हुए 'फाइल पढ़ि-पढ़ि' में लिखा है कि जनतंत्र में सरकारी तंत्र के तिलिस्म को तोड़ना जायज है, जरूरी भी है। बिना किसी कटुता और लाग-लपेट के स्थितियों और पात्रों के चित्रण द्वारा चतुर्वेदीजी ने इस काम को सफलतापूर्वक अंजाम दिया है। इसलिए 'फाइल पढ़ि-पढ़ि' सरकारी अजायबघरों अर्थात् दफ्तर का एक रोचक व प्रामाणिक दस्तावेज बन गया है। इसके पन्नों में चपरासी, दफ्तरी, बाबू अफसर सब जी उठे हैं। वे निकम्मे हैं, नियम की वजह से या सहज काहिली से पर सब इसी देश, काल और समाज के पात्र हैं।

दफ्तर उस जगह को कहते हैं, जहाँ लोग कपड़े काटते हैं और बजाय तकिए के फाइल के सहारे नींद निकालते हैं। सोने के लिए दफ्तर सर्वश्रेष्ठ स्थान है। ताश खेलने, नावल पढ़ने कव्वाली गाने, पान खाने और चाय पीने के लिए भी दफ्तर अच्छे स्थान हैं। (फाइल पढ़ि-पढ़ि, पृ॰ 75)

सरकारी कार्यालयों में व्याप्त लालफीताशाही लकवा जैसी बीमारी बन गया है। आजादी के बाद परिवर्तित भारत के अनुरूप प्रशासन में बैठी नौकरशाही का परिवर्तन भी अपेक्षित था, किंतु उसमें कोई सुधार न हो सका। नौकरशाही के प्रति जनता के मन में विश्वास की कभी अब भी उतनी ही है, जितनी अँग्रेजीकाल में थी।' चतुर्वेदीजी ने नेताओं के साथ इन नौकरशाह सफेदपोश हाथियों पर भी व्यंग्य-प्रहार किए हैं। लालफीताशाही के फीता शब्द को फंदे से और उसके लाल-शब्द की लाली को रक्त से उपमा दी है।

लालफीताशाही के कारण कोई भी काम आसानी से नहीं होता। सभी काम आगजनी या हड़ताल करने के बाद होता है। लालफीताशाही में किसी कार्य को लंबा खींचते जाना, टरकाना और समय पर कार्य न करने की प्रवृत्ति पर प्रायः हर व्यंग्यकार ने ध्यान दिया। चतुर्वेदीजी की एक रचना 'हम जा रहे हैं इक्वीसवीं सदी में' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–'आप अपनी शिकायत किसी भी सरकारी कार्यालय को भेज सकते हैं। अब तो सबमें शिकायत केंद्र खुल गए हैं। पावती तत्काल मिल जाएगी। इक्कीसवीं सदी तक उचित जाँच-पड़ताल के पश्चात् वांछित कार्यवाही की आशा है।' (हिंदी की श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं॰ भगवानदास मोरवाल, पृ॰ 53)

प्रशासनिक व्यवस्था की कार्यकुशलता पर भी चतुर्वेदीजी ने ध्यान दिया है। कार्य-संपादन की अपनी शैली है और शब्दावली भी। प्रत्येक कार्य प्रापर चैनल पर चलता है, जिसमें सोर्स, एप्रोच, रिश्वत आदि अनेक बाधाओं को पार करना पड़ता है। शासकीय कार्य की जटिल प्रक्रिया सात समंदर पार करने के समान है। किसी भी सचिवालय में जाकर कोई काम करवाना हिमालय पर चढ़ने के समान है–'मैं अपनी सफलता पर फूला नहीं समा रहा था। इस बार मैं बिना 'आक्सीजन मास्क' के एवरेस्ट पर चढ़ चुका था। अँग्रेज बड़े समझदार थे कि उन्होंने सचिवालय बनवाए। भारतीय प्रजातंत्र की सफलता ऐसी ही ऐतिहासिक संस्थाओं पर निर्भर है। लोग व्यर्थ ही लालफीताशाही को कोसते रहते हैं। बस दिक्कत उसके पास पहुँचने की है। यदि हर दफ्तर में दो-तीन कैंटीन और हर शहर में एक सचिवालय का इजाफा हो जाए तो मामलों का निपटारा बजट के बढ़ते घाटे की रफ्तार से होने लगेगा।' (फाइल पढ़ि-पढ़ि, पृ॰ 4)

चतुर्वेदीजी की रचना 'सचिवालय और हिमालय' भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है–'याद है आपको एक बार मैं अँधेरे सीलनदार कमरे में ले गया था जहाँ लोग ताश खेल रहे थे। उसे रिकार्ड रूम कहते हैं। बड़ी मुश्किल से वहाँ से मैंने वर्माजी के कागज मँगाकर देखे हैं। साल में एक बार हर पेंशनयाफ्ता को अपने जीवित होने का प्रमाण-पत्र किसी राजपत्रित अधिकारी से दस्तखत कराकर देना होता है। वर्माजी की फाइल में यह सर्टिफिकेट पिछले पाँच सालों से नहीं हैं, इसी कारण उन्हें पेंशन नहीं मिल पा रही।'

मैंने नागपाल को बताया कि पिताजी इस सिलसिले में पाँच सौ पत्र लिख चुके हैं और पत्र जीवित व्यक्ति ही लिख सकता है।' (फाइल पढ़ि-पढि, पृ॰ 11)

प्रशासनिक कार्यकुशलता को चार चाँद लगाती है दफ्तर की फाइल-संस्कृति। चतुर्वेदीजी ने अपनी रचना 'देश फाइलों का दर्पण है' में फाइल-संस्कृति, कार्यालय-कल्चर पर जमकर व्यंग्य-प्रहार किए हैं।

जनसमस्याएँ और प्रशासन की भूमिका

श्री गोपाल चतुर्वेदी ने आजादी के बाद भारत की जनसमस्याओं की सच्ची तस्वीर

प्रस्तुत की है, जिनमें हम पुलिस, रेलवे व अस्पताल आदि पर ही यहाँ संक्षिप्त विचार करेंगे–

भारतीय पुलिस-प्रशासन पर चतुर्वेदीजी बहुत मेहरबान रहे हैं। उन्होंने जी-भरकर पुलिस की कीर्ति का गान किया है–'एक पुलिसवाले ने झुककर मुसाफिर का निरीक्षण किया। वह नया-नया भरती हुआ था और पुलिस की परंपरा से पारंगत नहीं था। उसने पाया कि यात्री के प्राण-पखेरु उड़ चुके हैं। दुघर्टना, प्राकृतिक आपदा, मार-पीट आदि को एक फुरसत-प्रधान देश में तमाशा बनने में देर नहीं लगती है। अब तो गोली का डर भी न था। थोड़ी ही देर में वहाँ भीड़ जमा हो गई। पुलिसवाले जोर-जोर से सबको बता रहे थे कि इंग्लैंड से आया खूँखार आतंकवादी भोलू तो भाग निकला पर उसका साथी भोंदू पुलिस की गोली से नहीं बच पाया।' (फार्म हाउस के लोग, पृ॰ 13, 14)

उन्होंने पुलिस की कार्यप्रणाली पर भी व्यंग्य किया है–'हिंदुस्तान की पुलिस और सी॰बी॰ आई॰ जैसी अन्य जाँच-एजेंसियों में सत्य के अन्वेषण की गजब की प्रतिभा और लगन है। अगर उन्होंने एक बार कुछ कह दिया तो उनका बयान 'अंगद का पाँव' हो जाता है। कोई माई का लाल उसे हिला नहीं सकता है। वह इतनी बार और इतने आस्था-विश्वास से अपना झूठ दोहराते हैं कि गौबेल्स भी शरमा जाए। (फार्म हाउस के लोग, पृ॰ 14)

वास्तव में यदि भारतीय पुलिस को खुदा भी हाथ लग जाए तो वह उसकी भी खबर ले डाले। सच्चाई यह है कि वर्तमान में लोग पुलिस से इतने डरते हैं कि कोई आदमी किसी मरते हुए आदमी के पास नहीं जाता, इस डर से कि वह कत्ल के मामलों में फँसा दिया जाएगा। बेटा बीमार बाप की सेवा नहीं करता। वह डरता है कि बाप मर गया तो उस पर कहीं हत्या का आरोप नहीं लगा दिया जाय। इसलिए आजकल सारे मानवीय संबंध समाप्त हो रहे हैं। श्री गोपाल चतुर्वेदी का यह निष्कर्ष भारतीय पुलिस की कार्य-शैली का वास्तविक विवेचन करता है।

बीसवीं शताब्दी स्वतंत्रता, समता ओर विश्वबंधुत्व के नारों की में गूँज रही है। रोटी, कपड़ा और मकान के बाद व्यक्ति अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को अहमियत देता है। जब उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा या रोजी-रोटी पर कोई व्यक्ति संकट खड़ा करता है तो वह व्यक्ति न्याय की शरण में आता है। हमारे संविधान में सबको न्याय दिलाने की बात कही गई है। यथार्थतः न्याय-प्राप्ति आम नागरिक के लिए आकाशकुसुम की तरह है। चतुर्वेदीजी ने न्यायप्रक्रिया की जटिलता पेचीदगी, दीर्घकालीनता, कानूनों की पुरातनता, झूठी गवाही, वकीलों के शोषण आदि पर दृष्टिपात किया है और इनकी कमजोरियों को उजागर किया है।

न्यायव्यवस्था की बदनामी का एक प्रमुख कारण न्यायालय-परिसर में वकीलों, मुंशियों और दलालों का अंतहीन शोषण है। दीर्घकाल तक चलनेवाली कानूनी लड़ाइयाँ भी आदमी को तोड़ देती हैं और समय पर न्याय न मिलना अन्याय का ही पर्याय बन जाता है। चतुर्वेदीजी ने 'काले कोटवाले' नामक व्यंग्य में वकील की फीस पर व्यंग्य किया है–'हम आज तक नहीं समझ पाए कि आर्थिक संपन्नता, सामाजिक शोहरत और प्रतिष्ठा तथा 'नोटिस' की सत्ता के रहते वकील मातमी काला कोट क्यों धारण करते हैं? क्या यह मुवक्किलों की पीड़ा में शरीक होने का उपक्रम हैं? या वे संसार को बताना चाहते हैं कि 'सूरदास की काली कमर चढ़े न दूजौ रंग' अर्थात् कोई कितनी भी बहस करे, तर्क दे, अपने फीस जन्य विश्वास की दुम टेढ़ी की टेढ़ी रहेगी।' (भारत और भैंस, पृ॰ 42) ऐसा कहकर वे न्याय-व्यवस्था की दीर्घसूत्रता के प्रति और

जटिलताओं के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करते हैं।

न्यायालयों में चलनेवाले झूठ के व्यापार पर भी चतुर्वेदीजी ने गहरा रोष जताया है। आश्चर्य है कि यह सब सत्य के नाम पर होता है। मक्कार, धूर्त और रंगे सियार गवाहों के रूप में हमेशा उपलब्ध रहते हैं। यह 'रेडीमेड गवाह' एक ही जन की अदालत में दिन में कई-कई बार विविध प्रकरणों में उपस्थित होते हैं। अदालत के बाबू-चपरासी तो इन्हें पहचानते ही हैं, न्यायाधीश भी जानने लगते हैं। इन चश्मदीद गवाहों को बार-बार देखनेवाले न्यायाधीश के नेत्र या चश्मे पहचानकर भी नहीं पहचानते, क्योंकि वह केवल कागजी सबूत के अभ्यस्त हो चुके होते हैं–'न हमने इसे खून करते देखा, न आपने। क्या पता इसने कभी मक्खी भी मारी है नहीं! क्या सबूत है? हमने तो अपनी फीस मेज पर रखी देखी है। यदि कोई गुनाह हमारी आँख के सामने होता तो हम कतई केस की पैरवी न करते। वैसे भी हमें गुनाह से नफरत है, गुनहगार से नहीं।' (फार्म हाउस के लोग, पृ॰ 18)

इस प्रकार श्री गोपाल चतुर्वेदी ने आजादी के बाद की राजनीति व प्रशासन-तंत्र की कमजोरियों-बुराइयों की जमकर खबर ली है और उनपर कसकर व्यंग्य-प्रहार किए हैं। उनका कार्यक्षेत्र अत्यंत व्यापक है और जिम्मेदारी गंभीर, किंतु वे अपने अनुभव की पूँजी के सहारे इस कार्य में निरंतर संलग्न हैं।

समीक्षा समिति

प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोशाबाद) उ॰प्र॰
प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पूर्व प्रोफेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)
प्रो॰ रामसजन पांडेय, हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, मीरपुर, रेवाड़ी (हरियाणा)
प्रो॰ अनिलकुमार जैन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म॰प्र॰)
प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)
प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)

अनुक्रम

हाइकु : शिल्पपक्ष/**डॉ॰ भगवतशरण अग्रवाल** 23
डॉ॰ मीना अग्रवाल के विविध आयामी हाइकु/**डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी** 32
सरहद के पार : हिंदी हाइकुकार/**पूर्वा शर्मा** 38
श्रीराधाचरण गोस्वामी और हिंदी/**डॉ॰ अशोक उपाध्याय** 49
डॉ॰ छेदी साह के ग्रंथत्रय/**प्रोफेसर आदित्य प्रचंडिया** 56
नरेंद्र कोहली का विचार-संग्रह/**डॉ॰ कनुप्रिया प्रचंडिया** 61
निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी-विमर्श/**श्वेता अग्रवाल** 66
'गोडसे/गांधीकॉम' नाटक में गांधी के ब्रह्मचर्य-संबंधी सिद्धांत/
प्रो॰ डॉ॰ सदानंद भोसले 71
मैत्रेयी पुष्पा कृत आंचलिक उपन्यासों में नारी-चिंतन/**अमनदीप कौर** 75
'एक और द्रोणाचार्य' नाटक की रंगमंचीयता/**डॉ॰ नानासाहेब जावळे** 80
श्री अबोधबंधु बहुगुणा का गढ़वाली साहित्य/**डॉ॰ अर्चना रानी** 91
कृष्ण काव्यधारा में मानवमूल्य/**मनजीत कौर** 97
आधुनिक समस्याओं के समाधान में संस्कारों की भूमिका/**डॉ॰ अंशुमान** 101
सूर्यबाला कृत 'यामिनी कथा' उपन्यास में निरूपित नारी-मन का द्वंद्व/
अमित कौर 107
दलित-विमर्श/**डॉ॰ बलराम गुप्ता** 112
वर्तमान सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य में स्त्री-सशक्तिकरण की चुनौतियाँ/
डॉ॰ जयप्रकाश यादव 117
वर्तमान कथासाहित्य में अलका सरावगी का योगदान/
डॉ॰ सुचित्रा मलिक, मीनूदेवी 122
'मीराबाई' नारी अस्तित्व के रूप में/**डॉ॰ पर्वज्योत कौर** 126
भारतीय समाज के बदलते परिवेश में वृद्धजन/**डॉ॰ विनीतकुमार पांडेय** 133
मानवतावाद के विशेष संदर्भ में समकालीन कहानीकारों की सार्वभौमिकता/
डॉ॰ सीमा चंद्रन 137
आदिवासी समुदाय की अस्मिता के विकास में सोशल नेटवर्किंग
साइट्स की भूमिका (सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में)/**राकेशकुमार दुबे** 142
मोहन राकेश के नाटकों में दृश्यबंध योजना (प्रातिनिधिक नाटकों के संदर्भ में)/
प्रा॰ जयराम गाडेकर 149
जैनेंद्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक धरातल/**यशपाल सिंह राठौड़** 155

चरित्रों के सामाजिक संबंध एवं उनके स्वरूपों का विवेचन/
डॉ॰ मनमोहन शुक्ल, स्मिता पांडेय 162
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य/**डॉ॰ अभिलाषा शर्मा** 168
गीतांजलिश्री के उपन्यास और मानववादी तत्त्व/**अनिता गोयल** 174
रीतिमुक्त कवि ठाकुर के काव्य में रसानुभूति/**रामवीर** 179
'मोहनदास' दीर्घ कहानी में चित्रित आम आदमी का यथार्थ/
कु॰ सविता सुरेश मोर, शोध निर्देशक डॉ॰ पी॰व्ही॰ कोटमे 187
हिंदी नुक्कड़ नाटकों में चित्रित ग्रामीण-शहरी जीवन/
जगदीश राजारामसिंग परदेशी, शोध निर्देशक डॉ॰पी॰व्ही॰ कोटमे 190
'मैं बंजारा हूँ' बहिष्कृत भारत की बुलंद आवाज/
भाग्यश्री अनंत भावसार, शोध निर्देशक डॉ॰ पी॰व्ही॰ कोटमे 194
'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में आज के संदर्भ/
कोमलराम मनोहर, शोध निर्देशक डॉ॰ पी॰व्ही॰ कोटमे 198
मुनि पुलकसागर जी महाराज के साहित्य में 'सत्यम् शिवम् सुंदरम' की भावना/
डॉ॰ नीति गोयल 201
पंजाब की लोककहानियों का वर्गीकरण/**संदीप कौर** 205
मानस और मानवमूल्य/**डॉ॰ जी॰ शांति** 212
गोस्वामी तुलसीदास की स्त्रीविषयक दृष्टि/**रामबाबू** 216
जिप्सी जीवन की अंतर्यात्रा : खानाबदोश/**डॉ॰ प्रकाश कोपार्डे** 224
वैश्वीकरण की अवधारणा और प्रवासी हिंदी साहित्य/**प्रो॰ नवीनचंद्र लोहनी** 233
मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री-संघर्ष/**डॉ॰ प्रीति यादव** 238
डोगरी लोक-कत्थें च लोकविश्वास/**डॉ॰ प्रीति रचना** 242
डोगरी क्हानियें च परिवारिक ते धार्मिक कदरां/**शिवकुमार खजुरिया** 247
Rambeti: My Mother and The First Teacher of Moral Values/
Dr. M.S.Vimal 252
Biographical Sketch of an Ideal Teacher: Ramanand Dohare/
Dr. M.S.Vimal 257
Ramprakash Mehra and His Social Contribution/**Dr. M.S.Vimal** 262

शोध दिशा के दो बड़े विशेषांक जो शीघ्र प्रकाशित होंगे।
1. डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका : सृजन और साहित्य विशेषांक
2. डॉ॰ राजेंद्र मिश्र : सृजन और साहित्य विशेषांक
आपकी सक्रिय भागीदारी की अपेक्षा है।

 ISSN 0975-735X

हाइकु : शिल्पपक्ष

डॉ॰ भगवतशरण अग्रवाल

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:

'हाइकु' मूलत: जापानी मुक्तक काव्य-प्रकार है। जापान में प्रबंधकाव्य, न तो पहले कभी लिखा गया, न अब कोई लिख रहा है। भारत में भी काव्य का प्रारंभ मुक्तक रचना से ही हुआ। ऋग्वेद को हम भारत का, आर्यजाति का, प्रथम काव्य-संकलन कह सकते हैं। लोककाव्य में भी मुक्तकों की ही प्रधानता रही। बाद को कथ्य में पूर्वापर संबंधों के आधार पर प्रबंधकाव्य का उद्‌भव हुआ। जापान में भी रेंगा (जो कि चीनी-काव्य रेंकु के आधार पर आयायित हुआ) के खेल में काव्यपंक्तियों को आगे बढ़ाते समय पूर्वापर संबंध का ध्यान रखना पड़ता था, किंतु उसमें किसी एक घटना, प्रसंग या कथा का वर्णन न होने के कारण, उसमें आया पूर्वापर संबंध भिन्न-भिन्न भावों की अभिव्यक्ति पर आधारित होता था। जापानी छंद चोका में पंक्तियों की कोई सीमा न होने के कारण उसमें पूर्वापर संबंध आ ही जाता है, किंतु वह लंबी कविता मात्र होता है। भारत में मुक्तक शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर, उसके अनेक अर्थ, शब्दकोशों में मिलते हैं। काव्य के संदर्भ में मुक्तक की कई परिभाषाएँ और व्याख्याएँ हमारे साहित्याचार्यों ने समय-समय पर प्रस्तुत की हैं। किंतु इन सभी में पूर्वापर संबंध निरपेक्षित, अपने में पूर्ण छंद को ही मुक्तक के रूप में सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है। आचार्य अभिनवगुप्त ने तो मुक्तक रचना से रसनिष्पत्ति की अपेक्षा भी की थी–'पूर्वापरनिरपेक्षाणि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदैव मुक्तकम्', किंतु अधिकतर काव्यशास्त्री मुक्तक के द्वारा रसनिष्पत्ति हो ही, इसे अनिवार्य लक्षण के रूप में नहीं मानते। आचार्य अभिनवगुप्त ने तो ध्वन्यालोक की व्याख्या करते हुए एक मुक्तक को सौ प्रबंधकाव्यों के समान माना है। उनकी मुक्तकसंबंधी अवधारणा अवश्य ही बहुत उच्चकोटि की रही होगी। एक आदर्श शुद्ध हाइकु से भी हम यही अपेक्षा रखते हैं। विचार करने पर अभिनवगुप्त का यह कथन हमें इसलिए भी उचित लगता है, क्योंकि प्रबंधकाव्य और पूर्ण नाटक में अनेक अनुशासनों, नियमों का पालन करना पड़ता है। इसके साथ ही उसकी रचना में भी काफी समय और परिश्रम लगता है। फिर भी वह जनसमुदाय में रसनिष्पत्ति करेगा ही, इसकी कोई गारंटी नहीं होती। जबकि मुक्तक साधारण से साधारण रसिक सहृदय को आनंद की प्राप्ति करा सकता है। काव्य के संदर्भ में संप्रेषणीयता के तत्त्व को मैं अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। यदि प्रबंधकाव्य का कोई सर्ग अथवा रंगमंच पर प्रस्तुत होकर नाटक, रसनिष्पत्ति में निष्फल सिद्ध हो और वही कार्य एक मुक्तक कुछ ही क्षणों में संपन्न कर दे, तो फिर मुक्तक की क्षमता किस प्रकार कम आँकी

जा सकती है। हाइकु के संबंध में जब बाशो ने यह कहा कि तीन, चार हाइकु लिखनेवाले को कवि और उससे अधिक हाइकु लिखनेवाले को महाकवि मानना चाहिए, तो उनके मन में ऐसे उच्चकोटि के हाइकुओं (मुक्तकों)की संकल्पना और अपेक्षा ही रही होगी।

मुक्तक के संदर्भ में आचार्य शुक्ल के कथन को बार-बार टाँका जाता है। उनका कथन था कि यदि प्रबंधकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। शुक्लजी की इस परिभाषा को किसी भी विद्वान् ने स्पष्ट करना आवश्यक नहीं समझा। वास्तव में प्रबंधकाव्य से जिस व्यवस्था की अपेक्षा रहती है, वह किसी वनस्थली में हो ही, यह अनिवार्य नहीं है। दूसरे चुने हुए फूलों का गुलदस्ता भी अस्पष्ट प्रयोग है। एक ही प्रकार के फूलों का गुलदस्ता या अलग-अलग प्रकार के फूलों का गुलदस्ता? एक ही प्रकार के फूलों और भिन्न-भिन्न प्रकार के फूलों के गुलदस्ते के बाह्य सौंदर्य और सुवास यानी आंतरिक सौंदर्य में अंतर होगा। हमारे यहाँ तो आत्मिक सौंदर्य तक की बात कही जाती है। अंत में मैं यह कहना चाहूँगा कि हाइकु एक ही प्रकार के चुने हुए फूलों का ऐसा गुलदस्ता है, जो अपनी सुवास अंतरतम तक पहुँचाने में सक्षम होता है। 5, 7, 5 अक्षरों का फ्रेम उसका बाह्य आवरण है। आंतरिक-सौंदर्य तो, उसके कथ्य के माध्यम से उपजने वाले चित्र में निहित होता है।

जापानी काव्य-संकलन 'मान्योशू' (तीसरी-चौथी शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक की रचनाओं का संकलन) की मुक्तक रचनाओं में तीन काव्य-शैलियाँ मिलती हैं 1. ताँका, 2. सेदोका और 3. चोका। इन सभी शैलियों की पंक्तियों में 5, 7 संख्या की ओंजि (लघ्वोच्चारणकाल-घटक) का एकक्षत्र साम्राज्य है। केवल कविता की लंबाई में अंतर है। अनेक समीक्षकों ने अंग्रेजी में ओंजि का पर्याय सिलेबिल माना है, जो गलत है। वास्तव में इसका अँग्रेजी पर्याय मोरा है। फिर भी इस संदर्भ में मोरा के स्थान पर सिलेबिल ही अधिक प्रचलित है। हिंदी के भाषावैज्ञानिकों ने सिलेबिल का पर्याय अक्षर माना है। इसलिए हम अक्षर ही लिखेंगे। हममें से जिसने भी अक्षर एवं वर्ण को एक समान मानते हुए, कहीं अक्षर एवं कहीं वर्ण लिखा है, उसे सुधार लिया जाए। हाइकु-भारती के माध्यम से बार-बार यह स्पष्टता करने के बाद भी हिंदी के अनेक हाइकुकार एवं समीक्षक अपने ग्रंथों में अब भी वर्ण शब्द का ही प्रयोग कर रहे हैं, जो अत्यंत भ्रामक है।

ताँका (वाका) में पाँच पंक्तियाँ होती हैं। इसका अर्थ लघुगीत होता है। हिंदी में हाइकु शैली में लिखे गीतों और ताँका में अंतर है। ताँका में पाँच पंक्तियों की लंबाई और पंक्तियों के अक्षरों की संख्या निश्चित है 5, 7, 5, 7, 7। इसमें कोई व्यतिक्रम स्वीकार्य नहीं है। सेदोका में 6 पंक्तियाँ होती हैं और पंक्तियों में अक्षरक्रम 5, 7, 7, 5, 7, 7 का होता है। चोका अर्थात् लंबी कविता। इसमें पंक्तियों की संख्या निश्चित नहीं होती। पंक्तियों में अक्षर क्रम 5, 7, 5, 7 का होता है; परंतु अंत में एक ताँका होता है। जापानी भाषा स्वरांत है। डॉ॰ वर्मा ने 5, 7, 5 अक्षरों के क्रमविधान में लहरों का-सा प्रभाव उत्पन्न होना बताया है। प्रत्येक भाषा के गठन की अपनी विशेषताएँ होती है। काव्य में नादसौंदर्य का अपना महत्त्व है। हो सकता है कि 5, 7, 7 या 5, 5, 7 जैसे ध्वनिघटकों (लघ्वोच्चारणकाल घटकों) के गठन से उत्पन्न जापानी भाषा का सौंदर्य, जापान निवासियों को संगीतात्मक प्रतीत होता हो, विशेष रुचता हो और शायद इसीलिए वहाँ हाइकु में भी तुक को महत्त्व न देकर स्वरानुरूपता, अनुप्रास एवं यति पर विशेष बल दिया जाता है।

मध्यकालीन जापान में आशुकविता प्रतियोगिता का एक खेल जैसा भी खेला जाता था। इस

 ISSN 0975-735X

खेल-प्रतियोगिता में दो या दो से अधिक व्यक्ति भाग लेते थे। यह प्रतियोगिता 'रेंगा' के नाम से खेली जाती थी। अक्षरक्रम वही 5, 7 का। प्रथम तीन पंक्तियों में प्रतियोगिता प्रारंभ करनेवाले व्यक्ति को 5, 7, 5 के क्रम में त्रिपदी काव्य-रचना प्रस्तुत करनी पड़ती थी। इसके उत्तर में दूसरे व्यक्ति को प्रथम तीन पंक्तियों के भावार्थ को आगे बढ़ाते हुए 7, 7 अक्षरक्रम की काव्य-रचना प्रस्तुत करनी होती थी। तत्पश्चात् प्रथम व्यक्ति द्वारा या किसी अन्य प्रतिस्पर्धी द्वारा 7, 7 के अक्षर क्रम में रचे द्विपदी काव्य के भावार्थ के संदर्भ में 'रेंगा' को 5, 7, 5 अक्षरों में त्रिपदी काव्य-रचना के माध्यम से आगे बढ़ाना और उस त्रिपदी रचना के भावार्थ के संदर्भ में ही 7, 7 अक्षरोंवाली द्विपदी रचना कर, कविता को आगे बढ़ाने का अन्य खिलाड़ी का उपक्रम। बस, इस प्रकार खेल प्रतियोगिता चलती रहती थी। अर्थात् 5, 7, 5 और 7, 7। फिर 5, 7, 5 और फिर 7, 7 अक्षर। यानी ताँका के दो भाग करके, पिछली पंक्तियों के भावार्थ के संदर्भ में कविता को आगे बढ़ाते जाना। (19वीं शताब्दी के अंत में रेंगा के स्थान पर, कुछ नियम, बंधनोंवाला चीनी छंद, रेंकु-रेंगा के समान शृंखलाबद्ध काव्य का प्रचलन जापान में फिर से प्रारंभ हो गया है।)

मध्यकालीन जापान (1235 ई॰) में सौ कवियों की ताँका शैली में लिखी सौ कविताओं का एक शतक भी प्रकाशित हुआ था। उसके आधार पर 'कारूता उता' नामक खेल जापान में खेला जाता है। इस संग्रह का भी अँग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हो चुका है, जिसकी एक प्रति मेरे पास भी है। यह खेल ताश के पत्तों के माध्यम से खेला जाता है। अंतर यह है कि उन पत्तों पर राजा-रानी आदि के चित्रों के स्थान पर कविताएँ लिखी हैं। भारत के स्कूल-कॉलेजों में यह खेल दाखिल करने योग्य है। विद्यार्थी को अपनी मातृभाषा की कम से कम सौ कविताएँ तो याद हो जाएँगी और इस उपक्रम में उसकी स्मरणशक्ति भी बढ़ेगी, जो कि कंप्यूटर युग के विकास के साथ और भी क्षीण हो जाने का मुझे अंदेशा है। पहले स्कूल कॉलेजों में समस्यापूर्ति एवं साहित्यिक अंत्याक्षरी खेली जाती थीं, जिनका स्थान धीरे-धीरे, शैक्षणिक संस्थाओं में ही नहीं, बल्कि पिकनिक तथा प्रसंगोपात घरों में भी फिल्मी गानों ने ले लिया है और समाज से काव्य-साहित्य का संबंध, जो पहले भी बहुत अधिक नहीं था, बिल्कुल टूट-सा गया है। खैर, सौ ताँकाओं वाले पत्तों का खेल जापान में इस प्रकार खेला जाता है—ताश के एक प्रकार के फों पर पूरी कविता होती है और दूसरी प्रकार के पत्तों पर कविता का उत्तरांश, अर्थात 7, 7 अक्षरों की, ताँका की अंतिम दो पंक्तियाँ। एक खिलाड़ी दूसरे प्रकार के पत्तों में से किसी एक पत्ते पर लिखी कविता की उन दो अंतिम पंक्तियों को पढ़ता है और दूसरे खिलाड़ी को उन सौ पत्तों पर लिखी सौ ताँका रचनाओं वाले पत्तों में से उस पत्ते को निकालना पड़ता है, जिस पर पूरी कविता होती है। जीत इस सिद्धि पर निर्भर है कि उसे वे सभी कविताएँ याद हैं या नहीं और वह कितनी तीव्रता से उस कवितावाले कार्ड को छाँट लेता है, जिसकी अंतिम दो पंक्तियाँ उसे सुनाई गई थी।

जापान में रेंगा पद्धति में काव्य-रचना, चौदहवीं शताब्दी के लगभग, संभ्रांत समाज में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। 'रेंगा' की प्रारंभिक तीन पंक्तियाँ ('रेंगा' भी 5, 7, 5 एवं 7, 7) अक्षरों वाले ताँका छंद में खेला जाता था, इसलिए एक प्रकार से ताँका की प्रारंभिक तीन पंक्तियाँ) 'होक्कू' कहलाईं। कैनेथ यशुदा के अनुसार 'होक्कु' संज्ञा चीनी छंदशास्त्र से आई है। रेंगा काल में ही हास्य, व्यंग्य, विनोद में जो 5, 7, 5 अक्षरों में त्रिपदी रचनाएँ रची गईं, उन्हें उस काल में 'हाइकाइ' की संज्ञा मिली। प्रसिद्ध हाइकु समीक्षक 'कोजी कावामोटो' के अनुसार मध्यकालीन

परंपरागत दरबारी छंद वाका / ताँका की प्रतिक्रियास्वरूप जो हलकी-फुलकी रचनाएँ जापान में प्रचलित हुईं, उन्हें प्रारंभ में 'हाइकाइ' कहा गया। डॉ॰ वर्मा के अनुसार–'हाइकाइ' धीरे-धीरे गंभीर कविता पर हावी हो गया और सोगान (1465-1533) और 'मोरिताके' (1472-1549) ने बोलचाल की सामान्य शब्दावली में खुलकर हास्य-व्यंग्य की रचनाएँ लिखीं और दैनिक जीवन से ही उनके विषय भी चुने। परिणामत: 'हाइकाइ' जनसामान्य में लोकप्रिय हुआ।' सन् 1892 में प्रसिद्ध जापानी हाइकुकार शिकी ने होक्कू और हाइकाई के स्थान पर हाइकु शब्द का प्रयोग शुरू किया, जिसमें होक्कू एवं हाइकाई का सम्मिलित स्वरूप दिखाई देता है। तबसे जापान में सन् 1892 से पहले की 5, 7, 5 लघ्वोच्चारणकाल के क्रम की 17 अक्षरीय गंभीर रचनाएँ होक्कू और सन् 1892 के बाद की रचनाएँ हाइकु कहलाईं। यद्यपि जापान के सर्वश्रेष्ठ प्रसिद्ध हाइकुकार बाशो ने यह कहा था कि हाइकु के कथ्य में सभी कुछ आ सकता है, फिर भी आलोचकों ने गंभीर विषयों से संबंधित रचनाओं को ही शुद्ध अथवा शास्त्रीय हाइकु के अंतर्गत स्वीकार किया और इतर, विशेषकर हास्य-व्यंग्य की रचनाओं को एक नई संज्ञा दी–सेन्रियु। भारत में तेलुगु, तमिल, बंगाली आदि भाषाओं में जापान की इस काव्य-विधा के अनुवाद करते समय अनुवादकों ने होक्कू संज्ञा का ही प्रयोग किया है। पर आज हाइकु के विश्व-कविता बन जाने के बाद, विभिन्न देशों के हाइकुकार एवं समीक्षक, बाशो से पूर्व और बाद की ऐसी सभी रचनाओं को हाइकु संज्ञा से ही अभिहित करते हैं।

जापानी 'हाइकु' के समान, शिल्प की दृष्टि से 5, 7, 5 अक्षरों के क्रमवाली, 17 अक्षरीय अतुकांत त्रिपदी रचना को ही हिंदी के हाइकुकारों ने स्वीकारा है। इसमें मात्राओं और अर्ध व्यंजनों की गिनती नहीं होती। हिंदी और गुजराती के अतिरिक्त, अन्य भारतीय भाषाओं तथा विश्व की सभी भाषाओं के हाइकुकारों एवं समीक्षकों ने 17 अक्षरीय (सिलेबिल्स, वास्तव में मोरा: लघ्वोच्चारणकाल) शिल्प को स्वीकारा ही हो, ऐसा नहीं है। सभी ने अपनी भाषा एवं काव्य-परंपराओं के अनुरूप उसमें परिवर्तन किए हैं। हिंदी के हाइकुकारों में भी जापानी हाइकु के शिल्प अथवा कथ्य-संबंधी अन्य किसी भी लक्षण की सर्वमान्य स्वीकृति, देखने को नहीं मिलती; इसलिए, जापानी हाइकु के लक्षणों की विशद चर्चा करना मैं आवश्यक नहीं मानता। यह केवल संयोग ही होता है कि हिंदी के किसी हाइकु में जापानी हाइकु के शिल्प-संबंधी किसी लक्षण या विशिष्टता के दर्शन हो जाते हैं। जबकि उसका रचयिता स्वयं भी इस तथ्य से अनजान रहता है और उसे स्वयं भी उन लक्षणों का ज्ञान नहीं होता। (इसका एक कारण यह भी है कि जापानी हाइकु के किसी भी पक्षधर समीक्षक ने हिंदी हाइकु के क्षेत्र में कभी भी, कहीं भी, विस्तार से उन लक्षणों की, विशिष्टताओं की चर्चा नहीं की है। वैसे अँग्रेजी भाषा के संकलनों एवं समीक्षा-ग्रंथों तथा इंटरनेट आदि पर उनकी विशद चर्चा हुई है।)

एक उदाहरण दे रहा हूँ। जापानी हाइकु में शिल्प का एक महत्त्वपूर्ण अंग 'किरेजी' माना जाता है। 'किरेजी' का पर्याय हिंदी में नहीं है। डॉ॰ वर्मा ने इसके लिए शाब्दिक अर्थ 'काटनेवाला अक्षर' दिया है, परंतु साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि इससे 'उसका प्रयोग पूर्णतया स्पष्ट नहीं होता।' किंतु ऐसा कोई समानार्थी लक्षण भारतीय काव्यशास्त्र में नहीं है। यह शब्द-संचय की आवश्यकता से उत्पन्न रूढ़ शब्द है, जो स्वयं किसी अर्थ का द्योतक न होकर, पादपूर्ति में सहायक होकर कविता के संपूर्ण अर्थ को स्पष्ट करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। जापान में

 ISSN 0975-735X

चौदहवीं शती तक अठारह 'किरेजी' निश्चित हुए थे; किंतु ऋतुबोधक शब्दों के समान इनकी संख्या बढ़ती रही है। हिंदी में ऐसी कोई परंपरा न होने के कारण ऐसे शब्दों की विशद चर्चा व्यर्थ है।

जापान में रेंगाकाल में जिस प्रकार 'होक्कू' के वजन का 'हाइकाइ' शब्द हास्य-व्यंग्य की रचनाओं के लिए, मनुष्य के दैनिक जीवन पर आधारित विषयों के लिए प्रयुक्त हुआ, उसी प्रकार 'हाइकु' के वजन का दूसरा शब्द 'सेन्र्यु' अस्तित्व में आया। होक्कू, हाइकाइ, हाइकु, सेन्र्यु– इन चारों की अक्षर-संख्या शिल्प, पदशिल्प, पदाक्षर-क्रम शिल्प एक है। कथ्य, भावबोध, वस्तुबोध आदि से संबंधित मान्यताओं के कारण, इन्हें अलग-अलग संज्ञाएँ दी गई थीं। और यदि देखा जाए तो एक काल-विशेष की मान्यताएँ आगे चलकर और कभी-कभी उसी काल में टूटती, परिवर्तित होती रही हैं। फिर भी, अनेक मतभेद एवं अपवाद होते हुए भी इनकी भिन्नता की चर्चा होती रहती है। बाशो के एक हाइकु पर ब्लीथ की टिप्पणी है–'यदि रचना में कवित्व खोजा जाए तो वह 'हाइकु' है, पर यदि हास्य पर बल दिया जाए तो वह 'सेन्र्यु' हो जाता है।' ब्लीथ की परिभाषा से ऐसा लगता है कि हास्य-रस की रचनाओं में कवित्व नहीं होता।

शिल्प की दृष्टि से एक होते हुए भी वस्तुबोध यानी वर्ण्य-विषय, कथ्य की दृष्टि से सेन्र्यु और हाइकु में जो अंतर माना गया है, उसकी परीक्षा हम 'हाइकु के कथ्य' आलेख में न देकर, यहीं करना उपयुक्त समझते हैं, क्योंकि इन व्याख्याओं में शिल्प-संबंधी मान्यताएँ भी है। डॉ॰ सत्यभूषण वर्मा के दृष्टिकोण से–'हाइकु जीवन और प्रकृति के कार्य-व्यापारों की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है और सेन्र्यु मनुष्य की दुर्बलताओं अथवा दुर्बल क्षणों पर व्यंग्य के छींटे हैं। हाइकु में प्रकृति महत्त्वपूर्ण है। हाइकु में सादगी और सहजता है। सेन्र्यु में हास्य या व्यंग्य का पैनापन है और कहीं-कहीं अश्लीलता की सीमा को छूते हुए, तीखी-से-तीखी बात कह जाना है। हाइकु की मूल प्रेरणा आध्यात्मिक रही है। उसमें आदर्श और रूमानी भावनाएँ भी मिलती है। सेन्र्यु शुद्ध लौकिक धरातल पर यथार्थ जगत् से अपने विषय लेता हुआ रूपजीवा को भी काव्य-विषय बना लेता है और यौन-संबंधों पर भी हास्य या व्यंग्य के छींटे कस सकता है। हाइकु, लक्षणा या व्यंजना में कथ्य को प्रकट करता है, सेन्र्यु अभिधा में ही सब-कुछ कह देता है। हाइकु में जितना कहा गया है, उससे अधिक अनकहा रह जाता है। सेन्र्यु बात कह जाना है। सेन्र्यु में धर्म मनुष्य की दुर्बलता है, अंधविश्वास है। धर्म और मनुष्य के विश्वासों के प्रति तीखा व्यंग्य सेन्र्यु में मिलता है।'...सेन्र्यु किसी भी विषय पर हो सकता है। अनेक सेन्र्यु प्रसिद्ध हाइकु कविताओं की पैरोडी के रूप में भी लिखे गए हैं। बाशो की अति आध्यात्मिकता की प्रतिक्रिया के रूप में भी सेन्र्यु-लेखन माना जाता है।

यहाँ थोड़ा विषयांतर करके हाइकु में अध्यात्म के विषय में कुछ कहना चाहूँगा। डॉ॰ वर्मा का यह कथन भ्रामक है कि हाइकु की मूल प्रेरणा आध्यात्मिक रही है। वास्तव में जापानी हाइकुओं में भी आध्यात्मिकता कहीं-कहीं, विशेषकर बाशो जैसे संतों के उन हाइकुओं में देखने को मिलती है, जो उन्होंने जेन-साधना में दीक्षित होने के बाद लिखे। डॉ॰ वर्मा ने स्वयं लिखा है कि–'हाइकु जीवन और प्रकृति के कार्य-व्यापारों की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है।' यह भी लिखा है कि बाशो के अनुसार कोई ऐसा विषय नहीं, जो हाइकु के लिए उपयुक्त न हो। (पृ॰ 49) साथ में यह भी कि जापानी-हाइकु मूलतः वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की कविता है

(जा॰आ॰ 156) बाशो के ही अनुसार–'हाइकु एक तीन फुट के बालक को रचने दो।' अब तीन फुट के बालक द्वारा रचित हाइकु में आध्यात्मिकता कहाँ से आएगी। वह भी कहा है कि हाइकु में सहजता और वर्ण्य-विषय के प्रति एक प्रकार की निरपेक्ष दृष्टि हाइकु की प्रथम आवश्यकता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि हाइकु में संवेदनाओं को कोई स्थान नहीं है। संवेदनाविहीन स्थिति में ही निरपेक्ष दृष्टि संभव है। अनुभूतियों की तीव्रता के चरम-क्षण की तो बात ही नहीं रही। इसके साथ ही जीवन और प्रकृति के कार्य-व्यापार, हाइकु का किसी भी विषय पर होना, हाइकु में सहजता आदि किसी का भी कोई संबंध आध्यात्मिकता से नहीं है। और फिर वैयक्तिक अनुभूति का आध्यात्मिकता से क्या संबंध है? बाशो ने स्वयं हाइकु के विषय दैनिक जीवन से लेने की बात कही है। दूसरे, यदि दरबारी कविता वाका के विरोध में हाइकाइ लिखे गए, तो फिर उनकी मूल प्रेरणा आध्यात्मिक कैसे हो सकती है? फिर यदि हाइकु लक्षणा और व्यंजना के माध्यम से अपनी बात कहता है, तो उसमें सहजता कैसे आ सकती है? मिल्स के अनुसार–'कविता निश्चय ही वह वस्तु नहीं है, जिसमें दार्शनिक-चिंतन की खोज की जाए।' मेरे विचार से कविता में किसी दार्शनिक चिंतन का कोई अंश या किसी साधना-पद्धति का निरूपण परोक्ष रूप से या किसी आवश्यकता के कारण आ जाए तो कोई आपत्ति नहीं है। नहीं तो केवल साधना-पद्धति और दार्शनिक सिद्धांतों का निरूपण करती कविता, यदि संप्रेषणीयता में सक्षम भी होगी तो भी इतनी बोझिल होगी कि संप्रदाय के व्यक्तियों के अतिरिक्त शायद ही कोई और उसे पढ़े। इसीलिए बाशो के परवर्ती हाइकुकारों ने हाइकुओं में दार्शनिक चिंतन को कोई महत्त्व नहीं दिया। बल्कि प्रतिक्रियास्वरूप सेन्र्यु को जन्म दिया। हमें भी हिंदी के हाइकुकारों से ऐसी अपेक्षाएँ नहीं करनी चाहिए।

डॉ॰ वर्मा ने हाइकु के कथ्य के विषय में अन्य स्थानों पर जो यथावत्, सहज आदि की बात की है, वह भी असहज लगने लगती है। जापान में आरंभिक काल से अब तक अनेक प्रसिद्ध हाइकुकारों ने ऐसी रचनाएँ की हैं, जो हलकी-फुलकी होने के कारण सेन्र्यु की सीमा के अंदर आ जाती हैं। डॉ॰ वर्मा ने अँग्रेजी के 'लाइट' शब्द के लिए हलकी-फुलकी शब्दावली का प्रयोग किया है। नहीं तो 'हाइकु' को भारी वजन की कविता कहना पड़ेगा। इस संपूर्ण पृष्ठभूमि के संदर्भ में यदि हम हिंदी के हाइकु-काव्य को देखें तो कुछ बातें स्पष्ट हो जाती हैं। 'हाइकु, ताँका का प्रारंभिक भाग है'–यह सब, हिंदी के हाइकुकार के लिए केवल एक ऐतिहासिक तथ्य है। मुख्य है–5, 7, 5 अक्षरक्रम में त्रिपदी अतुकांत रचना। आप तुकांत रचें, कोई आपत्ति नहीं। पर एक शर्त के रूप में नहीं। अनेक जापानी तथा अन्य भाषाओं के कवियों ने तुकांत हाइकु रचे हैं। दूसरे हाइकु और सेन्र्यु में जो तथाकथित कथ्यगत भेद जापान में माना गया है, यह हिंदी में नहीं है। भारत की अन्य भाषाओं के वे हाइकु, जो मेरे देखने में आए हैं, उनमें भी नहीं मिला है। इसलिए इसे भी समझने के लिए रख लें, व्यवहार में है नहीं। जापान में भी अब सभी कवि इस अंतर को नहीं मानते। मानना चाहे तो भी कोई बंधन नहीं है।

हाइकु के शिल्प के संबंध में, एक दो और बातें मुझे कहनी हैं। प्रथम तो यह कि जापानी काव्य में अक्षरों को नहीं ओंजि अर्थात् अँग्रेजी में मोरा, जिसका हिंदी पर्याय लवोच्चारणकाल है, (सिलेबिल्स भी नहीं) को मान्यता मिली है। जापानी भाषा की प्रकृति के अनुसार। जापानी भाषा पोलिसिलेबिक है। इसके शब्द विभिन्न सिलेबिल्स से बने होते हैं। इसकी दो ध्वनिमूलक लिपियाँ

 ISSN 0975-735X

हैं, हीरागाना एवं काताकाना। जापानी भाषा में चीनी भावाक्षरों का भी विशेष महत्त्व है। इन सिलेबिल्स (मोराओं) एवं भावाक्षरों के विशिष्ट अर्थ होते हैं। एक ध्वनिघटक, एक संपूर्ण प्रसंगादि का संकेत देने में समर्थ होता है और जापानी भाषा के ज्ञाता उसे आसानी से समझ जाते हैं। किंतु जापानी भाषा और संस्कृति से अनभिज्ञ व्यक्ति के लिए जापानी हाइकु के वास्तविक मर्म तक पहुँचना और उसका आनंद उठाना सरल नहीं है। प्रत्येक भाषा के अपने संस्कार होते हैं। इन संस्कारों में उस प्रदेश के पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं साहित्यिक आदि अनेक संदर्भ निहित होते हैं, जिन्हें समझे बिना हम उस भाषा के साहित्य, विशेषकर कविता का आनंद नहीं उठा सकते। फिर जापानी भाषा के हाइकुओं में अनेक बार क्रियाकाल स्पष्ट नहीं होता; सर्वनाम स्पष्ट नहीं होता; वचन स्पष्ट नहीं होता; शब्द किसी क्रम से एक-दूसरे से जुड़े नहीं होते। यानी वह एक तार अर्थात् टेलीग्राम की भाषा के समान लिखा होता है। इसलिए जापानी भाषा के हाइकु को समझना और उसका आनंद उठाना सरल कार्य नहीं है। जैसा मैं पहले भी कह चुका हूँ, हाइकु एक रेखांकन है। उसका आनंद लेने के लिए उसमें ऊहा के रंग भरने पड़ते हैं। मन और मस्तिष्क, दोनों का उपयोग करना पड़ता है। हाइकु कविता, शास्त्रीय संगीत के समान है, जिसका आनंद उस विषय का ज्ञाता रसिक ही ले सकता है।

अँग्रेजी समीक्षकों ने मोरा के स्थान पर अधिकांशत: सिलेबिल शब्द का प्रयोग किया है, इसलिए हमें भी वही करना पड़ रहा है, परंतु जापानी ओंजि के संबंध में ऊपर दी गई स्पष्टता ध्यान में रखें। हमारे भाषावैज्ञानिकों ने सिलेबिल्स के लिए अक्षर शब्द स्वीकृत किया है। डॉ॰ वर्मा या हम सभी कभी-कभी अक्षर के स्थान पर वर्ण शब्द का प्रयोग कर चुके हैं, वह अशुद्ध है, सुधार लें। परंपरागत छंदोबद्ध कविता के संदर्भ में हिंदी में दो प्रकार के छंद मान्य है—वर्णिक और मात्रिक। कविताश्री पत्रिका के संपादक नलिनीकांत ने हाइकु के संदर्भ में आक्षरिक छंद का प्रयोग किया है और कविताश्री के 261वें अंक में 'हाइकु पूर्ण कविता या छंद' शीर्षक के अपने लेख में, आजकल हिंदीकाव्य के क्षेत्र में प्रचलित उसके दोनों स्वरूपों पर स्पष्ट प्रकाश डाला है। उनका भी यही कहना है—जापान के हाइकु महाकवि बाशो एवं उनके परवर्ती कवियों ने हाइकु को केवल एक संपूर्ण कविता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। तीन पंक्तियों के लघु कलेवर में वे एक चित्र-सा आँककर, एक पूरी कविता खड़ी कर देते हैं। भावना, कल्पना, सौंदर्य, माधुर्य के साथ पूरी बात वहाँ समाहित रहती है, अतएव उसे पूरी कविता मान लेने में कभी किसी को कोई आपत्ति नहीं हुई। दूसरे हाइकु या सेन्र्यु का जो 5, 7, 5 का 17 अक्षरों का ढाँचा है, उसमें उनसे कम अक्षरों की रचना जापान में कम मिलती है, (हमारे यहाँ एक वर्ण से 26 वर्णों तक के छंद है); किंतु अधिक अक्षरों के हाइकु भी जापान के प्रसिद्ध हाइकुकारों ने रचे हैं। मैं 17 अक्षरों के हाइकु का हिमायती हूँ, परंतु उसमें अपवाद को स्वीकार करता हूँ। कभी-कभी काव्य की मजबूरी या लय आदि हाइकुकार को यदि विवश कर दे, तो फ्रेम से चिपके रहने में, मैं विश्वास नहीं करता। अपवाद से ही सिद्धांत सिद्ध होते हैं। डॉ॰ वर्मा ने भी इस प्रकार के अपवादों के उदाहरण अपने शोध-प्रबंध में दिए हैं। बाशो की एक रचना में बाईस और दूसरी में 19 उन्नीस ध्वनिघटक (अक्षर) हैं। उनके ही शिष्य 'किकाकू' की एक रचना में इक्कीस ध्वनिघटक हैं। बुशोन के एक हाइकु में चौबीस अक्षर हैं। डॉ॰ वर्मा ने स्पष्ट लिखा है कि 'सत्रह से अधिक अक्षरोंवाले अनेक उदाहरण मिल जाएँगे, परंतु सत्रह से कम अक्षरवाले कम।' बुशोन के ही एक हाइकु में सोलह

अक्षर हैं। 'बाशो का स्पष्ट मत है कि अपेक्षित प्रभाव केवल अक्षर-संख्या पर निर्भर नहीं है। वे कहते हैं कि 3, 4, 5 या 7 अक्षर रखकर भी प्रयोग करके देखा जा सकता है कि कविता सुनने में कैसी लगती है। कभी-कभी एक अतिरिक्त अक्षर भी लय भंग कर सकता है। (जा॰आ॰ 61)

हिंदी के भी अनेक वरिष्ठ हाइकुकारों ने इस प्रकार की छूट ली है। मैंने भी ली है; परंतु जैसा कि मैंने ऊपर संकेत किया है, यह अपवाद हाइकु की रचना के भावसौंदर्य में बाधक न होकर, सहायक होना चाहिए।

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि प्रत्येक बोली और भाषा की अपनी विशेषताएँ होती हैं। जापानी भाषा की भी हैं। हिंदी की अपनी विशिष्टताएँ है। जापानी हाइकुओं के भाषागत लक्षणों संबंधी कसौटी पर अन्य किसी भाषा के हाइकुओं का परीक्षण नहीं हो सकता। कम से कम हिंदी में लिखे हाइकुओं का तो बिल्कुल नहीं। हिंदी काव्यशास्त्र के प्रचलित नियमों के अनुसार भी उनका अनुशीलन अधूरा रहेगा। जापानी हाइकु में लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्तियों का प्रयोग और सेन्र्यु में अभिधात्मक अभिव्यक्ति का जो प्रावधान कुछ समीक्षकों ने किया है, वह जब जापान में ही सर्वस्वीकृत नहीं हो सका तो फिर हिंदी के हाइकुकार से तो इसकी अपेक्षा रखना ही व्यर्थ है।

इसी प्रकार जापानी हाइकु में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपकादि अलंकारों के प्रयोगों और प्रकृति के मानवीकरण को वर्ज्य माना गया है, क्योंकि हाइकु को सहज अभिव्यक्ति की अलंकारविहीन कविता कहा गया है। हिंदी में तो केशव की उक्ति–'भूषण बिनु न बिराजई कविता, वनिता, मित्त' अधिक मान्य है। उसका कारण भी है। हिंदी में अलंकारों की संख्या इतनी अधिक है कि अपनी 'शोभा ही के भार' से किसी भी काव्याभिव्यक्ति में कोई-न-कोई अलंकार आ जाता है। हमारे यहाँ तो स्वाभावोक्ति जैसे अलंकार भी हैं और बचपन से ही कहावतों, मुहावरों और विभिन्न अलंकारों की हमें शिक्षा दी जाती है। हमारे यहाँ अशिक्षित जन से लेकर उच्चकोटि के संत तक, उदाहरणों और उपमाओं के द्वारा अपनी बात समझाते हैं। मेरे कहने का तात्पर्य स्पष्ट है। हिंदी के हाइकुकार के संस्कारों में, उसकी भाषा-शिक्षा के एक भाग रूप, अलंकार-प्रयोग पर बल दिया जाता है। इसलिए हिंदी के हाइकुकार पर इस प्रकार का कोई बंधन नहीं लगाया जा सकता। डॉ॰ प्रभा शर्मा ने अपने शोध-प्रबंध में हिंदी के हाइकु-काव्य में अनेक अलंकारों का अनुसंधान कर, उनका विस्तृत विवेचन करते हुए, उनका औचित्य सिद्ध किया है।

भाषा की दृष्टि से एक बात और कहना चाहूँगा–लघुकाव्य में जितना महत्त्व ऊहा का है, उतना ही सामासिकता का भी। हिंदी में कारक-चिह्नों के कारण, अक्षर बढ़ जाते हैं। संस्कृत, गुजराती आदि में विभक्तियों के प्रयोग द्वारा अक्षरों में मितव्ययता संभव है। फिर भी कहीं-कहीं 'और' के स्थान पर 'औ' और 'पर' के स्थान पर 'पै' का प्रयोग कर मैंने अक्षर बचाए हैं। और भी कई शब्द ऐसे हो सकते हैं। हलका के स्थान पर हल्का, खुशबू के स्थान पर खुश्बू आदि प्रयोगों से अक्षर बचाए जा सकते हैं और यह सभी मान्य प्रचलित प्रयोग है। हिंदी के अनेक कवियों ने भाषा को इस प्रकार अपने छंद के अनुकूल बनाया है। इसीलिए उन्हें निरंकुश भी कहा गया है। परंतु यह हाइकुकार का स्वभाव नहीं बनना चाहिए।

दूसरे हाइकु में बिंबों और प्रतीकों के प्रयोग ऐसे होने चाहिए, जो संप्रेषित हो सकें। अज्ञेय ने 'उपमान मैले हो गए हैं'–जैसी बात कही। परंतु यदि नए उपमानों को कोई ग्रहण ही न कर पाए; वे पाठक को संप्रेषित ही न हो सकें, वे प्रचलित ही न हों, तो ऐसे प्रतीक, बिंब या उपमान, कवि

 ISSN 0975-735X

तक ही सीमित रहकर, उसके काव्य को दुरूह बना देंगे। यदि कवि-समय में ही उन्हें न समझा जा सका हो, तो बाद को तो उन्हें समझना संभव ही नहीं होगा। ऐसे प्रयोग, 'प्रयोग की खातिर प्रयोग' की श्रेणी में ही आ पाएँगे। हाइकुकार मित्र ऐसे प्रयोगों से बचें।

हिंदी के हाइकुकारों को मैं फिर से यह बात याद दिलाना चाहूँगा कि 5, 7, 5 अक्षर क्रम में, त्रिपदी अतुकांत रचना–यह हाइकु का फ्रेम है। परंतु यही सब कुछ नहीं है। मूलवस्तु है, उस फ्रेम में जड़ा भावोन्मेष से परिपूरित काव्यात्मक सौंदर्य का कलात्मक चित्रांकन।

हाइकु: शब्दार्थ–हाइकु के शब्दार्थ के विषय में भी मतभेद है। एक प्रसिद्ध हाइकुकार/समीक्षक महोदय ने इसका अर्थ नट् भंगिमा जैसा दिया है। उनके हाइकु भी नट-भंगिमा जैसे है। वे अपने हाइकुओं और अपनी समीक्षाओं के द्वारा क्या कहना चाहते हैं, उसे बाद को वे स्वयं भी नहीं समझ पाते। वैसे कोशानुसार हाइकु का शब्दार्थ 'जल्दी से' 'तेजी से' होता है। इसीलिए इसे आशु-कविता भी कहा गया है।

(हाइकु-काव्य विश्वकोश : डॉ॰ भगवतशरण अग्रवाल; संस्करण: 2009 से साभार)

1103 **ग्रीन रेजीडेंसी**
opp. GANESHAR AHADEV
ADAJAN, SURAT-395009

डॉ॰ मीना अग्रवाल के विविध आयामी हाइकु

डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी

प्रख्यात ग़ज़लकार एवं साहित्यकार डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल जी की जीवन-संगिनी, हिंदी के हास्य-व्यंग्य के सशक्त हस्ताक्षर, हास्य-सम्राट् स्व॰ काका हाथरसी जी की पुत्रीवत भतीजी डॉ॰ मीना अग्रवाल स्वयं एक प्रबल और प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। डॉ॰ मीना अग्रवाल जी मृदुल स्वभाव, मधुर व्यवहार, सहज व्यक्तित्व एवं सामाजिक अभियांत्रिकी जैसे गुणों को समाहित किए कृतित्व की धनी हैं। उन्होंने कहानी, मुक्तक-काव्य, गीत एवं हाइकु लिखे हैं। अत: विख्यात एवं बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न डॉ॰ मीना अग्रवाल जी साहित्य की हर विधा की सृजक हैं। हिंदी गद्य और पद्य के क्षेत्र में विविध विधाओं में उन्होंने अनेक काव्य-कृतियों का उपहार हिंदी जगत को दिया है। हिंदी साहित्य की विविध आयामी सेवा करके, विभिन्न पुरस्कारों को पाकर हिंदी साहित्य को गौरवांवित करने वाली डॉ॰ मीना अग्रवाल जी एक विदुषी महिला हैं, जिन्होंने शिक्षिका के रूप में भी अपना कर्त्तव्य निभाया है।

हाइकु : वर्तमान हिंदी कविता के क्षेत्र में जो प्रमुख विधाएँ–गीत, ग़ज़ल, दोहा आदि के रूप में प्रचलित हैं, उन्हीं के साथ हाइकु ने भी अपना विशेष स्थान बना लिया है। 'हाइकु' न केवल भारत में रहनेवाले हिंदी कवि लिख रहे हैं, वरन् विदेशों में भी यह विधा सर्वाधिक प्रचलित है। 'हाइकु' मूलत: जापानी काव्य शैली है, जिसमें सत्रह अक्षर तीन पंक्तियों में बँटे होते हैं। पहली पंक्ति और तीसरी पंक्ति में पाँच-पाँच अक्षर होते हैं और दूसरी पंक्ति में सात अक्षर होते हैं। अक्षर चाहे बिना मात्रा वाला हो, या मात्रा वाला हो, एक ही अक्षर गिना जाता है। आधे अक्षर की गिनती नहीं की जाती है। इस दृष्टि से डॉ॰ मीना अग्रवाल के हाइकु पूर्णरूपेण सफल हैं।

डॉ॰ मीना अग्रवाल के हाइकु विविध आयामी हैं। उनमें कहीं रिश्तों की महक है तो कहीं श्रम के महत्त्व की सुगंध। कहीं साहित्य के विविध रूपों की परिभाषाएँ हैं तो कहीं जीवन-दर्शन, और अध्यात्म का रंग। कहीं गीत और संगीत पर मार्मिक टिप्पणियाँ हैं तो कहीं कला की सुगंध, कहीं विभिन्न मनोभावों का चित्रण है तो कहीं देवी-देवताओं को प्रणाम। यही नहीं इनके हाइकु सामाजिक विसंगतियों पर भी दृष्टि डालते चलते हैं, इसीलिए कहीं वे सांप्रदायिकता पर व्यंग्य हैं तो कहीं वर्ण-व्यवस्था पर, कहीं हिंदी-दिवस के खोखलेपन पर कटाक्ष है तो कहीं पश्चिमी रंग में रँगती हुई नारी पर सीधा प्रहार, कहीं समाज-व्यवस्था के ऊँच-नीच पर प्रहार है तो कहीं बेरोजगारी और आतंकवाद पर सार्थक टिप्पणियाँ। कहीं राजनीति की विद्रूपता का चित्र है तो कहीं आज की पीढ़ी और जीवन-मूल्यों के ह्रास पर क्षोभ। कहीं रुढ़ियों के प्रति विद्रोह है तो कहीं भ्रूण-हत्या के प्रति आक्रोश। कहीं महानगरीय सभ्यता का वर्णन है तो कहीं अन्य अनेक स्थितियों का चित्रण। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

 ISSN 0975-735X

मीना जी ने 'प्रकृति' पर अनेक 'हाइकु' लिखे हैं। बादलों के दृश्य को उपस्थित करते हुए वे कहती हैं–

बादल कारे
घिरते पल-पल
हैं कजरारे

फिर वे 'सावन-भादों' को भी आमंत्रित करती हैं, जिससे धरती के दुख मिटा सकें–

सावन भादो
बादलों-संग सब
दुख मिटा दो।

मीना जी ने प्रकृति को केवल आलंबन रूप में ही नहीं, वरन् उद्दीपन रूप में भी अभिव्यक्त किया है–

चाँदनी रात
पिया गए बिदेस
नहीं सुहात।

फागुन के आने पर वे लिखती हैं–

फागुन आया
फूली पीली सरसों
मन हर्षाया।

इसी प्रकार–

गुलाब फूले
सावन की बहार
पड़े हैं झूले।

प्रकृति को मानवीकरण के रूप में भी डॉ॰ मीना जी ने प्रस्तुत किया है–

है अलबेली
पीला, लाल, गुलाबी
बोगनबेली।

डॉ॰ मीना अग्रवाल जी ने उत्सवों और पर्वों पर भी हाइकु लिखें हैं। जैसे–

होली त्योहार
बरसत गुलाल
प्यार ही प्यार

तीज उत्सव
मेहँदी-रचे हाथ
मगन सब

इसी प्रकार राखी पर–

राखी का दिन
मनाते हिल-मिल
भाई-बहन

दीप-महोत्सव पर भी दीपक के महत्त्व को दर्शाते हुए वे लिखती हैं–

दीप जलेगा
उर में जब-जब
प्रेम झरेगा

प्रेम पर भी उनकी अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है–

उर-पटल
अंकित जिस पर
प्रेम अटल

माँ के संबंध में वे कहती हैं–

श्रद्धा की मूर्ति
माँ, हरेक इच्छा की
करती पूर्ति।

देती संस्कार
करे उर-विस्तार
माँ दे आकार

माता का गेह
भरा हुआ जिसमें
ममता-स्नेह

इसी प्रकार बेटी पर भी अनेक हाइकु हैं। बेटियाँ दो कुलों की लाज बचानेवाली होती हैं, उन्हें न जाने क्या-क्या सहन करना पड़ता है, न जाने क्या-क्या छिपाना पड़ता है और इसी कारण उनके बारे में यह कहना उचित ही है–

कुल की लाज
है हमारी बिटिया
छिपाए राज

बेटी घर की
मान हम सबका
देवी जग की

धुन की पक्की
करती परिश्रम
है मधुमक्खी

साहित्य पर भी मीनाजी ने हाइकु लिखे हैं–

साहित्य छवि
कला कला के लिए
कहता कवि

 ISSN 0975-735X

हित संयुक्त
है साहित्य-रचना
अहित-मुक्त

काव्य-रचना
व्याकुलता कवि की
है संरचना

जीवन की वास्तविकता का अर्थ समझाती हुई मीना जी कहती हैं–

जीवन-अर्थ
आशा औ' जागरण
बनो समर्थ

आया न कल
कल की आशा में ही
तू हाथ मल

मीना जी गीत को प्रधान साहित्यिक विधा मानती हैं–

गीत विभूति
उच्छलन भावों का
है अनुभूति

गीत है प्यास
लेना न जीवन से
तुम संन्यास

छेड़ दो राग
ऐसा गीत सुनाओ
बने प्रयाग

डॉ॰ मीना अग्रवाल ने अनेक देवी-देवताओं की स्तुति में भी हाइकु लिखे हैं–

हे साईं राम
गुनगुनाऊँ गीत
सुबह-शाम

वे सांप्रदायिक सद्भाव की बात करती हैं–

ईश्वर-अल्ला
सब हैं बराबर
ना कर हल्ला

धर्म के संबंध में वे कहती हैं–

परम धर्म
सत्य, अहिंसा, प्रेम

यही है मर्म

हिंदी भाषा पर–

देश की आशा
बने हमारी हिंदी
हो राष्ट्रभाषा

हिंदी है आशा
बने देश की शान
है अभिलाषा

आज संसार में प्रेम और अहिंसा का भाव समाप्त होता चला जा रहा है। अपने देश में ही नहीं वरन् पूरे संसार में आज आतंकवाद का आतंक है। इस समस्या पर मीनाजी ने लिखा है–

आतंकवाद
खून-खराबा-हिंसा
सभी बर्बाद

डॉ॰ मीना अग्रवाल के हाइकुओं का संबंध मानव-मन में बसे अनेक मनोभावों जैसे इर्ष्या, आशा, घृणा, तृष्णा, भ्रांति, उमंग आदि से भी है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है–

इर्ष्या का धुआँ
छा जाता दृष्टिपथ
खोदता कुआँ। (इर्ष्या)

आस की डोर
पहुँचाती ऊपर
पकड़े छोर (आशा)

दिल में आग
नफरत के शोले
तर दिमाग (घृणा)

न होती तुष्ट
पिपासा हृदय की
होती है दुष्ट (तृष्णा)

तृष्णा है दुख
जानोगे अपने को
पाओगे सुख (तृष्णा)

मन की शांति
मिलेगी न जग में
त्याग दो भ्रांति (भ्रांति)

 ISSN 0975-735X

अरमाँ कभी
बने दिल के छाले
जानते सभी (अरमान)

जागी उमंग
बज उठा सितार
उठी तरंग (उमंग)

कुछ अन्य सुंदर सूक्तिमय उदाहरण–

नन्हा–सा फूल
न करो तोड़ने की
छोटी–सी भूल

जिसका चित्र
दे उर को ठंडक
वही है मित्र

इस प्रकार डॉ॰ मीना अग्रवाल के हाइकु–दृश्यों, घटनाओं, विचारों और अनुभवों का सत्रह शब्दों और तीन पंक्तियों का मेल है, जिसका सर्जन सरल नहीं है। ऐसा कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि उनके 'हाइकु', उनका अपना 'आई क्यू' ही है। मीना जी और उनके हाइकु एक ओर रचनाकार और रचना, कृतिकार और कृति के आपसी संबंधों की पहचान कराते हैं तो दूसरी ओर पाठक को उसकी अपनी पहचान से परिचित कराने में भी पूर्णरूपेण सफल हुए हैं।

भाषा विभागाध्यक्ष
मद्रास क्रिस्चियन कॉलेज (शिफ्ट 2 **)**
ताम्बरम्, चेन्नै 600 059

सरहद के पार : हिंदी हाइकुकार

पूर्वा शर्मा
पीएच॰डी॰ शोध छात्रा, हिंदी स्नातकोत्तर विभाग
सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर

कोई भी सरहद साहित्य अथवा साहित्य के प्रति प्रेम को बाँधकर नहीं रख सकती। यह बात भारतीय प्रवासी साहित्यकारों ने सिद्ध की है। हिंदी साहित्य में बहुत से ऐसे रचनाकार है, जिन्होंने अपने देश की मिट्टी से दूर रहकर भी, हिंदी में उत्कृष्ट साहित्य रचना कर, साहित्य में अपना योग दिया है। निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा, तेजेंद्र शर्मा, पूर्णिमा वर्मन, दिव्या माथुर आदि बहुत से ऐसे प्रवासी साहित्यकार है, जिन्होंने उच्चकोटि की रचनाओं का सृजन करके हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाया है। कविता हो या कहानी या फिर उपन्यास, साहित्य की सभी विधाओं पर प्रवासी साहित्यकारों ने अपनी लेखनी चलाकर अपना बहुमूल्य योग दिया है। आज हिंदी-हाइकु काव्य भी एक प्रतिष्ठित विधा के रूप में लोगों के दिलों को छू रहा है और इस काव्य को समृद्ध बनाने में प्रवासी हाइकुकारों का भी बहुत योगदान रहा है।

गत कुछ वर्षों में जापान से आयातित इस नन्हे हाइकु ने, हिंदी साहित्य में अपना स्थान सुरक्षित कर लिया है। विश्व की कई भाषाओं में हाइकु काव्य-सृजन हो रहा है। हिंदी में हाइकु काव्य काफी फल-फूल रहा है। हाइकु एक त्रिपदी काव्य है, जिसमें 5-7-5 वर्णक्रम का निर्वाह होता है। हाइकु को समृद्ध बनाने में कई हाइकुकारों का योगदान रहा है, लेकिन कुछ ऐसे प्रवासी हाइकुकार हैं, जिन्होंने अपने वतन से दूर रहकर भी साहित्य को अपने दिल से दूर नहीं होने दिया। इनके हाइकु हमें उपहारस्वरूप प्राप्त होते रहे हैं।

हाइकु के नाम पर कुछ लोगों ने तीन पंक्ति में अर्थहीन सपाटबयानी को परोसा है, जिसमें कहीं-कहीं तो 5-7-5 वर्णक्रम का निर्वाह भी नहीं हो रहा और यदि कहीं हो भी रहा है तो उसमें काव्यत्व की कमी है। कद की दृष्टि से हाइकु एक नन्ही विधा जरूर है; लेकिन इसका सृजन कोई आसान काम नहीं है। नन्हा-सा दिखनेवाला हाइकु भाव, कल्पना और विचार की अभिव्यक्ति में किसी बड़ी रचना से कम नहीं है; लेकिन इस नन्हे-से हाइकु में प्राण फूँक देनेवाले हाइकुकारों की संख्या कम है। ऐसे कुछ प्रवासी हाइकुकारों में एक नाम है—डॉ॰ भावना कुँअर। ऑस्ट्रेलिया (सिडनी)निवासी भावनाजी एक ऐसी हाइकुकार है, जिनका पहला हाइकु-संग्रह 'तारों की चूनर' (2007 में प्रकाशित) पाठकों द्वारा बहुत प्रशंसा बटोरकर ले गया। 'तारों की चूनर' एक श्रेष्ठ कृति सिद्ध हुई और इनका दूसरा हाइकु-संग्रह 'धूप के खरगोश' (2017 में प्रकाशित) है। भावनाजी के हाइकु की भाषा तो सशक्त है ही, साथ ही प्रकृति-चित्रण और मानव-मन के अंत:करण में फलीभूत होनेवाले विभिन्न भावों का चित्रण भी अप्रतिम है। 17 वर्णीय लघु हाइकु में किसी बड़ी

 ISSN 0975-735X

कविता का सा एहसास इनके हाइकु में झलकता है। भावनाजी के हाइकु को पढ़ते ही पाठक का हृदय भावों की चाशनी में डूबकर गोते लगाता नजर आने लगता है। यथा–

दुल्हन झील / तारों की चूनर / घूँघट काढ़े।[1] –डॉ॰ भावना कुँअर

2013 में एक और सशक्त हाइकुकार डॉ॰ हरदीप कौर संधु का हाइकु संग्रह 'ख्वाबों की खुशबू' प्रकाशित हुआ। भावनाजी की तरह हरदीपजी भी ऑस्ट्रेलिया (सिडनी) में रहती हैं। हरदीपजी ने हिंदी और पंजाबी दोनों भाषाओं में हाइकु-सृजन किया है। हिंदी हाइकु के पंजाबी अनुवाद इनकी विशेष उपलब्धि है। डॉ॰ सुधा गुप्ता के एक हिंदी हाइकु का पंजाबी अनुवाद देखिए–

रात होते ही / कोहरे से लिपट / सोया शहर। –सुधा गुप्ता

रात हुंदियाँ / कोहरे 'च लिपट / सुत्ता शहर।[2] –(अनुवाद : डॉ॰ हरदीप कौर संधु)

उपर्युक्त हाइकु का पंजाबी अनुवाद मूल जैसा ही प्रतीत होता है। अपने मौलिक हाइकु में हरदीपजी ने भावों को बड़ी ही सहजता एवं सादगी से प्रस्तुत किया है। 'ख्वाबों की खुशबू' में हरदीपजी ने जीवन के हर रंग प्रस्तुत करने के साथ भारतीय संस्कृति एवं ग्रामीण सभ्यता को बहुत सुंदर चित्रित किया है। यथा–

कात रे मन / संसार त्रिंजण में / मोह का धागा।[3] –डॉ॰ हरदीप कौर संधु

(त्रिंजण–सामूहिक रूप से चर्खा कातनेवाली लड़कियों की टोली को 'त्रिंजण' कहा जाता था। इस तरह के सांस्कृतिक शब्दों के अर्थ और मूल्य को हम शहरीकरण में खोकर भूलते जा रहे हैं।)

प्रवासी हाइकुकारों की श्रेणी में एक और नाम जुड़ा है–रचना श्रीवास्तव। 'मन के द्वार हजार' (2013) शीर्षक से प्रकाशित पुस्तक में कैलिफोर्निया निवासित रचना जी ने 34 हाइकुकारों के 542 हाइकु अवधी में अनूदित कर इतिहास रचा है। यथा–

कुतर रहे /देश का संविधान/ संसदी चूहे। –डॉ॰ भगवतशरण अग्रवाल

कुतरत बा / देस के संबिधान / संसदी मूस।[4] –(अवधी अनुवाद : रचना श्रीवास्तव)

अवधी में अनूदित सभी हाइकु अपने मूल भाव को ज्यों का त्यों रखने में समर्थ हुए हैं। रचनाजी ने अनुवाद करते हुए हाइकु के शिल्प को भी सुरक्षित रखा है। रचना जी का मौलिक हाइकु संग्रह 'भोर की मुस्कान' 2014 में प्रकाशित हुआ। इनके हाइकु सहज अनुभूति को व्यक्त करते हैं। 'भोर की मुस्कान' में आकर्षक विषय-वैविध्य के साथ शिल्प-पक्ष भी सशक्त है। लक्षणा शब्दशक्ति का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

मुड़ा पड़ा था / जंग लगे बक्से में / पुराना वक्त।[5] –रचना श्रीवास्तव

रचनाजी के बारे में डॉ॰ सुधा गुप्ता कहती हैं–'संवेदनशील हाइकुकारों के रूप में तेजी से उभरता एक नाम–रचना श्रीवास्तव। कई जापानी काव्य-विधाओं में सृजन, हाइकु विशेष प्रिय। रचना का हाइकु संसार एक 'संपूर्ण स्त्री' का ऐसा संसार है, जिसमें गृहस्थ जीवन, परिवार की खुशबू, रिश्तों की ऊष्मा और सहज स्वाभाविक प्रेम की उच्छल तरंगें बिछलती रहती हैं। विषय- वैविध्य आकर्षक है। प्रकृति की नाना छवियाँ सँजोई गई हैं। रचना की शब्द-चयन-क्षमता श्लाघ्य है।'[6]

कृष्णा वर्मा का नाम भी इन प्रवासी हाइकुकारों की श्रेणी में है। कृष्णाजी का प्रथम हाइकु संग्रह 'अंबर बाँचे पाती' 2014 में प्रकाशित हुआ। कृष्णाजी के हाइकु में भारत एवं कैनेडा, दोनों

ही स्थानों का प्राकृतिक सौंदर्य दृष्टिगत होता है। डॉ॰ सुधा गुप्ता कहती हैं–'इनके हाइकु में ताजगी है, 'एहसास' की धरती पर अंकुरित, आँखों देखे यथार्थ का अंकन प्रभावी है, प्रकृति से जुड़ाव और मौलिक उद्‌भावनाओं के प्रसूत बिंब मनोहारी हैं।'[7] मानवीकरण का एक सुंदर उदाहरण देखिए–

खेलें सितारे / नदिया की छाती पे / आँख-मिचौनी।[8] –कृष्णा वर्मा

किसी भी साहित्यकार को परदेस में अपने देश की याद रह-रहकर सताती है। यह बात इन सभी हाइकुकारों के काव्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अपने देश की मिट्टी की खुशबू इन हाइकुकारों को बार-बार अपनी ओर आकृष्ट करती है। भले ही देश से दूर परदेस में बसे हैं; लेकिन आज भी वे अपने गाँव और वहाँ व्यतीत किए गए हर पल को भूल नहीं पाए हैं। ये अतीत की स्मृतियाँ परदेस में मीठी याद बनकर इनके साथ रहती हैं और इन्हें सुकून देती हैं। ग्राम्यजीवन का वर्णन और वहाँ पर होनेवाली विविध गतिविधियाँ जैसे–गाँव में नानी, दादी और तमाम रिश्तेदारों के संग समय बिताना, वहाँ पर प्रचलित रीति-रिवाज, लोकनृत्य, खेल आदि, कुएँ का मीठा पानी, चूल्हे पर बने खाने का स्वाद, मटके का ठंडा पानी, पीपल के नीचे डेरा जमाते बाबा, बड़ा परिवार, लस्सी और मठरी का स्वाद एवं बचपन की मीठी-मीठी स्मृतियाँ आदि को हाइकुकारों ने अपने हाइकुओं में व्यक्त किया है। यथा–

नीम की छाँव / मीठे कुएँ का पानी / वो मेरा गाँव।[9] –डॉ॰ भावना कुँअर

गाँव से आया / खत में गूँथकर / रंगीला प्यार।[10] –हरदीप कौर संधु

हरदीपजी के 'ख्वाबों की खुशबू' संग्रह में 'गाँव वो मेरा' शीर्षक के सभी हाइकु में ग्राम्य जीवन का वर्णन बहुत ही गहराई और सूक्ष्मता से किया गया है। इनके हाइकु इतने सुन्दर बन पड़े हैं कि पढ़ते-पढ़ते पाठक गाँव की सैर पर निकल जाते हैं। डॉ॰ भावना कुँवर ने लिखा है–'इनके इस संग्रह में गाँव की मिट्‌टी की सौंधी-सौंधी खुशबू बसी है। संस्कारों की नदी बह रही है और मधुर यादें, जो कहीं संदूक में बंद पड़ी दिखती हैं, तो कहीं हवा का झोंका बन सामने आ खड़ी होती हैं।'[11] गाँव की ये मधुर स्मृतियाँ हरदीपजी को अपनी ओर खींच रही है, यथा–

पीपल नीचे / खीचें चक्र खेलते / वे डंडा डुक।

दादी बनाती / जोड़-जोड़ उपले / बड़ा गुहरा।[12] –डॉ॰ हरदीप कौर संधु

ऐसा प्रतीत होता है कि भावना जी ने ग्रामीण जीवन को बहुत नजदीक से देखा है, गाँव की याद उन्हें भी बहुत सताती है। ग्राम्य जीवन उन्हें बहुत लुभाता है। यथा–

होलों के गुच्छे / भून-भून के खाना / बीता जमाना।

गाँव की छत / नर्म धूप-बिछौना / खेतों में सोना।[13] –डॉ॰ भावना कुँअर

लेकिन आज फिर से गाँव जाकर वह पुराना गाँव नजर नहीं आ रहा है। शहरीकरण ने इस प्यारे से गाँव में होनेवाली गतिविधियों को समाप्त कर दिया है। अब पीपल ने नीचे डेरा जमाने वाले बाबा दिखाई नहीं देते और कलई करता हुआ ठठेरा भी दिखाई नहीं दे रहा है। पानी की कमी के कारण मटके भी खाली पड़े हैं। यथा–

गाँव जाकर / मुझे मिला नहीं / गाँव जो मेरा।

बूँद-बूँद को/ तरसा अब प्यासा/ मटका तेरा।[14] –डॉ॰ हरदीप कौर संधु

पगडंडियाँ / तरस रहीं अब / पदचिह्नों को।[15] –डॉ॰ भावना कुँअर

 ISSN 0975-735X

प्रकृति-चित्रण हमेशा से ही हाइकु-काव्य का प्रिय विषय रहा है। प्रकृति के मनोहारी रूप का वर्णन इन सभी हाइकुकारों ने बड़ी सुंदरता से किया है। कहीं मानवीकरण है तो कहीं मनोहारी बिम्बों द्वारा प्रकृति का चित्रांकन, तो कहीं प्रतीकात्मक शैली और कहीं प्रकृति की संपदाओं का आलंबनगत वर्णन, ये सभी रूप हाइकु में दिखाई देते हैं। प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण कर इन हाइकुकारों ने प्रभावशाली चित्र उकेरकर सजीव हाइकु रचे हैं। यथा–

पत्तों के कानों / हवा फुसफुसाए / लोक व्यथाएँ।[16] –कृष्णा वर्मा

घटा घूमती/ यूँ घाघरा उठाए / जमीं चूमती।[17] –डॉ॰ हरदीप कौर सन्धु

ग्रीष्म, शीत , बसंत आदि ऋतुओं एवं सुबह साँझ के वर्णन, नदी आकाश का वर्णन, प्रकृति के अद्‌भुत सौंदर्य को प्रस्तुत करता है। प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन हाइकु में सजीवता के साथ दिखाई देता है। यथा–

रंग पोटली / हाथ से ज्यूँ फिसली / बनी तितली।[18] –डॉ॰ भावना कुँअर

सुबह होते / पत्तों के हाथ मेहँदी / ओस रचाती।[19] –डॉ॰ हरदीप कौर सन्धु

वर्षा पहने / बूँदों सजा लहँगा / मटक चले।[20] –रचना श्रीवास्तव

ओढ़ बैठी है / कोहरे की चादर / शाम सुहानी।[21] –डॉ॰ भावना कुँअर

अमलतास, टेसू, कचनार, गुलाब, गुलमोहर,पलाश आदि विभिन्न फूलों को इन हाइकुकारों ने बड़ी ही कुशलता के साथ हाइकु रूपी माला में पिरोकर सुशोभित किया है। यथा–

टेसू का छौना / नारंगी झबले में / लगे सलोना।[22] –कृष्णा वर्मा

नहा रही / कचनार-गंध से / आज चाँदनी।[23] –डॉ॰ भावना कुँअर

भटका मन / गुमोहर वन /बन हिरन।[24] –डॉ॰ भावना कुँअर

भावनाजी के हाइकु बाह्य प्रकृति और अंत:प्रकृति दोनों को प्रस्तुत करते हैं। रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' जी ने भावना जी के हाइकु के बारे में कहा है–'इनके हाइकुओं का फलक बहुत व्यापक है। उसका एक सिरा अगर बाह्य प्रकृति है, तो दूसरा नाजुक छोर उथल-पुथल से साक्षात्कार करती अंत:प्रकृति तक की यात्रा पूरी करता है। समाज के प्रति संवेदनशीलता उस यात्रा का आत्मतत्त्व है। भावों की मसृणता अभिव्यक्ति की सहजता इनके हाइकुओं में देखते ही बनती है।'[25]

बारिश न होने के कारण सूखे की स्थिति का सामना करना सभी हाइकुकारों के हाइकुओं में दृष्टिगत हुआ है। सांकेतिक और लाक्षणिक शैली में कितनी सुंदरता से इस बात को प्रस्तुत किया है। यथा–

सूखने लगे / खलिहानों के होंठ / बरसो मेघ।[26] –डॉ॰ भावना कुँअर

शुष्क हुए हैं / बादलों के अधर / वन लापता।[27] –कृष्णा वर्मा

चटकी झील / गरीब के पैरों में / जैसे बिवाई।[28] –रचना श्रीवास्तव

उपर्युक्त हाइकुओं में बरखा रानी की प्रतीक्षा हो रही है। एक ओर जहाँ पर खलिहानों के होंठ सूख रहे हैं तो दूसरी ओर बादलों के अधर सूख रहे हैं। सूखी झील को चटकी झील कहना और बिवाई से साम्यता बहुत ही प्रभावी बन पड़ा है। सभी हाइकुओं में बारिश न होने के कारण सूखे का भाव बहुत ही सुंदर तरीके से अभिव्यक्त किया गया है।

चूँकि ये प्रवासी हाइकुकार हैं, तो इनके हाइकुओं में कहीं-कहीं प्रवासी देश की ऋतुओं का वर्णन भी दिखाई देता है। भारत में सभी स्थानों पर हिमपात नहीं होता, लेकिन केनेडा और

अमेरिका जैसे देशों में हिमपात और बेहद ठंड का अनुभव एक आम बात है। शीत लहर के चलने पर नन्हे पंछी शाखों की ओट में दुबक गए हैं और हिम, आभूषण की तरह वन को सजा रहा है। ऐसा लग रहा है हिम ठुमक-ठुमककर इन बर्फीली घाटियों की गोद में उतर रहा हो। यथा–

गिरती बर्फ / शुभ्र श्वेत दुशाला / ओढ़ती धरा।[29] –डॉ॰ हरदीप कौर संधु

हिम यूँ झड़ी / शाख-शाख लिपटी / माणिक लड़ी।[30] –कृष्णा वर्मा

प्रकृति को देखने का सभी का अपना नजरिया होता है। यहाँ पर प्रस्तुत सभी हाइकुओं में रचनाकारों ने एक अलग ही तरीके से प्रकृति को अनुभव करके अपने हाइकु में अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। साहित्य में प्रकृति का शुद्ध रूप से चित्रण बहुत कम रचनाकार कर पाए हैं और यदि हाइकु काव्य की बात करें, तो डॉ॰ भगवतशरण अग्रवाल, डॉ॰ सुधा गुप्ता, डॉ॰ शैल रस्तोगी, नलिनीकांत, नीलमेंदु सागर आदि कुछ ऐसे पुरोधा हाइकुकार हैं, जिन्होंने सहजता से प्रकृति चित्रण किया है और प्रकृति को सफलतापूर्वक अपने काव्य का विषय बनाते हुए प्रकृति के सौंदर्य में चार चाँद लगाए हैं। इन सभी प्रवासी हाइकुकारों ने भी इस श्रेणी में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देकर खूबसूरत हाइकुओं का सृजन करने में सफलता प्राप्त की है।

सभी हाइकुकारों का मन प्रकृति चित्रण में खूब रमा है। प्रकृति की सुंदरता का वर्णन करने वाले ये सभी हाइकुकार आज प्रकृति को दूषित होते हुए देखकर चिंतित हैं। पर्यावरण प्रदूषण आज एक वैश्विक स्तर की समस्या बन चुकी है। जंगलों को काटते चले जाना और हर जगह पर कंक्रीट के नगर बसा देना, एक गंभीर समस्या बन चुकी है। आज जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, मृदा-प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण और आकाशीय प्रदूषण की समस्या से हम जूझ रहे हैं। इनकी वजह से पर्यावरण को तो नुकसान हो ही रहा है, साथ में मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी इसका असर दिखाई दे रहा है। पर्यावरण प्रदूषण से होनेवाले विभिन्न प्रकार के रोगों से तो हम सभी परिचित हैं। हमारे हाइकुकारों ने भी इसे एक गंभीर समस्या के रूप में देखा है। ये सभी हाइकुकार पर्यावरण प्रदूषण और संरक्षण से भली-भाँति परिचित हैं। प्रकृति के सुंदर रूप का वर्णन करनेवाले इन हाइकुकारों ने प्रकृति-प्रदूषण की ओर अपना ध्यान केंद्रित करते हुए कई हाइकु भी रचे हैं और इस चिंतनीय विषय को काव्य में प्रस्तुत किया है। जल-प्रदूषण के कारण कई जलीय जीव-जंतुओं की प्रजातियाँ भी लुप्त होने की कगार पर हैं। आसमान में धुएँ के कारण होनेवाली परेशानियों से भी हम सभी अनजान नहीं है। भावना जी ने इस धुएँ को काले नाग की उपमा देकर चिंता व्यक्त की है, यह धुआँ नाग की तरह फन फैलाए बैठा है और हमें डसने को तैयार है, यथा–

आसमान में /काले सर्प-सा धुँआ / फन फैलाए।[31] –डॉ॰ भावना कुँअर

वायु प्रदूषण हम सभी के लिए बहुत हानिकारक है। यही नहीं रचना जी को लगता है कि इस धुएँ और दूषित वायु के कारण सिर्फ मनुष्य एवं प्राणियों को ही तकलीफ नहीं हो रही है वरन् अब तो चाँद भी खाँस रहा है। यहाँ पर हाइकुकार ने इस समस्या को सुंदर काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है, यथा–

दूषित हवा / पूरी रात खाँसता / बेचारा चाँद।

जहर धुआँ / चिमनी ने उगला / बंजर धरा।

दूषित हवा / पंछी को हुआ दमा/ झील कराहे।[32] –रचना श्रीवास्तव

जंगलों के लगातार काटे जाने से पशु-पक्षियों की कई प्रजातियाँ लुप्त होती जा रही हैं और

 ISSN 0975-735X

कई तो पहले ही लुप्त हो चुकी हैं। यदि ये वन इसी तरह से साफ होते रहे ,तो ये पंछी अपना बसेरा कहाँ बनाएँगे? वनों के नष्ट होने से जैविक संतुलन भी बिगड़ता जा रहा है, साँस लेने वाली प्राणवायु ऑक्सीजन भी कम हो रही है। ओजोन परत में छिद्र बढ़ता जा रहा है। वनों से प्राप्त होने वाली कई बहुमूल्य जड़ी-बूटियाँ और वनस्पतियाँ भी नष्ट हो रही हैं। वनों के काटे जाने के कई दुष्परिणाम हमें दिखाई दे रहे हैं। क्या हम ज़्यादा सभ्य होने की दौड़ में यह भी नहीं देख पा रहे हैं कि इस प्रकार प्रथम आकार भी पीछे रह गए हैं। यदि इसी प्रकार से चलता रहा तो शायद सूखी नदियाँ सिर्फ नक्शे में ही नज़र आएँगी। सूखी नदी और झरने को देखकर कोई पंछी भी नहीं आएगा। हम इस सुंदर धरा के आँचल को कचरे से भर रहे हैं। हमें इसे रोकना होगा–

कैसा उत्थान ?/ छीनते परिंदों से / नीड़ व गान।
पेड़ जो कटे / बने कहाँ घोंसला / टूटा हौंसला।[33] –कृष्णा वर्मा
गंदला पानी / रो रहीं मछलियाँ / वो जाएँ कहाँ!
ओजोन छाता / धरा लिए है खड़ी / बची चमड़ी।[34] –डॉ॰ हरदीप कौर संधु
छीन ले गई / नीम की मीठी छाँव / क्रूर कुल्हाड़ी।[35] –डॉ॰ भावना कुँअर

यदि प्रकृति के दोहन को रोका नहीं गया तो हमें भविष्य में बहुत ही तकलीफ होगी। हमें समय रहते अपनी इस सुंदर धरती का बचाव करना होगा, नहीं तो एक दिन शायद हमें साँस लेने के लिए प्राणवायु भी प्राप्त नहीं होगी। हमें इस विनाश से प्रकृति को बचाना होगा; क्योंकि प्रकृति का विनाश मनुष्य का विनाश है–

होगा विनाश / छेड़ोगे प्रकृति को / अब तो चेतो।[36] –रचना श्रीवास्तव

रिश्तों के बिना हमारा जीवन बेरंग प्रतीत होगा, ये रिश्ते ही हमारे जीवन में रंग भरते हैं। रिश्तों से ही प्रेम, भावनाएँ एवं संवेदनाएँ जुड़ी हुई हैं। रिश्तों को बहुत सँभालकर और सँजोकर रखना पड़ता है। ये रिश्ते बहुत नाजुक होते हैं। इसके लिए प्रेम बहुत आवश्यक है। माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका एवं दोस्ती आदि ऐसे कुछ रिश्ते हैं, जिनके कारण हम सब एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। ये सभी रिश्ते हमारे जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, इनके कारण हम बड़ी से बड़ी कठिनाई का भी सामना कर पाते हैं और कभी इनके कारण हम टूट भी जाते हैं। यथा–

सूखी है नमी / प्यार की हुई जब / रिश्तों में कमी।[37] –कृष्णा वर्मा

प्रवासी होने की वजह से ये हाइकुकार इन सभी रिश्तों की कमी को महसूस कर रहे हैं और लाखों की आबादी वाले बड़े-बड़े शहरों में भी अपनापन खोज रहे हैं, यथा–

ढूँढता मन / अनजानी भीड़ में / अपनापन।[38] –डॉ॰ भावना कुँअर

कहा जाता है कि माँ से बड़ा कोई नहीं। माँ को ईश्वर का दूजा रूप माना गया है। माँ पर कई कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास आदि लिखे जा चुके हैं। माँ के महत्त्व को हाइकुओं में बहुत खूबी से प्रस्तुत किया गया है। माँ की मुस्कान से ही सारी थकान पल भर में छू हो जाती है, माँ के बुने स्वेटर से ठंड भी लज्जित हो जाती है। कहीं पर माँ अपने बच्चों के लिए प्रतीक्षारत है, तो कहीं पर बच्चे माँ की रसोई को याद कर रहे हैं। यथा–

माँ याद आए / बालों में अँगुली जो / हवा फिराए।[39] –कृष्णा वर्मा

माँ की दुआएँ और माँ का प्यार हर जगह, हर पल साथ रहता है। पिता पर कम हाइकु लिखे गए हैं। रचना जी ने माँ के साथ पिता के महत्त्व को भी हाइकु में प्रस्तुत किया है–

तोतली भाषा / मासूम सपनों का / भरोसा पिता।[40] –रचना श्रीवास्तव

भाई का प्यार, बेटी की बिदाई, सखियों का प्यार, इन सभी प्यारे रिश्तों को हाइकुकारों ने बड़ी ही खूबसूरती से अपने हाइकुओं में प्रस्तुत किया है। दोस्ती में प्यार की गरमाहट और बेटी पर बरसता प्यार देखिए–

सर्द माथे पे / है गर्म हथेली की / छुअन दोस्ती।

नन्ही-सी परी / वो घुँघरू की मीठी / रुनझुन-सी।[41] –डॉ॰ हरदीप कौर संधु

लेकिन इन सभी प्यार भरे रिश्तों के साथ कुछ रिश्ते ऐसे भी जो तमाम कोशिशों के बाद भी हमारे हाथ से निकल जाते हैं और कहीं पर ना चाहते हुए भी इन रिश्तों को बोझ की तरह हमें ढोना पड़ता है। शायद विदेश में कुछ ऐसा अनुभव हुआ है–

ठंडे देश में / रिश्ते अकड़ जाएँ / ठंडे जज्बात।[42] –कृष्णा वर्मा

प्रेम के विविध रंग जीवन में दिखाई देते हैं। शृंगार रस को रसराज की उपमा हमारे विद्वानों द्वारा प्राप्त है। वियोग एवं संयोग दोनों का संगम हमें हाइकु में भी प्राप्त होता है। कहीं प्रेम में हर्ष का अनुभव है तो कहीं पर अपने पिया से बिछड़ने का दर्द अत्यधिक है। जब पिया का साथ हो हर पल मन आनंदित रहता है यथा–

फूलों के अंग / खुशबू जो रहती / तू मेरे संग।[43] –डॉ॰ हरदीप कौर संधु

तुमने छुआ / शांत झील में उठी / तीव्र लहर।

आँसू से लिखी / वो चिट्ठी जब खोली / भीगी हथेली।[44] –रचना श्रीवास्तव

बुढ़ापे का सहारा भी प्यार ही है, प्यार हमें किसी भी परिस्थिति का सामना करना सीखता है। प्यार के सहारे कुछ भी किया जा सकता है–

न कोई आस / बुढ़ापे का साथ तो / केवल प्यार।[45] –रचना श्रीवास्तव

तुम्हारा साथ / अमावसी जीवन / लगे उजास।[46] –कृष्णा वर्मा

अपने हाइकुओं में यथार्थ का चित्रण भी बहुत सहजता से इन हाइकुकारों ने किया है। मनुष्य को अपने सम्पूर्ण जीवन में विभिन्न प्रकार के यथार्थ का सामना करना पड़ता है। वर्तमान जीवन में हम कई जटिलताओं और विवशताओं का अनुभव करते हैं। कहीं पर रिश्ते टूट रहे हैं, कहीं पर इंसान अकेला रह गया है। बाल-मजदूरी करते भूखे बच्चे, हमारे यहाँ के अजीब रस्मो-रिवाज, बुढ़ापे में माँ-बाप को अकेले में समय बिताना, पुरुष प्रधान समाज होने कारण नारी को दोषी मानना, अपनों के कारण दु:ख की प्राप्ति इस प्रकार के तमाम सत्यों को हाइकु में प्रस्तुत किया गया है। बाशो ने हाइकु को सत्य की अनुभूति माना है, यहाँ पर यथार्थ चित्रण कर हाइकुकारों ने यह बात सिद्ध की है। यथार्थ का चित्रण प्रस्तुत करने में यह सभी हाइकुकार सफल हुए हैं। बड़ी ही सहजता के साथ इन सभी हाइकुओं में सत्य की अभिव्यक्ति झलकती है। यथा–

जीते जी शूल / मरने पर फूल / अजब रस्मे।[47] –कृष्णा वर्मा

अमृत पीते / अक्सर ये पुरुष / औरत विष।[48] –डॉ॰ भावना कुँअर

डॉलर छीने / बेसहारा की लाठी / सूना आँगन।[49] –रचना श्रीवास्तव

खानेवालों की / उठा रहे जूठन / ये भूखे बच्चे।[50] –डॉ॰ हरदीप कौर संधु

लेकिन इन सब कड़वे अनुभवों के बावजूद भी हम आशावादी दृष्टिकोण को देख सकते हैं। मुस्कराने से सारे ग़म दूर हो जाते हैं, मुस्कराना हमारे जीवन को आसान बना देता है–

 ISSN 0975-735X

हौसला ज़िंदा / समंदर को लाँघे / नन्हा परिंदा।[51] –कृष्णा वर्मा

ढूँढो आँसू में /यदि तुम मुस्कान / जीना आसान।[52] –रचना श्रीवास्तव

विभिन्न त्योहारों का वर्णन भी हाइकुकारों ने खुल के किया है। परदेस में अकेले रहकर त्योहार में अपने लोगों की याद बहुत सताती है। फागुन का उत्सव हो या दीपावली की जगमगाती रात सभी त्योहार हमारी संस्कृति के परिचायक हैं। भारत त्योहारों का देश है। यहाँ पर बहुत से त्योहार मनाए जाते हैं, इन त्योहारों का वर्णन हाइकुओं में देखा जा सकता है। ये सभी त्योहार भारतीय प्रवासियों को भारत से दूर होने पर भी एक सूत्र में जोड़ कर रखते हैं। त्योहार हमारी भावनाओं और यादों से जुड़े हुए हैं, ये हमारे जीवन को रंगीन बनाते हैं। यथा–

परदेस में / जब होली मनाई / तू याद आई।[53] –डॉ॰ भावना कुँअर

तुम्हारी याद / चौखट दीप धरूँ / दिवाली-रात।[54] –रचना श्रीवास्तव

रोम-रोम में / गंध चाँदनी घुली / फाल्गुन आए।

वो प्रीत कैसी / मोहताज होती जो / खास तिथि की।[55] –कृष्णा वर्मा

भावों और संवेदनाओं की सुंदर अभिव्यक्ति से साथ-साथ शिल्प सौष्ठव का सुन्दर संगम भी इन सभी हाइकुकारों के हाइकु में दृष्टिगत हुआ है। शिल्प की दृष्टि से काव्य में प्रयुक्त होने वाले बिंब, प्रतीक, अलंकार, शब्दशक्ति आदि का सहज उपयोग हाइकु को खूबसूरत बनाते हैं। रचना जी ने बूढ़े पीपल को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है–

उड़े जो पंछी / सूखा बूढ़ा पीपल / इंतजार में।[56] –रचना श्रीवास्तव

शब्दशक्ति से परिचित इन सभी हाइकुकारों ने शब्दशक्ति का प्रयोग कर अपने काव्य को शिल्प की दृष्टि से भी उत्कृष्ट बनाया है, लक्षणा शब्दशक्ति का एक उदाहरण देखिए–

किया उजाला / काजल भी उगला / दीप जो जला।[57] –डॉ॰ हरदीप कौर संधु

सजीव बिम्बों के प्रयोग से हाइकु और मनोहारी बन पड़े हैं। यथा -

नदी जल में / नहा के हवाएँ, दें / सूर्य को अर्घ्य।[58] –कृष्णा वर्मा

खेत है वधू / सरसों हैं गहने / स्वर्ण के जैसे।[59] –डॉ॰ भावना कुँअर

उपमा, मानवीकरण, रूपक, अनुप्रास आदि कई अलंकारों के प्रयोग को हाइकु में देखा जा सकता है। अलंकारों के सहज प्रयोग इन हाइकुकारों की विशेषता है। उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकार का क्रमशः उदाहरण देखिए–

बादल ओट / छुपा यूँ चाँद ज्यों हो / तारों से कुट्टी।[60] –कृष्णा वर्मा

पहने बैठी / हीरे की नथुनी-सी / फूल-पाँखुरी।[61] –डॉ॰ भावना कुँअर

काव्य में आवश्यक माने जाने वाले सभी तत्त्वों या गुणों को इस नन्हे से हाइकु में देखा जा सकता है। शिल्प की दृष्टि से भी सभी हाइकु उत्कृष्ट जान पड़ते हैं। सशक्त शिल्प के साथ हाइकु की विभिन्न विशेषताएँ भी इन हाइकुओं में दिखाई देती हैं। सांकेतिकता, संक्षिप्तता, ध्वन्यात्मकता, सहजता, अनकहे का महत्त्व आदि कई हाइकु-काव्य की विशेषताएँ इन हाइकुओं में प्राप्त होती हैं। सपाटबयानी से इन सभी हाइकुकारों ने परहेज करते हुए अपने भावों को बड़ी ही काव्यात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। कुछ कहकर थोड़ा अनकहा छोड़ देना ताकि पाठक अपनी कल्पना से उसे पूरा कर ले, यह हाइकु का एक गुण है। हाइकुकार संकेतों के माध्यम से अपनी बात कहने में समर्थ है, सांकेतिकता का एक उदाहरण देखिए–

चबा ही डाली / बेदर्द चिड़िया ने / तितली प्यारी।[62] –डॉ॰ भावना कुँअर

ध्वन्यात्मकता हाइकु का विशिष्ट गुण है। ध्वन्यात्मकता हाइकु को एक अन्य धरातल पर ले जाकर प्रस्तुत करती है। भावना जी का एक बेहतरीन हाइकु देखिए–

लाल था जोड़ा / आजादी से उड़ना / भूलना पड़ा।[63] –डॉ॰ भावना कुँअर

प्रस्तुत सभी हाइकु, हाइकु के समस्त गुणों को लिए हुए हैं। हाइकु के इस सूक्ष्म कलेवर में इतने सारे गुणों का समाहित होना ही इस विधा को विशिष्ट बनाता है। ये सभी प्रवासी हाइकुकार शिल्प और अभिव्यक्ति के स्तर पर सार्थक हाइकु रचने में समर्थ हुए हैं।

अपने देश से दूर ये सभी प्रवासी भारतीय साहित्यकार हिंदीभाषा और साहित्य को विश्व स्तर पर प्रसिद्ध एवं प्रचलित करना चाहते हैं। इन सभी साहित्यकारों के मन में व्याप्त प्रकृति एवं प्राणियों के प्रति प्रेम, अपनी मातृभूमि से दूर होने का भाव और अपने प्रिय परिवारजनों एवं संबंधियों से दूर होने की पीड़ा, भारतीय संस्कृति से दूर रहने का ग़म, सभी कुछ इनके साहित्य में समाहित हुआ है। इन साहित्यकारों ने अंतर्मन में चल रहे सभी विचारों एवं भावों को अपनी लेखनी के माध्यम से सुंदर साहित्यिक रूप में प्रस्तुत किया है। प्रवासी बनने के बावजूद इनका मन आज भी भटकता फिर रहा है। ये विदेशों में रोजगार या काम-धंधे की वजह से आ बसे हैं, लेकिन आज भी इन्हें अपने देश की, अपनी मिट्टी की खुशबू आकर्षित कर रही है और ये हर हवा के झोंके के साथ अपने देश की महक को महसूस करने की कोशिश कर रहे हैं। यथा–

यूँ ही फिरता / है भटकता मन / प्रवासी बन।
नादाँ परिंदा / फिरता मारा-मारा / देश-विदेश।
ये पुरवाई / वतन की खुशबू / लेकर आई।[64] –डॉ॰ भावना कुँअर

भावनाजी, हरदीपजी, रचनाजी और कृष्णाजी इन सभी साहित्यकारों ने भारत से दूर रहकर साहित्य-साधना की है, लेकिन इन सभी के साहित्य-सृजन में एक गुणवत्ता दिखाई देती है। किसी भी उच्च कोटि की रचना पढ़ने के बाद किसी भी पाठक को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि कोई रचनाकार भारत में रहकर साहित्य-सृजन कर रहा है या भारत के बाहर। पाठक तो बस भावों के सागर में गोते लगाता जाता है और उस रचना को सर्वश्रेष्ठ बना देता है। उपर्युक्त सभी साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं को श्रेष्ठ बनाने में कोई कमी नहीं छोड़ी है। अपने कौशल से ये सभी पाठकों के दिलों में अपनी जगह बना चुके हैं।

प्रवासी साहित्य में प्रस्तुत सांस्कृतिक द्वंद्व और अपनी मिट्टी से दूर होने की पीड़ा एवं आवश्यकता इनकी रचनाओं को और भी अलग स्तर पर ले जातीं हैं। बाहर रहकर भी इन प्रवासी रचनाकारों की भाषा में कोई मिलावट नहीं है। शुद्ध हिंदीभाषा के साथ क्षेत्रीय/ आंचलिक भाषा के शब्दों को अपने काव्य में प्रयुक्त कर इन साहित्यकारों ने सफलता प्राप्त की है। कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से ये सभी हाइकु अपनी सार्थकता स्वयंसिद्ध करते हैं।

ये सभी साहित्यकार भले ही शारीरिक रूप से अपनी संस्कृति से दूर हैं; लेकिन आज भी इनका दिल तो भारत में ही बसा हुआ है। कामना करते हैं कि भविष्य में इन प्रवासी साहित्यकारों द्वारा रचित उत्कृष्ट कोटि की रचनाएँ हमें इसी प्रकार रसानुभूति प्रदान करती रहेंगी। यथा–

लाख छू आएँ /चिड़ियाँ आकाश को / प्यार नीड़ से।[65] –कृष्णा वर्मा
लौटकर आ / पुकारे तुझे अब / गाँव वो तेरा।[66] –डॉ॰ हरदीप कौर संधु

 ISSN 0975-735X

संदर्भ

1. तारों की चूनर, डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 15
2. हाइकु-काव्य शिल्प एवं अनुभूति, सं॰ रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'/डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 245
3. ख्वाबों की खुशबू, डॉ॰ हरदीप कौर संधु, पृ॰ 107
4. मन के द्वार हजार, रचना श्रीवास्तव पृ॰ 20
5. भोर की मुस्कान, रचना श्रीवास्तव, पृ॰ 49
6. वही, पुस्तक फ्लैप पर
7. अंबर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पुस्तक के फ्लैप पर।
8. वही, पृ॰ 26
9. तारों की चूनर, डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 136
10. ख्वाबों की खुशबू, डॉ॰ हरदीप कौर संधु, पृ॰ 31
11. वही, पुस्तक फ्लैप पर।
12. वही, पृ॰ 35
13. हाइकु-काव्य शिल्प एवं अनुभूति, सं. रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'/डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 153, 156
14. ख्वाबों की खुशबू, डॉ॰ हरदीप कौर संधु, पृ॰ 32
15. हाइकु-काव्य शिल्प एवं अनुभूति, सं. रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'/डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰161
16. अंबर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पृ॰ 31
17. ख्वाबों की खुशबू, डॉ॰ हरदीप कौर संधु, पृ॰ 72
18. धूप के खरगोश, डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 38
19. ख्वाबों की खुशबू, डॉ॰ हरदीप कौर संधु, पृ॰ 72
20. भोर की मुस्कान, रचना श्रीवास्तव, पृ॰ 43
21. तारों की चूनर, डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 153
22. अंबर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पृ॰ 35।
23. धूप के खरगोश, डॉ॰ भावना कुँअर, पृ 72
24. तारों की चूनर, डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 17
25. तारों की चूनर की समीक्षा, रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', गद्य-कोश से साभार।
26. धूप के के खरगोश, डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 46
27. अंबर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पृ॰ 29
28. भोर की मुस्कान, रचना श्रीवास्तव, पृ॰ 75
29. ख्वाबों की खुशबू, डॉ॰ हरदीप कौर संधु, पृ॰ 73
30. अंबर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पृ॰ 64
31. तारों की चूनर, डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 124
32. भोर की मुस्कान, रचना श्रीवास्तव, पृ॰ 75, 80, 74
33. अम्बर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पृ॰ 29।
34. ख्वाबों की खुशबू, पृ॰ 76, 75।
35. धूप के खरगोश, डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 38।
36. भोर की मुस्कान, रचना श्रीवास्तव, पृ॰ 81।

37. अंबर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पृ॰ 74।
38. धूप के खरगोश, डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 83।
39. अंबर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पृ॰ 68
40. भोर की मुस्कान, रचना श्रीवास्तव, पृ॰ 55
41. ख्वाबों की खुशबू, डॉ॰ हरदीप कौर संधु, पृ॰ 51,42
42. अंबर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पृ॰ 62
43. ख्वाबों की खुशबू, डॉ॰ हरदीप कौर संधु, पृ॰77
44. भोर की मुस्कान, रचना श्रीवास्तव, पृ॰ 50
45. वही, पृ॰ 89
46. अंबर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पृ॰79।
47. वही, पृ॰ 88
48. धूप के खरगोश, डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 91
49. भोर की मुस्कान, रचना श्रीवास्तव, पृ॰ 89
50. ख्वाबों की खुशबू, डॉ॰ हरदीप कौर संधु, पृ॰ 61
51. अंबर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पृ॰77
52. भोर की मुस्कान, रचना श्रीवास्तव, पृ॰ 84
53. तारों की चूनर, डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 75
54. भोर की मुस्कान, रचना श्रीवास्तव, पृ॰ 27
55. अंबर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पृ॰ 111, 93
56. भोर की मुस्कान, रचना श्रीवास्तव, पृ॰ 81
57. ख्वाबों की खुशबू, डॉ॰ हरदीप कौर संधु, पृ॰ 64
58. अंबर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पृ॰ 33
59. तारों की चूनर, डॉ॰ भावना कुँअर, पृ॰ 35
60. अंबर बाँचे पाती, पृ॰ 57
61. धूप के खरगोश, पृ॰ 64
62. वही, पृ॰ 24
63. वही, पृ॰ 106
64. वही, पृ॰ 104, 107, 49
65. अंबर बाँचे पाती, कृष्णा वर्मा, पृ॰89
66. ख्वाबों की खुशबू, डॉ॰ हरदीप कौर संधु, पृ॰ 33

201 **एरीज**-3, 42 **यूनाइटेड कॉलोनी**
नवरचना स्कूल के पास, समा
वड़ोदरा 390008 **(गुजरात)**

 ISSN 0975-735X

श्रीराधाचरण गोस्वामी और हिंदी

डॉ॰ अशोक उपाध्याय
हिंदी विभाग, बरेली कालेज, बरेली

सन् 1857 के उपरांत पुनरुत्थानमूलक सांस्कृतिक-धार्मिक राष्ट्रवाद से उत्पन्न प्रभावों तथा विचारों को अधिक-से-अधिक समझने की क्षमता को विकसित करने के लिए देशी भाषाओं में सर्वोपरि हिंदी की उन्नति के लिए व्यापक प्रयास हुए। ब्रिटिश शासकों ने भी निहित स्वार्थवश शिक्षण संस्थानों के माध्यम से इस संदर्भ में सकारात्मक कदम उठाए। स्वदेशी के प्रचार-प्रसार के लिए भी यह आवश्यकता अनुभव की गई। देश की सही स्थिति से आम जनता को अवगत कराने के लिए पत्रकार, लेखक, कवि, धर्मगुरु इत्यादि इस दिशा में इस प्रकार सक्रिय हुए कि हिंदी राष्ट्रोन्नति का प्रतिष्ठात्मक संकेत बन गई। जनता की बोलचाल की सर्वाधिक प्रचलित भाषा होने के कारण इसे और अधिक व्यापक समर्थन मिला। स्वतंत्रता के लिए चिंतित युवा समुदाय तथा ब्रिटिश शासन के संचालन के लिए आवश्यक नौकरशाहों ने भी इसे यथासंभव प्रोत्साहन प्रदान किया। विभिन्न स्थानों पर व्याख्यान आयोजित हुए, सभा सम्मेलन इत्यादि हुए। सन् 1877 ई॰ के जून मास में 'हिंदी वर्द्धिनी सभा' में दिए गए 'हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान' में भारतेंदुजी भारतीय जनमानस का प्रतिनिधित्व करते हुए कहा–

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।
पढ़े संस्कृत जतन करि पंडित भे विख्यात
पै निजभाषा ज्ञान बिन कहि न सकत एक बात।
पढ़े फारसी बहुत बिधि तौहू भये खराब
पानी खटिया तर रहो पूत मरे बकिआव
अंग्रेजी पढ़िके जदपि सब गुन होत प्रवीन
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन।[1]

इसके अंत में उन्होंने हिंदी की उन्नति के विभिन्न उपायों पर प्रकाश डालते हुए आम जनता से हिंदी को 'राजकाज और दरबार' में फैलाने की अपील की है। सभी को भेदभाव भुलाकर हिंदी के पठन-पाठन में रुचि लेने चाहिए तथा सम्मिलित रूप से हिंदी की पत्रकारिता को विकसित करके इसके प्रचार-प्रसार की रुचि का विस्तार करना चाहिए। अरबी, फारसी, अँग्रेजी एवं संस्कृत की पुस्तकों के अनुवाद के द्वारा अशिक्षा के अज्ञानजनित अंधकार के विनाश में सार्थक भूमिका का निर्वाह करना चाहिए–

निजभाषा, निजधरम, निजमान करम त्यौहार

सबै बढ़ावहु बेगि मिलि कहत पुकार पुकार
लखहु उदित पूरब भयो भारत भानु प्रकास
उठहु खिलावहु हिय कमल करहु तिमिर दुख नास।[2]

गोस्वामी जी भारतेंदुजी के अनन्य अनुयायी थे। हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए वह सदैव कटिबद्ध रहते थे। उन्होंने हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए दूसरों को सदैव अग्रसर करने का प्रयत्न किया तथा स्वयं भी कविता, नाटक, निबंध, उपन्यास जीवन चरित्र, पत्रकारिता, समालोचना इत्यादि की रचना करके सकारात्मक कार्य-शैली का प्रदर्शन किया। सोलहवें हिंदी साहित्य सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष के रूप में उन्होंने इस दिशा में अत्यंत सार्थक पहल करते हुए सभी से इसप्रकार प्रार्थना की–

कवि, पंडित, परिजन, प्रकृति-छात्र, रसिक, रिझवार
राजा, प्रजा सुप्रेमवश कर हिंदी को प्यार
हिंदी हिंदुस्तान की भाषा विशद विशाल
जनमलेत सुख सों कहें माँ! माँ! दा! दा! बाल
घर की औ घाट की खेत प्रेत समसान
हाट बाट दरबार की भाषा ये ही जान।[3]

हिंदी माता के समान पूजनीय है। पिता का ऋणशोधन करना सहज हो सकता है किंतु माता का ऋण उतारना अत्यंत कठिन है। इसके लिए भक्ति-भाव की आवश्यकता है–

पितु ऋण शोध सकें सहज कठिन मातु ऋण जान
ताही के उद्धार हित यज्ञ रची सुमहान
जासे जो कछु बन सकै मातापद अरबिंद
भक्तिभाव से पूजिये रहहु सदा सानंद।[4]

हिंदी भारतवर्ष में सबसे अधिक प्रचलित तथा समृद्ध साहित्य से युक्त भाषा है। तत्कालीन जनता में राष्ट्रीय चेतना का संचार करने के लिए ऐसी ही अग्रगण्य भाषा की आवश्यकता थी। अँग्रेजी सरकार हिंदी के प्रति उपेक्षा की नीति सभी हिंदी भाषियों के लिए पीड़ादायक थी। उन्होंने खुलेआम स्पष्ट किया कि 'हिंदुस्तान बहुत बड़ देश है। इसकी बहुत बाते हैं जिन्हें साधारण अँग्रेज तो क्या जानें सरकार भी अब तक नहीं जान सकी, वरन् भ्रम में पड़ी है। यहाँ के मुख्य अक्षर देवनागरी हैं, पर सरकार फारसी को समझ रही है। यहाँ की मुख्य भाषा हिंदी है, पर सरकार ने उर्दू समझ रखी है।'[5] 'सारसुधानिधि' में 'शिक्षा कमीशन और हिंदी भाष' के संदर्भ में पंडितजी का यह कथन चिरस्मरणीय है कि 'हिंदी यहाँ की प्राकृत भाषा है। इस बात को बड़े-बड़े मान्य लोग भी स्वीकार करते हैं। जिन लोगों ने हिंदी के व्याकरण बनाए हैं सब मुक्तकंठ से यही कहते हैं कि हिंदी ही यहाँ की मुख्य भाषा है। पश्चिमोत्तर अवध और पंजाब में कोटि-कोटि आदमी यही चाहते हैं कि सब सरकारी काम नागरी में हों और प्रजा का गला इन उर्दू वालों की तलवार से बचे। मुख्य देश भाषाा वह है जिसे कि सर्वसाधारण बोलता है न कि वह चंद खास आदमियों की बोलचाल हो। सात-आठ वर्ष पढ़ने के बाद भी यहाँ के लोग अँग्रेजी को अच्छी तरह से नहीं समझते। फिर वह कहीं मातृभाषा हो सकती है? यही ढवं उर्दू का है।'[6] उनके द्वारा इसके आगे यह भी कहा गया है कि 'भाषा वह है, जो बिना सिखाए आपसे आप आ जाए। हिंदी भाषा और नागरी अक्षरों में

 ISSN 0975-735X

कुमाऊँ, बिहारी, मध्यप्रदेश, छोटा नागपुर, राजपूताना आदि देशों में बराबर सरकारी या राजसी काम होता है। हिंदी अत्यंत सरल है, उसे आसानी से ग्रामीणजन भी समझ जाते हैं। अत: सरकार को हिंदी में दफ्तर ओर शिक्षा देने में कोई दलील बाकी न होगी।'[7] हिंदी की उन्नति के लिए दी गई गोस्वामी जी की यह दलील अत्यंत प्रभावपूर्ण तथा मातृभाषा के प्रति भावनात्मक तन्मयता का प्रतीक है। इस सत्कार्य में वह राजा और प्रजा इत्यादि के योगदान की जी खोलकर प्रशंसा करते थे। हिंदू राजपरिवारों से उनकी इस संबंध में गहरी आकांक्षा थी। जब उदयपुर के महाराणा ने सन् 1887 ई॰ में अपने प्रशासन क्षेत्र में हिंदी के उत्थान के लिए सुचारुता प्रदान करने की आवश्यकता की पूर्ति हेतु 'हिंदी कोश' स्थापित किया, तब उन्होंने 'मित्र विलास' के माध्यम से अविलंब बधाई भेजकर अपनी हार्दिक प्रसन्नता इस प्रकार व्यक्त करने का सफल प्रयास किया–'बधाई है! बधाई है! जगदीश्वर श्रीमान् महाराणा साहब को चिरंजीव रखे। उन्होंने हमार हृदय की वासना पूर्ण की। पश्चिमोत्तर के शिक्षा विभाग और गवर्नमेंट ने हिंदी को अपने यहाँ से धक्का दे दिया। महाराणा साहब का यश हाथ उठा-उठाकर गावो, हिंदी के रसिको घी के दिये जलावो। दे देव! जब तक गंगा जमुना में पानी, ब्रह्मा के मुख में वानी है, ऐसे दानी बने रहें। हिंदी के लेखको! निद्रा छोड़ो! छ: बज गए। उदयपुर में हिंदूपति बादशाह उदित हैं। तुम सब मुदित होकर हिंदी में लिखते चलो।'[8] उन्होंने भारतेंदुजी तथा राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद का हर्षातिरेकपूर्ण स्मरण इस प्रकार किया है–

कविता कामिन भाल में हिंदी बिंदी रूप
प्रघट अग्रवन में भई ब्रज के निकट अनूप
लालकरीजिन अंकुरित शिवप्रसाद द्वै पात
कुसुमित भारतेंदु ने रचना रचि विख्यात।[9]

पत्र-पत्रिकाओं के हिंदी कार्यों का प्रोत्साहन उनका नित्यकर्त्तव्य था। 'कविवचन सुधा' के संपादन महोदय की पीठ ठोंकते हुए उन्होंने ठीक ही कहा है कि 'जब तक मुझे ज्ञात था आर्यभाषा की उन्नति कुछ विलंब से होगी। अब एक मुझे क्या, आपके पत्रदर्शी मात्र को विदित हुआ होगा कि अब वह अत्यंत निकट आ पहुँचा है जिसमें हमारी भाषा की उन्नति होगी। 'कवि वचन सुधा' की कलेवर वृद्धि से अनेक नूतन विषय प्रकाशित होंगे। यही कारण है कि हमारी उन्नति का समय आ पहुँचा।[10] अपने समय के सरकारी कर्मचारियों इत्यादि के अनुवाद कार्यों में भी उनकी गहरी रुचि थी। वह सदैव उनकी सराहना करते रहते थे। बुलंदशहर के डिप्टी कलक्टर राजा लक्ष्मणसिंह के हिंदी में किए गए अनुवाद कार्य की सराहना करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'हिंदी भाषा में अच्छे-अच्छे ग्रंथ बहुत कम हैं। इसी निमित्त इसे भाषा की उन्नति नहीं कह सकते। बुलंदशहर के डिप्टी कलक्टर राजा लक्ष्मणसिंह एक प्रसिद्ध पुरुष हैं। उन्होंने संस्कृत से अनुवाद 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' और अँग्रेजी से 'हिंदुस्तान का दंड संग्रह', 'रघुवंश' का भाषानुवाद आदि उपकारी ग्रंथ हिंदी भाषा में प्रस्तुत किए हैं। राजा साहब को देशवासियों से हार्दिक बधाई मिलनी चाहिए। हम आशा करते हैं कि शीघ्र ही किसी उत्तम ग्रंथ का अनुवाद हमारे नेत्रगोचर होगा। राजकर्मचारियों को उनका मार्ग अनुसरणीय है।'[11] निजभाषा के विकास के लिए यह अतिआवश्यक है कि देश के सभी विद्यालयों में इसे शिक्षा का माध्यम बनाया जाए। इंग्लैंड का उदाहरण देकर गोस्वामीजी ने तर्कपूर्ण शैली में समझाया है कि 'लेख शिक्षा में सर्वप्रथम अपनी देशभाषा ही पढ़नी चाहिए। जब तक बालक 'पुस्तक' शब्द में और उसके अर्थ को नहीं जानता है, तब तक वह इंगलिश के 'बुक'

शब्द का अर्थ कैसे जानेगा? जब हम लोग ही अपनी देशभाषा नहीं पढ़ेंगे तो क्या स्वर्ग से देवता और पाताल से राक्षस उसे पढ़ने आवेंगे। देखो, इंग्लैंडीय जो आज हमें सभ्यता का पथ दिखाते हैं प्रथम अपनी देशभाषा को पढ़कर दूसरी भाषा पढ़ते हैं।'[12]

मातृभाषा हिंदी का प्रयोग गोस्वामीजी के देशभक्ति का कार्य था। वह इसे सदैव सरकारी स्तर पर प्रतिनिधित्वपूर्वक स्थापित करने के लिए तत्पर थे। एक कुशल राजनेता तथा अधिवक्ता के रूप में उन्होंने हिंदीभाषी कर्मचारियों को हिंदी में कार्य करने का परामर्श दिया। उर्दू प्रेमी अधिकारियों का विरोध करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'प्रत्येक स्थान पर उर्दू वाले कोतवाल और तहसीलदार हैं। वह हिंदी के कागजों पर दस्तखत करने से रोकेंगे। उनकी रिपोर्ट तार द्वारा गवर्नमेंट को दी जाए। हम अपनी मातृभाषा को राजद्वारा में स्थान देंगे। क्या हम लोग पराधीनता में बँधकर यहाँ तक पराधीन हो गए कि अब अपने अक्षर और भाषा भी भूल जाएँ? क्या हम सब जनों का यह धन, जन, विद्या-बुद्धि का बल किस दूसरे समय काम आएगा।'[13] ज्ञातव्य है कि तत्कालीन प्रशासन ने यह भ्रम फैलाना प्रारंभ कर दिया था कि मुसलमानों के व्यवहार की भाषा उर्दू है, उन्हें उसी को सभी कार्यों में प्रोत्साहित करना चाहिए। हिंदी के विकास में इस प्रकार का उर्दू प्रेम सदैव बाधक रहा है।

भारतेंदुजी ने काव्य-भाषा की चर्चा करते हुए लिखा है कि 'पश्चिमोत्तर देश की कविता की भाषा ब्रजभाषा है यह निर्णीत हो चुकी है और प्राचीनकाल के लोग इसी भाषा में कविता करते आए हैं परंतु यह कह सकते हैं कि यह नियम अकबर के समय के पूर्व नहीं था क्योंकि मलिक मोहम्मद जायसी और चंद की कविता विलक्षण ही है और वैसे ही तुलसीदास जी ने ब्रजभाषा का नियम भंग कर दिया। जो हो मैंने आप कई बेरे परिश्रम किया कि खड़ीबोली में कुछ कविता बनाऊँ, पर वह मेरे नित्तानुसार नहीं बनी। इससे यह निश्चय होता है कि ब्रजभाषा ही में कविता करना उत्तम होता है और इसी से सब कविता ब्रजभाषा में ही उत्तम होती है।'[14] गोस्वामीजी ब्रजप्रदेश के निवासी थे और भारतेंदुजी को अपना आदर्श मानते थे। इसीलिए उनके द्वारा इनका अनुकरण करते हुए खड़ीबोली में काव्य-रचना का विरोध किया गया। इस विरोध के उन्होंने पाँच कारण बताए हैं। पहला कारण उन्होंने यह बताया है कि कवित्त, सवैया आदि हिंदी के प्रमुख छंदों में खड़ीबोली का 'निर्वाह नहीं हो सकता और यदि किया भी जाता है तो बहुत भद्दा मालूम होता है। तब भाषा के प्रसिद्ध छंद जोड़कर उर्दू के बैत, शेर, गजल आदि का अनुकरण करना पड़ता है, पर फारसी शब्दों के होने से उसमें भी साहित्य नहीं आता। फिर जब काव्य में हृदयग्राही गुण न हुआ तो ऐसे काव्य की रचना ही व्यर्थ है।'[15] उनके अनुसार दूसरा कारण है ब्रजभाषा की व्यापकता। 'चंद के समय से पूर्व बाबू हरिश्चंद्र तक जो कविता हुई है, वह सब ब्रजभाषा में हुई और सब पंडितों ने संस्कृत के अनंतर 'भाषा' शब्द से इसी का का व्यवहार किया। इसके साहित्य की जैसी उन्नति है, संस्कृत के बिना और किसी भाषा के साहित्य की उतनी उन्नति नहीं और सिवाए क्रियापदों के हिंदी से इसका भेद भी नहीं। तब इतने बड़े अमूल्य रत्न भंडार को छोड़कर नए कंकर-पत्थर चुनना हिंदी के लिए कुछ सौभाग्य की बात नहीं, बरंच इस ब्रजभाषा के भंडार को हिंदी से निकाल देने से फिर हिंदी में क्या गौरव-सामग्री रह जाएगी?'[16]

पृथ्वीराज रासो, सूरसागर, तुलसीकृत रामायण, बिहारी सतसई, पद्माकर, देव, आनंदघन आदि की अमृतमयी कविता का व्यापक महत्त्व धारण करनेवाली ब्रजभाषा का गौरव स्मरण कराते

हुए उन्होंने यह बताया कि 'हमारी कविता की भाषा अभी मरी नहीं है, जीती है, तब फिर इसमें क्यों न कविता की जाए?'[17] गोस्वामीजी गद्य और पद्य की भाषा अलग-अलग होने के पक्षधर थे। इसीलिए उन्हाहेंने चौथे कारण में सपष्ट किया कि 'संस्कृत नाटकों में साहित्य के लालित्य के लिए संस्कृत, प्राकृत, पैशाची कई भाषा व्यवहार की गई हैं, तो यदि हम हिंदी साहित्य में दो भाषा व्यवहार करें तो क्या चोरी है?'[18] पाँचवें कारण में उन्होंने अपने ब्रजभाषा प्रेम के वशीभूत होकर खड़ी बोली कविता का विरोध करते हुए लिखा कि 'इस समय में हमारे परम आतुर आर्यसमाजी और मिशनरी आदिकों ने भाषा साहित्य की रीति और अलंकार आदि बिना जाने कविता लिखने का आरंभ करके अपने हास्य के सिवाय काव्य की भी उलटे छुरे से खूब हजामत की है और इस पिशाची कविता से अपने समाज का भी खूब मुख नीचा किया। बस यह खड़ीबोली की कविता भी पिशाची नहीं तो डाकिनी अवश्य कवि समाज में मानी जाएगी।'[19] 20 नवंबर 1887ई॰ के 'हिंदोस्थान' में श्रीधरपाठक के खड़बोली के समर्थन में प्रकाशित आलेख के प्रतिवाद में उनके द्वारा सार्वजनिक रूप से यह स्वीकार किया गया कि 'जो मैंने 'पिशाची', 'डाकिनी' आदि खड़ीबोली कविता को लिखा है, वह यथार्थ है। इसके लिए मेरे मित्र 'खड़ीबोली का पद्य' एक दृष्टि से देख लें। पर हाँ, यह दूसरी बात है कि 'निज कविता सब देशों में नहीं समझी जा सकती, खड़ीबोली की कविता सब देशवासी समझेंगे' भ्रम है। हमें वह कृपा करके उन शब्दों को बतला दें जो ब्रजभाषा में नहीं हैं और हिंदी में हैं या ब्रजभाषा में कठिन और हिंदी में सरल हैं। कविता का समझना साधारण नहीं है, उसके लिए कुछ ज्ञान अवश्य सापेक्ष है।'[20] इसके आगे भी ब्रजभाषा के पक्ष में तर्क देकर अपने कथन की सार्थकता प्रमाणित करने के लिए उन्होंने लिखा है कि 'यदि कविता के मनोहरित्व आदि गुणों पर दृष्टि न देकर केवल छंदोबद्ध कर देना ही अभिप्राय है, तो फिर गद्य ने क्या चोरी की? छंद में लिखने की क्या आवश्यकता है? जिस प्रकार से छंद बनाए जाते हैं, उस प्रकार से कोई नहीं बोलता? फिर जबकि ब्रजभाषा और हिंदी में कोई अंतर नहीं है जबकि हिंदी के बड़े-बड़े विद्वानों ने अपने उत्तम-उत्तम ग्रंथों में कविता के स्थान पर इसी का प्रयोग किया है, जबकि यह काव्य-भाषा के सर्वगुणों से शोभित है, जबकि हमारे देश के कवियों की यही भाषा है।'[21]

गोस्वामीजी खड़ीबोली के पक्ष में महामना मदनमोहन मालवीय इत्यादि के नेतृत्व में चल रहे खड़ीबोली प्रचार-प्रसार के आंदोलन के महत्त्व से भी भलीभाँति परिचित थे। ब्रजभाषा के प्रबल पक्षधर कुशल अधिवक्ता के रूप में वह यथास्थिति बचाव की मुद्रा ग्रहण करने में भी पीछे नहीं रहते थे। कहीं बुरी तरह से उनकी स्थिति खराब न हो जाए, इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए संभवत: उन्होंने लिखा है कि 'यदि गद्य और कविता की हिंदी में कुछ अंतर है तो इतना ही कि एक प्राचीन भाषा है और एक नवीन भाषा। इस दो तरह की भाषा परिपाटी रहने से हिंदी का गौरव है लाघव नहीं। ऐसी कविता के प्रयासी यदि भाषा के झगड़े में न पड़ करके एक काम करें तो उत्तम हो। हमारी भाषा में जो कविता है, वह पुराने ढंग की है। हमारे नवीन कविताप्रिय नवीन समय के अनुकूल, नवीन-नवीन भावों को लेकर, नवीन-नवीन विषयों पर कविता करें और यूरोप के विशद साहित्य का भाषा में अवतरण करें तो परम उपकार हो।'[22] उर्दू के घोर विरोधी होने के कारण उनका यह अनुमान भी विचारणीय है कि यदि 'खड़ीबोली की कविता की चेष्टा की जाए, तो फिर खड़ीबोली के स्थान में थोड़े दिनों में खाली उर्दू की कविता का प्रचार हो जाए। इस गद्य

में सरकारी पुस्तकों में फारसी शब्द घुस ही पड़े, उधर पद्य में भी फारसी भरी गई तो सहज ही झगड़ा निबटा।'[23]

ब्रजभाषा गोस्वामीजी की ही नहीं, उस युग के एक-से-एक उच्चकोटि के कवियों की भाषा थी। अरबी-फारसी तथा उर्दू शब्दावली से संबंधित उनका भय पूर्णतया अस्वाभाविक भी नहीं कहा जा सकता। ब्रिटिश सरकार ने सन् 1837 ई॰ में उर्दू को संयुक्त प्रांत के दफ्तरों की भाषा के रूप में स्थापित कर दिया था। खड़ीबोली का उर्दू की शब्दावली से पूरिपूर्ण रूप अदालती काम-काज की भाषा के रूप में सभी के द्वारा प्रायः स्वीकार कर लिया गया था और देशभाषा की पढ़ाई-लिखाई के भ्रमजाल में उर्दू पढ़नेवाले युवक सभ्य एवं सुशिक्षित की प्रतिष्ठा प्राप्त करके सामाजिक जीवन में नाम कमाने के लिए तत्पर होने लगे थे। ऐसे प्रतिकूल समय में शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित मुख्य बोली ब्रजभाषा वे साहित्य का विकास भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के पुनरुत्थान के लिए भी आवश्यक हो गया था। इसीलिए उन्होंने देशी भाषा की उन्नति के लिए इसकी व्यापक शिक्षा-व्यवस्था के महत्त्व से देशवासियों को अवगत कराने के लिए 'भाषा की विरक्ति' शीर्षक से 'कविवचन सुधा' में लिखा कि 'जब तक देशी भाषा में लोगों की अनुरक्ति और उसके पढ़ने-पढ़ाने की चाह नहीं होती भाषा की उन्नति दुस्साध्य है। हमारे यहाँ उच्च श्रेणी के लोग देशी भाषा रूपी रसाल फल को छोड़कर उर्दू बिंब फल खाने में बड़े कुशल हैं। यदि सब देशीय भाषा में अनुराग करें और अपनी सामर्थ्यभर सहायता दें तो कितनी हमारी भाषा की वृद्धि हो? कितने ये लोग यश के भागी बनें इसे कोई कह नहीं सकता, अतः विवेकीजनों से प्रार्थना है कि वह देशभाषा के हित का विचारकर ऐसा उपदेश करें जिससे उनकी मातृभूमि और मातृभाषा की उन्नति हो।'[24] हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक विस्तृत हिंदी परिवार में बोलियों तथा उनके साहित्य के कारण होनेवाली सहमति-असहमतिपूर्ण नोक-झोंक हिंदी के पराभव की नहीं, अपितु विजय की सूचक है। गोस्वामीजी की निम्नलिखित पंक्तियाँ सदैव स्मरणीय हैं–

पुकारो हिंदी! हिंदी! हिंदी
बोलो प्रेम से हिंदी! हिंदी! हिंदी
फिर जो से हिंदी! हिंदी! हिंदी
हिंदी-हिंदी करते रहो, जब लगि घट में प्रान
कबहुँ तो दीनदयाल के भनक परैगी कान।[25]

संदर्भ

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र, भारतेंदु समग्र, हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान, संपादक हेमंत शर्मा, हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, पृ॰ 228
2. वही, पृ॰ 230
3. राधाचरण गोस्वामी, षोडश हिंदी साहित्य सम्मेलन, वृंदावन, कार्य विवरण, प्रथम भाग, स्वागताध्यक्ष के रूप में गोस्वामीजी का भाषाण, पद्यांश, संपादक कृष्णचैतन्य गोस्वामी, विद्याविलास प्रेस, बनारस सिटी, संवत 1983 वि॰, पृ॰ 10
4. वही, पृ॰ 10
5. राधाचरण गोस्वामी, मित्रविलास, संपादक कन्हैयालाल, 11 दिसंबर 1982 ई॰, मित्र विलास यंत्रालय, लाहौर

6. राधाचरण गोस्वामी, सारसुधानिधि, 28 अगस्त 1982 ई॰, संपादक सदानंद मिश्र, सरस्वती यंत्रालय, कलकत्ता
7. वही, 28 अगस्त 1982 ई॰
8. राधाचरण गोस्वामी, मित्रविलास, संपादक कन्हैयालाल, 22 दिसंबर 1982 ई॰, मित्र विलास यंत्रालय, लाहौर
9. राधाचरण गोस्वामी, षोडश हिंदी साहित्य सम्मेलन, वृंदावन, कार्य विवरण, प्रथम भाग, स्वागताध्यक्ष के रूप में गोस्वामीजी का भाषाण, पद्यांश, संपादक कृष्णचैतन्य गोस्वामी, विद्याविलास प्रेस, बनारस सिटी, संवत 1983 वि॰, पृ॰ 10
10. राधारचरण गोस्वामी, कविवचन सुधा, संपादक भारतेंदु (पं॰ चिंतामणि) ला॰ प्रेस, बनारस, 27 अगस्त, 1877 ई॰
11. वही, 10 फरवरी 1879 ई॰
12. राधाचरण गोस्वामी, मित्रविलास, संपादक कन्हैयालाल, 27 मई, 1982 ई॰, मित्र विलास यंत्रालय, लाहौर
13. राधाचरण गोस्वामी, हिंदोस्थान, 2 अक्टूबर, सन् 1882 ई॰, संपादक राजारामपालसिंह, हनुमत्प्रेस, कालाकांकर (उ॰प्र॰)
14. भारतेंदु हरिश्चंद्र, भारतेंदु समग्र, हिंदी भाषा, संपादक हेमंत शर्मा, हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1987 ई॰, पृ॰ 1048
15. राधाचरण गोस्वामी, हिंदोस्थान, 11 नवंबर, सन् 1887 ई॰, संपादक राजा रामपालसिंह, हनुमत्प्रेस, कालाकांकर (उ॰प्र॰)
16. वही, 11 नवंबर, सन् 1887 ई॰
17. वही, 11 नवंबर, सन् 1887 ई॰
18. वही, 11 नवंबर, सन् 1887 ई॰
19. वही, 11 नवंबर, सन् 1887 ई॰
20. वही, 15 जनवरी, सन् 1887 ई॰
21. वही, 15 जनवरी, सन् 1887 ई॰
22. वही, 11 नवंबर, सन् 1887 ई॰
23. वही, 15 जनवरी, सन् 1887 ई॰
24. राधारचरण गोस्वामी, कविवचन सुधा, संपादक भारतेंदु (पं॰ चिंतामणि) ला॰ प्रेस, बनारस, 27 अगस्त, 1877 ई॰
25. वही, 18 अगस्त, 1883 ई॰

197/199 **डॉक्टर्स कालोनी**
सिविल लाइंस, बरेली (उ॰प्र॰)
मो॰ 9927373723

डॉ॰ छेदी साह के ग्रंथत्रय

प्रोफेसर आदित्य प्रचंडिया, डी॰लिट्॰

वर्ग विभक्त समाज में वही साहित्य जीवंत और स्थायी बनकर उभरता है, जो शासकवर्ग की ह्रासशील अभिरुचियों तथा उनके हितों का अतिक्रमण करते हुए जानता की आकांक्षाओं के साथ जुड़ता है। वही साहित्यकार भी हमारे लिए वरेण्य बनते हैं, जो जनआकांक्षाओं की संपति में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का साधारणजन के हित में विनियोग करते हैं। वैज्ञानिक और यथार्थ दृष्टि रचनाकारों के पास होने के कारण उनकी रचनाशीलता समर्थ और सक्षम सिद्ध होती है। अतएवं आश्वस्त होकर कहा जा सकता है कि रचनाकार अपने दायित्व का निर्वहन करते हुए यथार्थवादी कला की पताका फहराने में सफल होता है। प्रत्येक रचनाकार की अपनी रचनाप्रक्रिया होती है। इसीलिए निश्चित मानदंडों से उसे परखने और पहचानने का प्रयास होता रहता है। डॉ॰ छेदी साह सुधी साहित्यसाधक हैं जिनकी तीन कृतियाँ–'प्रगतिवादी कविता और भारतीय संदर्भ', 'नागार्जुन की कविता: मूल्यांकन और परिव्याप्ति' और 'हिंदी साहित्य सृजन और चिंतन' मेरे इस आलेख की केंद्रबिंदु हैं।

प्रगतिवाद ने हिंदी कविता की घोर व्यक्तिवाद, कल्पनातिरेक, भावोत्तेजना तथा अमिजात्य के मोह से बाहर लाकर महनीय योगदान दिया है। यदि ऐसा न होता तो हिंदी कविता अस्पष्टता, कुहासे तथा विषाद से आवृत्त होती। प्रगतिवाद का प्रदेय यही है कि व्यर्थ की अस्पष्टता, रहस्यमयता, विषाद तथा कुंठा से हटाकर कविता को पुन: सामाजिक दायित्व के प्रतिसजग करना। वस्तुत: प्रगतिवाद ने हिंदी काव्य को एक जीवंत चेतना प्रदान की है।[1] डॉ॰ छेदी साह की कृति 'प्रगतिवादी कविता और भारतीय संदर्भ' में प्रगतिवादी कविता के कथ्य और शिल्प की उत्तम प्रविधि के दिग्दर्शन होते हैं। यह पुस्तक नवीन तथ्योन्मीलन से अनुप्राणित है। लेखक ने उदाहरणों को अपने विश्लेषण में पिरोकर प्रगतिशील कविता की तथ्यात्मक गवेषणा की है। सन् 1940 से आगे प्राय: पचास वर्षों तक के प्रगतिवादी कवियों के व्यवस्था विरोधी तेवर की सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुति हुई है। यह अनुशीलन गरीबों की नित्य परिस्थितियों से लेकर वार्षिक-पंचवार्षिक विकास योजनाओं के राष्ट्रीय कार्यक्रमों में हुए घपलों और उनसे निष्पोषित सर्वहारावर्ग के दर्द के अंकन का सफल उपक्रम है। पुस्तक के प्रथम अध्याय में प्रगतिवाद: अर्थ व्याप्ति, प्रगतिवाद बनाम प्रगतिशीलता, समसामयिक अर्थ और अभिप्राय को परिभाषित करते हुए शोधक छेदी साह ने अर्थ-संदर्भ के रूप में उसकी स्पष्टरूपेण व्याख्या की है। द्वितीय अध्याय में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, फ्रायडवाद और मार्क्सवाद, प्रगतिशील लेखक संघ, प्रगतिवाद, साहित्यिक दृष्टिकोण, लेनिन का साहित्यिक दृष्टिकोण, श्रमिकों, पददलितों एवं निम्न जातियों के प्रति गहरी सहानुभूति का स्वर आदि विचार-बिंदुओं के आलोक में प्रगतिवादी काव्य और मार्क्सवाद का निरूपण हुआ

 ISSN 0975-735X

है। तृतीय अध्याय में सामाजिक संदर्भ के अंतर्गत निम्न जातियों, श्रमिकों एवं सर्वहारा के उद्‌बोधन-जागरण, धर्म और ईश्वर के विरोध, नारी-स्वतंत्रता, रूढ़िवादिता के विरोध आदि स्वातंत्रय पूर्व संदर्भों को उजागर किया गया है। शैक्षिक संदर्भ के अंतर्गत शिक्षा की उपेक्षा, आवश्यकता तथा अभाव के संदर्भ उपन्यस्त हुए हैं। आर्थिक संदर्भ के अंतर्गत भूख, बीमारी और इलाज, वस्त्र की आवश्यकता और उसके अभाव तथा अकालादि संदर्भों को चित्रित किया है। राजनीतिक संदर्भ के अंतर्गत केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शमशेर, त्रिलोचन और मुक्तिबोध के काव्यों में समसामयिक संदर्भों के क्रम में क्रमशः स्वतंत्रता-संग्राम, राष्ट्रभक्ति, पूँजीवादी, साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद की भर्त्सना तथा साम्यवादी जनाक्रांति के समवेत संदर्भ प्राप्त होते हैं।

स्वांतत्र्योत्तर प्रगतिवादी कवियों के काव्य में शैक्षिक और आर्थिक संदर्भ जैसे–चिकित्सा, भूख, इलाज, आर्थिक अभाव, वस्त्र, पैसा आदि को समसामयिक यथार्थता के धरातल पर चित्रित करने का प्रयास चौथे अध्याय में किया गया है। सामाजिक संदर्भ के अंतर्गत धर्म और अध्यात्म का विरोध, शोषक बनाम शोषित, अनुसूचित जनजाति तथा हरिजनों के उद्धार, सहिष्णुता और जातीय समता, तरुणों के जागरण और उद्‌बोधन, साहित्यधर्मिता तथा परम अभिव्यक्ति, नारी स्वतंत्रता आदि संदर्भों का भरपूर चित्रांकन प्राप्त होता है। इसी अध्याय में सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक संदर्भ अत्यंत ज्वलंत रूप में निरूपित हुए हैं। इस चरण की कविताओं में निरूपित राजनीतिक संदर्भों में इन कवियों ने चुनाव, कांग्रेस बनाम साम्यवाद, प्रशासन, सत्ता तथा व्यवस्था के खोखलेपन, निष्क्रियता, भ्रष्टता तथा अनाचार, चुनाव और दल-बदल आदि संदर्भों को गहरी समझ के साथ प्रस्तुत किया है। इस चरण में मुक्तिबोध सभी कवियों से ज्यादा राजनीतिक संदर्भ की गहनता में उतरकर झोंक सके हैं। पाँचवें तथा छठे अध्याय में समकालीन महत्त्वपूर्ण कवियों यथा–केदारनाथसिंह, धूमिल, सर्वेश्वर, लीलाघर जगूड़ी तथा शरद बिल्लोरे ने भी सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों को प्रस्तुत किया है। डॉ॰ छेदी साह का कहना है कि इन कवियों में सर्वाधिक प्रगतिवादी विचारधारा के सशक्त कवि के रूप में धूमिल उपस्थित होते हैं। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर तथा तपेश्वरनाथ के काव्य में समसामयिक, राजनीतिक संदर्भ के क्रम में क्रमशः निर्वाचन एवं दल-बदल, लोकतंत्र एवं एकतंत्र, विशिष्ट राजनीतिक नेताओं की प्रशंसा-आलोचना, राजनेताओं की सामान्य कूटनीतिज्ञता, सत्ता लोलुपता, नृशंसता एवं स्वार्थपरता है, तो दूसरी ओर छठे अध्याय में राजनीतिक संदर्भ के अंतर्गत राष्ट्रीय नेतावर्ग की उग्रता, हिंसकता, विदेशी राजनेता के भारत-आगमन पर इनके प्रदर्शन पर व्यंग्य, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रसंघ की कूटनीतिज्ञता, चुनाव के चोंचले, श्वेत और अश्वेत क्रांति, सैनिकों की राष्ट्रभक्ति आदि विभिन्न पहलुओं को निरूपित किया गया है।

डॉ॰ छेदी साह ने इस ग्रंथ के उपसंहार में लिखा है कि सर्जनात्मकता एवं अंतर्मुख चिंतन के आलोक में मुक्तिबोध प्रथम कोटि के कवि रूप में उपस्थित होते हैं। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शमशेर, त्रिलोचन आदि के संबंध में कहा जा सकता है कि समसामयिक राजनीतिक चेतना की एक-एक धड़कन सुनने और कविता में रूपांतरित करनेवाले इन कवियों के मुकाबले कोई दूसरा कवि नहीं है। इन बिंदुओं के आलोक में हम इन कवियों को युगधर्मी साहित्यकार मान सकते हैं। डॉ॰ तपरेश्वरनाथ इस ग्रंथ के विषय में लिखते हैं–'कुल मिलाकर यह समीक्षा

ग्रंथ विषय की मौलिकता, वस्तुपरकता, प्रतिपादन की व्यापकता, विश्लेषणक्षमता, परिश्रमनिष्ठा, नवीन तथ्योन्मीलन आदि विशेषताओं से उपेत होने के कारण हिंदी जगत के उच्चस्तरीय पाठकों, लेखकों, शोधार्थियों व विद्वानों के लिए समवेत रूप से अभिनंदनीय होगी–ऐसा विश्वास है।[2]' निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि समसामयिक राजनीतिक चेतना की एक-एक धड़कन को सुनने और इसे कविता में रूपातंरित करनेवाले केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर और रमाकांत श्रीवास्तव जैसे कवि अपनी पूरी क्षमता के साथ आज मुखर हो उठे हैं। समाज-राजनीतिक सजगता के साथ-साथ इन्होंने यथार्थवादिता को सबसे ऊँचे सोपान पर पहुँचाया है।

हिंदी जगत में नागार्जुन कवि और कथाकार दो रूपों में प्रसिद्ध हैं। साहित्य की इन दोनों विधाओं में उनकी समानगति हैं। इस बात का दो-टूक निर्णय कर पाना कठिन है कि कवि के रूप में उनकी उपलब्धियाँ बड़ी हैं अथवा उपन्यासकार के रूप में। उनके रचनाकार मानस ने आवश्यकता के अनुसार कभी कविता में और कभी उपन्यास में अपने को अभिव्यक्त किया है। उनकी रचनाधर्मिता को इन दोनों विधाओं में उसकी कुछ मूलभूत विशेषताओं के साथ पहचाना जा सकता है। नागार्जुन के रचनाकार-व्यक्तित्व की जो छाप उनकी कविता तथा उनके उपन्यासों को एक-दूसरे से जोड़ते हुए, एक ऐसी संश्लिष्ट रचनाशीलता की बानगी प्रस्तुत करती है जिसके आधार पर नागार्जुन की रचनाधर्मिता को उसकी समग्र मूल्यवत्ता के साथ परखा जा सकता है। नागार्जुन की कविता में सामाजिकता यथार्थ भावभूमि पर प्रकट हुए है। गाँव, कस्बे, नगर-महानगर, कल-कारखाने, खेत-खलिहान में सब सामाजिक यथार्थ के संदर्भ उनकी काव्य-यात्रा के मुख्य आयाम हैं।[3] डॉ॰ छेदी साह की द्वितीय कृति 'नागार्जुन की कविता: मूल्यांकन और परिव्याप्ति' में हिंदी साहित्य की जीवंत परंपरा और भारतीय जनता के साहसी अभियान के प्रतीक नागार्जुन की कविता यद्यपि प्रमुख रूप में समसामयिक समाज राजनीतिक संदर्भ की कविता है यथपि इनसे इतर संदर्भों की भी अनेक कविताएँ प्राप्त होती हैं। प्रभाकर माचवे लिखते हैं कि 'आलोचक कुछ भी कहते रहें, नागार्जुन को हमने सन् 1946 से अब तक बराबर इसी तरह घुमक्कड़ी करते, चिर अशांत और फिर भी अपनी कविता में खरी-खोटी सुनाते हुए, युग के अन्यायों-अत्याचारों के प्रति आक्रोश करते-चीखते हुए देखा है। नागार्जुन में कोई गुण है, जो उन्हें अन्य कवियों से विशिष्ट बनाता है। वह गुण सदा परिभाषित नहीं किया जा सकता है। वे रूढ़िभंजक हैं, विद्रोही हैं, लीक से हटकर हैं, ये बातें तो स्पष्ट हैं, परंतु वे एक अराजकवादी कवि हैं, जिनका किसी भी प्रतिष्ठान या संस्थाबद्ध व्यवस्था से समझौता संभव नहीं है। नागार्जुन की कविता ने एक जनकवि की रचना की भाँति, युगजागरण में भी योग निश्चित रूप से दिया है।'[4] इस ग्रंथ के प्रथम अध्याय में समसामयिकता के अर्थ और अभिप्राय को समझने का प्रयास हुआ है, तो दूसरे अध्याय में नागार्जुन की वैयक्तिक चेतना से प्रभावित कविताओं का विश्लेषण एवं विवेचन है। तीसरे अध्याय में नागार्जुन के प्रथमचरण (1935-1947) की समसामयिक सामाजिक-राजनीतिक कविताओं का विवेचन है, तो चौथे अध्याय में दूसरे चरण (1947-1962) तथा पाँचवें अध्याय में तीसरे चरण (1962-1981) की कविताओं का सांगोपांग विश्लेषण किया गया है। छठे अध्याय में कवि की वैसी कविताओं को वर्गीकृत एवं विश्लेषित किया गया है जिनका रचनाकाल स्पष्ट नहीं है।

डॉ॰ छेदी साह की मान्यता है कि 'सामाजिक राजनीतिक संदर्भों को निरूपित करनेवाली

 ISSN 0975-735X

नागार्जुन की कविताएँ संख्या में प्रभूत हैं। नागार्जुन समाज के विभिन्न संदर्भों को देखते हैं और अपनी कविता में उसका प्रलेखीकरण कर देते हैं। उनकी कविताएँ सामाजिक दस्तावेज बन जाती हैं। उनकी काव्य-रचना के प्रथम और द्वितीय चरण में सामाजिक संदर्भ को निरूपित करनेवाली कविताओं की प्रचुरता है। यहाँ वे द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की चेतना से युक्त होकर समाज वे वर्ग-वैषम्य को देखते हैं और वृत्ति, वस्त्र, शिक्षा, आवास, चिकित्सा आदि के संदर्भ की विषमता को उजागर करने हेतु अपना स्वर मुखर करते हैं। यहाँ वे सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों के आलोचक के रूप में उपस्थित होते हैं तथा सामाजिक भ्रष्टाचार की कटु आलोचना करते हैं। मूलतः वे समानता के आधार पर खुशहाल समाज के स्वरूप के समर्थक हैं। अपनी ऐसी रचनात्मकता में नागार्जुन दो बड़े काम करते हैं—एक ओर ये स्थितियों की समझ को उजागर करते हैं, दूसरी ओर वे सामाजिक विसंगतियों का रेखांकन करते हुए धारदार व्यंग्य करते हैं। उनकी ऐसी कविताएँ कला की दृष्टि से बहुत सपाट भी हो जाती हैं, पर सशक्त और दृढ़ वैचारिकता के कारण अधिक स्थलों पर उनका महत्त्व बना रहता है। यहाँ नागार्जुन के लिए रोजमर्रे की हर घटना कविता का विषय बन जाती है। जहाँ कहीं नागार्जुन ने कला में कसाव लाने की कोशिश की है, वहाँ उनकी कविता 'डाक्यूमेंटेशन' न होकर 'मोनूमेंट' बन गई है। ऐसी कविताओं से नागार्जुन आवृत्ति, उभार और समांतरता के कलात्मक कौशल को प्रयुक्त करते दीख पड़ते हैं।'[5] इसीलिए सुरेश सलिल कहते हैं कि लोकजीवन से संवेदना और उसे प्रकट करने के लिए रचना-रूप बटोरना नागार्जुन की प्रतिभा का रहस्य है। जैसे छायावादी युग में पंत, प्रसाद, निराला—ये तीन बड़े कवि हुए हैं, वैसे ही स्वाधीन भारत में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन—ये तीन बड़े कवि हुए।'[6] इसप्रकार यह कहा जा सकता है कि नागार्जुन की कविता का समग्र मूल्यांकन केवल उनकी प्रतिबद्ध कविताओं के आधार पर नहीं किया जा सकता, क्योंकि उनकी काव्य-संसार में प्रकृतिजीवी और उनके भोगे हुए निजी क्षणों का भी महत्त्व सुरक्षित है, जिसमें प्रेम की तीव्रता और सौंदर्य के प्रतिबिंब आए हैं। वस्तुतः नागार्जुन की कविता में समसामयिक, सामाजिक, राजनीति चेतना के स्पंदन से स्पंदित हैं।

साहित्य के प्रधान तीन कर्म हैं—एक चित्र प्रस्तुत करना, दूसरा आदर्श उपस्थित करना, तीसरा मन को प्रवृत्त करना। साहित्यकार समाज के जीवन मूल्यों को अपने अनुभवों से रँग कर सार्वजनीन बना देता है। साहित्यकार संवेदनशील होता है अस्तु, उसमें दायित्वबोध होता है। जो अपने दायित्व का प्रचुरता से निर्वाह करेगा, उसी में से साहित्य की सृष्टि होती चली जाएगी।[7] डॉ॰ छेदी साह की तीसरी कृति 'हिंदी साहित्यः सृजन और चिंतन' पैंतीस निबंधों-समीक्षाओं का संग्रह है। इस कृति में एक ओर 'सिद्धनाथ साहित्य की रूपरेखा', 'भक्तिकालः समन्वय की साधना', 'वर्तमान हिंदी साहित्य में सामाजिक विद्रूपता का निरूपण', 'नई कहानी की वर्तमान पृष्ठभूमि', 'स्वाधीनता संग्राम के समय कलमकारों की भूमिका', 'आधुनिक हिंदी कहानी में प्रगतिशीलता का निरूपण', 'प्रगतिवादी कविता में नारीवादी लेखन', 'रीतिकालीन कवियों की विशेषताएँ', 'हिंदी साहित्य में प्रेम कहानी का रूप-रंग', 'आधुनिक भारतीय समाज में दलित नारी चेतना', 'साहित्यकारों एवं सामाजिकों-कलाकारों के स्मरण का विविध संदर्भ', 'समकालीन प्रमुख कवियों का रचनाकर्म', 'प्रगतिवादी कविता में समसामयिक संदर्भों की अभिव्यक्ति', 'रामचरितमानस का पुनर्पाठ' नामक चौदह महनीय निबंध हैं, तो दूसरी ओर मैथिलीशरण गुप्त,

हजारीप्रसाद द्विवेदी, गोपालसिंह नेपाली, निराला, दिनकर, विनोदकुमार शुक्ल, रमाकांत श्रीवास्तव, नागार्जुन, शमशेर, श्यामबहादुर श्रीवास्तव 'श्याम', डॉ॰ सूरज 'मृदुल' नामक ग्यारह उल्लेखनीय रचनाकारों के अवदान पर लिखे गए इक्कीस आलेखों का समुच्चय है।[8] अपने अध्ययन, अनुशीलन और लेखन की सुदीर्घावधि में हृदयगत एवं बाह्य सापेक्ष मनोभावों को व्यक्त करने की दिशा में सतत साधनारत होकर समय-समय पर लेखक छेदी साह द्वारा लिखे गए ये साहित्यिक आलेख प्रौढ़ और सारगर्भित बन गए हैं।

समग्रतः डॉ॰ छेदी साह के महनीय ग्रंथत्रय साहित्यिक मानवीय मस्तिष्क के तेजस अंश की वाणी हैं। मानवीय क्षमता का निखरा हुआ सौंदर्यमय प्रतिफलन है। इसीलिए छेदी साह साहित्य-समाज के एक जागरूक प्रबुद्ध सदस्य प्रमाणित होते हैं।

संदर्भ

1. डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया, हिंदी कविता के प्रमुखवाद, तारामंडल अलीगढ़, सन् 1991, पृ॰ 82
2. डॉ॰ छेदी साह, प्रगतिवादी कविता और भारतीय संदर्भ, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2002, आवरण पृष्ठ द्वितीय
3. डॉ॰ आदित्य प्रंचडिया, आधुनिक हिंदी कविताः परंपरा और परिवेश, तारामंडल, अलीगढ़, सन् 1991, पृ॰ 102
4. डॉ॰ छेदी साह, नागार्जुन की कविताः मूल्यांकन और परिव्याप्ति, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2002, आवरण पृष्ठ प्रथम
5. नागार्जुन की कविताः मूल्यांकन और परिव्याप्ति, पृ॰ 246-47
6. वही, आवरण पृष्ठ द्वितीय
7. डॉ॰ आदित्य प्रंचडिया, साहित्य और संस्कृति का अंत संबंध, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, सन् 2015, पृ॰ 49
8. डॉ॰ छेदी साह, हिंदी साहित्यः सृजन और चिंतन, संजय प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2017, पृ॰ 11-304

'मंगलकलश'
394, **सर्वोदयनगर**
आगरा रोड
अलीगढ़-202001 **(उ॰प्र॰)**
मो॰ 07599355776

नरेंद्र कोहली का विचार-संग्रह

डॉ॰ कनुप्रिया प्रचंडिया

आज का रचनात्मक सृजन अपने विस्तृत फलक में जीवन और समाज से जुड़ाव-जड़ाव लिए हैं। हावर्ड फास्ट का कथन 'रचना का अपना कोई निजी, यथार्थ निरपेक्ष स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता, वह सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिंब होती है।'[1] भी उक्त स्थिति की ओर इंगित करता है, जहाँ जीवन समाज से अलग रचना के किसी अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। सामाजिक आशय से जुड़कर अनुभूति परिपुष्ट, परिपक्व होकर प्रामाणिकता अर्जित कर लेती है साथ ही वैचारिक सरोकारों का प्रतिफलन होती है। वह विचार की अनुवर्तिनी हो जाती है। अनुभव और विचार एक दूसरे में अंतर्प्रवेश पाकर ही स्थिति की सही समझ को विकसित करने में समर्थ हो सकते हैं और इसलिए साहित्य सृजन में विचार की भूमिका महनीय हो जाती है। वस्तुतः किसी सर्जना को प्रासंगिक और सार्थक आधार प्राप्त करना है जो वह सामाजिक सत्य के वैचारिक परिप्रेक्ष्य से संबंध होती हुई स्थिति के बदलाव, स्थिति से उबरने और नए पथ को तलाशने में विवश कर दे और इस दृष्टि से रचना में 'विचार' उपयोगी और अनिवार्य तत्व के रूप में प्रतिष्ठा पा जाता है।

मनीषी रचनाकार नरेंद्र कोहली ने ही हिंदी साहित्य में महाकाव्यात्मक उपन्यास का श्रीगणेश किया है। पौराणिक-ऐतिहासिक चरित्रों का चित्रांकन करते हुए आधुनिक समाज की समस्याओं एवं उनके समाधान को उकेरने में वह सक्षम सिद्ध हुए हैं। परंपरागत विचारधारा एवं चरित्र चित्रण से प्रभावित हुए बिना स्पष्ट एवं सुचिंतित तर्क के आग्रह पर मौलिक उद्‌भावनाओं के साथ रामकथा, महाभारत और कृष्ण कथाओं आदि वे भव्य और दिव्य महल खड़े करने का श्रेय नरेंद्र कोहली को जाता है। कोहली जी ने कृष्ण, युधिष्ठिर, कुंती, द्रोपदी, भीष्म, द्रोण आदि के मूल चरित्र का रूढ़िगत छवियों से पर्याप्त भिन्न-विश्लेषण किया है। वर्तमान समस्याओं को काल-प्रवाह के मझधार से निकालकर मानव-समाज की शाश्वत समस्याओं के रूप में उन पर सार्थक चिंतन, उपन्यास में दर्शन, अध्यात्मक एवं नीति का पठनीय एवं मनोग्रही समावेश साहित्य जगत में नरेंद्र कोहली को शीर्षस्थ बना देता है।

स्वातंत्रयोत्तर भारत में एक साथ पनप रहे मानवीय गुणों एवं अमानवीय क्षुद्रताओं, पूँजीवादी क्रूरता एवं जनवादी प्रतिबद्धता को नरेंद्र कोहली के साहित्य में आसानी से देखा जा सकता है। नरेंद्र कोहली की आरंभिक रचनाएँ। उनके निजी परिवेश एवं वैयक्तिक अनुभूतियों का दस्तावेज हैं, जबकि बाद की रचनाएँ व्यक्तिगत जीवन के साथ-साथ राष्ट्रीय जीवन के अनेकानेक विसंगत उपादानों से अद्‌भूत हुई हैं। अपनी पीड़ा के ताप में तपकर नरेंद्र कोहली सांसारिक पीड़ा एवं मानवीय छटपटाहट की अनुभूति प्राप्त करते हैं। उनकी संवेदना विस्तृत होती हैं और वे 'स्व'

से निकल 'सर्व' तक पहुँचते हैं। यह नरेंद्र कोहली का आत्मविस्तार है, जहाँ परिवार, समाज, राष्ट्र, स्वजन, सभी अपनी सीमाएँ लाँघ चुके होते हैं और सहज मानवीय संकेत अथवा अनुभूति शेष रहती है। यही वह स्थिति होती है, जहाँ रचनाकार अन्य सामान्य लोगों से हटकर विशेष की श्रेणी में आ जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिक्रिया और रागद्वेष उसकी पनी प्रतिक्रिया और रागद्वेष होता है। नरेंद्र को होली का लेखन राग अनुराग एवं करुणा की अभिव्यक्ति है, जो जीवन को समझने की दृष्टि देते हैं। साहित्य, समाज, धर्म, दर्शन तथा अर्थतंत्र की गुत्थियाँ उघाड़कर सामने रख देते हैं। परिणाम यह होता है कि चेतना-संपन्न, सजग व्यक्ति इनके प्रति शंकित हो उठता है। उसे समझ आ जाता है कि बाहर से दिखने में यह व्यवस्था जितनी ईमानदार नजर आती है, अंदर से उतनी ही भ्रष्ट है। उसकी भ्रष्टता का कारण भी यहाँ की जनता की अज्ञानता, अशिक्षा स्वयं है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था प्रत्येक नागरिक से राजनीतिक सूझबूझ की अपेक्षा करती है, जबकि यहाँ की अधिकांश जनता आज भी आधारभूत शिक्षा से विहीन है। ज्ञान-विज्ञान के उत्कर्षकाल में भी जनसामान्य का जीवन हृदय से संचालित होता है। यह हृदयगत भावनाओं की प्रबलता है कि शासन का छद्म उसे छद्म नहीं लगता, बल्कि वह उसके बाहरी क्रियाकलापों, कर्मकांडों एवं पाखंडों के जाल में ही उलझकर रह जाता है। ऐसी सम्मोहित जनता को नरेंद्र कोहली सत्य का आलोक देते हैं–'हाय! कलियग में राजधर्म का पालन करनेवाला कोई नहीं रहा। बनाता कोई नहीं, उजाड़ सब रहे हैं।[2]'

लोगों की इस संस्कारहीनता, कोरी सिद्धांतवादी अव्यावहारिक आदर्श को नरेंद्र कोहली व्यंग्यात्मक बाना पहनाते हैं। धर्म, दर्शन और संस्कृति के क्षेत्र में अपने-आपको विश्वगुरु माननेवाला यह देश वैज्ञानिक युग के आते-आते कंगाल ही नहीं, कंकाल शेष रह गया। कारण हैं हमारे नेता, जो कर्म से हीन, किंतु भाषा में प्रवीण हैं। फलतः 'प्राण जाएँ पर वचन न जाईं' के उद्घोष इस देश के प्राण आज वचनों में ही समाकर रह गए हैं–'सारा देश बस वचनों ही वचनों पर चल रहा है। भाषणों की खेती होती है, कारखानों में भाषण बनते हैं। सारा देश भाषण खाता है, भाषण पहनता-ओढ़ता है और भाषणों के मकान बनाकर रहता है। लबाड़ियों का देश है, भाषणों-वचनों आश्वासनों से काम चल जाता है।[3]'

स्वार्थसिद्धि के लिए ये नेता कुछ भी कर सकते हैं। राजधानी में बाढ़ नहीं आती तो ये चिंतित हो जाते हैं, क्योंकि 'बाढ़ नहीं आएग तो राहत कार्य कैसे होगा?[4]' नरेंद्र कोहली जानते हैं कि 'यह राजनीति है, इसका संबंध बाढ़ से न हो, राहत कार्य से अवश्य होगा। राहत कार्य बिना कोष से नहीं होता और कोष बिना राजनीतिज्ञ के नहीं आता। अपने देश में विद्वानों के लिए है–शब्दकोश। धन का कोष तो राजनीतिज्ञों के लिए ही है।'[5] परिणाम यह हुआ है कि देश गुच्छों से भरी लावारिस अंगूरों की बेल की तरह हो गया है, जिन्हें हर कोई झपट लेने को आतुर है। प्रतीक योजना द्वारा भर्त्सना के स्वर में नरेंद्र कोहली व्यंग्य करते हैं–'इस देश का वैधानिक उपभोक्ता या स्वामी कोई नहीं है। यह तो अंगूरों के बेल हैं। सारे मोहल्लेवालों वे मन में इसने पाप जगा रखा है। जो आता है, गुच्छा तोड़कर ले जाता है। कभी-कभी मोहल्ले के बाहर वाले भी हाथ मार जाते हैं।'[6] नरेंद्र कोहली ने 'राहुओं की बेकरी' में नेताओं-मंत्रियों द्वारा भाई-भतीजावाद को प्रश्रय देने और अपने नाते-रिश्तेदारों को येनकेन प्रकारेण सरकारी नौकरियों

में फिट करवाने का सपाट, किंतु चुटीला वर्णन किया है।

राजनीति को गाँधीजी ने सेवा बनाया था। मगर स्वाधीनता के बाद उनके अनुयायियों ने उसे काला धंधा बना लिया। गाँधीजी ने प्रजातांत्रिक प्रणाली का संचालन देश के दरिद्रतम व्यक्ति को सामने रखकर करने का आह्वान किया था, उनकी समस्त चिंतना के मूल में मानव एवं मानवाहित था, किंतु हमारे सुविधाभोगी नेताओं ने राजनीतिक का केंद्र स्वयं को बनाया। मानव उन्होंने केवल खुद को समझा, बाकी सब उनकी नजर में जानवर थे और हैं, जिनकी एकमात्र उपयोगिता उन्हें सत्ता में पहुँचाने के लिए वोट देने भर की है। खुद गाँधीजी उनके लिए स्वाधीनता और सत्ता दिलाने के उपकरण मात्र थे, जो काम निकलते ही धूरे में फेंक दिए गए। नरेंद्र कोहली के शब्दों में–'स्वतंत्रता जब ऊपर से टपकी तो लोगों ने गाँधी-टोपी फैलाकर उसे समेट लिया। महात्मा गाँधी चूँकि अपने नाम की टोपी नहीं पहनते थे, इसलिए उनके हिस्से कुछ नहीं आया।'[7]

मरणोपरांत तो गाँधीजी अपने अनुयायियों के लिए मूर्ति मात्र बनकर रह गए। गाँधीजी द्वारा प्रदत्त सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अस्तेय पंचशीलों की लोकप्रियता इतनी फैली की वे निर्यात होने लगे। सरकार ने जीवन का सत्य खोज निकाला तो जीवन, बिना बेईमानी और धोखेबाजी के नहीं चल सकता। छल-कपट और स्वार्थ ही जीवन का सत्य है और इस सत्य का व्यवहार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हो रहा है। अहिंसा का पालन इतने जोरों पर है कि गंभीर से गंभीर अपराधियों को सिर्फ इस भय से दंड नहीं दिया जाता कि कहीं हिंसा न हो जाए। अफसरों को खुली छूट है कि वे हिंसा से बचने के लिए किसी को दंड देने के स्थान पर उससे उपहार ले लें। वैसे आजकल धन और यौन नाम के दो ही ब्रह्म लोकप्रिय हुए हैं शेष ब्रह्म पुराने किले के पास रहने लगे हैं। अस्तेय का तो प्रश्न ही नहीं उठता, इस अराजक, भ्रष्ट, घूसखोर शासन में। अपराधी को दंड दिया ही नहीं जाता तो भला कोई अपराधी चोरी-वोरी क्यो करे? यहाँ तो दिन दहाड़े खुलेआम डकैतियाँ होती हैं और लोग अस्तेय जैसे शील के निर्वाह के संकट से बच जाते हैं। इस प्रकार संपूर्ण देश में फैली अराजकता, राजनेताओं की भ्रष्ट मानसिकता, क्षुद्र आचरण सभी कुछ पर नरेंद्र कोहली कबूतरों के माध्यम से अपनी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति देते हैं।

नरेंद्र कोहली की मान्यता है कि जीवनाभूति की पृष्ठभूमि पर जिस साहित्य-सृष्टि का निर्माण होता है, वह जीवन को प्रभावित करती रहती है और जीवन से प्रभावित होकर विशिष्ट साहित्य का सृजन होता है, तो साहित्य से प्रभावित जीवन को एक विशेष दिशा मिल जाती है। संवेदना रचना का मूल और जीवनमूल्य उसका परिणाम होता है। संवेदना के जीवनमूल्यों में बदलने तक की रचनात्मक यात्रा रचनाकार के मनोदेश में मौन-यात्रा है और है उसकी परिपक्व अनुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति। रचनाकार के लिए विचारधारा उसकी रचनात्मक ऊर्जा को उद्दीप्त करती है, व्यापक संदर्भों से जोड़ती है और जीवन-जगत की स्थितियों तथा अपनी सांस्कृतिक विरासत को समझने में सहायक होती है।

मानवीय जीजिविषा व्यक्ति के अनुरूप हर किसी को जीवन-शक्ति प्रदान करती है। मनुष्य-समाज को रचनाकारों के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए कि मारक परिस्थितियों से भी जीवन-संबल प्राप्त करते हुए वे मानवता को औदात्य प्रदान करने का स्तुल्य प्रयास करते हैं। नरेंद्र कोहली के आत्मकथ्य की यह दारुणकथा किसी भी सहृदय व्यक्ति की चेतना के मर्म को

झकझोरने में सक्षम है। ऐसे क्षणों में ही सहृदय पाठक लेखकीय सह-अनुभूति द्वारा संबल प्राप्त करता है और जीवन को नष्ट होने से बचाने का प्रयत्न करता है। करुणा की यह अजस्रधारा रचनाकारों के ही सामर्थ्य की बात है। विषय परिवेश के प्रति परिहास, विनोद अथवा तिरस्कार की अपेक्षा नरेंद्र कोहली की पीड़ित दृष्टि सामाजिक, राजनीतिक विद्रूपताओं की तह में जाती है। पीड़ित आक्रोश की वक्रता ने जो दृष्टि दी, उसने अपने व्यक्तिगत अनुभवों से बाहर निकल राजनीतिक, सामाजिक असंगतियों को भी देखा और अपने पीड़ित आक्रोश को व्यक्त करने के लिए नरेंद्र कोहली का सृजन सतत चलता रहा है। वैयक्तिक पीड़ा वे सोपानों को पार करते हुए सामाजिक दृष्टि का निर्माण करने हेतु पहले अपने ही घावों की शल्य क्रिया करनी पड़ती है, क्योंकि स्वयं को स्वच्छ बनाए बिना दूसरों का उपचार संभव नहीं। नरेंद्र कोहली इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए कहते हैं–'जीवन की अनेक विभीषिकाओं का साक्षात्कार हुआ। उसने मन को जो पीड़ा दी, उसकी असहायता ने मेरे व्यक्तित्व की वक्रता को पुनः मुखरित कर दिया और स्वयं को हल्का करने के लिए व्यक्तिगत अनुभवों पर मैंने कटाक्ष किए। अपनी पीड़ा का परिहास किया। अपने घावों को छील-छीलकर स्वयं को रुलाया।'[8] कोहली ने इन अनुभूतियों का विस्तार किया तथा सामाजिकों की अनुभूति को समझने का सामर्थ्य प्राप्त किया। अपने अनुभवों का दान समाज को दिया, समाज के अनुभवों को आत्मसात किया और फिर उन्हें व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति के रूप में समाज-जीवन को ही अर्पित करने में नरेंद्र कोहली संलग्न हैं। नरेंद्र कोहली कहते हैं कि 'अगर अधिक सैद्धांतिक हो तो कहूँगा कि बिंब जिसके मन में उठना है, वह कविता लिखता है, दृश्य उभरता है तो नाटक लिखता है, विचार उठता है तो निबंध लिखता है।'[9]

आज भारत का सामाजिक परिवेश बहुत अधिक दूषित है। पुरानी मान्यताएँ टूट रही हैं और नई बन नहीं पा रही हैं। प्राचीन और अर्वाचीन के मध्य टकराव है, संघर्ष है। आर्थिक दुरावस्था इस टूटन को और भी बढ़ावा दे रही है। नैतिकता को झुठला दिया गया है और चरित्रहीनता तथा व्यभिचार बढ़ रहा है। नैतिकता की आड़ में आदर्शों की दुहाई देकर घोर अनैतिक और निकृष्ट कार्य किए जा रहे हैं। ईमानदारी और सच्चरित्र आज निरर्थक शब्द हो गए हैं। साथ ही, चारों ओर एक विचित्र-सी ऊब, उदासीनता और तटस्थता का वातावरण बन गया है। एक आत्मघाती संवेदनहीनता और सुषुप्ति घर करती जा रही है। नरेंद्र कोहली महानता के नाम पर अनावश्यक रूप से दार्शनिकता बघारने और दार्शनिकता के नाम पर रचना को बोझिल बना पाठकों को भी बोर करने के भी खिलाफ हैं। साहित्य में सामाजिक यथार्थ और सामाजिक संबंधों की समग्रता, जनता के सामाजिक संघर्ष और इतिहास प्रक्रिया की दिशा का चित्रण कर रचनाकार नरेंद्र कोहली जनता का यथार्थ बोध विकसित करते हैं, जिससे जनता की चेतना तीव्र और जाग्रत होती है। चेतना के जागरण का अर्थ है अपनी सामाजिकता और मानवीयता का बोध और जाग्रत सामाजिक चेतना ही आगामी परिवर्तनकारी चेतना बनती है। नरेंद्र कोहली की रचनाएँ प्रगतिशीलता की सार्थकता और उपयोगिता सिद्ध करके जन-जन के अभ्युदय का पथ प्रशस्त करती हैं।

संदर्भ

1. Howard Fiast, Literature and Reality, Page 88
2. आधुनिकता की पीड़ा, लोककथा में गतिरोध, पृ॰ 24
3. संतों की बिल्लयाँ और चूजे, लोककथा में गतिरोध, पृ॰ 15

4. त्रासदियाँ, त्रासदियाँ राष्ट्रप्रेम के दु:ख की, पृ॰ 54
5. वही, पृ॰ 97
6. जगाने का अपराध, अंगूरी की बेल, पृ॰ 97
7. कबूतर, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य-रचनाएँ, पृ॰ 91
8. अपनी ओर से, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, पृ॰ 7
9. बात तो चुभेगी, सं॰ सुभाष नाहर, नवंबर-दिसंबर 1981, डॉ॰ नरेंद्र कोहली से प्रेम जनमेजय और राजेशकुमार की बातचीत, पृ॰ 10

'मंगलकलश'
394, **सर्वोदयनगर**
आगरा रोड
अलीगढ़-202001 **(उ॰प्र॰)**
मो॰ 07599355776

निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी-विमर्श

श्वेता अग्रवाल

'आदिवासी साहित्य' को पढ़ने से पूर्व जिन पर यह साहित्य लिखा गया है या जो इस साहित्य की नींव हैं, उनके विषय में जानना आवश्यक है और रमणिका गुप्ता बहुत सुंदर रूप में आदिवासियों के जीवन पर प्रकाश डालती हुई लिखती हैं–'आदिवासियों की गति में नृत्य है–वाणी में गीत। जब वह चलता है, तो थिरकता है और जब बोलता है, तो गीत के स्वर फूटते हैं। वह अकेला नहीं, समूह में रहता है–समूह में सोचता है, समूह में जीता है। वह प्रकृति से संवाद करता चलता है। प्रकृति का प्रकोप भी सहता रहा है पर सदैव उसका मित्र बना रहता है, प्रतिशोध की भावना से भरकर वह प्रकृति को नष्ट नहीं करता।'[1] इससे स्पष्ट होता है कि आदिवासी अपनी संस्कृति से अत्यंत प्रेम करते हैं और उनका जीवन प्रकृति और संगीत है।

'आदिवासी' शब्द की व्युत्पत्ति

'आदिवासी' शब्द की व्युत्पत्ति 'आदि' और 'वासी' शब्दों से मिलकर हुई है। 'आदि' शब्द का अर्थ 'प्रारंभ' तथा 'वासी' शब्द का अर्थ 'निवास करनेवाले' अर्थात् आदिवासी शब्द का अर्थ 'प्रारंभ से निवास करनेवाले' है।[2]

'आदिवासी' शब्द का स्वरूप

अनेक कोशों में और विद्वानों द्वारा इसके स्वरूप निम्न रूपों में स्पष्ट किया गया है–

1. 'मानक हिंदी शब्दकोश' के अनुसार : 'किसी स्थान पर रहनेवाले वहाँ के मूलनिवासी याने आदिवासी हैं।'[3]

2. 'भारतीय संस्कृति कोश' के अनुसार : 'नागर संस्कृति से दूर रहने वाले मूलनिवासी एवं आर्य और द्रविड़ इन दो मानव समाज को छोड़कर उनसे भी पूर्व भारत या अन्य विदेश से भारत के पर्वत-पहाड़ियों, जंगल में रहनेवाली वन्य जाति को 'आदिवासी' कहा जाता है।'[4]

3. 'एम॰एल॰ गुप्ता और डी॰डी॰ शर्मा' के अनुसार : 'गोत्रा का एक विस्तृत स्वरूप जनजाति है। यह खानाबदोश जत्थे, झुंड, गोत्रा, भ्रातृदल एवं आधे से अधिक विस्तृत एवं संगठित होती है। जनजातियों को आदिम समाज, आदिवासी, वन्य जाति, गिरिजन एवं अनुसूचित जनजाति आदि नामों से पुकारा जाता है।'[5]

उपर्युक्त विवेचनानुसार कहा जा सकता है कि आदिवासी समाज या एक जनजाति ऐसा क्षेत्रीय मानव-समूह है, जिसकी अपनी सामान्य संस्कृति, भाषा, राजनीतिक संगठन और व्यवसाय है।

वर्तमान में हिंदी-साहित्य जगत में आदिवासी लेखक-लेखिकाओं की पहचान बहुत सीमा तक बन चुकी है और संभावनाओं के नए मार्ग भी खुले हैं। यह एक सुखद पहल है। 'कविता'

 ISSN 0975-735X

के क्षेत्र में भी अनेक कवि लिख रहे हैं। विगत दो दशकों से आदिवासी और गैर-आदिवासी श्रेणी के कवियों द्वारा आदिवासी-संस्कृति को संरक्षित करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

आज महिला-कवि भी अपने स्वरों से आदिवासी साहित्य को अलग मुकाम पर ले जाने का अभूतपूर्व कार्य कर रही हैं और इन्हीं में से आदिवासी वर्ग से हिंदी-कविता में झारखंड का आदिवासी नाम जो सर्वलोकप्रिय रहा है, वह है 'निर्मला पुतुल'। इन्होंने 'नगाड़े की तरह बजे शब्द', 'अपने घर की तलाश में' और 'बेघर सपने' काव्य-संग्रहों में अस्मिता, कुंठा व संत्रास, शोषण, समाप्त होती संस्कृति, भ्रष्ट सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था आदि अनेक ऐसे स्वरों के माध्यम से प्रभावित होते आदिवासी-जीवन की अनेक झलकियाँ प्रस्तुत की हैं, जिससे आदिवासी समाज को अलग पहचान मिली है।

निर्मला पुतुल आदिवासी समाज के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए सदैव कार्यरत रही हैं और अपने समाज की स्त्री के खोते अस्तित्व के प्रति चिंतित भी हैं। इनकी कविताओं में स्त्री की पीड़ा व उसके स्वर कुछ अलग पर प्रत्येक स्त्री से मिलते-जुलते हैं, क्योंकि प्रत्येक स्त्री की पीड़ा, सोच व स्थिति किसी न किसी रूप में समान है, बस अभिव्यक्ति का अंदाज अलग है। वह 'अपने घर की तलाश' कविता में लिखती हैं–

धरती के इस छोर से उस छोर तक
मुट्ठी भर सवाल लिए मैं
दौड़ती-हाँफती-भागती
तलाश रही हूँ, सदियों से निरंतर
अपनी जमीन, अपना घर
अपने होने का अर्थ।'[6]

वर्तमान में चाहे स्त्री जितनी भी प्रगति कर ले फिर भी वास्तविकता यही है कि स्त्री, हर वर्ग, वर्ण और समुदाय में विषमता से पीड़ित है। निर्मला पुतुल ने यह भेदभाव अपने समाज में कम ही देखा है अपेक्षाकृत अन्य समुदायों की तुलना में, परंतु वर्तमान स्थिति में आदिवासी समाज में स्त्री का मान-सम्मान सब हाशिए पर है और इसी असमानता का विरोध करती 'तुम्हें आपत्ति है' में कवयित्री लिखती हैं–

करूँ कैसे नहीं विरोध
विरोध की पूरी गुंजाइश के बावजूद?
कैसे धीरे से रखूँ वह बात
जो धीरे रखने की
माँग नहीं करता?[7]

आज के समय में मानवीयसमाज का चेहरा पूर्णतया बदल गया है। मानवीय संवेदनाएँ समाप्त होती जा रही हैं। इसका प्रभाव आदिवासी समाज पर भी पड़ रहा है, जिसका वर्णन 'मेरा क्या कसूर है' में कवयित्री करती है–

क्या है गलती आखिर मेरी
जो छोड़ना चाहते हो मुझे?
जानती हूँ हाट-बाजार जा जाकर बदल गया है

तुम्हारा मन
शहर की हवा लग गई है तुम्हें।[8]

उक्त पंक्तियाँ बढ़ते पारिवारिक वैमनस्य को स्पष्ट करती हैं।

यह समय स्वार्थसिद्धि का है। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए व्यक्ति किसी भी सीमा को पार करने में संकोच नहीं करता। आज की राजनीति की यही सच्चाई है। इसी स्वार्थतंत्र की राजनीति से शोषित आदिवासी समाज की कठिनाइयों की ओर ध्यान आकृष्ट करने हेतु 'ढेपचा के बाबू' में लिखती हैं–

बड़ी मुश्किल से लाल कार्ड
बनवाई थी
पर कोई फायदा नहीं दिखता उसका
कभी-कभार गर कुछ आता भी है
तो उधर प्रधान ही छाँक लेता है
ऊपर-ऊपर।[9]

यह विडंबना ही है कि इस आजाद देश में आज भी लोग रोटी, कपड़ा और मकान के लिए मोहताज हैं। यह पीड़ा, बेचैनी में तब्दील हो जब प्रश्न बनती है तो वह व्यक्ति को सोचने की क्षमता भी दे ही देती है और इसी को 'प्रश्न' कविता में पूछती हैं–

और उस आदमी को
कैसे मिल गया इंदिरा आवास
जिसके पाँव के जूते
मेरे पूरे बदन के कपड़े से
चार गुणा कीमती हैं?[10]

यह हमारे भ्रष्ट राजतंत्र की कुव्यवस्था का घिनौना चेहरा है, जिससे आम जनता त्रस्त है। अमीर और अमीर तथा गरीब और गरीब हो रहा है। वह एक समय का भोजन भी प्राप्त करने में असमर्थ है। कवयित्री आदिवासी समाज के साथ प्रत्येक उस शोषित के लिए कविता के माध्यम से 'बाहामुनी' में लिखती हैं कि–

तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर
भरते हैं पेट हजारों
पर हजारों पत्तल
भर नहीं पाते पेट तुम्हारा।[11]

जहाँ एक ओर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संकट तो मँडरा ही रहा है। आदिवासी संस्कृति पर भी समाप्त होने का खतरा मँडरा रहा है। कवयित्री अपनी समाप्त हो रही संस्कृति के प्रति चिंतित 'संताल परगना' में लिखती हैं–

संताल परगना
अब नहीं रह गया संताल परगना
बहुत कम बचे रह गए हैं
अपनी भाषा और वेशभूषा में यहाँ के लोग

 ISSN 0975-735X

सब कुछ गड्डमड्ड हो गया है इन दिनों
उखड़ गए हैं बड़े-बड़े पुराने पेड़।[12]

वर्तमान समाज में अराजकता का वातावरण है और इसी पर 'झारखंड का सच' में लिखती हैं–

यहाँ चारों तरफ लूट मची है
जो जहाँ बैठा है, वहीं से लूट रहा है।[13]

और, आगे अपने क्षेत्र-विशेष की बदहाली पर चिंता व निराशा व्यक्त करती लिखती हैं–

कितनी शर्मनाक स्थिति है कि जिस झारखंड के
खनिज और प्राकृतिक संपदा से पूरा देश चमक रहा है
उसी के मानचित्र पर धूल की मोटी परतें जम चुकी हैं
जिससे उसकी पहचान धूमिल होती जा रही है।[14]

कवयित्री अपने वर्ग के लोगों को स्वार्थ-लोभ के कारण हितैषी बने सामंतों से आगाह करते हुए एकजुट होने की सलाह 'एक खुला पत्रा : अपने तमाम सहकर्मियों के नाम' कविता के माध्यम से करती हैं–

देखो शब्दों की ओट में छिपे
उनके सामंती चेहरे
और मिलकर तलाशो
कहाँ तक गई है
उनके इरादे की जड़ें ...?[15]

और अंत में व्यवस्था के प्रति अपने क्रोध को पूरे विरोध के साथ तीखे तेवरों के साथ 'उतनी ही जनमेगी निर्मला पुतुल' के माध्यम से व्यक्त करती लिखती हैं–

यह जो लोग हैं
इस छोर से उस छोर तक
तुम्हारी व्यवस्था में
उसमें जल रही हूँ मैं
और रह-रहकर भड़क रही है
मेरे भीतर आग .....
इसलिए चुप नहीं रहूँगी अब
उगलूँगी तुम्हारे विरुद्ध आग
तुम मना करोगे जितना
उतनी जोर से चीखूँगी मैं।[16]

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि निर्मला पुतुल आदिवासी समाज को विशेषत: आदिवासी-शोषित नारी को उसके अधिकारों के प्रति सजग कर आत्मसम्मान के साथ जीने के लिए तो प्रेरित करती ही हैं, साथ ही उन्होंने वर्तमान समाज में व्याप्त कुरीतियों को भी अपनी कविताओं में स्थान देकर समाजोत्थान का अभूतपूर्व कार्य किया है।

निष्कर्षत: निर्मला पुतुल का योगदान सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि उनकी लेखन-शैली केवल एक वर्ग-विशेष को ही नहीं अपितु समाज के प्रत्येक वर्ग को जागरूक करने के साथ आंदोलित करने में भी समर्थ है और निर्मला पुतुल की कविता 'मैं चाहती हूँ' उनके जीवन के ध्येय को सार्थकता प्रदान करती है–

चाहती हूँ मैं
नगाड़े की तरह बजें मेरे शब्द
और निकल पड़ें लोग
अपने-अपने घरों से सड़कों पर।[17]

संदर्भ

1. सं॰ रमणिका गुप्ता, आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली, आवृत्ति 2009, पृ॰ 8
2. सं॰ शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री, मानक विशाल हिंदी शब्दकोश, अशोक प्रकाशन, 2615, नई सड़क, दिल्ली, पृ॰ 72
3. सं॰ शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री, मानक हिंदी शब्दकोश, पृ॰ 72
4. सं॰ महादेव शास्त्री जोशी, भारतीय संस्कृति कोश, खंड-1, प्रोफीशिएट पब्लिशिंग हाउस, संपदा, शनिवार पीठ, पुणे, महाराष्ट्र, पृ॰ 428
5. प्रो॰ एम॰एस॰ गुप्ता व डॉ॰ डी॰डी॰ शर्मा, समाजशास्त्र, साहित्य भवन, संजय नगर, पशुपति कॉलोनी, आगरा (उ॰प्र॰), सं॰ 2016, पृ॰ 478
6. निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते रहे शब्द, रूपांतर-अशोक सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, पहला सजिल्द संस्करण 2005, पृ॰ 30
7. निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में, अनुवाद-रमणिका फाउंडेशन, ए-221, ग्राउंड फ्लोर, डिफेंस कालोनी, दिल्ली, संस्करण 2004, पृ॰ 105
8. निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में, पृ॰ 37-38
9. निर्मला पुतुल अपने घर की तलाश में, पृ॰ 52
10. निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में, पृ॰ 99
11. निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में, पृ॰ 9
12. निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में, पृ॰ 24
13. निर्मला पुतुल, बेघर सपने, आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, एससीएफ 267, सेक्टर-16, पंचकूला, (हरियाणा), प्रथम संस्करण 2014, पृ॰ 85
14. निर्मला पुतुल : बेघर सपने, पृ॰ 85
15. निर्मला पुतुल : अपने घर की तलाश में, पृ॰ 64
16. निर्मला पुतुल : अपने घर की तलाश में, पृ॰ 100
17. निर्मला पुतुल : अपने घर की तलाश में, पृ॰ 102

पुत्री श्री एम॰के॰ अग्रवाल
नीसु हैरिटेज ग्रीनस, 20-**जी, मैंगलोर टाउन**
पो॰ तानशीपुर, रुड़की 247 656 **(उत्तराखंड)**

'गोडसे/गांधीकॉम' नाटक में गांधी के ब्रह्मचर्य-संबंधी सिद्धांत

प्रो॰ डॉ॰ सदानंद भोसले
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे 07

अपनी मृत्यु के पश्चात् भी गांधी हम सब भारतीय लोगों में रचे-बसे दिखाई देते हैं। शायद गांधी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर दुनिया में सबसे अधिक लिखा गया है और लिखा जा रहा है। असगर वजाहत ने भी प्रस्तुत नाटक के माध्यम से गांधी के कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यों को तथा विचारों को काल्पनिक वस्तु के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है। गांधी के विचारों और व्यक्तित्व ने किस तरह से तमाम भारतीयों को प्रभावित किया है, इसे स्पष्ट करते हुए नाटककार ने भूमिका में लिखा है–'अपनी अकाल मृत्यु की आधी शताब्दी से अधिक समय बीत जाने के बाद भी महात्मा (मोहनदास करमचंद गांधी) भारतीय समाज में एक ऐसी चट्टान की तरह खड़े हैं, जिससे टकराए बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता। गांधी की प्रासंगिकता समाप्त नहीं हुई है; बल्कि कहना चाहिए कि आधी शताब्दी बाद वे अधिक प्रासंगिक दिखाई पड़ने लगे हैं। गांधी के पक्ष और विपक्ष में जितना लिखा गया है, उतना शायद ही किसी आधुनिक भारतीय के बारे में लिखा गया हो। गांधी की अलग-अलग ढंग से व्याख्या करता था उनका पुनः पाठ इसलिए संभव है कि गांधी अपनी महानता के बावजूद कुछ बहुत 'छोटे और टुच्चे' विश्वासों, विचारों से अपने को मुक्त न करा सके थे। उनके विचारों तथा व्यक्तित्व में अपार अंतर्विरोध भरे पड़े हैं।'

प्रस्तुत नाटक के माध्यम से ऐसे ही अंतर्विरोधों को तथा गांधी के अपने हठ को प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। नाटक में प्रस्तुत विषयों में प्रमुख हैं–गांधी के स्त्री-पुरुष संबंध तथा ब्रह्मचर्य के सिद्धांत, धर्म तथा जाति संबंधी धरना, गांधी का संवाद के रास्ते चलने पर बल, कर्म तथा देशसेवा का संदेश, राजनीतिक व्यंग्य, प्रयोग आश्रम की संकल्पना एवं स्वराज के प्रयोग, सत्य, अहिंसा पर विश्वास, सामान्य और उदारता का संदेश। जिस तरह से गांधी के सामान्य तथा विशेष व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है, ठीक उसी भाँति नाथूराम गोडसे की हिंदू कट्टरता वाली छवि को भी प्रभावी ढंग से नाटककार ने चित्रित किया है। विचारों का विचारों द्वारा ही उत्तर दिया जाता है तथा जीवन में विवेक को अनन्य स्थान देना चाहिए। इसे भी गांधी और गोडसे के संवादों के माध्यम से समझाने का सफल प्रयास नाटककार ने किया है।

गांधी जी जिस तरह से हठ को लेकर प्रसिद्ध हैं। उसी तरह से उन्होंने आदर्श ब्रह्मचर्य संबंधी

जो विचार-प्रयोग किए हैं, उससे भी वे उतने ही चर्चित हैं। प्रस्तुत नाटक में असगर वजाहत ने गांधी के ब्रह्मचर्य-संबंधी विचारों को अपनी रचना द्वारा वाणी देकर पाठक एवं दर्शकों को सोचने के लिए बाध्य किया है। गांधी जीवन में ब्रह्मचर्य को महत्त्व देते हुए दर्शाए गए हैं तथा अपने अनुयायियों पर इन विचारों को थोपते हुए भी दर्शाए गए हैं। काम को लेकर उनके विचार और आदर्श वैवाहिक जीवन संबंधी ब्रह्मचर्य का आग्रह भी गांधी करते हुए दिखाए गए हैं। वैसे देखा जाए तो गांधी के ब्रह्मचर्य-संबंधी प्रयोगों को लेकर खूब सकारात्मक, नकारात्मक विमर्श हुए हैं, हो रहे हैं और आगे भी होंगे। गांधी का व्यक्तित्व ही ऐसा सुलझा और उलझा हुआ है कि उन्हें लेकर प्रत्येक पीढ़ी और युग में विमर्श होते रहेंगे। यही उनके व्यक्तित्व की महानता को सिद्ध करता है। गांधी के ब्रह्मचर्य-संबंधी विचारों को नाटककार ने प्रमुख रूप से अभिव्यक्ति दी है। इस संदर्भ में वे नाटक की भूमिका में लिखते हैं–'नाटक का एक पक्ष गांधी के ब्रह्मचर्य-संबंधी अपने इन विचारों के लिए गांधी की कड़ी आलोचना की जाती है। नाटक में सुषमा और नवीन इस दिशा में कथानक को आगे बढ़ाते हैं। गांधी को जब पता चलता है कि सुषमा नवीन से प्रेम करती है तो वे उसे 'प्रयोग आश्रम' से निकाल देना चाहते हैं। सुषमा के माफी माँग लेने के बाद उसे सशर्त रहने की अनुमति देते हैं, लेकिन सुषमा और नवीन का प्रेम कम नहीं होता। गांधी आक्रामक रवैया अपनाते हैं। इसी संदर्भ में वे एक रात कस्तूरबा को सपने में देखते हैं और पुनर्विचार करने की जरूरत महसूस होती है। नाटक के गांधी ब्रह्मचर्य, विवाह, स्त्री-पुरुष संबंधों के संदर्भ में अपने विचारों में ढील देते दिखाई पड़ते हैं।'

नाटक में सुषमा गांधी की अंधभक्त है। बचपन से ही उसकी इच्छा थी कि गांधीजी के साथ कार्य करे आदि। जब उसे इस तरह का मौका मिल जाता है, तब वह खुश है, किंतु उसकी परेशानी यह है कि जिसे वह चाहती है, वह यानि नवीन दिल्ली कॉलेज में अँग्रेजी का प्राध्यापक है। उसे गांधी साथ रहने की इजाजत नहीं देते हैं। सुषमा गांधी के साथ 'प्रयोग आश्रम' में चली आती है। 'प्रयोग आश्रम' में गांधी आदर्श ब्रह्मचर्य का संदेश भी सभी को देते हैं। अब सुषमा और नवीन का मिलना बंद हो जाता है बावजूद इसके नवीन सुषमा को पत्र लिखता रहता है। एक दिन गांधी को डाक में रंगीन लिफाफे में पत्र दिखाई पड़ता है, उसे पढ़ते हैं– 'सुषमा शर्मा, केयर ऑफ महात्मा गांधी, राँची बिहार से आया हुआ एक लिफाफा खोलते हैं। लाल रंग के कागज का खत है।' मेरी जान से प्यारी सुषमा, तुम्हें हजारों प्यार तुम्हारे चले जाने के बाद कई दिन तक तो मैं होश में ही नहीं रहा...अब लगता है कि यह सहन नहीं कर पाऊँगा। माफ करना मुझे, मुझे लगता है कि हमारे प्रेम के बीच महात्मा जी आ गए हैं।' (पृ॰ 36) पत्र पढ़ने के बाद गांधी को इस बात का अहसास होता है कि दोनों का प्रेम अब भी शुरू है। उनके 'प्रयोग आश्रम' में ब्रह्मचर्य के आदर्शों को उनके ही अनुयायी कुचल रहे हैं। गांधी की दृष्टि से सुषमाने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया है, परिणामत: उसे यहाँ रहने का कोई भी नैतिक अधिकार नहीं है। गांधी उसे कहते हैं–'तुमने आश्रम का अनुशासन भंग किया है–लगता है ये मेरे ही पाप हैं, जो मेरे सामने आ रहे हैं। यहाँ ब्रह्मचर्य पालन करने के लिए भगीरथ प्रयास किए जा रहे हैं। यहाँ गंदगी, सड़न, कुविचार, काम के लिए लालसा, मैं इतनी गंदगी में नहीं जी सकता, न मैं दूसरों को इस नरक में रखना चाहता हूँ। तुमने मर्यादा को भंग किया है, तुम्हें प्रायश्चित करना पड़ेगा' (पृ॰ 36, 37) गांधी ब्रह्मचर्य के अपने प्रयोग में यह भूल गए हैं कि उनके अनुयायियों की भी अपनी निजी भावनाएँ हैं।

 ISSN 0975-735X

वे हर बात को थोपना चाहते हैं। अपने कई आदर्शों के प्रयोग को लागू करने में उन्होंने दूसरों के मन पर क्या गुजरता होगा शायद इसका ध्यान नहीं रखा है। इसलिए गांधी का ऐसा व्यवहार उन पर आलोचना का एक मौका प्रदान करता है।

सुषमा बापू की अंधभक्त है और नवीन को दिलोजान से चाहती है। उसके मन की व्यथा को बापू नहीं समझ पा रहे हैं, किंतु वह ऐसा आरोप उन पर नहीं करती है। नवीन भी बापू के ब्रह्मचर्य सिद्धांत को नहीं समझ पा रहे हैं। उसके सामने यह सवाल है कि दुनिया में आज तक जिन लोगों ने प्यार किया है क्या उन सबके संबंध वासना, विकार और पाप थे? गांधी नवीन और सुषमा के प्रेमभाव पूर्ण बातों को सुनते हैं। उनकी दृष्टि से सुषमा अपना संयम खो रही है। ब्रह्मचर्य पालन उससे नहीं हो पाएगा। वे फिर उसे समझाते हुए कहते हैं–'मैं समझ सकता हूँ तुझे, सुषमा तू आश्रम से चली जा...वही कर जो नवीन कह रहा है, संयम से रहना तेरे बस की बात नहीं है– तेरी आँखों पर वासना की काली पट्टी चढ़ी है।' (पृ॰ 45)

गांधी सुषमा को यह भी समझाते हैं कि वे ब्रह्मचर्य के उपासक हैं बावजूद तू ने यह जानती है कि मैं ब्रह्मचर्य का उपासक हूँ, उसके बाद भी...तू अपने बिस्तर में साँप देखकर खामोश रही और तूने...' (पृ॰ 45, 46) सुषमा के साथ गांधीजी के इस व्यवहार को देखकर नवीन को गुस्सा आता है। वह गांधीजी से बहस करता है। प्रतिक्रिया में बहुत कटु शब्दों में वे नवीन को अपने ब्रह्मचर्य के सिद्धांत समझाते हुए 'बाहर से आए चोर' आदि...कहते हैं। निर्मलादेवी जो सुषमा की माँ है, बापू को दोनों के रिश्ते के बारे में सच बताती है फिर भी गांधी अपने सिद्धांतों पर अड़े रहते हैं। जीवन में ब्रह्मचर्य के महत्त्व को समझाते हुए वे निर्मलादेवी से कहते हैं–'नियमों-सिद्धांतों को छोड़कर जीवन आदमी को शोभा नहीं देता। औरत और मर्द का जन्म ब्रह्मचर्य पालन करते हुए परमात्मा में मिल जाना है।' (पृ॰ 47) नवीन बापू को यहाँ तक बता देता है कि सभी लोगों के साधु-संत होने से संसार नहीं चल पाएगा। हम एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। गांधी की यह भी एक खासियत रही है कि वे सत्य के पक्षधर रहे हैं किंतु यहाँ नवीन और सुषमा की सच्चाई को वे क्यों नजरअंदाज कर रहे हैं? प्रेम को वासना बताते हुए फिर उन्हें ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ाते हैं, उनके प्रेम पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए कहते हैं–'प्रेम वासना के अलावा कुछ नहीं है और है तो उसमें त्याग और आध्यात्मिकता दिखाई देनी चाहिए, तुम्हारा प्रेम, मुझे सच्चा प्रेम नहीं लगता, प्रेम में 'छिपाव' का भाव उसे वासना और भोग के करीब ले जाता है।' (पृ॰ 47)

गांधी का मानना है कि ब्रह्मचर्य ही आदर्श विवाह है, विवाह भोग के लिए नहीं बल्कि संयम के लिए है। अपनी शर्त पर वे सुषमा को आश्रय में रहने की अनुमति देते हैं। यहाँ पर नाटककार ने गांधी के ब्रह्मचर्य-संबंधी प्रयोगों के हठ पर सोचने को मजबूर किया है। क्या गांधी अपने सिद्धांतों की पूर्ति हेतु इतने कठोर एवं हठी इंसान थे? यदि नहीं तो वे सुषमा ओर नवीन का ऐसी शर्त में क्यों अटका देते? नवीन को वे कहते हैं–'तुम्हें सुषमा को अपनी सगी बहन मानना होगा, वो तुम्हें अपना सगा भाई स्वीकार करे, तुम दोनों एकांत में नहीं मिलोगे, बात नहीं करोगे, किस तरह का कोई इशारा नहीं, कोई चिट्ठी-पत्री नहीं...लड़कियों के लिए, आदर्श अखंड ब्रह्मचर्य होना चाहिए, उसी में आदर्श विवाह समाया हुआ है।' (पृ॰ 47, 48)

नवीन के प्रेम-संबंधी कई तर्कपूर्ण जवाबों के बाद भी गांधी अपने ब्रह्मचर्य संबंधी सिद्धांतों पर अडिग रहते हैं। वे नवीन को मनुष्य जीवन में संयम का मूल्य बताते हैं। अंततः नवीन बापू को

यह कहता है कि इसलिए उसे और सुषमा को बापू आशीर्वाद नहीं दे रहे हैं, क्योंकि वे उनकी संतान नहीं हैं। गांधी जी के आशीर्वाद देवदास और लक्ष्मी को मिल सकते हैं। किंतु उन्हें नहीं, क्योंकि वे उनकी संतान नहीं हैं। नवीन की ये बातें सुनकर बापू भावुक होते हैं। ये बातें उन्हें सोचने को मजबूर करती हैं। प्रयोग आश्रम से निराश होकर जानेवाले नवीन को रोककर वे कहते हैं–'ठहरो, अपने प्रश्न का उत्तर सुनते जाओ, मैं यह नहीं चाहता कि 'प्रयोग आश्रम' से कोई असंतुष्ट जाए, देवदास और लक्ष्मी ने प्रेम के लिए त्याग किया था। बोलो, तुम कर सकते हो, पाँच साल प्रतीक्षा कर सकते हो, पाँच साल?' (पृ॰ 48)

गांधी की यह शर्त सुनकर नवीन चला जाता है और सुषमा निराश होकर प्रयोग आश्रम में रहती है, सहती है, कुछ कहे बिना गांधी को सब-कुछ कहती है। नवीन के प्रति अनुराग धीरे-धीरे उसे कमजोर बना डालता है। उसका निस्तेज चेहरा और उदासी देखकर गांधी अपने ब्रह्मचर्य के आदर्शों के प्रति थोड़ा सोच रहे हैं। नाटककार ने कस्तूरबा को गांधी के सपने में उपस्थित कर यह दर्शाया है कि वे अपने कठोर निर्णय के प्रति थोड़े नरम होते जा रहे हैं। गांधी सपने में यह देख रहे हैं कि कस्तूरबा उन्हें कर रही हैं कि ब्रह्मचर्य के अपने सिद्धांतों के लिए स्त्रियों को दुख देना बंद करो। यह सुनकर गांधी कस्तूरबा से माफी माँगते दिखाई देते हैं। उनकी बात काटकर कस्तूरबा उन्हें कहती हैं–'मुझसे माफी माँगकर क्या होगा? तुम्हें माफी तो जयप्रकाश और प्रभादेवी नारायण से माँगनी चाहिए कि तुमने उनके वैवाहिक जीवन का सत्यानाश कर दिया था, सुशीला से माफी माँगो...मीरा से माफी माँगो, जो मेरी सौतन बनी रही, हजारों अपमान झेले और पाया क्या? दूर क्यों जाते हो, अपने बेटों से माफी माँगो, देवदास और लक्ष्मी को तुमने कितना रुलाया है, और नाम बताऊँ? आभा और कनु, मुन्नालाल और कंचन' (पृ॰ 53) कस्तूरबा उन्हें यहाँ तक बताती हैं कि सुषमा और नवीन के बीच दीवार बनकर गांधी ही खड़े हैं। जो सुषमा उन्हें भगवान मानती है। तुम्हें माननेवालों के प्रति तुम्हारे मन में दया क्यों नहीं है?

इस तरह से कस्तूरबा के बहाने नाटककार ने गांधी को आत्ममंथन करते दर्शाया है। अपने ब्रह्मचर्य के सिद्धांतों के प्रति अंत: गांधी सोचते हैं और उनमें बदलाव नजर आता है। प्यारेलाल द्वारा वे नवीन को संदेश भेजते हैं। (नाटक के अंत में सीन 17 में) जेल में ही नवीन और सुषमा की शादी की रस्में वे स्वयं पूरी करते हैं। स्वयं गांधी मंत्र पढ़ते हैं। आशीर्वाद के रूप में नवविवाहित जोड़े को भेंट स्वरूप 'गीता' भी देते हैं। इस तरह से नाटककार ने गांधी के ब्रह्मचर्य संबंधी सिद्धांत को प्रमुख प्रतिपाद्य के रूप में प्रस्तुत किया है।

 ISSN 0975-735X

मैत्रेयी पुष्पा कृत आंचलिक उपन्यासों में नारी चिंतन

अमनदीप कौर, पीएच॰डी॰ शोधार्थी
हिंदी विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (पंजाब)

आँचलिक उपन्यास की धारा हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट उपलब्धि है। इन उपन्यासों में किसी जनपद या प्रदेश के ग्रामीण अंचल विशेष के लोकजीवन के तत्त्वों का विशद् चित्रण होता है। उपन्यासकार मैत्रेयी पुष्पा ने उस अंचल विशेष की जनता के रीति-रिवाजों, परंपराओं, धार्मिक एवं नैतिक आचार-विचार, विश्वास, आस्थाओं के साथ लोकसंस्कृति का पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें जनसामान्य को या अंचल विशेष की बोली का स्वरूप भी प्रदर्शित होता है। इन सभी तथ्यों का वर्णन मैत्रेयी पुष्पा कृत आंचलिक उपन्यासों में हुआ है।

अचंल शब्द का तात्पर्य

अंचल शब्द संस्कृत के 'अंच' धातु में 'अचल्' प्रत्यय लगने से बना है। शब्दकोश के अनुसार–अंचल शब्द का अर्थ है–'वस्त्र', 'साड़ी का पल्ला' या 'छोर', किनारा, तट, सीमा के समवर्ती भू-भाग, जनपद, प्रदेश, देश का प्रांतर भाग है।'[1]

विद्वानों ने आंचलिक शब्द का संबंध 'वस्त्र के छोर' से जोड़ा है, जो आगे चलकर विकसित होकर 'प्रांत विशेष' के अर्थ में प्रयोग होने लगा है। यह भू-भाग या प्रदेश अपनी स्थानीय, भौगोलिक या प्राकृतिक विशेषताओं के कारण अन्य भूमि से अलग दिखाई देता है। डॉ॰ धीरेंद्र वर्मा के अनुसार–आंचलिकता की सिद्धि के लिए स्थानीय दृश्य प्रकृति, जलवायु, त्यौहार, लोकगीत, बातचीत का विशिष्ट ढंग मुहावरे, लोकोक्तियाँ, भाषा व उच्चारण की विकृतियाँ, लोगों की स्वभावगत व व्यवहारगत विशेषताएँ, उनका अपना रोमांस, नैतिक मान्यताएं आदि का समावेश बड़ी सतर्कता और सावधानी से किया जाना अपेक्षित है।'[2]

आंचलिक उपन्यास की परिभाषा

आंचलिक उपन्यास की परिभाषा अनेक विद्वानों ने की है। इनमें से कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

डॉ॰ रामदरश मिश्र के अनुसार, 'आंचलिक उपन्यास अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। आंचलिक उपन्यास लिखना मानो हृदय में किसी भू-भाग की कसमसाती हुई जीवनानुभूति को वाणी देने का अनिवार्य प्रयास है।'[3]

श्री मक्खनलाल शर्मा के अनुसार, 'सामाजिक यथार्थवादी चित्रण करने वाले उपन्यास ही आंचलिक उपन्यास हैं।'[4]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि देश के किसी भी अंचल के भौगोलिक अंश, जनपदीय क्षेत्रों तथा वहाँ की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन का चित्रण होता है और लोकजीवन के लोकतत्त्वों का सारग्राही सम्यक् चित्रण होता है।

मैत्रेयी पुष्पा के आंचलिक उपन्यासों में नारी चिंतन

आधुनिक युग विषम समस्याओं का युग है। युगीन परिस्थितियों के अनुरूप समाज में नई-नई समस्याएँ सामने आ रही हैं। समाज में व्याप्त समस्याओं को जितनी सूक्ष्मता ओर गहनता से औपन्यासिक विधा स्पष्ट करती है, साहित्य की कोई भी विधा नहीं कर सकती। साहित्यकार जितना संवेदनशील होता है, उसकी यथार्थ में पकड़ उतनी ही मजबूत होती है। वह समाज में जो भी देखता, अनुभव करता है, अन्यथा भोगता है, उसे उसी रूप में अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। ऐसी स्थिति में समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करने में उपन्यास विधा ही एक सशक्त माध्यम है।

आधुनिक युग के नारी-जागरण का इतिहास और प्रेमचंदपूर्व हिंदी-उपन्यासों का इतिहास प्राय: सम-सामाजिक रहा है। आधुनिकयुग का इतिहास नारीवर्ग की दृष्टि से नारियों को उसके उचित अधिकारों के लिए सजग बनाने और उन अधिकारों को पाने के लिए सक्रिय होने का इतिहास है। सबसे बड़ी क्रांति तब हुई, जब नारीवर्ग ने भी और उसके साथ-साथ दूसरों ने भी उसकी समस्याओं को समझा और उसके समाधान के लिए वे उद्वेगशील हुए।

आंचलिक उपन्यासों में नारी-समस्याओं को चित्रित करने का प्रयास प्रेमचंद के कालखंड से होता है। प्रेमचंद कृत 'गोदान' में नारी की समस्याओं का चित्रण करने वाला प्रारंभिक उपन्यास माना जाता है। प्रेमचंद के पश्चात् आंचलिक उपन्यासों में समस्याओं की लीक को पकड़कर उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, शैलेश, मटियानी, राजेंद्र अवस्थी, भैरवप्रसाद गुप्त, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, शिवप्रसाद मिश्र, रामदरश मिश्र, विवेकीराय, मैत्रेयी पुष्पा, संजीव, मनोहरश्याम जोशी, रमणिका गुप्ता आदि लेखकों ने आंचलिक नारी-जीवन की समस्याओं को वाणी देने का प्रयास किया है, जिनमें से हम यहाँ मैत्रेयी पुष्पा के आंचलिक उपन्यासें में व्याप्त नारी-समस्याओं को चित्रित करेंगे।

आलोच्य उपन्यासों में चित्रित विधवा समस्या

विधवा होना नारी जाति के लिए एक अभिशाप माना जाता है। विधवा समस्या तो भारतीय समाज में आज भी विद्यमान है। विधवाओं का जीवन अत्यंत अशुभ, तिरस्कृत और उपेक्षित माना जाता रहा है। भारतीय संस्कृति में उनकी घोर उपेक्षा हुई है।

भारतीय समाज-सुधारकों ने विधवा की अमानवीय स्थिति को परिवर्तन करने का प्रयत्न किया है और विधवा पुनर्विवाह का कानून पारित कराया है, परंतु आज भी समाज में परंपरागत विधवाओं और आधुनिक विधवाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय है। मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' और 'अल्मा कबूतरी' उपन्यासों में नारी की परंपरागत विधवाओं की दयनीयता तथा असमय बनी विधवा नारी के संघर्षशील जीवन का चित्रण किया गया है। 'चाक' उपन्यास में असमय विधवा नारी की पीड़ा को वाणी देने का प्रयत्न किया गया है। रेशम असमय विधवा बन जाती है। युवा विधवा रेशम का गर्भवती होना, सास हुकुमकौर के द्वारा गर्भपात के लिए प्रयत्न करते हुए सास

 ISSN 0975-735X

को गालियाँ देते हुए कहना–'रेशम विधवा थी जमाने के लिए, रीति-रिवाजों के लिए शास्त्र, पुराणों के चलते घर और गाँव के लिए। विधवा सिर्फ विधवा होती है।'[5]

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में मंसारी द्वारा जंगलिया की मौत के घाट उतारने से कदमबाई एक विधवा नारी के रूप में जीवन बिताती है। भूरी भी एक विधवा है, फिर भी उसके जीवन में हौसला बुलंद है, वह कहती है–'मैं किसी मर्द की बाँह पकड़कर क्या रामसिंह के बाप को भूल जाऊँगी? भूल भी जाऊँ तो उसकी कही बात नहीं भूल पाऊँगी। बिरादरी के चलते क्या पाप करती ही रहूँगी। जिस दिन रामसिंह ने बाप का लाल खून नीली स्याही में बदलकर अपने हक में चार आँक लिख लिए, समझूँगी मुझमें राई-भर कलंक नहीं। विद्यारत्न के आगे देह का खजाना कुछ भी नहीं।'[6]

अनैतिक यौन-संबंधों की समस्या

अवैध यौन-संबंधों की समस्या ग्रामांचलिक जीवन में विभिन्न पहलुओं से उभरती है। गाँवों के सबल वर्ग के व्यक्ति दुर्बल वर्ग की औरतों से अवैध संबंध रखते हैं। समाज द्वारा प्रेमाकर्षण का विरोध करने पर चोरी-छिपे बनाए गए संबंध, जमींदार द्वारा मजदूर या दुर्बल स्त्री को भोगने की प्रवृत्ति, कामवासना की अतृप्ति के कारण रखैल रखने की वृत्ति आदि के कारण अवैध यौन-संबंधों की समस्या उभरती है।

'चाक' उपन्यास में सारंगी की ननद और मेहताबसिंह, कैलासीसिंह और कलावती चाची, श्रीधर और सारंग के रूप में अवैध यौन-संबंध प्रस्तुत किए गए हैं। सारंग की ननद और मेहताब सिंह के प्रेम-संबंध, नदिया पार रंगे हाथ सन्नू फकीर ने देख लिया था–'पर जवानी के खेल निराले! पहरे क्या, कैदें क्या? सात परदों को फाड़कर जगता नगला के मेहताब सिंह से आँखें लड़ा बैठी। नदिया पार फूटी गढ़ी देखी है न? उसी में जा पहुँची। बाप किसी ब्याह में अपने लड़कों के साथ गए हुए थे, रास्ता साफ था। जाफरा फकीर का बाप सन्नू फकीर कहता था–उसे अपनी आँखों में देखा, मेहताब सिंह के संग ऐसे जुटी थी, ज्यों जुग-जुग की प्यासी हो। एक-एक बूँद सोखने को उतावली।[7]

'झूलानट' उपन्यास में अवैध यौन-संबंधों को शीलो भाभी और देवर बालकिशन के माध्यम से दिखाया गया है। शीलो भाभी का पति सुमेर भइया शीलो से संबंध न जोड़ने के कारण उसे प्रताड़ित करता है, जिससे शीलो निराश होती है। इस स्थिति में बालकिशन की अम्मा शीलो के साथ देवर बालकिशन से संबंध जोड़ने को कहती है–'बालकिशन उजबक-सा खड़ा था। अम्मा की धरोहर की तरह। तभी माँ ने मजबूती से उसकी बाँह पकड़ी और शीलो बहू के सामने कर दिया–आज से यह तेरा।'[8]

बलात्कार की समस्या

नारी की इच्छा या सहमति के बिना बलपूर्वक उनके साथ शारीरिक संबंध बनाना, उसे बलात्कार कहते हैं। 'इदन्नमम्' उपन्यास में मंदा बिरगवाँ गाँव में जाकर बीमार पड़ती है। बीमार मंदा से कैलाश मामा मिलने के लिए आता है। मंदा को अकेली देखकर अँधेरे का लाभ उठाकर मंदा पर बलात्कार करता है। 'मामा, पाँव छोड़ दो। छोड़ दो मामा। पगली! आराम नहीं मिल रहा? अच्छा लग रहा है न मंदा?'[9] इसी प्रकार कैलाश मामा बीमारी का फायदा उठाकर मंदा पर

बलात्कार करता है।

'चाक' उपन्यास में गुरुकुल में पढ़नेवाली शारदा के साथ बलात्कार होता है–'बर्तन माँजने वाले मणि की कोठरी में रंगे हाथों शारदा पकड़ी गई थी।'[10] यहाँ शारदा को बलात्कार का भोग बनना पड़ा है। गुरुकुल काँगड़ी की शिक्षा मर्यादाशील और कड़े बंधनों में मिलती हे। इसी कारण से कुछ लोग यहाँ अपनी लड़की को सुरक्षित समझकर भेजते हैं। यहाँ पर शर्माजी की बेटी शकुंतला भी पढ़ने के लिए आती है और बलात्कार के कारण गर्भवती हो जाती है।

नारी-शोषण की समस्या : भारतीय समाज-व्यवस्था ने पुरुष-प्रधान होने के कारण नारी को गौण स्थान में रखा है। स्वातंत्र्योत्तर काल में संविधान ने नारी को समानाधिकार उपलब्ध करा दिया, लेकिन इसका लाभ शहरी नारियों को मिलता है। ग्रामीण और मजदूर नारियाँ इससे उपेक्षित रही हैं। समाज में नारी का जीवन घर से बाहर तक सभी स्तरों पर शोषित और प्रताड़ित रहा है।

'चाक' उपन्यास में नारी-शोषण को उपन्यासकार ने उभारते हुए कहा है–'इस गाँव के इतिहास में दर्ज दास्ताने बोलती हैं, रस्सी के फंदे पर झूलती रुकमणी, कुएँ में कूदनेवाली रामदेई, करबन नदी में समाधिस्थ नारायणी ये बेबस औरतें सीता मइया की तरह 'भूमि प्रवेश' कर अपने शील-सतीत्व के लिए कुरबान हो गईं। ये ही नहीं और न जाने कितनी।'[11]

'झूलानट' उपन्यास में नारी-शोषण के रूप में सुमेर की पत्नी शीलो सुमेर से प्रताड़ित हो जाने पर घुटन्-भरा जीवन जीती है। सुमेर उसे अपने योग्य न मानकर उससे संबंध रखना छोड़ देता है। पति द्वारा प्रताड़ित नारी-शोषण का उदाहरण शीलो है। 'अपने चरणों से अलग न करना, अम्मा। इस घर में पड़ी रहने दो, मैं खेत की घास, बुरी घड़ी में जन्मी, तुम्हारी चाकरनी बनकर रहूँगी। बालू की दुल्हन की टहल करूँगी, उनके बच्चे पालूँगी। रूखी-सूखी खाकर घड़ी काट लूँगी। मायके में क्या सवाल-जवाब नहीं होंगे। दिनरात की सूली।'[12] बालकिशन की माँ शीलो की स्थिति जानकर उसे छोटे बेटे बालकिशन की विवाहित बनाती है। यहाँ नारी-शोषण के रूप में देवर-भाभी का संबंध जोड़कर चौखटें तोड़ते हुए रिश्तों का निर्माण किया गया है।

अंधविश्वास की समस्या : आंचलिक उपन्यासों में आज भी अंधविश्वासों का दर्शन होता है। अज्ञान, अशिक्षा, ईश्वर, भय और पाखंड के कारण अंधविश्वास का विकास हुआ है, जिसमें अधिकतर नारियाँ फँस जाती हैं। मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम्' उपन्यास में बऊ के माध्यम से ग्रामीण जीवन में स्थित अंधविश्वास को प्रस्तुत किया गया है। रतन यादव से मंदा को बचाने के लिए कहते हैं। दादा पंचम सिंह द्वारा बऊ को ओरछा की गढ़ी में सुरक्षित रखा जाता है। उसी समय जंगल में बऊ को डर लगता है। वह ढाँढस बाँधते हुए कहती है–'जंगल में कुल देवता आपे जी हमारी रक्षा करने का।'[13]

इसी प्रकार 'झूलानट' उपन्यास में सुमेर के घर आने पर सुमेर की माँ और सुमेर की पत्नी शीलो को आनंद होता है। चंपादास वैद्य की यह कृपा मानकर अम्मा बालकिशन से कहती है, 'बेटा जा, पहले महामारी ढार आ। शंकर महादेव पर पान, फूल, दूध चढ़ा आ। शुभ घड़ी के डेढ़ साल बाद लौटा है सुमेर! भूले-बिसरे देव-पितर तुम्हारे जै रहे।'[14]

अंत में कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने अपने आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से समाज में व्याप्त नारी-जीवन की समस्याओं को सफलतापूर्वक उभारने का प्रयास करते हुए कहा है कि पुराने नारीमूल्य आधुनिक नारीमूल्यों के सामने फीके पड़ने लगे हैं। नारी-संस्कृति की

 ISSN 0975-735X

गिरावट होने लगी है, नैतिक मूल्य ध्वस्त हो रहे हैं। उपर्युक्त उपन्यासों में नारी-जीवन का सम्यक्, संतुलित यथार्थ का वर्णन हुआ है। नारी-जीवन की ये सारी समस्याएँ आलोच्य उपन्यासों में उभरी हैं।

संदर्भ

1. हिंदी के आंचलिक उपन्यास, मत्युंजय उपाध्याय, पृ॰ 996
2. हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, संपा॰ धीरेंद्र वर्मा, पृ॰ 74
3. समसामयिक हिंदी साहित्य की उपलब्धियाँ, संपा॰ मन्मथनाथ गुप्त, रामदरश मिश्र के लेख से पृ॰ 133
4. हिंदी उपन्यास : सिद्धांत और समीक्षा, मक्खनलाल शर्मा, पृ॰ 132
5. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 18
6. अल्मा कबूतरी, मैत्रोयी पुष्पा, पृ॰ 74
7. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 70
8. झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 69
9. इदन्नमम्, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 93
10. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 90
11. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 7
12. झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 57
13. इदन्नमम्, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 57
14. झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, ॰ 46

मोबाइल : 9041550292
deepaman62173@gmail.com

'एक और द्रोणाचार्य' नाटक की रंगमंचीयता

डॉ॰ नानासाहेब जावळे
सुभाष बाबुराव कुल महाविद्यालय
केडगाँव, ता॰ दौंड (पुणे)
महाराष्ट्र 412203

नाटक रंगमंचीय कला है। नाटक की कलात्मक विशेषताओं को मंच के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। नाटककार नाटक लिखते समय प्रस्तुति को ध्यान में रखकर रूपरेखा बनाता है। नाटककार का प्रयास होता है कि मंच के माध्यम से दर्शक अधिकाधिक रसास्वाद कर सके। अत: नाटक को अधिक रंजक एवं प्रभावकारी बनाने के लिए वह रंगसूचनाओं का प्रयोग करता है। नाटक दर्शकों की आँखों के सामने चलनेवाला कला प्रकार है। 'साहित्य की अन्य विधाओं में केवल कंठ और कानों द्वारा दृश्य का अनुभव लिया और दिया जाता है, परंतु नाटकीय दृश्य, कंठ और कान के साथ आँखों से भी संबंध स्थापित करते हैं। तीनों का यह संबंध रंगमंच के कारण ही बनता है।'[1] स्पष्ट है, नाटक अपनी दृश्यात्मकता के कारण मंच पर मानवीय जगत् की प्रतिसृष्टि करता है।

नाटक मात्र पठनीय नहीं, बल्कि उससे रंगमंचीय प्रदर्शन की अपेक्षा होती है। रंगमंच को मनोरंजन का स्थायी रूप मानते हुए जगदीशचंद्र माथुर लिखते हैं–'सामूहिक मनोरंजन का सबसे कलापूर्ण, सुरुचिसंपन्न और स्थायी रूप है रंगमंच।'[2] नाटककार नाटक की कलापूर्ण एवं सुरुचिसंपन्न प्रस्तुति हेतु संवाद, अभिनय, वेशभूषा आदि का सहारा लेकर नाटक के लिखित रूप को प्रयोग के रूप में मंच पर प्रस्तुत करता है। नाटक और रंगमंच के अन्योन्याश्रित संबंध पर प्रकाश डालते हुए विकल गौतम लिखते हैं–'नाटक की सफलता, असफलता का बहुत बड़ा भार रंगमंच की सुविधा-असुविधा एवं उपयुक्तता-अनुपयुक्तता पर निर्भर है। नाटक का संपूर्ण कथा-विन्यास, उसका अंकों एवं दृश्यों में विभाजन तथा उसके अंतर्गत दृश्यविधान की पृष्ठ भूमि में रंगमंच निहित रहता है।...रंगमंच वह मध्य कड़ी है जो नाटक और जनता का संबंध जोड़ती है।'[3]

रंगमंच केवल एक ऐसा स्थल नहीं है कि जहाँ पर मात्र नाटक ही प्रस्तुत किया जाता है। बल्कि वह एक कला और कला स्वाद का माध्यम भी है, जहाँ अभिव्यक्ति और अनुभव दोनों पाए जाते हैं। रंगमंच की कला मुख्यत: अभिनय की कला है, जिसमें कई कर्मियों का योगदान रहता है। नाटककार, कलाकार, निर्देशक, कलायोजक अथवा तंत्रज्ञ आदि सभी रंगमंच की महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ हैं। नाटककार नाटक लिखता है। निर्देशक कलाकारों के माध्यम से नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करता है। अभिनेता के संवाद एवं प्रयुक्त ध्वनियों से संगीत तथा उसके अंगविक्षेप एवं हलचलों से नृत्य का सृजन होता है। दृश्यरूपों में प्रकाश-योजना, वेशभूषा आदि

 ISSN 0975-735X

रंगमंच के अन्य पहलू हैं। कला की पूर्णता को दर्शक स्वीकारता है। रंगमंच पर प्रयुक्त इन कलाओं में एक समन्वय और संतुलन रहता है, जिससे नाटक की संप्रेषणीयता बहुस्तरीय बन जाती है। गोर्डन क्रेग के अनुसार–'रंगमंच की कला न अभिनय है, न नाटक, न दृश्य है, न नृत्य बल्कि सब तत्त्वों का समन्वय है, जिनसे वह निर्मित होती है।'[4] स्पष्ट है कि रंगमंचीय कला अनेक तत्त्वों से युक्त है। नाटक की प्रयोग सापेक्षता को ध्यान में रखकर यहाँ डॉ॰ शंकर शेष के नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' का रंगमंचीय दृष्टि से अध्ययन किया है।

नाटककार शंकर शेष बहुमुखी प्रतिभा के धनी रहे हैं। उन्होंने केवल नाटक ही नहीं लिखे, बल्कि नाट्याभिनय एवं नाट्यनिर्देशन भी किया है। सामाजिक जीवन में घटित अनेक प्रकार के क्रिया-कलाप, संस्कृति-परंपरा, ग्राम एवं शहरी भाषा तथा वेशभूषा आदि को केंद्र में रखकर उन्होंने अपने नाटकों में पात्र, प्रसंग, कथानक, संवाद आदि की निर्मिती की है। रंगमंच से भलीभाँति परिचित रहने के कारण उन्होंने यह ख्याल हमेशा रखा कि प्रत्येक नाटक मंचीय हो। उनका 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक मंचीय कसौटी पर खड़ा उतरा दिखाई देता है। दर्शकों की अभिरुचि, अभिनय का नियोजन एवं उपलब्ध सामग्री की सीमाओं से वे परिचित थे। अत: उन्होंने प्रस्तुत नाटक में प्रत्येक प्रसंग को उचित और विभिन्न दृश्यों में उपस्थित करने का सुंदर और सफल प्रयास किया है। डॉ॰ शंकर शेष ने प्रस्तुत नाटक द्वारा देश-काल और समसामयिक वातावरण का जीवंत चित्र खींचा है। नाटककार ने महाभारत के द्रोणाचार्य और आधुनिक शिक्षक अरविंद के माध्यम से भ्रष्टाचार से लथ-पथ शिक्षा-व्यवस्था पर कड़ा प्रहार किया है।

अंक एवं दृश्य

अंक एवं दृश्य-विभाजन की दृष्टि से डॉ॰ शंकर शेष का प्रस्तुत नाटक सुगठित है। दो अंकों वाले इस छोटे से नाटक का दर्शक सहजता से दो-ढाई घंटों में रसास्वाद ले सकता है। डॉ॰ शंकर शेष ने प्रस्तुत नाटक को पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध नाम से दो अंकों में विभाजित किया है। नाटक में कहीं भी प्रकट रूप में दृश्य-विभाजन संबंधी उल्लेख नहीं है। दृश्य-परिवर्तन के लिए नाटककार ने–'धीरे-धीरे अंधकार, धीरे-धीरे प्रकाश'[5] जैसे रंग संकेत दिए हैं। डॉ॰ शेष ने कथानक के अनुरूप अंक एवं दृश्यों का क्रम रखा है। यथा–आधुनिक शिक्षक प्रोफेसर अरविंद के नैतिक अध:पतन के कारणों की मीमांसा करने के लिए नाटककार ने पुराणकाल के द्रोणाचार्य की कथा को समानांतर रूप में रखकर नाटक की रोचकता बढ़ाई है।

पात्र-योजना

डॉ॰ शंकर शेष ने प्रस्तुत नाटक में लगभग उन्नीस पात्रों का सृजन किया है। उनमें प्रोफेसर अरविंद, लीला, यदू, चंदू, प्रेसिडेंट, अनुराधा, दो वकील, एक जज आदि आधुनिककाल के प्रतिनिधि पात्र हैं। द्रोणाचार्य, कृपी, अश्वत्थामा, एकलव्य, अर्जुन, भीष्म, युधिष्ठिर, सैनिक आदि पुराणकथा के पात्र प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त किए हैं। आधुनिक शिक्षक प्रोफेसर अरविंद आचार्य द्रोण का प्रतीक है। जिस प्रकार द्रोणाचार्य अपने जीवनकाल में परिस्थिति से समझौता करके असत् पक्ष का साथ देने के लिए विवश हैं, वही स्थिति अरविंद की है। चंदू एकलव्य एवं युधिष्ठर के प्रतीक रूप में है। आचार्य द्रोण को अपना गुरु मानकर एकलव्य ने गुरु-दक्षिणा में अपने दाहिने हाथ का अँगूठा देकर गुरु के प्रति श्रद्धा जताई थी। चंदू भी अरविंद पर भरोसा रखकर बुराई के

विरुद्ध आवाज उठाना चाहता है। लेकिन अरविंद द्वारा उसका घात होता है। महाभारत युद्ध में जिस प्रकार युधिष्ठिर नरो वा! कुंजरो वा! कहकर द्रोणाचार्य को ठगता है, उसी प्रकार चंदू अदालत में अरविंद के खिलाफ भूमिका निभाता है। अपरोक्ष पात्र राजकुमार दुर्योधन का प्रतीक है। प्रेसिडेंट पुत्र एवं सत्ताप्रेम में अंध धृतराष्ट्र का प्रतीक है। विमलेंदु अरविंद की अंतरात्मा का प्रतिनिधित्व करता है।

संवाद-योजना

नाटक में संवाद घटनाओं का वाचिक व्यापार है। पात्र अपने संवादों के माध्यम से नाटक के कथ्य को दर्शकों तक पहुँचाता है। संवाद वह सीढ़ी होती है, जिसके जरिए पात्र अपने लक्ष्य तक पहुँचता है। नाटककार संवादों के माध्यम से नाट्य के लिए पूरक जानकारी का निरूपण तथा भाव एवं विचारों को अभिव्यक्त करता है। अत: पात्र एवं संवाद नाटक के प्राण कहे जा सकते हैं। 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक की संवाद-योजना अनूठी है। नाटक के संवाद रोचक होने के साथ वैविध्यपूर्ण हैं। उन्हें पढ़कर या सुनकर पाठक अथवा दर्शक कहीं भी ऊब महसूस नहीं करता। नाटक में अनावश्यक एवं जटिल संवादों को टालने के कारण नाटककार की संवाद-योजना प्रभावोत्पादक बन पड़ी है।

'एक और द्रोणाचार्य' नाटक में प्रयुक्त संक्षिप्त संवादों के कारण नाटक प्रवाहशील एवं स्वाभाविक अनुभूत होता है। नाटक में प्रयुक्त छोटे संवाद रोचक एवं असरदार हैं। उनमें कम से कम शब्दों में अधिकाधिक भावों को व्यक्त करने की क्षमता होने के कारण पाठक अथवा दर्शक के हृदय पर पात्र की पूरी छाप पड़ती है। यथा–

लीला : (आश्चर्य से) आप?
प्रिंसिपल : क्या करूँ, आना ही पड़ा। मुसीबत जो खड़ी हो गई है। सहेंगे नहीं तो जाएँगे कहाँ। बुरे दिन जो आ गए!
लीला : आपने इन्हें देखा नहीं? अभी तो गए हैं।
प्रिंसिपल : देखा क्यों नहीं! लेकिन फायदा?
लीला : आपने रोका नहीं?
प्रिंसिपल : उसे कोई रोक सका है? क्या दिन आ गए।[6]

नाटककार ने प्रस्तुत नाटक में इस प्रकार कई छोटे संवादों का प्रयोग किया है। नाटक में सृजित संक्षिप्त संवाद सरस, बोधगम्य एवं गति प्रदान करनेवाले हैं, जिन्हें पढ़-सुनकर पाठक अथवा दर्शक नाटक के साथ गहराई से जुड़ जाता है। यथा–

लीला : क्या सोच रहे हो?
अरविंद : कुछ नहीं।
लीला : प्रिंसिपल नहीं बनोगे?
अरविंद : कीमत जानती हो?
लीला : बिना कीमत दिए कुछ मिलता भी है?[7]

संक्षिप्त संवादों के अलावा नाटक में यथोचित जगहों पर दीर्घाकार संवाद भी दिखाई देते हैं। जिनसे पात्रों द्वारा मनोभावों का विवेचन प्रस्तुत करने में सहायता मिली है। दर्शक को नाटक का कथ्य समझने में सहायता मिलती है। यथा–'द्रोणाचार्य : ठीक किया तुमने। मैं इसी का पात्र था। सत्य और

न्याय का पक्ष जानते हुए भी मैं उसके विरोध में लड़ा। अपने ही शिष्यों के विरुद्ध, राजकीय अन्न की दासता समझौते का चरित्र। ठीक किया तुमने। इस समय तुम्हारा झूठ बोलना ही धर्म है। युधिष्ठिर तुम सच भी बोलते तो क्या इतिहास झूठ बोलता? अच्छा किया तुमने अच्छा किया तुमने।'[8] इस प्रकार नाटक के संवाद संक्षिप्त हों या दीर्घाकार उनसे नाटक रोचक ही बन पड़ा है।

रंग-निर्देश

नाटक रंगमंचीय कला होने के कारण नाटककार आवश्यक स्थानों पर अभिनय-प्रस्तुति में सहायक रंगनिर्देश देता है। नाट्य-प्रस्तुति की दृष्टि से रंग-निर्देश कलाकारों के लिए उपयुक्त एवं सहायक होते हैं, जिनसे दर्शकों को कथा और पात्र की देश-काल स्थिति का परिचय सहजता से मिल पाता है। यह रंग-निर्देश दृश्यबंध, अभिनय, ध्वनि एवं प्रकाश आदि से संबंधित होते हैं।

दृश्यबंध-संबंधी निर्देशों की सहायता से दिग्दर्शक नैपथ्य का सृजन करता है। नाटककार दृश्य-योजना को प्रभावी बनाने के लिए स्थल, काल, वातावरण को एक दृश्य में बाँधता है, जिससे नाटक समझने में दर्शक अथवा पाठक को सहायता मिलती है। प्रस्तुत नाटक में डॉ॰ शंकर शेष ने कोई ठोस दृश्यबंधात्मक निर्देश नहीं दिया है, बल्कि वह टुकड़ों-टकड़ों में बिखरा है। फिर भी पात्रों की भौतिक एवं मानसिक स्थिति पर प्रकाश डालने में इस प्रकार के निर्देश पूरक सिद्ध होते हैं। नाटक के पूर्वार्ध में अपेक्षित वातावरण निर्मिति हेतु नाटककार स्विच ऑन करना, टेबल पर से चाय का खाली कप उठाना, सिगरेट के टुकड़े उठाना, कॉपियाँ बटोरना, चाय की ट्रे लाना आदि निर्देशों से आधुनिककाल के अध्यापक की जीवनशैली का परिचय देते हैं। इसी प्रकार कृपी द्वारा अश्वत्थामा को मिट्टी के पात्र में आटे का घोल (दूध का बहाना बनाकर) देना, द्रोणाचार्य की दीन दशा का परिचय देता है। जंगल में कुछ लोगों का भागना, कुत्तों का भौंकना आदि निर्देश वन का माहौल बनाने में सक्षम हैं। उत्तरार्ध में एक कठघरे में अरविंद का खड़े रहना, चंदू का गवाह के कठघरे में खड़ा होना आदि निर्देश अदालत का आभास देने के लिए काफी हैं। 'भयानक कोलाहल, मर्मभेदी आवाजें, रथ का टूटा पहिया।'[9] जैसे निर्देश युद्धभूमि का परिचय देते हैं।

अभिनय

अभिनय नाटक का एक अभिन्न अंग है। नाटक केवल भाषिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि कायिक व्यापारों का मिला-जुला रूप होता है। अभिनय के कारण ही नाटक अन्य विधाओं से विशेष स्थान पाता है। नाटक में अभिनय के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ॰ रमाकांत गावडे लिखते हैं-'यही वह तत्त्व है, जो नाटक को अन्य विधाओं से अलग करता है। यह भी कहें तो अत्युक्ति न होगी कि अभिनय ही नाटक है और नाटक अभिनय के सिवा और कुछ नहीं है। यहाँ भावों तक को अभिनय में बताना पड़ता है।'[10] स्पष्ट है, अभिनेता रंगमंच पर नाटक के पात्र के भाव एवं अनुभूतियों को अभिनय द्वारा हू-ब-हू अभिव्यक्ति देता है। उसकी सहायता हेतु नाटककार नाटक में यत्र-तत्र अभिनय-संबंधी निर्देश देता है।

नाटककार शंकर शेष ने प्रस्तुत नाटक में अभिनय के चारों प्रकारों से संबंधित निर्देश दिए हैं। कायिक अभिनय के कई निर्देश प्रस्तुत नाटक में बिखरे पड़े हैं। यथा-'प्रिंसिपल जाता है। लीला जड़वत् खड़ी रहती है। फिर कॉपियाँ बटोरने लगती है। अरविंद आता है।'[11] इस प्रकार के निर्देश अभिनेताओं को सहायक होने के साथ परिस्थितिनुरूप माहौल निर्माण करने में सक्षम हैं। प्रिंसिपल

जब लीला को अरविंद की नौकरी चले जाने के बाद निर्माण होनेवाली पारिवारिक दुरवस्था के प्रति सचेत करता है, तब लीला का अपने पति एवं भविष्य की चिंता को लेकर जड़वत् होना सहज है।

आहार्य अभिनय संबंधी निर्देशों से अभिनेता के साथ दर्शकों को भी पात्र परिचय पाने में आसानी होती है। वेशभूषा देखकर दर्शक पात्र की अवस्था, भौतिक परिस्थिति आदि को सहजता से जान पाता है। यथा–'इसी बीच द्वार पर चंदू दिखाई देता है। उम्र करीब बीस। कॉलेज के छात्रों सी वेशभूषा।'[12] इस प्रकार निर्देश के कारण अभिनेता को अभिनय प्रस्तुत करते समय यथायोग्य वेशभूषा करने में सहायता मिलती है। वाचिक अभिनय संबंधी निर्देशों से अभिनेता को संवाद अभिव्यक्त करते समय वाणी में आरोह-अवरोह लाने के लिए सहायता प्राप्त होती है। वैसे बिना किसी निर्देश के भी कुशल अभिनेता संवादों में उतार-चढ़ाव ला सकता है। फिर भी नाटककार के दिए हुए निर्देशों का विशेष महत्त्व होता है। अभिनेता अगर सपाट बयानों द्वारा विचारों को अभिव्यक्ति देगा तो दर्शक ऊब सकता है। अत: नाटक में वाचिक अभिनय का विशेष महत्त्व है। यथा-आठ वर्ष का अश्वत्थामा अपनी माता के पास दूध की माँग करता है। कृपी उसे समझाने का प्रयास करती है, लेकिन वह दूध लिए बिना चुप रहने को तैयार नहीं था। बेटे को बहुत समझाने के बाद भी उसके द्वारा अपने हठ पर अडिग रहने पर कृपी का उसपर क्रोधित होना सहज है।

कृपी : (धमकाती हुई) क्या मेरा कहना नहीं मानेगा?

अश्वत्थामा : (चीखकर) तेरा क्या, किसी का कहना नहीं मानूँगा।[13]

अपनी इच्छा पूर्ण न होती देखकर अश्वत्थामा (बच्चे) का चीखना भी सहज है। इस प्रकार पात्रों के भावों को उचित आरोह-अवरोह में प्रकट करने हेतु नाटककार ने आवश्यक स्थानों पर वाचिक अभिनय संबंधी निर्देश दिए हैं।

सात्त्विक अभिनय का संबंध भावों के प्रकटीकरण से है। हँसना, रोना, कंपित होना आदि प्रकार के भावों का प्रकटीकरण सात्त्विक अभिनय कहा जाता है। जब अश्वत्थामा को बहुत-सा अनुरोध करने पर भी दूध नहीं मिलता, तब वह अपना सिर पटकने लगता है। दूध के लिए बच्चे का सिर पटकना भला कौन माँ सहजता से देख सकेगी। (कृपी व्याकुल हो जाती है। उसे उठाती है। पुचकारती है।) कृपी : ठहर, लाती हूँ...अभी लाती हूँ। (अश्वत्थामा की सिसकियाँ नहीं टूटतीं। द्रोणाचार्य का प्रवेश। अश्वत्थामा को रोता देख परेशान होता है।)[14]

कुल मिलाकर यह कहना यथोचित होगा कि डॉ॰ शेष के अभिनय कायिक, आहार्य, वाचिक एवं सात्त्विक संबंधी निर्देश पात्रों की मनोदशा, भावों की गहराई एवं सूक्ष्मता को अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

प्रकाश-योजना

नाटक में प्रकाश-योजना से यर्थाथ का निर्माण किया जा सकता है। रंगमंच पर विशेष रूप की वातावरण निर्मिति में प्रकाश महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सुख-दुख भरे क्षण, उदासी क्रोध, आतंक, करुणा जैसे भावों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने के लिए नाटककार प्रकाश की योजना करता है। 'धीरे-धीरे अंधकार। जेल की कोठरी का आभास। स्पॉट केवल अरविंद पर पड़ता है। दाढ़ी बढ़ी हुई। जर्जर।'[15]

कहीं-कहीं नाटककार अंधकार एवं प्रकाश जैसे निर्देशों से दृश्यपरिवर्तन का संकेत देते हैं। अरविंद पर स्पॉट देकर उन्होंने जेल में रहनेवाले कैदियों की दुरवस्था को प्रकाशित किया है।

नाटक में अन्यत्र 'धीरे-धीरे प्रकाश कम होता है' (पृ॰ 55), 'प्रकाश मंच पर बिखरता हैं। (पृ॰ 71) जैसे संकेतों से अपेक्षित वातावरण निर्मिति में सहायता मिलती है।

ध्वनि-संगीत योजना

ध्वनि एवं संगीत-संबंधी निर्देश अभिनय को प्रभावी बनाने में पूरक होते हैं। प्रकाश की तरह ध्वनि एवं संगीत की सहायता से भी विशेष एवं प्रभावी माहौल निर्माण करने में सहायता मिलती है। यथा–मंच पर प्रत्यक्ष घोड़े और रथ दिखाना कष्टसाध्य कार्य है। ध्वनि की सहायता से 'रथ रुकने की आवाज। घोड़ों की हिनहिनाहट।'[16] जैसा निर्देश रथ पर किसी राजपुरुष पर आने का आभास दिलाता है। 'युद्ध का भयानक कोलाहल। भयानक चीत्कारें। कानों के पर्दे फाड़ देनेवाली मर्मबेधी आवाजें।'[17] जैसे ध्वनि संकेत युद्धजन्य परिस्थिति का आभास देने में सहायक हैं। द्रोणाचार्य की मृत्यु प्रसंग के समय नाटककार ने करुण संगीत का निर्देश देकर ध्वनि-संगीत योजना संबंधी यथोचित ज्ञान होने का परिचय दिया है। इस प्रकार डॉ॰ शंकर शेष द्वारा प्रयुक्त रंगनिर्देश के कारण नाटक गतिमान एवं प्रभावकारी बन पड़ा है।

नाट्यभाषा

नाटक में प्रयुक्त भाषा को नाट्यभाषा कहते हैं। नाटक में कृतिकार के मानसिक विचार एवं उद्देश्यों को दर्शक तथा पाठकों तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य नाट्यभाषा करती है। नाटक छोड़कर अन्य विधाओं का रसास्वाद केवल पढ़कर प्राप्त किया जाता है। अत: उनकी वाचन-शैली सीधी और सरल है। लेकिन नाटक में नट और नटी द्वारा मंच पर जीवंत कार्य-व्यापार प्रस्तुत किया जाता है। अत: नाटक की वाचन-शैली अभिनयोन्मुख है और उसका महत्त्व उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। साधारण रूप में नाट्यभाषा के दो रूप कहे जा सकते हैं। एक है हमारे जीवन-व्यवहार की ध्वन्याश्रित शाब्दिक भाषा और दूसरी है, अभिनयोन्मुख अंगाश्रित शरीर भाषा। इनके अलावा मंच पर प्रकाश, ध्वनि-संगीत, चित्र आदि पूरक वस्तुएँ उपकरणाश्रित मंचीय भाषा होती है। ये तीनों ध्वन्याश्रित शाब्दिक भाषा, अंगाश्रित शरीर भाषा तथा उपकरणाश्रित मंचीय भाषा मिलकर नाट्यभाषा बनती है।

1. **पात्रानुकूल भाषा**

नाटक की भाषा सहज, संप्रेषणीय हो ताकि दर्शक उसे सहजता से समझ सके। दर्शक का शैक्षणिक स्तर, भाषा-ग्रहण करने की शक्ति, बिंब, प्रतीकों को समझने की क्षमता समान नहीं होती। नाटक के दर्शक शिक्षित भी हो सकते हैं और अशिक्षित भी। अत: केवल उच्चकोटि की अथवा मात्र गँवारूँ भाषा का प्रयोग किया जाएगा तो सीमित लोग ही उससे आनंद उठा पाएँगे। पात्रों की भाषा में एकरसता आने पर दर्शक के ऊबने की भी संभावना है। अत: रचनाकार को नाटक में ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए, जो सरलता, सहजता तथा स्वाभाविकता के कारण सभी स्तर के लोगों को ग्रहणीय हो। नाटक की ध्वन्याश्रित शाब्दिक भाषा के लिए यह अभीष्ट है कि नाटक में और जीवन में प्रयुक्त होनेवाली भाषा में अधिक अंतर न हो। अत: नाटक में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करना आवश्यक है। नाटक के पात्र अथवा चरित्र विभिन्न वर्ग, देश, काल, वय, लिंग, अभिरुचि के हो सकते हैं। हर एक की भाषा-संबंधी अपनी विशेषता हो सकती है। अत: नाटककार चरित्रों को उनकी अपनी भाषा नहीं दे पाएगा तो नाटक निष्प्रभ सिद्ध होगा। अत: नाटककार अपनी शैली पात्रों पर न थोपें। वह अपनी भाषा पात्रों से न बुलवाए। बल्कि नाटक की

भाषा चरित्र की भाषा हो, पात्र के अनुकूल हो। इन कसौटी पर डॉ॰ शंकर शेष की नाट्यभाषा खरी उतरती है।

'एक और द्रोणाचार्य' के पात्र प्रोफेसर अरविंद, यदू, प्रिंसिपल, प्रेसिडेंट, चंदू आदि पात्रों की भाषा उनकी शिक्षा एवं ओहदे के अनुसार प्रतीत होती है। अरविंद का मित्र यदू और पत्नी लीला रिश्तों या संबंधों के अनुसार अधिकार वाणी से वार्तालाप करते नजर आते हैं। प्रेसिडेंट की बातों से हुकूमत का एहसास होता है। पहली आवाज (पहला वकील), दूसरी आवाज (जजसाहब), तीसरी आवाज (दूसरा वकील) आदि पात्रों के संवाद कानूनी शब्दों से भरे-पूरे हैं। यथा–

आवाज : योर ऑनर, अब मैं इस मुकदमे के चश्मदीद गवाह चंद्रशेखर उर्फ चंदू से प्रश्न पूछने की इजाजत चाहता हूँ।

दूसरी आवाज : इजाजत है।[18]

इसी तरह आधुनिककाल के पढ़े-लिखे लोगों की भाषा में अँग्रेजी शब्दों की बहुलता है, तो प्राचीनकाल के द्रोणाचार्य, कृपी, अश्वत्थामा, एकलव्य, अर्जुन आदि पात्रों की भाषा में सीधी-सरल हिंदी और संस्कृत शब्दों का प्रयोग है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करते समय नाटककार ने देश-काल, वातावरण का ख्याल रखा है।

2. **काव्यात्मक भाषा**

डॉ॰ शंकर शेष का यह नाटक यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसके बावजूद प्रस्तुत नाटक में काव्यात्मक संवादों की कई झाँकियाँ मिलती हैं। हम जानते हैं काव्यभाषा भावों का चित्रण करने में सक्षम होती है। उसमें एक विशेष लय होती है। पात्र के संवादों में दर्शक उसे अनुभव करता है। प्रस्तुत नाटक को पढ़ते समय भी पाठक को लय बद्ध संवादों के कारण कहीं जटिलता महसूस नहीं होती। पाठक या दर्शक नाटक के साथ गहराई से जुड़ जाते हैं। क्योंकि काव्यभाषा द्वारा नाटककार ने पात्रों अथवा चरित्रों के स्थूल जीवन के साथ आंतरिक भावों को वाणी दी है।

नाटक के आरंभ में अरविंद का मित्र यदू उसे आदर्शवादी विचार छोड़कर मतलबी बनने की सलाह देता है। लेकिन अरविंद अपने पेशे के नीति-मूल्यों को तोड़ना नहीं चाहता। वह अध्यापकी पेशे में रहते परीक्षा में खुलेआम नकल करनेवालों को नहीं देख सकता था। अतः अरविंद ने यदू को आहत न करते हुए कोमलता से अपने मन की बात कही है। यथा–'अरविंद : दूसरों के लिए यह सवाल छोटा हो सकता है, यदू पर हमारे लिए तो यह जीवन-मरण का सवाल है। प्रोफेशनल एथिक्स का सवाल है।'[19]

नाटक में द्रोणाचार्य द्वारा एकलव्य से गुरुदक्षिणा में दाहिने हाथ का अँगूठा माँगा जाता है। अर्जुन द्वारा गुरु की यह कठोरता देखी नहीं जाती। अर्जुन द्रोणाचार्य का विरोध करते हुए कहता है– 'पर यह अन्याय है, गुरुदेव! (विराम) देखा नहीं, उसकी आँखों में क्षत्रियों के लिए कितनी घृणा थी। आपने एक महान् प्रतिभा को उभरने से पहले ही कुचल दिया।'[20]

अश्वत्थामा भी कोमल हृदय है। द्रौपदी पर हुए अन्याय को चुपचाप देखते रहने के कारण उसे आत्मग्लानि होती है। अपने पिता की निष्क्रियता तथा माता द्वारा मिले अन्याय को चुपचाप देखते रहने के संस्कारों से वह दुखी है। इन भावों की अभिव्यक्ति के समय प्रस्तुत संवादों में लयात्मकता अनुभव होती है। इस प्रकार नाटक में अनेक संवादों द्वारा पात्रों के आंतरिक भावों का

प्रकटीकरण हुआ है, जिनसे पाठक अथवा दर्शक लयात्मकता अनुभव करता है।

3. **प्रतीकात्मक भाषा**

प्रतीक की कोई अपनी अलग भाषा नहीं होती, वह स्वयं नाटक की प्रकृत भाषा और सहज बोल है। ऐसी भाषा का प्रयोग हम दैनंदिन जीवन में भी करते हैं। प्रतीक शब्द का प्रयोग हम उस दृश्य वस्तु के लिए करते हैं, जो किसी अदृश्य वस्तु का प्रतिपादन करती है। लेकिन दृश्य और अदृश्य वस्तु में रूप-गुण आदि दृष्टि से समानता आवश्यक है। 'किसी अन्य स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करनेवाली वस्तु प्रतीक है।'[21] तात्पर्य अमूर्त, अदृश्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतिनिधान मूर्त, दृश्य, प्रस्तुत विषय द्वारा किया जाता है।

'एक और द्रोणाचार्य' नाटक की प्रतीकात्मकता उसके शीर्षक एवं पात्रों के गुणसाधर्म्य में है। महाभारत के अमर पात्र गुरु द्रोणाचार्य दरिद्रता के कारण हस्तिनापुर के आश्रित बनते हैं। अब उनका ज्ञान केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय कुमारों तक सीमित रह जाता है। वह पारिवारिक सुविधा एवं भौतिक संपन्नता को बनाए रखने के लिए राजकुमार दुर्योधन और महाराज धृतराष्ट्र का साथ देने के लिए विवश हैं। भरे दरबार में द्रौपदी के चीरहरण प्रसंग में भी वे कौरवों का विरोध नहीं करते। उस घटना से मानो अध्यापकों द्वारा चुप रहकर अन्याय पीने की परंपरा शुरू हो गई हो। परिणामत: पांडवों के मन में गुरु के प्रति आदर नहीं रहता। महाभारत युद्ध में युधिष्ठिर अश्वत्थामा की मृत्यु के संदर्भ में द्रोणाचार्य को सच्चाई नहीं बताता। द्रोणाचार्य शस्त्र त्याग देते हैं, धृष्टधुम्न उनका वध कर देता है।

आधुनिक शिक्षक अरविंद की भी स्थिति कुछ ऐसी ही रही है। अरविंद एक बार प्रेसिडेंट के बेटे राजकुमार को नकल करते पकड़ता है। राजकुमार की रिपोर्ट वापस लेने के लिए उस पर मित्र यदू, पत्नी, प्रिंसिपल, प्रेसिडेंट सभी दबाव डालते हैं। अरविंद आरंभ में इन सबका विरोध करता है। लेकिन प्रिंसिपल पद पाने का प्रलोभन तथा सुविधाओं से युक्त जीवन बरकरार रखने हेतु वह प्रेसिडेंट का कहना मान लेता है। प्रिंसिपल बनने के बाद वह अपनी स्वतंत्रता पूरी तरह गवाँ बैठता है। एक दिन राजकुमार महाविद्यालय की छात्रा अनुराधा पर बलात्कार की कोशिश करता है। संयोग से अनुराधा राजकुमार पर एक्शन चाहती है। लेकिन उस घटना का एक मात्र चश्मदीद गवाह अरविंद उसका साथ नहीं दे पाता। आगे प्रिसिडेंट के खून के इल्जाम में अरविंद को अरेस्ट किया जाता है। वास्तव में अरविंद ने कोई खून नहीं किया था। प्रेसिडेंट खुद चट्टान से गिरे थे। इस घटना का चश्मदीद गवाह उनका ही छात्र चंदू था। लेकिन वह अदालत में 'नर वा कुंजर' की भूमिका लेता है। वह कहता है जब प्रेसिडेंट चट्टान से नीचे देख रहे थे, तब अरविंद का हाथ प्रेसिडेंट की पीठ पर था। हो सकता है, उन्होंने प्रेसिडेंट को धकेला हो। परिणामत: अरविंद को सजा होती है।

गुरु द्रोणाचार्य और प्रोफेसर अरविंद की विवशता एक-जैसी है। तुलना में अरविंद अन्याय तथा अनुचित घटनाओं का विरोध करता नजर आता है, फिर भी वह बुराई का साथ देने के लिए विवश होकर एक और द्रोणाचार्य बनकर रह जाता है। प्रस्तुत नाटक में अरविंद गुरु द्रोणाचार्य के प्रतीक रूप में प्रयुक्त है। अरविंद की पत्नी लीला द्रोणाचार्य की पत्नी कृपी का प्रतीक बनकर उभरी है। जिस प्रकार कृपी द्रोणाचार्य को राजाश्रित बनने हेतु प्रोत्साहित करती है, उसी प्रकार लीला प्रोफेसर अरविंद को प्रेसिडेंट की हाँ में हाँ मिलाने के लिए बाध्य करती है। दुराचारी राजकुमार दुर्योधन का प्रतीक है, जिसके आस-पास महिलाएँ सुरक्षित नहीं हैं। चंदू युधिष्ठिर के

प्रतीक रूप में प्रयुक्त है, जो अर्धसत्य बोलकर गुरु की समस्याएँ बढ़ाता है।

इस प्रकार नाटककार ने प्रस्तुत नाटक में घटना, पात्रों की गुण-विशेषताएँ तथा शीर्षक रूप में प्रतीक का प्रयोग किया है। कुल मिलाकार डॉ॰ शंकर शेष की प्रतीक योजना सुंदर, रोचक एवं चित्ताकर्षक बन पड़ी है।

4. **अधूरे वाक्यों का प्रयोग**

डॉ॰ शंकर शेष ने प्रस्तुत नाटक में कई संवादों में अधूरे वाक्यों का प्रयोग किया है। नाटककार ने ऐसे स्थलों पर अधूरे वाक्यों की योजना की है, जहाँ भावावेश में पात्र पूरी बात कहने में असमर्थ होते हैं। कई बार अर्थगर्भित संवादों की निर्मिति हेतु अधूरे वाक्य का प्रयोग किया है। नाटक के आरंभ में ही लीला पति अरविंद को एक छात्र को परीक्षा में पास करने की बात छेड़ती है। लेकिन अरविंद ने उसके नंबर नहीं बढ़ाए थे। तब क्रोधित होकर लीला कहती है, 'जाहिर है, तुमने फेल कर दिया उसे। मैंने जो सिफारिश की थी। (विराम) और कोई करता तो'[22] इस अधूरे वाक्य द्वारा लीला शिकायत करती है कि अन्य कोई ऐसी सिफारिश करता तो तुम उसकी बात मान लेते। लेकिन तुम खुद की पत्नी की बात नहीं मान रहे हो, जो कि हमेशा परिवार का हित देखती है।

महाविद्यालय में अरविंद प्रेसिडेंट के बेटे राजकुमार को नकल करते पकड़ता है। उसकी रिपोर्ट करता है। प्रिंसिपल अरविंद के घर आकर अरविंद की पत्नी लीला को समझाते हैं कि अरविंद अपनी रिपोर्ट वापस ले। नहीं तो उसकी जान खतरे में पड़ेगी। तब लीला डरकर प्रतिक्रिया में कहती है, 'तो क्या विमलेंदु की तरह?'[23] इस अधूरे वाक्य में अरविंद के जीवन को लेकर कई संभावनाएँ हैं। विमलेंदु ने अरविंद की तरह ही किसी छात्र को नकल करते पकड़ा था और उसकी रिपोर्ट युनिवर्सिटी को कर दी थी। गुंडों ने उसका खून किया था। लीला इस घटना को जानती है, अत: उसे लगता है कि क्या अरविंद के साथ भी ऐसा कुछ हो सकता है? नाटककार ने नाटक में अन्यत्र भी इसी तरह अधूरे वाक्यों का प्रयोग कर नाटक की रोचकता बढ़ाई है।

5. **शब्द एवं वाक्य की पुनरावृत्ति**

नाटक हो या जीवन आपसी संवादों में शब्द अथवा वाक्य की पुनरावृत्ति होती रहती है। भावोत्कट, दुखद, भयभीत आदि स्थितियों में शब्द अथवा वाक्य की पुनरावृत्ति होना सहज है। डॉ॰ शंकर शेष ने प्रस्तुत नाटक में दो भिन्न पात्रों के मुँह से एक ही वाक्य की पुनरावृत्ति कर वर्तमान स्वार्थी लोगों पर कड़ा प्रहार किया है। यथा–नाटक के आरंभ में अरविंद परेशान-सा है। उस दिन कॉलेज में उसने प्रेसिडेंट के बेटे राजकुमार के नकल की रिपोर्ट की थी। इस बात की खबर मिलते ही अरविंद का मित्र एवं सहकारी यदू घर आकर उसे दुनियादारी सिखाता है। अपने फायदे के लिए नैतिक मूल्यों को त्यागने की सलाह देता है। अरविंद के यह प्रश्न करने पर कि 'मेरी जगह तुम होते तो क्या करते?' तब यदू का उत्तर देता है–'मैं? मैं तो और कागज लाकर दे देता। कहता–करो बेटा नकल, इत्मीनान से करो। अपने बाप क्या जाता है!'[24] यदू की तरह ही प्रिंसिपल अरविंद के घर आकर लीला से कहते हैं कि वह अरविंद को रिपोर्ट वापस लेने के लिए आग्रह करे। नहीं तो बहुत सारी मुसीबतें खड़ी होंगी। लीला के यह कहने पर कि 'लेकिन राजकुमार ने नकल की?' तब प्रिंसिपल कहते हैं–'अब मुझसे पूछकर तो की नहीं। थोड़ी-सी कर ही ली, तो किसका क्या बिगड़ गया? जिसका पाप उसके साथ। अपने बाप का क्या जाता है।'[25]

प्रोफेसर यदू और प्रिंसिपल दोनों ने 'अपने बाप का क्या जाता।' कहकर जिम्मेदारी टालने का प्रयास किया है। इतना ही नहीं, परीक्षा में नकल करने की घटना को नजरअंदाज करने की सलाह देकर अनीतिपूर्ण कार्य का भी समर्थन किया है। यह वाक्य नाटक का महत्त्वपूर्ण वाक्य है। ऐसी ही मानसिकता के कारण नीति के मार्ग पर चलनेवाले लोग परेशान हैं। इसी प्रकार नाटक में अदालती परिवेश में चलनेवाले प्रश्नोत्तरों में शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है, जिससे नाटक की भाषा प्रभावकारी बनी है।

6. **मौन की भाषा**

नाटक में मौन अथवा चुप रहने का भी एक विशेष महत्त्व है, जिससे नाटक की प्रभावोत्पादकता बढ़ती है। नाटककार ने तब-तब मौनभाषा संबंधी निर्देश दिए हैं, जब-जब किसी पात्र को प्रत्युत्तर देना संभव नहीं है। कई जगहों पद किसी पात्र द्वारा कही हुई बात की सहमति के रूप में भी मौन का प्रयोग हुआ है। पात्र पर जब कोई मानसिक आघात होता है, वह कोई निर्णय लेने में असमर्थ है, उसी वक्त नाटककार ने सुझबुझ के साथ मौन-संबंधी निर्देश दिए हैं।

प्रोफेसर अरविंद राजकुमार के खिलाफ नकल की रिपोर्ट पर अड़ा है। पत्नी, मित्र, प्रिंसिपल के समझाने पर भी वह किसी की नहीं सुन रहा है। बाद में प्रेसिडेंट स्वयं आकर उसके साथ वार्तालाप करता है। अंत में प्रेसिडेंट प्रिंसिपल की ऑफर देकर अरविंद के घर से चला जाता है। तब अरविंद के सामने 'एक गहरा सन्नाटा'[26] छा जाता है। महाविद्यालय में राजकुमार ने अनुराधा पर बलात्कार की कोशिश की। प्रिंसिपल अरविंद इस घटना के एकमात्र गवाह हैं। वह राजकुमार की रिपोर्ट पुलिस थाने में करना चाहता है। अनुराधा अरविंद के घर आकर राजकुमार पर एक्शन लेने का आग्रह करती है। इस दरम्यान प्रेसिडेंट फोन पर अरविंद को धमकाता है कि उसने अगर अनुराधा का साथ दिया तो प्रशासन उस पर पंद्रह हजार का घपला करने का आरोप करेगा। अरविंद डरकर अनुराधा को साथ देने में असमर्थता जताता है। क्रोधित अनुराधा अरविंद पर नपुंसक बुद्धिवादी कहकर वहाँ से धीरे-धीरे चली जाती है। 'एक लंबा भयानक सन्नाटा। अरविंद माथा पकड़कर बैठ जाता है।'[27] सच्चाई की राह पर चलने का प्रयास करने में असमर्थ अरविंद विद्यार्थिनी द्वारा जताया अविश्वास सहन नहीं कर पाता है। एक ओर वह अनुराधा का साथ देना चाहता है, तो दूसरी ओर उसे कानून के शिकंजे में फँसने का डर है। इस प्रकार की दुविधाभरी स्थितियों में अरविंद का चुप रहना, सन्नाटे में आना सहज है।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में अन्यत्र कई स्थलों पर चुप, सन्नाटा, विराम, खामोशी जैसे निर्देशों से मौन की भाषा का प्रयोग किया है। कुल मिलाकर डॉ॰ शंकर शेष के नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' की रंगमंचीय संरचना नाटकीय प्रभावोत्पादकता निर्माण करने में सफल रही है।

डॉ॰ शंकर शेष का प्रस्तुत नाटक वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में फैला भ्रष्टाचार एवं मनुष्य में बढ़ती भौतिकवादी जीवनदृष्टि को उजागर करता है। नाटककार अरविंद के माध्यम से उस भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाने का प्रयास किया है। लेकिन व्यवस्था किस प्रकार सत्य की राह पर चलनेवालों का दमन करती है, उसका उत्तम उदाहरण प्रस्तुत नाटक है। डॉ॰ शेष का प्रस्तुत नाटक मात्र मनोरंजन नहीं करता। यह वर्तमान व्यवस्था के प्रति पाठक अथवा दर्शक को सजग करता है। नाटककार ने दिखाना चाहा है कि संस्कारों में प्राप्त मूल्यों का पालन करने की चाह रखनेवाला मनुष्य प्रतिकूल परिस्थितियों में उनका वहन नहीं कर पाता। व्यवस्था उसका दमन करती है। व्यवस्था

एवं परिस्थिति के सामने विवश होकर मनुष्य व्यवस्था का ही एक अंग बनकर रह जाता है। नाटक में प्रस्तुत अरविंद की हताशा, विवशता आज प्रत्येक बुद्धिजीवी मनुष्य की बनकर रह गई है। प्राचीन आचार्य द्रोणाचार्य और आधुनिक शिक्षक प्रोफेसर अरविंद दोनों ने सत्य और न्याय का पक्ष जानते हुए विवश होकर असत्य का साथ दिया। यही वर्तमान बुद्धिजीवियों की विडंबना बन गई है। परिणामत: जीवन में बुद्धिमत्ता एवं योग्यता को गौण स्थान मिल रहा है। चापलूसों, ठगों की चलती बनी है। ईमानदारी की राह पर चलना कठिन-से-कठिनतर होता जा रहा है।

संदर्भ

1. शंकर शेष के नाटकों में युगबोध, डॉ॰ रमाकांत गावडे, पृ॰ 119
2. वही, पृ॰ 119
3. हिंदी नाटक रंगशिल्प दर्शन, विकल गौतम, पृ॰ 07
4. समकालीन हिंदी रंगमंच और रंगभाषा, आशीष त्रिपाठी, पृ॰ 17
5. एक और द्रोणाचार्य, डॉ॰ शंकर शेष, पृ॰ 27
6. वही, पृ॰ 10
7. वही, पृ॰ 22
8. वही, पृ॰ 73
9. वही, पृ॰ 71
10. शंकर शेष नाटकों में युगबोध, डॉ॰ रमाकांत गावडे, पृ॰ 134
11. एक और द्रोणाचार्य, डॉ॰ शंकर शेष, पृ॰ 13
12. वही, पृ॰ 14
13. वही, पृ॰ 27
14. वही, पृ॰ 27
15. वही, पृ॰ 61
16. वही, पृ॰ 31
17. वही, पृ॰ 71
18. वही, पृ॰ 64
19. वही, पृ॰ 07
20. वही, पृ॰ 37
21. हिंदी साहित्य कोश भाग-1 संपा॰ डॉ॰ धीरेंद्र वर्मा, पृ॰ 398
22. एक और द्रोणाचार्य, डॉ॰ शंकर शेष, पृ॰ 05
23. वही, पृ॰ 12
24. वही, पृ॰ 07
25. वही, पृ॰ 11
26. वही, पृ॰ 22
27. वही, पृ॰ 51

मो॰ 9420640244

 ISSN 0975-735X

श्री अबोधबंधु बहुगुणा का गढ़वाली साहित्य

डॉ० अर्चना रानी
प्रवक्ता हिंदी
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
कोटद्वार (गढ़वाल)

गढ़वाली साहित्य में बाल्मीकि और व्यास जैसे मनीषियों के समकक्ष उपाधि प्राप्त करने वाले श्री अबोधबंधु बहुगुणा ही हैं। आज गढ़वाली साहित्य के संसार में जिन विशिष्ट व्यक्तियों की गणना होती है, उनमें श्री अबोधबंधु बहुगुणा भी एक हैं। श्री अबोधबंधु बहुगुणा का जन्म 15 जून 1927 ई॰ को उत्तराखंड के जिला पौड़ी गढ़वाल की पट्टी चलणस्यूं के अंतर्गत झाला ग्राम में हुआ था। इनका असली नाम नागेंद्र प्रसाद था। इनके पिता इलाके के नामी वैद्य पं॰ मित्रानंद बहुगुणा (1890-1958) बहुत मृदुल स्वभाव, उदार हृदय और अत्यंत सहनशील व्यक्ति थे। इनकी माता श्रीमती बिंद्रादेवी (1897-1961 ई॰) खातस्यूं श्रीकोट के श्री गोविंदराम थपलियाल की सबसे छोटी बहिन थीं।

इनके पूर्वज अच्युतानंद (1270-1370 ई॰) को उनकी विद्वत्ता (ज्योतिष, वैद्यक, धर्मशास्त्र व संस्कृत भाषा साहित्य का ज्ञान) को दृष्टिगत रखते हुए गढ़देश नरेश कनकपाल ने उन्हें 'बहुगुण' उपाधि प्रदान की। इसी कारण उनके भारद्वाज गोत्री शर्मा कुल नामधारी वंशज 'बहुगुणा' कहलाए।

इनकी प्रारंभिक शिक्षा अपने ग्राम झाला की प्राइमरी पाठशाला में हुई थी। अपने पिता के संरक्षण में ये अमरकोश एवं बालबोध आदि भी पढ़ते रहे। तदुपरांत मिडिल स्कूल में खिरसू जाते ही इन्होंने अपने पुस्तैनी पेशे वैद्यक और ज्योतिष के बजाय अँग्रेजी पढ़ना अधिक उपयुक्त समझा। परिणामत: इन्होंने बाद में पौड़ी के मेसमोर हाईस्कूल में अध्ययन प्रारंभ किया, जहाँ इन्होंने अच्छी योग्यता दिखाई। किशोरावस्था तक पहाड़ में ही रहने के कारण इनके मन पर पर्वतीय जनजीवन और हिमालय के वनों की छटा का गहरा प्रभाव पड़ा।

हाईस्कूल पास करने के बाद ही ये दिल्ली चले गए थे तथा जुलाई 1945 ई॰ में दिल्ली पहुँचते ही इन्हें प्रेस इंफोरमेशन ब्यूरो में नौकरी मिल गई। किंतु स्टाफ छँटनी के कारण लगभग साल भर काम करने के बाद ही इनकी नौकरी छूट भी गई। तदुपरांत संघर्षरत रहते हुए अगस्त 1946 में इन्हें खाद्य विभाग में भारत सरकार की सेवा में नियमित रूप से सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। बाद में क्लर्क पद से हिंदी सहायक, वरिष्ठ अन्वेषक (हिंदी), हिंदी अधिकारी और उपनिदेशक (राजभाषा) जैसे विभिन्न पदों पर कृषि योजना और आपूर्ति मंत्रालयों में सफलतापूर्वक कार्य करते रहे। इनका विवाह 1650 ई॰ में सुमाड़ी कटूलस्यूं निवासी पं॰ भजराम नौटियाल की

दूसरी पुत्री सरजूदेवी से हुआ।

गढ़वाली में लिखित और संकलित साहित्य में से तीन चौथाई पर काव्य का अधिकार है। इसके बाद स्थान आता है कथासाहित्य और नाटक का। श्री अबोधबंधु बहुगुणा ने गढ़वाली साहित्य को अपनी लेखनी और चिंतन से अनेक रूप, अनेक आयाम, अनेक विधाओं के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है, हम इन्हें गढ़वाली भाषा का जयशंकर प्रसाद भी कह कहते हैं। जिस प्रकार जयशंकर प्रसाद कवि, नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार और निबंधकार थे, उसी प्रकार श्री अबोधबंधु बहुगुणा ने महाकाव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि सभी लिखे। गढ़वाली काव्य-संसार में श्री बहुगुणा की सृजन के क्षेत्र में महारत हासिल है। गढ़वाली भाषा के कई एक बिदके हुए और उपेक्षित शब्दों को अबोधजी ने अपनी स्नेह-भरी ममतामय प्रकृति से दुलारकर बहुराया है, और उन्हें उनका प्रकृत आसन सौंपकर उनकी दीर्घजीविता के प्रति आश्वस्त भी किया है। श्री अबोधबंधु बहुगुणा उत्तराखंड के गढ़वाली भाषा के गणमान्य कवि हैं। इनके काव्यों में गढ़वाल की बुद्धि झलकती है। इनके महाकाव्य 'भूम्याळ' पर ही विद्वान लेखकों ने जितने लेख लिखे हैं, उतने किसी भी पर्वतीय लेखक के कार्य पर नहीं लिखे गए।

ठाकुर शूरवीरसिंह पँवार के शब्दों में 'आपकी मान्य कृतियों में गढ़वाल की दिव्य आत्मा के जितने साक्षात् दर्शन होते हैं और जितना सुंदर, सरस तथा स्वाभाविक वर्णन इस पुण्य भूमि की समस्त छवि परंपरा एवं ऐतिहासिक घटनाओं का उनमें मिलता है, उससे स्वत: प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि केदारखंड गढ़वाल का सपूत कविकुल चूड़ामणि कालिदास ही आज दो हजार वर्ष पश्चात् पुन: आपके रूप में, शरीर धारण कर गढ़ सरस्वती के साहित्य सदन के भंडार की पूर्ति करने को अवतरित हो गया है।'

चाटुकारिता और विज्ञापनबाजी से कोसों दूर रहकर अपने साहित्यिक कार्यों में कर्मठता से रत रहनेवाले साहित्यपुरुष अबोधबंधु बहुगुणा देशभक्ति और समाज-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत हैं। इन्होंने ग्रामीण पात्रों के माध्यम से श्रमजीवी कामगारों एवं अभावग्रस्त लोगों की आशा आकांक्षाओं को वाणी दी, जनजीवन में विसंगति पैदा करनेवाली व्यवस्था के विरुद्ध अभिव्यक्ति देकर मानवता की सुरक्षा के प्रति सजग किया। साहित्य की सभी विधाओं को सशक्त रूप में अनुप्रमाणित करते हुए इन्होंने समाज को ऐसी कालजयी कृतियाँ दी हैं, जो अपनी प्रौढ़ता और उत्कृष्टता के प्रभाव से साहित्य को संस्कृति से जोड़कर समाज को उन्नत बनाने में सक्षम है। आज का लेखक जबकि समाज में जो कुछ बुरा है, उसकी भर्त्सना को ही केंद्रबिंदु बनाए हुए है, लेकिन इन्होंने उसमें जो अच्छा है उसे ग्रहणशील मानते हुए उसकी ओर ध्यानाकर्षण किया है। 1954 ई॰ में धुँयाल के प्रकाशन के उपरांत इन्हें गढ़वाली भाषा की क्षमता और संकल्पना का आभास हुआ और इन्होंने गढ़वाली में लिखना आरंभ किया।

उनकी साहित्यिक कृतियों में गढ़वाली काव्य में भूम्याळ (1977), तिड़का (1958), रणमंडाण (1963), पार्वती (1966, पार्वती 1994), घोल (1976), अंखपंख (1980), दैसत (1996), कणखिला (1996), शैलोदय (1999), भारत भावना (2003), गीत गंधर्व (अप्रकाशित) लोकगीत में धुंयाल (1954) लोककथा में कथ्था घालि कथगुली (गढ़वाली में अप्रकाशित) नाटक में माई को लाल और अंतिम गढ़ (1973 में प्रकाशित), एकांकी एवं गीतिनाट्य में चक्रचाळ, कचबिटाळ, नागमयूर, तिलपातर, फरक, दुघर्या, जोड़-घटौणो, माँगण, किरायादार,

 ISSN 0975-735X

अंद्रताळ, कुलंगार, काठै विराळी नामक बारह एकांकियों तथा सृष्टि-संभव, नौछम्या नारैण, छैलाअ छौळ और जीतू हरण नामक चार गीति नाट्यों का संग्रह (प्रकाशित 1986) गद्य, गीत, निबंध आदि में एक कौंळि किरण-जिसमें परायो मन (गद्य गीत), गाड-गाड को पाणी (यात्रा वृत्त), दँगळयौणे परंपरा (निबंध), थर्प और थौळ (निबंध) और ब्यूँत विचार (साहित्य संवाद) कहानी संग्रह में कथा कुमुद (1999), रेत की रस्सी (अप्रकाशित), पूफु कौंका डेरा (कहानी) रगड्वात (2003) उपन्यास में भुगत्यूं भविष्य (1997) संपादित ग्रंथ में गाड म्यटेकि गंगा (1967), शैलवाणी (1981) भाषा विज्ञान में गढ़वाली व्याकरण की रूपरेखा (1960) पत्रा में बणवास का बारा बर्स (अप्रकाशित) तथा हिंदी काव्य में दग्ध हृदय (1983) अरण्य रोदन (1989), सर्व विकृति (2001) है।

डॉ॰ सरला रमण के शब्दों में 'गढ़वाली भाषा का प्रथम महाकाव्य 'भूम्याळ' रचकर इन्होंने आधुनिक गढ़वाली को नया प्रेरणा स्वर दिया है।' इनका भूम्याळ देश, काल ओर परिस्थितियों का ऐसा साक्ष्य है, जिसकी क्षेत्रीय भाषा राष्ट्रीय स्वर को उभारने में किसी प्रकार बाधक नहीं है। अलंकारों की दृष्टि से यह रचना गढ़वाली की सर्वोत्तम रचना है। इसमें कहीं-कहीं तो कवि का ऐसा काव्य-कौशल देखने को मिलता है जिसे हम अद्वितीय कह सकते हैं–

चित्राकारें चंट चिंता, चंद्रिका मा चौकली।
छैल् छवपदी छब्लट्या छप, छल्बली छ्वीं छौंकली।

भूम्याळ आध्यात्म दर्शन सांसारिक व मनुष्य के कर्त्तव्यों का एक ज्योतिपुंज है, जिसकी आभा 'वसुधैव कुटुंबकम्' का संदेश प्रसारित करती है। मानव द्वारा विश्वकल्याण के लिए किए जा रहे संघर्षों की परिणति ही 'भूम्याळ' है।

इन्होंने पहाड़ के जन-जीवन को मुख्यत: अपने काव्यों का विषय बनाया और वहाँ के लोगों की घुटन को अभिव्यक्ति दी। इनकी कविता-संग्रह 'तिड़का' के संबंध में 4 मई सन् 1958 में गढ़वाल साहित्य मंडल के द्वारा 'द्वी वचन' लिखे गए–

'तिड़का आग का होवन या पाणी का लोगू को ध्यान खैंच ही लैंदन।'

दोहा-छंदों में छिटके ये व्यंग्य भाव के छींटे जहाँ भी गिरते हैं वहीं पर अपना रंग छोड़ जाते हैं।

आतम रक्षा पैलि च, हमरो पालन बाद।
सौकरू का इस्टाम की, ऐगे ब्यटा मियाद।

राष्ट्रीय कविता संग्रह रणमंडाण गढ़वाली वीररस का काव्य है। वीररस के ही छंदों में लिखी गयी ये वीररस से परिपूर्ण रचनाएँ गढ़वाली भाषा के ओजपूर्ण शब्दों में सँवारी गई हैं। इसमें कविवर अबोधबंधु बहुगुणा की 22 कविताएँ संगृहित है। 'रणमंडाण' की सभी कविताएँ प्रभावशाली और मर्म-स्पर्शी कविताएँ हैं। भाषा भावानुकूल और शैली वीररस की चासनी में डुबकर सहृदयों के लिए रसवर्चणा करवाने में सर्वदा सक्षम है–

हिट जा धमाधम जवानो! हिट जा धमाधम।
चीन छ हत्यौणु त्यरा चौखंबा का खम।

गढ़वाली भाषा स्वयं में मीठी भाषा होने के कारण कविवर अबोधबंधु बहुगुणा की हृदय से निकले पार्वती कविता-संग्रह को गढ़वाली साहित्य का 'गीत गोविंदम्' कहा जा सकता है। 101

गीतों वाले इस कविता-संग्रह को हम गढ़वाली भाषा की पुरानी तथा नई गीतशैली का सेतु कह सकते हैं। गढ़वाली जीवन जहाँ उच्च आदर्शमय है, वहाँ उसका साहित्य भी कम उत्कृष्ट नहीं– यह बात इस कविता संग्रह से भली-भाँति मालूम हो जाती है।

झूटिफीटी ही रई तू
प्यारी मेरी उर्वसी
जन्म ल्हे क्यी धर्ति मा कभि
तू अज्यूं ऐ नी छई
मेरि कविता मा मगर
दगड़्यांण छय छपि त्वी रई
छै नि छै पर हैंस जांदी
सर सम्वड़ि मा म्हैक सी
पार्वती

घोल वह महत्त्वपूर्ण गढ़वाली कविता-संग्रह है, जिसमें पहाड़ी प्रकृति, भाव, भाषा, धरती की छवि को विद्वान रचनाकार ने बहुआयामी दृष्टि से देखा है। यह पर्वतीय प्रदेश से संदर्भित 46 मुक्त कविताओं का संग्रह है।

फुर्र-फुर्र उडैक्यि अयां हम
अयां यख चारो टिपणू छा
पर यखाअ लम्बा लहरौं मा
यख, दूर-इतगा दूर
उड़ौणे रौड़ मा ब्यळमें गया।

'अंख-पंख' कविवर श्री अबोधबंधु बहुगुणा का एक बालोपयोगी गढ़वाली कविता-संग्रह है। इसमें 27 बाल कविताओं को स्थान दिया गया है।

वास्तव में 'दैसत' कविता-संग्रह उत्तराखंड राज्य आंदोलन से जुड़ी 50 गढ़वाली कविताओं का संग्रह है। 'दैसत' कविता-संग्रह की कविताएँ वास्तव में उत्तराखंड आंदोलन के दौरान यहाँ की जनता की घाटियों में गूँजती आवाज और हृदय में जलती हुई ऐसी आग थी, जो नए जीवन को एक बार फिर शुरू करने के लिए जली थी। उस आंदोलन के समय–

आगास मा जगद आग
पाताल मा मंझद आग
धर्ति मा करि कमैक्यी ब्यखनु दौं
रीति चुल्ली देखिक्यी खौलेंद आग
अधिकार वंचित की नि होंदी कखि सुणै
धुरक्यां फगोस्यां आंसु मा फोळेंद आग
गाडु-गाडू धारू-धारू धम्कदी बौलेन्द आग

'कणखिला' मुक्तककाव्य गढ़वाली भाषा में लिखा गया एक अद्वितीय काव्य है। संस्कृत के छंदों में बंधे आंचलिक घटनाओं के भाव से भरे और गढ़वाली भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त ये सभी कणखिले जहाँ साहित्य जगत की सरसता के संपर्क में आकर सहृदय पाठकों को साधारणीकरण

 ISSN 0975-735X

की स्थिति तक ले जाते हैं। इस रचना के प्रारंभ में कविवर बहुगुणा ने गढ़वाली भाषा में माँ सरस्वती की वंदना करते हुए कहा है–

अंतश्चेतना मा छा।
अग्निकण जख जो लुक्यां
बाण मा कखी हरच्यां
क्षणू का हाथ छा अयां
जिकुड़ि स्हौणी रये वुंका
तिताळा दंश कणि-कण्यी
छंदु मा वूं शब्दमय कर्नू
ह्वे दैणी वीणावादिनी।।

'शैलोदय' एक सफल कविता-संग्रह की श्रेणी में आता है। यह 24 कविताओं का संग्रह है–

दे शैलोदय! तू दर्शन दे
रूणझुण रांगारूण ज्योति नई
मेरी घाट्यो मा बरखण दे

'भारत भावना' काव्य एक गढ़वाली राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह है, जिसमें राष्ट्रीय भावना को उजागर किया गया है। कवि की इस रचना में भाव की अद्वितीय कोमलता के दर्शन होते हैं–

हे बड़ी सबसे बड़ी, ठकुराण वंदे मातरम्।
हे मयेड़ी! जीव-जड़ की, जान वंदे मातरम्।

'गीत-गंधर्व' श्री अबोध बंधु बहुगुणा का एक अप्रकाशित कविता संग्रह है। जिसमें 270 गीत संगृहीत हैं। इनकी अपनी ही अनोखी शैली में रची इस कृति की अप्रकाशित रचना निम्न है–

तड़फणी माछि रै रेत ही मा,
आग लगै जैन यी जिन्दगी माँ।

श्री अबोध बंधु बहुगुणा के लोकसाहित्य का साक्षी 'धुँयाल' एक समय में गढ़वाल के मौखिक साहित्य की संपदा रही है। माँगल, थड़या गीत, चौंफला, वार्ता, कुलाचार, पंवाड़ा, खुदेडा, जागर, तंत्रा-मंत्रा, होरी, चाखुल्या गीत और नया गीत के नाम से प्रकाशित ये सभी गीत लोकगीतों का शास्त्रीय विभाजन हैं। इस संग्रह में लगभग 100 से कुछ अधिक गीत ही हैं, तो भी पहाड़ी अंचल के लोग मानस का सुहावना परिचय इन गीतों से प्राप्त हो जाता है। इन गीतों से सिद्ध होता है कि गढ़वाल का हृदय मातृभूमि के विराट हृदय का अभिन्न अंग है। गीत का वाद्य द्वारा अपने इष्ट का आवाहन यही धुंयाल का शब्दार्थ है। राष्ट्र की योजनाओं के सफल तथा असफल होना इन योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए लोगों को प्रेरित करने जैसे गीतों को इन नए गीतों के अंतर्गत रखा जाता है।

श्री अबोधबंधु बहुगुणा गढ़वाली भाषा के उन्नायकों में से एक हैं। श्री अबोधबंधु बहुगुणा जी ने साहित्य-सर्जना करने एवं गढ़वाली भाषा को सम्मान दिलाने, उसमें साहित्य रचने और उसका स्तर ऊँचा उठाने के लिए अनुकूल वातावरण बनाने का लगातार प्रयत्न किया। मोहनलाल बाबुलकर का कथन है कि 'पहाड़ी भाषा (गढ़वाली) में अबोधबंधु बहुगुणा जैसे व्यक्ति ही लिख

सकते हैं। इनकी कलम का सानी नहीं है।' इसी प्रकार श्री भक्तदर्शन ने इन्हें गढ़वाली भाषा और साहित्य का सफल उन्नायक कहा है। इनका संपूर्ण गढ़वाली साहित्य प्रकाश में आने पर इन कथनों की पूर्णरूपेण पुष्टि करते हुए यह भी सिद्ध करेगा कि क्षरित होते जा रहे गढ़वाली शब्दकोश का संरक्षण करने में इनका कितना महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। बहुआयामी व्यक्तित्व और कृतित्व के धनी श्री अबोधबंधु बहुगुणा की पांडुलिपियों की खोज एक उल्लेखनीय देन है। गढ़वाली साहित्य की श्रीवृद्धि करने के लिए ये सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। इन्होंने गढ़वाली साहित्य के इतिहास के लिए बुनियादी काम किया है।

अबोध जी का व्यक्तित्व सरलता, सहृदयता और निर्भीकता का बिंब है। सामाजिक व्यवहारिकता में कुशल और चिंतन में दार्शनिक अबोध जी गढ़वाली भाषा के श्रेष्ठ साहित्यकारों में अग्रणी कवि, लेखक, आलोचक संपादक और समीक्षक हैं। इन्होंने अपने आपको पूर्णतः गढ़वाली के लिए समर्पित कर दिया। आज गढ़वाली में लेखकों का जो एक बड़ा दल-बल नजर आ रहा है, उसके पीछे प्रत्यक्ष या परोक्ष में बहुत कुछ अर्थों में इनका हाथ है। इस बात की पुष्टि जयश्री पुरस्कार के समय इन्हें दिए गए सम्मान-पत्र में इन शब्दों में की गई है कि 'इनके पीछे नए लेखकों की एक पंक्ति खड़ी होती जा रही है। अबोधबंधु बहुगुणा एक व्यक्ति मात्र का नाम नहीं है वह तो गढ़वाली भाषा साहित्य के एक युग की पहचान है।' इन्होंने गढ़वाली साहित्य के इतिहास के लिए बुनियादी काम किया है। गढ़वाली साहित्य का अध्ययन और मनन इनकी पुस्तकों के बिना पूरा हो ही नहीं सकता। उनकी समाज सेवा के पहलू को कभी भी भुलाया नहीं जा सकेगा। हम आशा करते हैं कि श्री अबोधबंधु बहुगुणा का गढ़वाली साहित्य उत्तराखंड की भाषा एवं साहित्य के प्रचार-प्रसार का सहयोगी बनकर गढ़वाली साहित्य के इतिहास को एक विशेष दिशा प्रदान करता रहेगा।

संदर्भ

1. गढ़वाली व्याकरण की रूपरेखा, अबोधबंधु बहुगुण, वर्ष 1960
2. गाड म्यटेकि गंगा, अबोधबंधु बहुगुणा, वर्ष 1976
3. धुँयाल, अबोधबंधु बहुगुणा, वर्ष 1983
4. अभिनंदनम् श्री अबोधबंधु बहुगुणा करकमलार्पित, डॉ॰ नंदकिशोर ढौंडियाल 'अरुण', वर्ष 2004

 ISSN 0975-735X

कृष्ण काव्यधारा में मानवमूल्य

मनजीत कौर, पीएच॰डी॰ शोधार्थी
भाषा विज्ञान और पंजाबी कोशवारी विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (पंजाब)

कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण को केंद्रबिंदु मानकर लोकजीवन को रचा। समाज को गति, वैचारिक धारा प्रदान करनेवाले कृष्ण भक्त कवियों ने लोकजीवन को समझकर मानवमूल्यों को समझने का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि मूल्यों तक मनुष्य ने ही नहीं पहुँचना, अपितु ईश्वर को भी इसके बीच आना है। उनका प्रयास था लोकजीवन की मान्यताओं, रूढ़ियों और संकीर्णताओं को हटाकर गतिशील जीवन की अपेक्षाओं, मूल्यों तक मनुष्य को ले जाना। मनुष्य ही मूल्यों की स्थापना करता है। मूल्यों की प्रधानता के आधार पर ही युग का निर्धारण होता है। जीवन के यथार्थ में से जीवन के सत्य को पाना साहित्यकार की भूमिका हुई, कृष्णभक्तों ने भी इसी तरह किया। साधना का रूप यथार्थ के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया। ज्ञान, कर्म और प्रेम के साथ जीवन के लिए जो आदर्श थे, उसमें यथार्थ को समर्पित करके अपने-अपने ढंग से मूल्यों एवं मानकों को व्यंजित किया गया। कृष्णभक्तों ने सामान्य जनजीवन के बीच में ही चरम मूल्यों की अवस्थिति देखी थी। इन कवियों ने प्रेम को ही मूल्य के रूप में स्वीकार किया, चाहे वह सख्य, दांपत्य, वात्सल्य और मैत्री में ही बँधा रहा। यह प्रेम भी नारदीय भक्तिसूत्र, महाभारत और भागवत् से आता हुआ प्रेम है, जिसको लोकजीवन की सहजता प्रदान की गई।

सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक मूल्य और कृष्णकाव्य

आधुनिक हिंदी साहित्य की यात्रा तक अपनी-अपनी सीमाओं में मानवीय गौरव प्रतिष्ठित रहा है। भारतीय गौरव की प्रतिष्ठा ही हमारी परंपरा की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है। भारतीय परंपराओं के मूल्यबोध की दृष्टि के रूप में बुद्धिवाद, भोगवाद और मुक्तिवाद प्रचलित रहे हैं। इन दृष्टियों के विभिन्न रूपों और आयामों को प्रधानता और अप्रधानता मिलती रहती है। विभिन्न मूल्य विभाग अपनी-अपनी साधना के अनुकूल दृष्टियों को समर्पित करते हैं। भारतीय साहित्य का विकास व्यावहारिक और सात्विक के भेद के साथ अग्रसित रहा है। व्यावहारिक मूल्य कर्म-प्रधान रहा और सात्त्विक मूल्य बुद्धि प्रधान। व्यवहार में ज्ञान की खोज एक साधन के रूप में रही और उस ज्ञान को अर्थोपयोगी प्रमाणित किया गया। विचारधाराओं में युगानुकूल विकास और परिवर्तन भी होता रहा है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, दार्शनिक, धार्मिक आदि मूल्यों में परिवर्तन आता रहा है और इसका प्रभाव साहित्य पर भी बराबर पड़ा। समस्त मूल्य समाज से ही संबंधित होते हैं। साहित्य और कला सामाजिक चेतना के प्रसार का प्रमुख साधन हैं। मानव-जीवन सामाजिक प्रगति की प्रक्रिया में सदैव विकासशील रहा है। भक्तिकाल में सामाजिक व्यवस्था

बहुत कुछ आदिकाल जैसी ही थी, किंतु सांप्रदायों की बढ़ती संख्या, धर्माचार्यों की समृद्धि तथा मुसलमानों का साम्राज्य स्थापित हो जाने के कारण सामाजिक ढाँचे में बदलाव अपेक्षित था। आडंबरों और पाखंडों के कारण जर्जर समाज-व्यवस्था को मूल्य देने के प्रयास में ही भक्तिकालीन साहित्य की रचना हुई। मनुष्य को मनुष्य के साथ जोड़ने के प्रयास में ही मध्ययुगीन संतों एवं भक्तों ने दिव्य सत्ता को ही मानवीय धरातल पर खींचा।

कृष्णभक्त कवियों ने धार्मिकता को स्वीकार अवश्य किया, किंतु वह उनके सामाजिक जीवन के यथार्थ या मूल्यात्मक अपेक्षा की अभिव्यंजना में बाधक नहीं हुई। भक्तिकालीन काव्य-आंदोलन का केंद्रबिंदु यही था कि ईश्वर के सामने, सभी चाहे ऊँची जाति के हों या नीची जाति के हों, सब समान हैं। सर्वसामान्य की भूमि पर जाति-पाति के भेदभाव को मिटा देना ही भक्ति की क्रांति का केंद्र बिंदु था।

भक्ति में कहाँ जनेऊ नाति।
सब दूषन भूषन विप्रन के, पति छू धरनि छिनाति।

कृष्णभक्त कवियों ने जिस प्रेम का वर्णन किया है उसमें सच्चाई है, गहराई है, तन्मयता और स्वाभिमान है, स्वच्छता है। समर्पण है जो संयोग, वियोग, सख्य और वात्सल्य में पूरा हुआ है। बुद्धि की सहायता से मनुष्य राजनीतिक संस्थाओं के मूल्यों की खोज करता है। राज्य वह नियामक सत्ता है जो मनुष्य के सामाजिक मूल्यों को अनुशासन प्रदान करती है। जनता की शक्ति तंत्र में बँधकर उसकी स्वतंत्रता की रक्षा करती है और उसे स्वच्छंद होने से बचाती है। राज्य का लक्ष्य भी यही है कि जन को शक्ति से ही जन का कल्याण करे, किंतु राज्य की जो व्यवस्था हो चुकी थी, उसमें जन की शक्ति का प्रयोग जन के शोषण और दमन के लिए किया जा रहा था। कृष्ण सच्चे रूप से राज्य और समाज के अपेक्षित मूल्यों की अभिव्यंजना बनकर व्यक्त हुए हैं।

ठकुरायत गिरिधर की साँची।
कौरव जीति जुधिष्ठिर राजा, कीरति तिहूँ लोक में साँची।

सूरसागर, पद 18

इन कृष्णभक्तों ने यथार्थ राजनीतिक निदर्शन के साथ युगीन अपेक्षा के क्रम में ऐसी जनशक्ति की कल्पना की, जो कृष्ण में अपना अधिष्ठान देखती है, जिसकी अवस्थिति कृष्ण मन में नहीं, जन में थी। मूल्यों को परिसर्पित करता हुआ मूल्यों में सिमटता हुआ जनजीवन कृष्ण को केंद्र बनाकर प्रतिपादित हुआ है। यथार्थ और अपेक्षा के क्रम में सच्चे मूल्यों की व्यंजना इन कृष्णकवियों ने की थी।

मानव-जीवन की सुरक्षा और कर्मपरायता के लिए अर्थ आवश्यक है। अर्थ के अंतर्गत समस्त उपयोगी और उपभोग्य वस्तुओं की आवश्यकता होती है। मनुष्य का व्यावहारिक जीवन ही काम-कर्म और भाग की व्यवस्था है। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मूल्य संस्थानों का विकास मनुष्य के व्यावहारिक जीवन के कारण हुआ। अर्थ भी धर्म और काम की तरह एक पुरुषार्थ स्वीकारा गया है। मनुष्य की सुख-संवेदना काम-सुख के रूप में दिखाई देती है। इनके साथ मानव-जीवन की अपेक्षाएँ जुड़ी होती हैं। कर्म का अर्थ ही मूल्य है, जो उपयोगिता की अभीष्टा पर निर्भर करता है। मनुष्य का आर्थिक अधिकार स्वार्थी होने में नहीं अपितु समाज की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति में है। आर्थिक लगाव के कारण ही कृषि तथा अन्य प्रकार के

 ISSN 0975-735X

उत्पादन का आविष्कार हुआ। भक्तिकालीन कवियों से यह स्पष्ट होता है कि उस समय विभिन्न जातियों का कार्य अलग-अलग था और वे विभेद से भी आपन्न थे। अर्थ के आधार पर ही उनकी अभिजातता और निम्नता मानी जाती है। नरोत्तमदास ने स्पष्ट कहा है कि–

क्षत्रिन के प्रण युद्ध ज्यों बादल साजि चढ़े गज बाज नहीं।
वैश्य को बानिज और कृषिपन, शुद्र के सेवन नीति यही।
विप्रन के प्राण है जू यही सुख संपत्ति सो कुछ काज नहीं।
वे पढ़िबो के तपोधन है, कन माँगत ब्रह्मणैं लाज नहीं।

कविता कौमुदी, पृ॰ 147

आर्थिक संदर्भ में समानता का सभी भक्तों ने विरोध किया। मनुष्य का मूल्यांकन अर्थ के आधार पर नहीं होना चाहिए। कृष्णभक्तों ने धर्म के सात्त्विक मूल्यों के भीतर एषणीय स्तर पर व्यावहारिक मूल्यों का समाहार किया था। सात्त्विक और व्यावहारिक सहज मूल्यों के रूप में जीवन की गतिशील सत्ता को इन भक्तों ने स्वीकार करते हुए जनजीवन को कर्म और उत्पादन की मानवीय परिधि में रखा।

मनुष्य ने बौद्धिक होने के कारण ही सुखी जीवन के लिए संयम और सादगी को महत्त्व दिया। मनुष्य ने संवेदनात्मक और बुद्धिगत दोनों प्रकार के ज्ञान के माध्यम से संसार और जीवन की गति को समझने का प्रयास किया और जीवन के मूल्य को स्थापित किया और अपने ज्ञान और कर्म की ओर उन्मुख किया। धर्म में साधन और साध्य दोनों को महत्त्व दिया गया, जिस कारण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थ माने गए। मनुष्य की यह सबसे उत्कर्ष कल्पना थी, जो जीवन में साध्य मानी गई। धर्म में जिस ज्ञान की आवश्यकता समझी गई, वह नित्य और सत्य माना गया। भारत में धर्म नैतिक जीवन का नियामक है। वह जीवन की क्रियाओं का नैतिक तौर पर निर्धारण करता है। जीवन के प्रत्येक आयाम पर धर्म का आग्रह उसे एक प्रकार का विशिष्ट मूल्य प्रदान करता रहा है। धर्म के कारण ही सामाजिक न्याय की व्यवस्था हुई और नैतिक स्तर पर समता का आदर्श प्रतिपादित हुआ। धार्मिक न्याय की व्यवस्था आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी प्रकार के व्यवहारों का नियामक बनी।

दर्शन का कार्य विश्व को समग्रता में पकड़ना है। वह विज्ञान में से एकीकृत ज्ञान है। चिंतन का चिंतन होने के कारण दर्शन जिस तथ्य को सामने रखता है, उसमें तत्कालीन मूल्य का परिशोधित रूप दिखाई देता है। दर्शन अपनी विश्लेषण-प्रक्रिया में मनुष्य की सौंदर्य, नैतिकता तथा धार्मिक अध्यात्मिक अनुभूतियों पर विचार करता है। दर्शन के द्वारा ही मानव-संस्कृति को आत्म-चेतना प्राप्त हुई है। दर्शन के द्वारा मनुष्य समस्त सार्थक अनुभूतियों एवं विज्ञानों की प्रामाणिकता के द्वारा विश्व का एक समग्र चित्रण खींचने की कोशिश करता है।

कृष्णभक्तों ने प्रेम को केंद्रबिंदु बनाकर अपनी साधना को लौकिक सहजता प्रदान की। इनकी भक्ति में श्रद्धा को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया, क्योंकि सामाजिक समता और पुरुष-स्त्री के साम्य आधारित प्रेम में इसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी। पति-पत्नी का प्यार काम-भावना पर आधारित होता है। चाहे वह स्वकीया भाव में हो, चाहे परकीया भाव में। क्योंकि 'कामभाव की चरम सीमा स्त्री-पुरुष के संबंध में होती है, जो मानवीय संबंधों में सबसे अधिक घनिष्टता और तल्लीनता का द्योतक माना जाता है। प्रेम की अतिशयता में ही मनुष्य कड़ियों से

मुक्ति बड़ी आसानी से पाता है। अपने प्रेम की स्वाभाविकता की स्थापना के लिए गोपियाँ अपने इष्ट प्रेम के आलिंगन में बँध जाना चाहेंगी। मनुष्य का सारा वेग तो प्रेम में ही छिपा है–

पित का चोर अबहीं जो पाऊँ।
हृदय कपाट लगाई जतन करि अपने मनहिं मनाऊँ।
जबहिं निसंक होत गुरुजन ते तिहिं औसर जौं आवै।
भुजनि धरौं भरि सुदृढ़ मनोहर बहुदिन कौ फल पावै।
लै राखैं कुच बीच चाँपि करि तन कौ ताप बिसारौं।
सूरदास नंद-नंदन को गृह-गृह डोलनि श्रम हारौं।

सूरसागर, पृ॰ 916

अलौकिक दर्शन और धर्म को इन कृष्णभक्तों ने मानवीय व्यापार में प्रस्तुत किया। मनुष्य-जीवन में ही संसार की वेदना, पीड़ा और कष्ट है और यही अलौकिक आनंद भी है। लौकिक सहजता में ही नैगर्सिक आनंद मिलता है। भक्तिकाल में जिस संस्कृति का स्वरूप मिलता है, वह भक्तिप्रधान है, जिसमें ज्ञान कर्म और भक्ति का प्राधान्य है। कृष्णभक्तों ने नए सांस्कृतिक मूल्यों की अपेक्षाओं को समझा और सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना की। अत: कृष्णभक्तों का साहित्य अपनी सीमा में मानव की महत्ता को बाँधता है।

संदर्भ

1. कृष्णभक्ति में रीति-परंपरा, राजकुमारी मित्तल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1961
2. दर्शन साहित्य और समाज, शिवकुमार मिश्र, पीपुल्स लिटरेसी 517, मटिया महल, दिल्ली, 1981
3. भक्तिकाव्य और लोकजीवन, शिवकुमार मिश्र, पीपुल्स लिटरेसी, नई दिल्ली, 1983
4. मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, हरगूलाल : भारतीय साहित्य मंदिर फव्वारा, दिल्ली द्वारा हिंदी अनुसंधान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1967
5. मानवमूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, ज्ञानपीठ, लोकोदय ग्रंथमाला, 1960
6. साहित्य लहरी, प्रभुदयाल भीतल, साहित्य संस्थान, मथुरा, 1961
7. सूरसागर, खंड 1-2, नागरी प्रचारिणी ग्रंथमाला, 1948
8. सूर की काव्यकला, मनमोहन गौतम, भारतीय साहित्य मंदिर फव्वारा, दिल्ली।

मो॰ 8872175013
manjeetmehra088@gmail.com

ISSN 0975-735X

आधुनिक समस्याओं के समाधान में संस्कारों की भूमिका

डॉ॰ अंशुमान

सुंदर आदतों को संस्कार कहा जाता है। मन, वाणी व आत्मा की पवित्रता का संस्कार से गहरा संबंध हैं। जीवन को सुरक्षित, व्यवस्थित एवं मर्यादित बनाने में संस्कारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। मानव का बाल्यकाल कच्ची मिट्टी की तरह है, जिसे अच्छा या बुरा स्वरूप प्रदान करना माता-पिता रूपी कुंभकारों के हाथ में है, क्योंकि **'यत्रवे भाजने लग्नः, संस्कारो नान्याथाभवेत्'** अर्थात् नए कच्चे बर्तन पर की गई चित्रकारी उसके फूटने पर ही मिट सकती है, यदि कोई उसे पुनः हटाना चाहे तो उसका परिमार्जन संभव नहीं है। ठीक इसी प्रकार बचपन के संस्कार अमिट होते हैं। मानव-मन पर उनकी छाप बहुत गहरी होती है।

आज हमारी संस्कृति पाश्चात्य प्रभाव से पूर्णतया प्रभावित है। आज का मानव अनैतिकता के पाश में नख-शिख आबद्ध है। उसके जीवन का परम लक्ष्य केवल सुखोपयोग ही है, जिसके कारण वह अशांत है, दुःखी है और वर्तमान से असंतुष्ट हैं। भोगलिप्साओं की वृद्धि के साथ वह भौतिक सुख-साधनों की पूर्ति के लिए प्रयत्न करता है। खाओ, पिओ और मौज उड़ाओ के सिद्धांत ने मानव को विनाश के गर्त में डाल दिया है। इस भौतिक चकाचौंध में मानव अपने आहार, विहार, व्यवहार आदि क्रियाओं से विमुख हो गया है। इस संस्कारविहीनता के कारण ही आज मानव वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक सभी दृष्टिकोण से भ्रष्ट हो गया है, जिनके समाधान हेतु हमें अपनी वैदिक संस्कृति का अनुशीलन करते हुए वेदनिहित संस्कारों पर पुनः बल देने की अत्यंत आवश्यकता है।

वेद का विषय धर्म है तथा धर्म का संपूर्ण रूप से पालन करने के लिए शास्त्रों में वर्णाश्रम व्यवस्था का विधान किया गया है। आश्रम-व्यवस्था के अंतर्गत बालक के पूर्वजनित दुष्कर्मों की निवृत्ति हेतु गर्भाधान से मृत्युपर्यंत सोलह संस्कारों के माध्यम से अंतःकरण की शुद्धि का प्रयास किया गया है। जहाँ तक पूर्वजन्म का प्रश्न है, तो जब जीवात्मा एक शरीर का त्याग कर दूसरे शरीर को धारण करती है तो उसके साथ पूर्वजन्म के प्रभाव, वासनाएँ आदि संस्कार के रूप में प्राप्त होते हैं, जिनकी परिशुद्धि वर्णाश्रम में प्रतिपादित व्यवस्था द्वारा होती है। अतः वेदाध्ययन, उपनयन आदि का संबंध वर्णों, आश्रमों से होना स्वाभाविक ही है। इन संस्कारों के द्वारा जहाँ एक ओर मानव के वैयक्तिक स्तर की समस्याओं का परिशोधन होता है तो वहीं दूसरी ओर उससे जुड़ी अन्य पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक अथवा भौगोलिक समस्याओं का निराकरण भी संस्कारों के परिपालन द्वारा ही संभव है।

मातृ देवो भव।
पितृ देवो भव।

आचार्य देवो भव। तैत्तिरीय उपनिषद्

इस उपनिषदीय वाक्य के अनुसार माता प्रथम गुरु के रूप में बालक को सुसभ्य बनाने के उद्देश्य से उठने-बैठने, अभिवादन करने, बड़ों का सत्कार करने तथा उचित संस्कार के साथ परस्पर वार्तालाप का अभ्यास कराती है। तत्पश्चात् गुरु रूप में पिता 5वर्ष की अवस्था तक बालक में पारिवरिक, सामाजिक, धार्मिक आचार, नैतिकता, सद्व्यवहार करने के गुणों की अभिवृद्धि करता है तथा पैतृक-व्यवसाय का प्रारंभिक संस्कार डालता है। किंतु अभिभावकों के इस अथक् प्रयास से बालक का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता, तब उसे गुरुकुल में भेजने का निर्देश दिया गया है। जहाँ वह गुरु के सान्निध्य में रहे अन्य अध्ययनार्थियों के साथ रहता हुआ गुरु के प्रति आदर, सहपाठियों के साथ स्नेह, सहयोग, सेवा-भाव आदि गुणों को ग्रहण करता है। गुरु-मुख से उच्चरित ज्ञानामृत सरिता का पान करता है तथा विभिन्न कलाओं में पारंगत होता हुआ परिवार, समाज, राष्ट्रोत्थान में अपना अभूतपूर्व सहयोग देता है। **भर्तहरि** ने कहा है कि–

साहित्य संगीत कलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।

तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशुनाम्।।शतकत्रय 796

अर्थात् ज्ञान के अभाव में मनुष्य पशु-तुल्य है। अतः शिक्षा-संस्कार मानव में निहित पाशविक वृत्ति को नष्ट करता है, तथा उससे ऊपर उठाकर मनुष्य को अन्य प्राणियों में श्रेष्ठता प्रदान करता है। लौकिक-पारलौकिक, आचार-विचार की क्षमता, सामर्थ्य और बल प्रदान करता हैं। अंततोगत्वा मानव सर्वाभ्युदय की ओर अग्रसर होता है। आत्मा की शुद्धि के साथ-साथ भौतिक, आध्यात्मिक गुणों का विकास होता है। इस प्रकार मानव में गुणों का आधान ही संस्कार कहा जाता है।

अतः मानव-जीवन के गुण जीवन जीने की पद्धति से आते हैं। इसमें जहाँ आंतरिक गुणों का बहुत हाथ है, वहीं जीवन-दर्शन और जीवन-लक्ष्यों की भी कम महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं है। प्रत्येक समाज की जड़ें उसकी जीवन-शैली, परंपरा, मान्यता आदि पर निर्भर होती हैं, चाहे वे धार्मिक हों या लौकिक। यह दुःख की बात है कि आज का मानव आस्था खो बैठा है। वह दिशाहीन होकर संस्कृति की बात करता है, लेकिन उसका आचरण निश्कृष्ट होता है, जिसके फलस्वरूप जीवन को जीने की प्रक्रिया में जीवन खो जाता है। धन, ऐश्वर्य, भोग पद, यश जैसी बहुत सारी भौतिक संपदा ऐसी वस्तुएँ हैं, जो क्षणिक सुख तो दे सकती हैं, किंतु जीवन की सच्ची तुष्टि नहीं दे सकतीं। मनुष्य के लिए सत्य और ऋत का अनुसरण उसी प्रकार अनिवार्य है, जिस प्रकार प्रकृति उनका निर्वाह करती है। हमारे शास्त्रों में धर्म और मोक्ष के साथ अर्थ और काम को भी चार पुरुषार्थ में गिना गया है। महाभारत में वर्णित है कि–

अर्थभ्ययोहि विवृद्वेभ्यः संभृत्येभ्यस्ततस्ततः।

क्रियाःसर्वाः प्रर्वतन्ते पर्वतेभ्यइवापगाः।।महाभारत शांति पर्व 8.16

अर्थात् अर्थ से सारी क्रियाएँ निकलती हैं जैसे पर्वत से नदियाँ निकलती हैं। आगे भी कहा है कि–

धर्मचार्थे च कामे च लोकवृत्ति समाहिता।

धर्मकामार्थ रहितो रोगार्तइव दुर्गतः। महाभारत, सभा पर्व 8.13

अर्थात् धर्म, अर्थ और काम के बिना जीवन व्यर्थ है। वस्तुतः त्रिवर्ग की सिद्धि लोकहित के

लिए सदा से आवश्यक मानी जाती रही है। ऋग्वेद में **'कामी हि वीरः' (ऋग्वेद** 2.14.1) कहकर काम की गुणता का आख्यान हुआ है। अर्थ एवं काम का जीवन में भलीभाँति संयोजन कर अनुपालन करना उनके अच्छे या बुरे प्रभाव का कारण बनता है। गृहस्थ को आदर्श इसलिए कहा जाता है, क्योंकि उसके साथ अर्थ और काम जुड़े हैं, साथ ही धर्म का भी यथेष्ट समावेश है। धर्म, अर्थ, काम तीनों का अनुसरण ही जीवन का लक्ष्य है। सामाजिक जीवन में सामंजस्य लाने के लिए गुण महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 'आत्मानं विद्धि' की साधना अपने में गुणता की खोज हैं, जिससे नीति और आदर्श पर ध्यान जाता है और अनैतिक इच्छाओं से बचने का प्रयास होता है। व्यक्ति का चिंतन और बाह्य कर्म दोनों ही गुणता पर निर्भर हैं, जिसमें उसकी प्रज्ञा का बहुत हाथ होता है। पाप प्रज्ञा के नाश का कारण होता है।

पापप्रज्ञा नाशयति। महाभारत, वनपर्व 207.54

सामान्यतः पाप वह है, जो व्यक्ति से दुष्कर्म करवाता है। पाप का जन्म सबसे पहले अंतर में ही होता है। उसी प्रकार पुण्य भी अंतर से ही जन्म लेता है। पाप करनेवाले के सामने भी पुण्य की और अग्रसर होने की संभावनाएँ हैं। पाप और पुण्य, सद्कर्म और दुष्कर्म की चाहे कोई भी परिभाषा हो, इतना तो निश्चित है कि जीवन केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं है। केवल अपने तक सीमित रहकर देह के धर्म को लेकर जीना और उसी के पोषण के लिए साधन जुटाना सद्कर्म नहीं है। स्व के साथ परायी चिंता करना भी मानव का धर्म है। ऋग्वेद में इसलिए कहा गया है कि अकेला खानेवाला पाप खाता है।

केवलाघो भवति केवलादी। ऋग्वेद 10.117.6

हमारे धर्मग्रंथों में जहाँ यह कहा गया है कि मैं दूसरे की कमाई न खाऊँ **'माहं राजन्नन्य तेन भोजम्' (ऋग्वेद** 2.28.9) तो वही सहभोजी होने **'सहभक्षाः स्यामः।' (अथर्ववेद** 6.47.1) वाली समाज नीति के मूल में उत्पन्न अंतर्दृष्टि ही कही जाएगी। फलतः इससे व्यक्ति की सहकारिता, सामुदायिकता सहानुभूति, परोपकार, त्याग, उत्साह, करुणा, प्रेम, दया आदि कई वृत्तियों की तुष्टि होती है। इनमें से बहुत-सी वृत्तियाँ अहिंसा में समाहित हो जाती हैं। महाभारत में वर्णित है कि–

सर्वाण्येवाधीयंते पदजातानि कौंजरे।
एवं सर्वमाहिंसायां धर्मार्थमपिष्धीयते'। महाभारत, शांति पर्व 245.18

अर्थात् जैसे हाथी के पाँव में सब-कुछ समा जाता है, वैसे ही अहिंसा-पालन में सभी धर्मों का समाहार हो जाता है। करुणा, क्षमा, त्याग, दान, धृति, उदारता, सत्य, अभय, ऋति, संतोष, आदि अहिंसा के ही पहलू हैं। ये सभी पहलू आत्मज्ञान, आत्मबल, संयम पर निर्भर हैं। अंहिसा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' देखनेवाली दृष्टि है जो 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम्' में प्रतिफलित होती है। क्षमा और धृति, उदारता और सद्भाव जताने में सच्चे आत्मबल का काम करती है। मन के विकारों को रोकने में धृति साथी की तरह सहायक कही गई है–

धृत्या द्वितीयवान् भवति। महाभारत, वनपर्व 297.29

करुणा, दया और पर-दुःखकातरता मानवीय संवेदना को प्रकाशित करती है। वह क्षमता और न्याय की ऐसी धर्मभावना को जगाती है, जिससे भ्रातृभाव की सृष्टि होती है, क्योंकि भ्रातृभाव किसी भी समाज का प्रमुख उपादान होता है। इसका आयाम परिवार से लेकर समस्त विश्व में

व्याप्त है। भारत में संयुक्त परिवार एक साथ रहने-खाने के माध्यम रहे हैं। संयुक्त परिवार सामुदायिक जीवन का भावात्मक वातावरण प्रदान करता है, जिसमें सहयोग, साहचर्य और सौहार्द का भाव निहित है। मानव और मानव के बीच इस भाव की कमी के कारण ही परिवार से लेकर देश की एकता तक के संबंधों में कमी आती है। जब कोई सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक या अन्य किसी प्रकार से दूसरे का शोषण करता है तो इसका मूल कारण व्यक्ति के भाव को न समझने की भावना ही होती है। भ्रातृभाव एक ऐसा गुण है, जिसमें लोकमंगल और सर्वभूतहित कामना का उद्देश्य निहित रहता है। इससे–

संगच्छध्वं वं सं वदध्वं सं के मनांसि जानताम्। ऋग्वेद 10.191.2

अर्थात् समस्त मानव व्यावहारिक समाज में मिलकर रहें, चलें, बोलें इससे संघीय शक्ति का मिलकर बोध करने की चेतना मिलती है। यह एकत्व संपूर्णता का समादर है। समान मन होना, समानधर्मी होकर जीना मानवता का सर्वश्रेष्ठ रूप है। ऋग्वेद में संदेश है कि–

समानं मंत्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम्'। ऋग्वेद 10.191.3

अर्थात् हम सभी की प्रार्थना एक समान हो, परस्पर मिलन की भावना भेद-भाव रहित और हमारे मन एवं चित्त एक समान हो। अथवा

समानं व आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानस्तु वो मनो यथा वःसुसहासति। ऋग्वेद 10.191.4

अर्थात् हम सभी के संकल्प एक समान हों और हमारे हृदय एक समान हों, हमारे मन एक समान हों, जिससे हमारा परस्पर कार्य पूर्ण रूप से संगठित हो।

इस प्रकार हृदय के समत्व-बोध में कोई छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच नहीं है। अपनी भूमि, जल, वन, संपदा और पर्यावरण के प्रति अनुराग देशप्रेम की भावना पैदा करता है। इस भावना के कारण देश के इतिहास और भूगोल के प्रति जो राग उपजता है, वही संस्कार को रचता है और संस्कारों की राशि से ही देशभक्ति अथवा राष्ट्रीयता का स्थाई भाव बनता है। जब जीवन से राष्ट्रीयता का तत्त्व लुप्त होने लगता है, तब चिरंतन का ह्रास ही नहीं होता वरन् उस राजनीति का भी जन्म होता है, जो स्वार्थों की विविधता से संगठित होती है और सार्वजनिक उदारता से विच्छिन्न होकर जीवन की गुणता, सहभागिता और समानता को तिलांजलि देने लगती है। समाज में व्याप्त असंतोष और स्वार्थपरता का उन्मूलन संस्कार के अनुशीलन द्वारा ही संभव है। हमारे मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने बालक के प्रारंभिक जीवन की शुद्धता पर बल देते हुए आदेश दिया है। कि–

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान।

छेवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसौ वो अस्तु। अथर्ववेद 30.30.7

अर्थात् साथ-साथ चलनेवाले, कार्य करनेवाले, समान गतिवाले जनों का मन स्वभाविक रूप से समान हो जाता है। अमरत्व या दीर्घायुष्य की रक्षा करती हुई दिव्य शाक्तियों का मनोभाव जिस प्रकार एक जैसा शुचित होता है, उसी प्रकार समान भावनावाले देशहित के एक उद्देश्य में निरतजनों का मनोभाव भी शुभ ही हो।

इस प्रकार एक परिवार में सौमनस्य और सामंजस्य की कामना की जाती है, वही कामना विश्वपरिवार में भी आकांक्षित है। मानव के खान-पान, रहन-सहन से उनके आचार-विचार, शारीरिक सौष्ठव और सांस्कृतिक तथा हार्दिक संबंध का आधार होता है। साध्य-साधनों के

उपभोग में जो समानता एक परिवार में अभीष्ट है, वही भावना विश्वपरिवार में भी अभिष्ट हों यही वैदिक शिक्षा का सार है। यजुर्वेद लिखा है कि–

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षे। यजुर्वेद 36.181

अर्थात् मैं मनुष्य सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ, हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें।

इस प्रकार मित्रभाव अपनाते हुए समाजोचित व्यवहार द्वारा सदाचरण की शिक्षा दी है। पारिवाकि संगठन को सुदृढ़ बनाने के लिए हमारे शास्त्रों में पर्याप्त शिक्षा उपलब्ध है। अर्थवेद में लिखा है कि–

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।

सम्यचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रय। अर्थवेद 30.3

अर्थात् भाई-भाई से द्वेष न करे, बहिन-बहिन से या भाई से द्वेष न करें सब आपस में मिल कर मधुर भाषण करते हुए अपने कल्याण के लिए कार्य में दत्तचित्त हो जाएँ।

स्वभावतः मानव को जातीय गठबंधन, धार्मिक संगठन और सामाजिक बंधन में बँधकर रहने वाला होने के कारण आपसी एकता बनाए रखना अनिवार्य है। यही अनिवार्यता, मानव-समुदाय, समाज और राष्ट्र का निर्माण करती है। विश्व को एक कुटुंब बनाने के लिए पहले परिवार का स्वरूप तय करना आवश्यक है। परिवार में माता-पिता, भाई-बहिन, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री आदि के प्रति उदार दृष्टिकोण का होना परमावश्यक है, जिसका विकास 'वसुधैव कुटुंबकम्' में निहित है, जिससे कि नई पीढ़ी में विश्वव्यापी दृष्टिकोण विकसित होता है।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या। अर्थवेद 12.1.12

अर्थात् यह भूमि मेरी माता है और मैं इस पृथिवी का पुत्र हूँ। दूसरे शब्दों में, महर्षि ने इन वाक्यों द्वारा प्रत्येक देशवासी को यह शिक्षा दी है कि हम विभिन्न धर्म, संप्रदाय और जाति से संबंधित होते हुए भी एक ही माता के औरस पुत्र होने के कारण देश-बंधु हैं। जैसा कि कहा भी गया है, 'न हिंदु है, न मुसलमान। न कोई सिख और न कोई ईसाई। हम सब हैं, भाई-भाई'। अतः हमें पारस्परिक सहयोग और बंधुत्व की भावना को अपनाते हुए सद्-व्यवहार और सद्-आचरण करना चाहिए, तभी हम वेदनिर्दिष्ट आप्त ऋषियों के भावनारूप विश्वरूपी नीड़ में पारिवारिक सदस्यों के सदृश निवास कर पाएँगे अन्यथा आपसी झगड़ों के माध्यम से छिन्न-भिन्न होते हुए दासता की बेड़ियों में जकड़ जाएँगे तथा राष्ट्र का अस्तित्व नष्ट हो जाएगा। अतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मानवता ही राष्ट्र की आत्मा है तथा नैतिकता ही राष्ट्र का धर्म है। राष्ट्रानुराग की भावना से ओत-प्रोत व्यक्ति ही जन-कल्याण के मार्ग में प्रवृत्त रहता है। व्यक्ति-उत्थान की अपेक्षा जन-समुदाय के उत्थान में ही वह अपना हित समझता है। जन-समुदाय के प्रति समर्पण की यह भावना मानव को राष्ट्र-प्रेम में निमज्जन करने का निर्देश देती है। अतः वास्तविक रूप में यदि मानव अपनी सत्ता का आभास करना चाहता है, तो उसे राष्ट्रोत्थान के प्रति दृढ़संकल्प की भावना से स्वयं को सर्मपण करना होगा। क्योंकि राष्ट्र के अभिन्न अंग के रूप में उसकी भी व्याप्ति है। या यों कहा जा सकता है कि राष्ट्र के संवर्धन और संरक्षण में ही उसका हित संरक्षित और सर्वोधित है। इसी उद्देश्य से समाजशास्त्रियों ने समाज और राष्ट्र की परिकल्पना में प्राणी-मात्र

को सामूहिक रूप से संगठित होकर जीवन-यापन करने की दिशा प्रशस्त की तथा व्यक्ति सत्ता की अपेक्षा सामाजिक सत्ता को वरीयता प्रदान करते हुए एक उज्ज्वल राष्ट्र का निर्माण किया। राष्ट्र में रहनेवाले व्यक्तियों को नागरिक की संज्ञा प्रदान की तथा राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य और दायित्व का बोध कराया। कर्त्तव्यबोध की इस भावना में राष्ट्रानुराग की भावना स्वत:सिद्ध है।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है, जिसका परिवेश परिवार, समाज, राष्ट्र, तथा समस्त भूमंडल से शृंखलाबद्ध है। इस समस्त परिवेश में अपना सामंजस्य स्थापित करने के लिए अपने आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान को संस्कारित करना अनिवार्य है। इन सबके अभाव में जीवन निर्मूल एवं निराधार है। अत: इन सभी बातों से व्यक्ति के जीवन से संबंधित समस्त समस्याओं के निराकरण में संस्कारों की अनिवार्यता सिद्ध होती है।

पुत्र श्री रोहिताश सिंह
ग्राम : आदर्श नगला,
तह॰ बड़ौत (बागपत) उ॰प्र॰ 250611

 ISSN 0975-735X

सूर्यबाला कृत 'यामिनी कथा' उपन्यास में निरूपित नारी-मन का द्वंद्व

अमित कौर, शोध छात्रा
हिंदी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

प्रकृति से मनुष्य को विचारशक्ति, रचनाशक्ति, इच्छाशक्ति तथा संवेदनशील होने के वरदान प्राप्त हुए हैं, जिसके फलस्वरूप इन अनमोल गुणों एवं विशेषताओं के कारण मनुष्य को अन्य प्राणियों से उच्च समझा गया है। यही कारण है कि मनुष्य का हृदय कुछ-न-कुछ प्राप्त करने के लिए सदैव क्रियाशील रहता है। वह अपनी विद्यमानता को संसार में ज्यों-का-त्यों बनाए रखना चाहता है, क्योंकि अपनी विद्यमानता की सुरक्षा वह अपना परम धर्म मानता है। इसके लिए वह निरंतर संघर्षरत रहता है। उसे कठिन समस्याओं का सामना मानसिक संताप को भी भोगना पड़ता है, साथ ही सामाजिक धार्मिक आर्थिक अंतर्विरोधों का सामना भी करना पड़ता है। इस संदर्भ में 'लाजोस एग्री' (Logos Egri) के विचारानुसार 'जन्म से मृत्युपर्यंत जीवन की प्रत्येक गतिविधि द्वंद्वात्मक है।'1

'द्वंद्व' का शाब्दिक अर्थ है दो विरोधी व्यक्तियों या भावनाओं का पारस्परिक संघर्ष। अत: 'द्वंद्व' से यह स्वत: स्पष्ट है कि किन्हीं दो परस्पर वस्तुओं में होनेवाला संघर्ष, दुविधा, कलह आदि को 'द्वंद्व' कहते हैं। दो विरोधी पक्ष 'द्वंद्व' के लिए अनिवार्य हैं, परंतु कभी-कभी ये दोनों एक ही स्थिति में समा जाते हैं। यह एकपक्षीय 'द्वंद्व' केवल एक विचार या भावना मात्र का होता है, क्योंकि 'द्वंद्व' केवल भावनाओं में अंतर्निहित होता है। ऐसी स्थिति में प्रत्यक्षत: भले ही दो विरोधी तत्त्व नहीं होते, पर अंतर्मन में अवश्य ही दो भावनाओं व विचारों की टकराहट होती है, जिसे अंतर्द्वंद्व का नाम दे दिया जाता है। मनोविज्ञान में विरोधी इच्छाओं, आकांक्षाओं, संवेदनाओं, चेतन-अचेतन के पारस्परिक संघर्ष को 'द्वंद्व' माना गया है।

वास्तव में अंतर्द्वंद्व मानसिक तनाव की वह अवस्था है, जो दो परस्पर विरोधी इच्छाओं के उत्पन्न होने से, जिनकी पूर्ति एक ही साथ असंभव है अथवा अपनी किन्हीं इच्छाओं के विघटन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। डॉ॰ पद्मा अग्रवाल के शब्दों में, 'अंतर्द्वंद्व परिवार, यौन और संस्कृति से संबंधित होता है। पारिवारिक अंतर्द्वंद्वों का कारण बाल्यावस्था में असुरक्षा, परित्याग कठोर व्यवहार, दूसरे भाई-बहनों का जन्म तथा अत्यधिक निर्भरता होते हैं। यौन-संबंधी द्वंद्वों के कारण अविवाहित रहना, वैधव्य, परित्याग, समाज द्वारा अस्वीकृत यौन-संबंध इत्यादि और सांस्कृतिक अंतर्द्वंद्वों का कारण धार्मिक हठवादिता, अंधविश्वास, जातीयता, अत्यधिक प्रतिस्पर्धा इत्यादि होते हैं। फ्रायड ने काम-संबंधी द्वंद्व के विध्वंसात्मक प्रभाव पर विशेषत: ध्यान आकर्षित किया है।'2

संसार की सबसे अमूल्य वस्तु नारी है। उससे भी अधिक रहस्यमय उसका मन है। नारी-मन

के भीतर समाए प्रेम, ममता, वात्सल्य, उदारता, दया आदि मन को जहाँ शीतलता प्रदान करते हैं, वहीं नारी-मन के भीतर से प्रस्फुटित, क्रोध, प्रतिकार, आक्रोश मन को हिला देते हैं तथा नारी की घृणा, उपेक्षा, तिरस्कार मन को लज्जित कर देती है। नारी-मन के विभिन्न मनोभाव मन के जिस अंतस्तल में रहते हैं, वहाँ तक पहुँचना सहज नहीं है। नारी-मन को उसकी इच्छा के बिना समझना सरल कार्य नहीं है। नारी-मन की एक-एक खुली पर्तों ने मनुष्य को विस्मय में डाल दिया है। समाज को एक परंपरागत नारी अपने पूरे सहयोग से टूटने से बचाती है। कभी ममतामयी माँ के रूप में, कभी आदर्श पत्नी के रूप में विवाह संस्था को बनाए रखे हुए भी है। जहाँ मानव-मन को आर्थिक विषमताओं ने तोड़कर रख दिया है, वहीं स्वतंत्रता के पश्चात् समाज और परिवार में होने वाले बदलावों ने स्त्री-पुरुष के परंपरागत ढाँचे पर प्रश्नचिह्न लगा दिए हैं।

नारी का जीवन सदैव द्वंद्वग्रस्त रहा है। कभी वह मानसिक द्वंद्व का रूप ग्रहण कर लेती है तथा कभी बाह्य द्वंद्व का। इस संदर्भ में सूर्यबालाजी ने अपने विचार यूँ प्रकट किए हैं, 'नारी के अंदर इतने गूढ़ तिलस्म, गुफाएँ और प्राचीर हैं कि इन्हें भेद पाना आसान नहीं, जितनी सत्यता और ईमानदारी से नारी भेद सकती है, पुरुष नहीं।'[3]

'मानव-समाज की मूल पृष्ठभूमि में नारी विद्यमान है। मानव-सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास वस्तुतः नारी की स्थिति के विकास से ही प्रतिबिंबित होता है। समाज प्रेरणा, शक्ति, प्रेम एवं विश्वास आदि सभी कुछ नारी से प्राप्त करता है। जीवनगत स्थिरता को समाप्त कर मानव समाज की परिवर्तित परिस्थितियों तथा सामाजिक मानव मूल्यांकन के साधनों में नारी सर्वप्रमुख है। समाज में नारी और पुरुष का अन्योन्याश्रित संबंध है, दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। वह समाज में पुरुष से कम महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रखती।'[4]

'यामिनी कथा' उपन्यास एक स्त्री की संवेदनात्मक जटिलता, मानसिक तनावों एवं उसके आत्मसंघर्ष की मर्मस्पर्शी कथा है। यामिनी ने अपने जीवन में जो भी चाहा, वह उसे परिस्थितियों के कारण प्राप्त नहीं हुआ। उसके लिए केवल परिस्थितियाँ ही जिम्मेदार नहीं थीं, बल्कि नारी-सुलभ मन की संवेदनात्मकता भी जिम्मेदार थी। अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु वह प्रत्येक संभव प्रयास करती, कभी समझौते करती हुई, कभी अपने को और कभी दूसरों को छलती हुई तथा कभी अपनी आकांक्षाओं से लड़ती हुई, सदैव संघर्षरत रही।

इस उपन्यास की नायिका यामिनी अपने अतीत और वर्तमान में भूतपूर्व तथा वर्तमान पति के बीच की स्मृतियों में झूलती दृष्टिगत होती है। लेखिका ने पति तथा संतान के बीच टूटती नारी की व्यथा को अधिक करुणामय ढंग में प्रस्तुत किया है। यामिनी एक साथ पुत्र तथा पति के मध्य फँसकर रह जाती है। वह 'कुछ अजीब, असंयत, उद्भ्रांत-सी औरत निखिल के कमरे से निकलने के बाद पुतुल पढ़ता भी होता तो जाकर संयत, सहज होने का नाटक करती, बैठ जाती। कुछ न कुछ बोलती-पूछती। शायद अनर्गल, शायद हास्यास्पद, लेकिन उसकी आँखों का सामना न कर पाती।'[5]

सूर्यबाला ने आधुनिक समाज के चुनौतीपूर्ण, संघर्षमय एवं घुटन-भरे जीवन में नारी के आत्मिक तथा मानसिक स्तर की लड़ाइयों को चित्रित किया है। 'यामिनी कथा' एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें यामिनी नामक एक ऐसी नारी का चित्रण है, जिसका प्रेम, ममत्व एवं वात्सल्य टुकड़ों में बँटा हुआ है। आज हमारे आधुनिक समाज में नारी अपने जीवन को जीने के लिए हर पल, हर क्षण समझौता करने के लिए बाध्य होती है।

यामिनी के यातनामय जीवन की शुरुआत विश्वास की मृत्यु के साथ होती है तथा उसके जीवन का दूसरा अंक तब शुरू होता है, जब निखिल का प्रवेश उसके जीवन में होता है और निखिल के द्वारा विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार करने के पश्चात् चुनचुन को जन्म देती है। उसके जीवन में एक ओर निखिल तथा चुनचुन, तो दूसरी ओर पुतुल है। उसके स्वयं का तो कोई अस्तित्व ही नहीं है। 'तुम लोग अनुमति दोगे तो तुम्हारी सीमा में आऊँगी और दुतकार दोगे तो भिखारिन याचना की मुद्रा लिए खड़ी रहूँगी कि तुम पसीजो और मुझे मेरी जगह बहाल करो। मेरे पास अपनी जमीन का भी तो हाथ-भर का ही सही, एक टुकड़ा होना चाहिए, जहाँ मेरी इच्छाएँ 'अधिकार न सही' अपनी थिगलियाँ में ही सही, दो घड़ी को सुस्ता सकें। मेरी सारी जमीन पर क्या सिर्फ तुम्हीं लोगों का हक-कब्जा रहेगा, आजीवन।'[6] इसके साथ ही यामिनी को लगता है, जैसे उसके, 'अंदर विपक्ष का एक स्थायी वकील नियुक्त रहता है, जो हमेशा बाजी विपक्ष के हाथ ही सौंपता है। योर ऑनर, इस औरत को अपने ही जमीन के टुकड़े में रहना था तो इसे मना किसने किया था? दरअसल, इस जैसी ऊसर, बंजर टुकड़े की तरफ तो कोई आँखें उठाकर देखता भी नहीं (निखिल की तो बात ही क्या) लेकिन अपने टुकड़े के विस्तार की कल्पना और योजना तो खुद इसी की थी, वही छोटे-छोटे अपरिमित लोभ ग्रीड।'[7]

नारी-मन की एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह अपने को पति के प्रति समर्पित होने में ही सुख का अनुभव करती है। पति का व्यवहार उसके प्रति चाहें कितना भी कठोर क्यों न हो, परंतु फिर भी वह अपने कर्त्तव्य का पालन करने से पीछे नहीं हटती, बल्कि अपने पति के कठोर व्यवहार को सहते हुए भी उसके लिए संपूर्ण सुख-सुविधाएँ जुटाती रहती है। वस्तुतः 'नारी की प्रकृति में वैचित्र्य और विरोध परिलक्षित होता है, वह नैसर्गिकता है, उसकी मानसिक विवशता है। पति के संसार से बाहर और पृथक् उसका कोई संसार नहीं होता, इसलिए पति की सेवा में उसे विशिष्ट सुख की अनुभूति होती है।'[8]

'यामिनी कथा' उपन्यास में यामिनी की व्यथा को समझनेवाला कोई नहीं है। पति और पुत्र के मध्य टूटती नारी की व्यथा को लेखिका ने अत्यंत संवेदनात्मक ढंग से उकेरा है, क्योंकि न विद्रोह करने से, न जबरदस्ती से कुछ प्राप्त किया जा सकता है। प्रस्तुत उपन्यास आधुनिक नारी के जीवन की कभी न समाप्त होनेवाली त्रासदी तथा उसके भीतर से प्रकाश की किरणें बिखेरती तीव्र जिजीविषा की कथा है। यामिनी द्वंद्व, भय, संत्रास, कुंठा, तनाव और घुटनभरी जिंदगी को व्यतीत करते हुए तीन पुरुषों के संरक्षण एवं आश्रय को पाकर भी नितांत असहाय एवं अकेली है।

'यामिनी कथा' में यामिनी के मानसिक भँवर की अथाह गहराई, उसकी गंभीरता, उसमें सम्मिलित गोचर-अगोचर अनगिनत मानसिक संवेदना प्रवाहों का विशद रूपायन, आधुनिक नारी के जटिल तनाव, लगातार सूक्ष्म संवेदनात्मक त्रासदी की कभी न खत्म होनेवाली दीर्घता तथा इसी बीच किसी संतुलन के लिए सफल-असफल प्रयास करने में अभिव्यक्त जिजीविषा के शक्तिपूर्ण और कलात्मक दर्शन होते हैं।

'यामिनी कथा' उपन्यास में यामिनी अपने पुत्र पुतुल को जन्म देने के पश्चात् अपने भीतर पल रहे अंतर्द्वंद्व को कुछ समय के लिए भूल जाती है, अब उसकी समस्त दुनिया पुतुल के आसपास ही है 'अब मैं पूर्ण निर्द्वंद्व और शांत थी जैसे एक नया घर, नई गृहस्थी बसी हो। अंग परितृप्ति और अनुराग से लबालब। सुबह कब शाम में तबदील हो गई, पता तक न चलता। सारा

दिन पुतुल को नहलाना, पुतुल को दुलारना, पुतुल को हँसना, गाना। विश्वास के पत्रों का भी अब उतना इंतजार न होता और लिखने का समय कहाँ।'[9] लेखिका ने 'यामिनी कथा' उपन्यास में इस तथ्य पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला है कि किस प्रकार यामिनी नाटक की तरह पूरे परिवार के साथ अलग-अलग अभिनय करती है, क्योंकि वह पुनर्विवाहिता है। यद्यपि यामिनी अपने पुत्र के प्रति माँ के दायित्वों को पूरी ईमानदारी के साथ निभाना चाहती है, परंतु पहले पति से उत्पन्न संतान को साथ लेते हुए दूसरे पति के साथ संसार बसाना कितना कठिन होता है, इसका प्रत्यक्ष रूप हमें यामिनी की जीवनगाथा से ज्ञात होता है। पति और पुत्र को एक ही समय प्यार करना उसके लिए असह्य हो जाता है, तथा उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो वह दोनों के प्यार के टुकड़ों में बँटी हुई हो। यामिनी के अनुसार, 'मेरे लिए प्रौढ़ा माँ के तुरंत बाद नवेली पत्नी की भूमिका, यह सब स्वाभाविक कहाँ हो पाता, थकान से ग्रस्त होने लगती। एक के पास होती और दूसरे का खटका, आशंका व्यापती रहती। न प्रौढ़ा माँ रह पाती, न मुग्धा पत्नी।'[10]

विधवा होने के पश्चात् यामिनी को पुनर्विवाह का अवसर प्राप्त होता है, किंतु पुनर्विवाह के पश्चात् भी वह मानसिक अंतर्द्वंद्व का शिकार हो जाती है। वह अपने पुनर्विवाह को पूर्ण रूप से एक पतिव्रता नारी की तरह संपूर्ण त्याग एवं निष्ठा से निभाने का प्रयास करते हुए सफल भी होती है। वह अपने किशोर पुत्र तथा पति निखिल के साथ सामंजस्य बिठाने का प्रयत्न करती है। 'दोनों भूमिकाओं को अलग-अलग प्राण-प्रण से निभाने की कोशिश कर रही थी।'[11] अपने को सहजने की कोशिश में यामिनी घर रूप में बिखर जाती है। माँ को सँभालती है तो प्रिया उलझ जाती है। पत्नी को आगे लाती है तो माँ अभियोगिनी बन जाती है। इस प्रकार वह नहीं चाहती कि उसके पति को पत्नी के प्रेम से वंचित रहना पड़े। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने संतान और पति के बीच टूटती नारी के अंतर्द्वंद्व को बहुत खूबी से उतारा है। वह चाहकर भी अपने पुत्र पुतुल को प्यार नहीं दे पाती। वह एक साथ पुत्र तथा पति के मध्य पिस जाती है।

'यामिनी कथा' उपन्यास में यामिनी एक ऐसी नारी है, जो अंतर्द्वंद्व, कुंठा, पीड़ा तथा तनाव की शिकार हो जाती है। यद्यपि यामिनी अपनी परिस्थितियों से ऊबकर टूट जाती है, 'जैसे अंदर की सारी निर्णयशक्ति और आत्मबल चुक गया है। सुख चाहती हूँ, लेकिन उसे प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ते हुए कदम डगमगाते हैं। बाहरी समाज की वजह से उतना नहीं, जितना अपने अंदर की हीनता से।'[12] यामिनी विश्वास की मृत्यु के पश्चात् अकेले रहने का संत्रास भोगती है। जिंदगी से ऊबकर तथा जीवन को सहज रूप से जीने के लिए वह निखिल के साथ पुनर्विवाह करती है। वह यह सब-कुछ मन से नहीं करना चाहती, लेकिन यह सब उसकी विवशता है। इस विवशतापूर्ण जीवन में उसका मन कुंठाग्रस्त हो जाता है। नयी परिस्थितियों के कारण यामिनी को संघर्ष करना पड़ता है। यह संघर्ष अंतर्बाह्य दोनों प्रकार का है। बाहर से अधिक भीतर का है। इस प्रकार यामिनी के माध्यम से आधुनिक नारी के सुख-दुःखों, समस्याओं तथा संघर्षों को प्रस्तुत किया गया है।

'यामिनी कथा' उपन्यास में यामिनी का जीवन सदैव संघर्षरत ही रहा है। आरंभ में विश्वास के साथ शरीर की सतह पर बिताए क्षणों की पीड़ा, पुतुल की प्राप्ति के साथ अपने संघर्ष में विजय का उल्लास तथा फिर विजय का आनंद न भोगने के लिए अभिशप्त यामिनी के अंतर्बाह्य संघर्ष का हृदयविदारक चित्र सूर्यबाला ने महीन परंतु समर्थ रंग-रेखाओं से खींचा है।

यामिनी एक अतिशय संवेदनशील नारी है, जिसकी संवेदना ने उसके अनुभव को विलक्षण

धार दी है। उसकी जिंदगी में सुख की संभावनाएँ कम नहीं हैं। परंतु उसके चिंतनशील मानस ने और अनुभूतिप्रवण हृदय ने उसके सामने सदैव यातना, दंश तथा पीड़ा का जाल ही बिछाया।

'निखिल के साथ विवाह करने के पश्चात् यामिनी के जीवन में सब-कुछ सहज रूप से चल रहा था, किंतु चुनचुन के पैदा होने पर उसकी दुविधा बढ़ती ही जाती है। उसके मानस को अनेक शक्तियाँ अलग-अलग दिशाओं में खींचकर लहुलुहान करती हैं। एक ओर विश्वास का स्मृति संदर्भ है तो दूसरी ओर पुतुल, तीसरी ओर चुनचुन है तथा चौथी ओर पहले विवाह की सुख प्राप्ति की स्वाभाविक आकांक्षा से आतुर निखिल खड़ा है। इन सबके बीच यामिनी तार-तार होती जा रही है। वह महसूस करती है कि निखिल और पुतुल ने उसे निर्वासित कर दिया है। यामिनी का जैसे अपना कोई अस्तित्व ही नहीं रह गया है। वह एक विभक्त माँ और विभक्त पत्नी बनकर रह गई है।'[13] इन्हीं सब परिस्थितियों के कारण यामिनी का मन अंतर्द्वंद्व और कुंठा से भर जाता है।

सूर्यबाला ने इस उपन्यास के माध्यम से स्त्री के संघर्ष को अनेक रूपों में जैसे प्रेयसी, नवौढ़ा पत्नी, विधवा, प्रथम पति से उत्पन्न संतान की माँ, पुनर्विवाहिता पत्नी, पहली बार विवाहित पति की आकांक्षाओं के लिए कुछ अतिरिक्त नाटक करनेवाली, दूसरे पति से उत्पन्न पुत्र की माँ, अनगिनत भूमिकाएँ निभाती हुई उलझी मन:स्थिति की व्यथाकथा को उजागर किया है। लेखिका संतान तथा पति के मध्य टूटती नारी की व्यथा को बड़े मार्मिक ढंग से व्यक्त करती हैं।

संक्षेप में, आधुनिक नारी आज मानसिक दबावों से मुक्ति और अपने स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना के प्रति पूर्ण रूप से प्रयासरत है। उसका सफलतापूर्वक चित्रण कथालेखिका सूर्यबाला जी ने 'यामिनी कथा' उपन्यास द्वारा कलात्मकता के साथ चित्रित किया है।

संदर्भ

1. (Every manifestation of life from birth to death is conflict Logos - Egri- The art of Dramatic writing), डॉ॰ उषाकृष्ण, जयशंकर प्रसाद का संपूर्ण नाट्यसाहित्य, पृ॰ 17 से उद्धृत
2. डॉ॰ पद्मा अग्रवाल, मानविकी पारिभाषिक कोष, पृ॰ 74
3. साप्ताहिक हिंदुस्तान, 11 मई 1975, पृ॰ 30
4. डॉ॰ सुरेश सिन्हा, हिंदी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ॰ 66
5. सूर्यबाला कृत 'यामिनी कथा' पृ॰ 83
6. वही पृ॰ 100
7. वही पृ॰ 100-101
8. डॉ॰ श्रीमती सुषमा पाल, मन्नू भंडारी का कथासाहित्य : संवेदना और शिल्प, पृ॰ 73 से उद्धृत
9. सूर्यबाला कृत 'यामिनी कथा' पृ॰ 41
10. वही, पृ॰ 83
11. वही, पृ॰ 83
12. वही, पृ॰ 72
13. वही, पृ॰ 100

W/o Jeetender Singh (Advocate)
Chandrinjm, Tral, Pulwama (J&K) 1920123

दलित-विमर्श

डॉ॰ बलराम गुप्ता
एसोसियेट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
शिवहर्ष किसान पी॰जी॰ कालेज, बस्ती (उ॰प्र॰)

दलित विमर्श आज साहित्य का केंद्रीय विषय है। अपनी-अपनी तरह से, अपने-अपने तर्कों और दृष्टिकोणों से साहित्य जगत के लोग इस विषय पर अपनी राय व्यक्त कर रहे हैं। गैर दलित साहित्यकार एवं आलोचकों के विश्लेषण एकदम से भिन्न स्तर के विचार होते हैं। दलित लेखक किसी जाति-विशेष के विरुद्ध नहीं हैं। दलित लेखक का विरोध विषम व्यवस्था बनाने वालों के बारे में है। मनुष्य-मनुष्य में विभाजनपूर्ण भेद नीतियों से है। गलत व्यवस्था और विचारों को सामने लाने का काम दलित साहित्य कर रहा है। दलित लेखक ही असली और नकली चेहरों को सामने लाने का कार्य कर रहा है। साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से दलित लेखक दलित विमर्श को आज के दौर का प्रमुख विचार बना रहा है। लोगों का ध्यान आकर्षित कर रहा है। दलित लेखक अपने लेखन में आज के भारतीय समाज का ही नहीं अपितु पूर्व भारत के समाज की स्थितियों का चित्रण समय-समय पर करता रहता है। 'जीवन विसंगतियों से भरा है। इन्हीं विसंगतियों के चलते अनादिकाल से हिंदू समाज का एक हिस्सा जिसे दलित कहा जाता है, हाशिए का जीवन जीने के लिए मजबूर है। यहाँ के सवर्ण समूह ने अपने ही धर्म के इस हिस्से को गुलामी की जंजीरों में जकड़कर उनके उन्नयन के मार्ग को बंद कर दिया। काबिलियत होते हुए भी कभी जाति के नाम पर, तो कभी धर्म, धर्म ग्रंथों का हवाला देकर उनको उनके मानवीय अधिकारों से वंचित रखा। मनुष्यता के सभी चिह्नों को उनके लिए नकारा गया। जाति श्रेष्ठता की भावना के चलते दलितों को केवल दबाया ही नहीं, बल्कि उनकी भाव-भावनाओं को भी मरोड़ा कुचला गया। तुम्हारी नीच जाति है, इसलिए हम जैसे सवर्ण वर्गों लोगों की बिना किसी मुआवजे के सेवा-चाकरी करना तुम्हारा कर्म है, धर्म है, और धर्मग्रंथों में भी यही लिखा है, जैसे चालाक हथकंडे सवर्ण समूह ने अपनाकर यहाँ के दलितों का जीवन बद से-बदतर बना दिया था। प्राचीनकाल से यही हथकंडे और षड्यंत्र चले आ रहे थे। किंतु आधुनिककाल के आते पढ़े-लिखे दलित युवकों ने इस हथकंडों को पहचान लिया और उन हथकंडों के पीछे षड्यंत्रों को भी जाना। फिर यह पढ़ा-लिखा दलित युवक खड़ा हुआ, उनके खिलाफ जिन्होंने उससे अनेक मानवीय अधिकारों को छीन लिया था। खड़ा हुआ उनके खिलाफ, जिन्होंने उसके उन्नयन के मार्ग को बंद किया था। इसका पहला आगाज हुआ साहित्य में, जो आज दलित विमर्श के रूप में पहचाना जाता है।'[1]

दलित-विमर्श की बात जब भी कही जाती है तो 'जाति' को अनदेखा नहीं किया जा सकता

 ISSN 0975-735X

है। 'दलित विमर्श के अंतर्गत ही दलित साहित्य व बहुजन साहित्य की व्यापकता को देखा जा सकता है। माताप्रसाद पूर्व राज्यपाल अरुणाचल प्रदेश के अनुसार 'दलित साहित्य वह साहित्य है जिसमें वर्ण समाज में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक दृष्टि से दलित, शोषित, उत्पीड़ित, अपमानित, उपेक्षित और असहाय है पर साहित्य की रचनाएँ होती हैं, दलित साहित्य की श्रेणी में आता है। इसमें बंधनों में जकड़ी स्त्रियाँ, बंधुआ मजदूर, दास, घुमंतु जातियाँ, अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ आती है। दलित साहित्य वेदना, चीख और छटपटाहट का सहित्य है।'[2]

'जाति' की बात आगे बढ़ाने से पूर्व 'दलित' शब्द है क्या को समझा जाए। 'सन् 1931 में भारत में तत्कालीन जनगणना कमिश्नर द्वारा जातियों के वर्गीकरण के आधार पर जनगणना में दलित जातियों के लिए निम्न अर्थ दिये हैं। मैंने दलित जाति (डिप्रेस्ड कास्ट) उन जातियों को माना है जिनके साथ शारीरिक स्पर्श होने के फलस्वरूप उच्च जाति के हिंदुओं को अपनी शुद्धि करना आवश्यक हो जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस शब्द को किसी पेशे से संबद्ध कर दिया जाए। वरन् यह शब्द उन्हीं जातियों के लिए प्रयुक्त होगा' जिसका उदाहरण के तौर पर, हिंदू समाज में अपनी परंपरागत स्थिति के कारण, मंदिर में प्रवेश निषिद्ध है या जिनके कुएँ अलग हैं, या जिन्हें पाठशालाओं में बैठने नहीं दिया जाता है और बाहर ही रहना पड़ता है या जो इसी प्रकार की अन्य सामाजिक असमानताओं से पीड़ित हैं।'[3]

दलित शब्द के अन्य अर्थ में हरिजन शब्द के प्रयोग से दलित का अपमान किया जाता है। अत: यह शब्द एक प्रकार से दलित समाज के लिए गाली के समान है। अत: इसे दलित समाज प्रयोग नहीं करता है। अँग्रेजों ने दलित शब्द का एक अन्य नाम अनुसूचित जाति दिया था। सरकारी कार्य में इसी नाम का प्रयोग किया जाता है। अनुसूचित जातियाँ वे आदिम जातियाँ है, जो आधुनिक सभ्य समाज से दूर प्राय: पर्वतीय अंचलों और मैदानी भागों में भी ऐसे स्थानों पर रहना पसंद करती हैं। जो अन्य लोगों की बस्तियों से अलग हटकर दूर हों और स्वेच्छा से गैर आदिम जातियों से घुलना-मिलना न चाहें। इसका अस्तित्व बहुत प्राचीन है। ये जातियाँ अपनी चिकित्सा अपने ढंग से करती है। 1931 में इन्हें सूचीबद्ध किया गया। इस समय से इन्हें 'आदिवासी जातियों' के नाम से जाना जाता है। भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जनजातियाँ कहा गया है। विमुक्त जातियाँ उन कबीलों ओर समुदायों को कहा जाता है, जिन्हें 1942 के पूर्व, अपराधशील जातियाँ (जरायम पेशा) कहा जाता था। 1871 में अपराधशील जातियों को सूचीबद्ध करने के लिए कानून बना। इसके अनुसार इन समुदायों को स्वभावत: अपराधी माना जाता था और उन्हें उत्पीड़ित किया जाता था। 1924 में इस अधिनियम में कुछ संशोधन हुआ। स्वतंत्रता के बाद 31 अगस्त 1947 में 'अपराधशील अधिनियम को समाप्त कर दिया गया। ये जातियाँ भी देश के अन्य नागरिकों के समान बराबर की श्रेणी में आ गई।' इस प्रकार दलितवर्ग के अंतर्गत अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ और विमुक्त जातियाँ सभी आ गईं।'[4] सबसे पहले महाराष्ट्र में इनके लिए 'दलित' शब्द का प्रयोग हुआ। बाद में अन्य स्थानों पर भी इनके लिए 'दलित' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा।

'शोषण और अन्याय पर आधारित वर्ण-व्यवस्था की अनैतिक संस्कृति के विरुद्ध बौद्धिकता और सामाजिक न्याय की विचारधारा ने 19वीं शताब्दी में नवजागरण को जन्म दिया। ये मूल

किसी धर्म, संप्रदाय, जाति एवं क्षेत्र तक सीमित नहीं थे, इनका विस्तार राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक था' लेकिन क्षेत्रीय प्रभाव के कारण इनकी गति एक समान नहीं थी। नवजागरण के मौलिक चिंतन में सांस्कृतिक परंपरा का मूल्यांकन, साम्राज्यवाद, सामंतवाद का विरोध, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की पक्षधरता, सत्ता के लोकतंत्रीकरण के प्रश्न, दलितों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों और स्त्रियों के अधिकार चेतना और उनमें शिक्षा का प्रसार, मानवीय गरिमा का महत्त्व, अंधविश्वासों के विरुद्ध लोकजागरण इत्यादि महत्त्वपूर्ण मुद्दे शामिल थे।[5] उक्त बिंदुओं में परिवर्तन को परिलक्षित किया जा सकता है। नवजागरण काल अँग्रेजों के संपर्क से आया। जागरणकाल में एक वर्ग विशेष प्राप्त अधिकारों को रौंदने का कुत्सित प्रयास करता रहता है। इसी कारण से भारत में समस्याएँ कुछ न्यूनता के साथ बनी हुई हैं। नवजागरण इस रूप में दलित समाज के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भारतीय नवजागरण में अँग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी ज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान है। नवजागरण का जन्म अँग्रेजी शिक्षा, वैज्ञानिक ज्ञान, औद्योगिकरण, सामाजिक, नैतिकता, बौद्धिकता, मानवीय समता, स्वतंत्रता, बंधुता, न्याय, प्रतिनिधित्व जैसे प्रश्नों पर सम्यक् दृष्टि से हुआ है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि नवजागरण से दलित समाज में जागरूकता आई, आगे बढ़े, बढ़ रहे हैं, फिर भी इनके कदमों को रोकने के लिए अनेक तरह की साजिशें की जा रही हैं। दलित विचारक हों चाहे दलित आंदोलनकर्ता या दलित लेखक कभी भी किसी जाति-विशेष के विरुद्ध नहीं रहता है। दलित लेखकों का विरोध विषम परिस्थिति समाज में पैदा करनेवालों से होता है। विश्व के किसी भी देश में मनुष्य को विभाजित करने वाली घटिया नीतियाँ नहीं है, केवल भारत में है। दलित विमर्श साहित्य के द्वारा समाज में विद्यमान गलत व्यवस्थाओं और विचारों को सामने लाने का काम करता है। यह भी एक प्रकार से दलित विमर्श का वैचारिक सौंदर्य कहा जा सकता है।

दलित शब्द का वस्तुतः अर्थ क्या है? सीधा सा उत्तर दिया जाता सकता है—दबाया गया, गिराया गया, शोषित, अपमानित, उत्पीड़ित, उपेक्षित, वंचित आदि। अनेक विद्वानों ने दलित शब्द की परिभाषा करते हुए कहा—'दलित वह है जिसका दलन किया गया हो। उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित, बाधित और पीड़ित व्यक्ति भी दलित की श्रेणी में आते हैं। इस तरह दलित शब्द की परिभाषा के अंतर्गत जहाँ सदियों से सामाजिक वर्ण-व्यवस्था और जातिवाद से अभिशाप दलित, अपमानित, शोषित, सामाजिक बंधनों में बाधित नारी और बच्चे भी इसी श्रेणी में आते हैं। भूमिहीन, अछूत, बंधुआ, दास, गुलाम, दीन और पराश्रित-निराश्रित भी दलित ही हैं। दलित शब्द जहाँ व्यक्ति को अपनी अस्मिता, स्वाभिमान और अपने गौरवमय इतिहास पर दृष्टिपात करने को बाध्य करता है, वहीं वह अवगति, वर्तमान स्थिति और तिरस्कृत जीवन के विषय में सोचने के लिए विवश करता है।' आगे वे कहते हैं—दलित शब्द आक्रोश, चीख, वेदना, पीड़ा, चुभन, घुटन और छटपटाहट का प्रतीक है।'[6] दलित साहित्य का अर्थ है, वह साहित्य जो दलितों के द्वारा दलितों के उद्बोधन हेतु लिखा गया हो। श्री प्रेमकुमार मणि ने दलित साहित्य की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'दलितों के लिए, दलित के द्वारा लिखा जा रहा साहित्य, दलित साहित्य, यह विलास का नहीं आवश्यकता का साहित्य है। संपूर्ण विज्ञान उसकी दृष्टि है और पीड़ित मानवता का उद्धार उसका इष्ट है। दलित साहित्य का प्रकाश पुंज है, जो अँधेरे में उतरा है।'[7] 'दलित' शब्द पीड़ित मानवता का बड़े स्तर पर प्रतिनिधित्व करता है। दलित साहित्य को सर्वप्रथम डॉ॰ अंबेडकर ने ही दलित साहित्य कहा था। दलित साहित्य की अवधारणा को रूपचंद गौतम ने

व्यक्त किया है–'दलित साहित्य से हमारा आशय सामाजिक न्याय के संदर्भ में संवैधानिक मूल्यों स्वतंत्रता एवं बंधुता पर आधारित समता के समाज और सत्ता व्यवस्था की निर्मित सरंचना के लिए विचार से संवेदना से, विचार के धरातल पर सचेत एक सजग साहित्यकारों की संगठित क्रांति चेतना से सृजित अस्मितादर्शी साहित्य से है' जिसमें नैतिकता, चरित्र और राष्ट्रीयता का प्राधान्य है दलित होने की पीड़ा एवं शोषण की प्रथम अनुभूति दलित को ही हो सकती है न कि गैर-दलित को। अत: दलित साहित्य का अधिक प्रचलित अर्थ है वह साहित्य, जो दलितों का दलितों के लिए, दलितों द्वारा रचित है।[8]

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि दलित विमर्श के अंतर्गत दलित का अपना कुछ नहीं है। जो कुछ भी है वह भारत के जात्याभिमानी सवर्णों की कुत्सित मानसिकता से उत्पन्न मनुष्यत्व की निरंतर हत्या का होना। दलित साहित्य की प्रत्येक विधा दलित विमर्श को व्यापक फलक प्रदान कर रही है। अँग्रेजों के समय से भारत के दलितों में अपने स्वअस्तित्व के प्रति जानकारी का होना प्रारंभ होता है। इसी बीच बहिष्कृत समाज में उत्पन्न महापुरुषों व वारांगनाओं के संघर्ष से इन्हें प्रेरणा मिलती है और जीवन में सुधार की ओर अग्रसर होते हैं। शिक्षा का स्तर बढ़ते ही इतिहास की जानकारी होने लगती है। पीड़ा को व्यक्त करने की ताकत आने लगती है। आज भारत विविध भाषाओं में दलित साहित्य की सर्जना इस बात का साक्षात उदाहरण है। नवजागरण काल से लेकर अद्यतनकाल तक में भारत के दलितों में सुधार का क्रम देखा जा सकता है। इसका दूसरा पहलू देखा जाए तो आज स्वतंत्र भारत में यदि कानून की बंदिश हटा ली जाय तो स्वतंत्र भारत का सामान्यजन सहित ब्राह्मण दलित जनों के प्रति पुन: मनुवादी मानसिकता को प्रदर्शित करने से पीछे नहीं हटेंगे। वस्तुत: आज भी सवर्णों की बहुतायत सरकारी वर्गों व उनके द्वारा स्थापित, शिक्षालयों, मीडियातंत्रों और प्राइवेट सैक्टरों में वर्चस्व आज भी बना हुआ है। सरकार सरकारी प्रतिष्ठानों को टुकड़ों-टुकड़ों में प्राइवेट सेक्टरों के हवाले कर दलित जनों के सामने अवसरों को खत्म कर रही है। ऐसी स्थिति में दलित विमर्शकारों को अपनी लड़ाई लेखनी के बल पर खुलकर करनी होगी। आजाद भारत में कानून की बंदिश होने पर भी सामान्यजन सहित ब्राह्मणवर्ग वर्तमान दौर में मनुवादी मानसिकता का प्रदर्शन करता रहता है। भारत का इतिहास आज भी लहूलुहान हो रहा है। भेदभाव आज भी जारी है। इस तरह की स्थिति से दलित लेखक अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता है। इसीलिए कहा जाता है कि दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलितों की पीड़ा को व्यापक स्तर पर महसूस कराता है। यही कारण है कि आज के दौर में दलितों द्वारा व्यापक स्तर पर अनेक विधाओं में साहित्य की सर्जना की जा रही है। भारत में आजकल आरक्षण को हटाने के लिए साजिश रची जा रही है। सरकारी तंत्र पर सामान्य जनों सहित ब्राह्मणों का कब्जा होने के कारण मूल निवासियों को मनुवादी परंपरा के तहत दला जाय, इस पर सरकारी सहयोग से कार्य प्रारंभ हो चुका है। 'डॉ॰ अंबेडकर ने दलित, आदिवासियों के लिए भारतीय संविधान में आरक्षण का प्रावधान कर सामाजिक स्तर पर पिछड़े और उत्पीड़ित समाज को विशेष अवसर देकर समान स्तर पर लाने की एक ठोस सकारात्मक पहल की थी। 'आरक्षण पहले विजेता अपने लिए किया करते थे। यह पहली बार था कि वंचित लोगों के लिए आरक्षण के सिद्धांत को किसी संविधान ने स्वीकृति दी थी और वह संविधान डॉ॰ अंबेडकर ने बनाया था।'[9]

वस्तुस्थिति बनाए रखने के लिए हिंदी क्षेत्र सहित अन्य भाषा के दलित विमर्शकारों के लिए

बड़ी चुनौती बनी हुई है। यहाँ पर दलित विमर्श की परिपक्वता की सीमा बढ़ जाती है। आजाद भारत में दलितों को संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार भी सुरक्षित नहीं रहने पाएँगे, ऐसा प्रतीत होने लगा है। दलित साहित्य में राष्ट्रधारा के विपरीत होनेवाले कार्यों के प्रति स्वर तेजी से उठेगा। अँग्रेजी काल में उत्पन्न नवजागरण काल में आशाएँ बँधी थी वहीं आजाद भारत में आशाएँ धूमिल होती नजर आ रही हैं। भारत में यह द्वंद्व दो नस्लों का द्वंद्व है। सामान्य वर्ण नस्ल अवसर पाने पर हथियार चलाए बगैर शांत नहीं रह सकता। यही कारण है कि द्वंद्व आज भी जारी है। इसका मूल कारण हिंदूधर्म से जुड़ी मानसिकता है। डॉ॰ नरेंद्र दाभोलकर स्पष्ट करते हैं–'हिंदूधर्म में जितनी विस्तृत जाति-व्यवस्था है, उतनी अन्य किसी धर्म में नहीं। हिंदूधर्म में लगभग साढ़े छः हजार जातियाँ हैं। इसलिए इस धर्म की महत्त्वपूर्ण इकाई जाति है। प्रत्येक जाति के अलग-अलग कर्मकांड हैं, रूढ़ियाँ एवं परंपराएँ हैं। उनका प्राचीनकाल में किसी का महत्त्व रहा हो, लेकिन आज वह केवल अंधविश्वास बनकर रह गया है। उनमें बहुदेववाद है।'[10] बहुदेववाद हिंदूधर्म का मूल है। इसी कारण से दलित समुदाय में शिक्षा का अभाव दिखाई देता है।

दलित समाज में शिक्षा के अभाव से आर्थिक विपन्नता, सामाजिक शोषण, राजनीतिक शोषण आदि के कारण दलितों में अंधविश्वास का जन्म होता है। अंधविश्वास के बादल पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के दलितों में अभी-भी कूट-कूटकर भरा है, जिसका कारण ब्राह्मणवाद है। ब्राह्मणवाद से लड़ने की धार जितनी तीखी होती जाएगी, दलित विमर्श अपनी परिपक्वता को प्राप्त करता रहेगा। दलित विमर्श की सफलता तभी मानी जाएगी जब भारतीय समाज को मानवीय विवेक के आधार पर पुनर्गठित करते हुए एक समतामूलक समाज में बदलना जाए है या यूँ कहें कि दलित साहित्य एक मजबूत मोर्चा है समतामूलक, समानता व साम्य स्थापित करने के लिए।

संदर्भ

1. दलित साहित्य वार्षिकी 2016 संपादक डॉ॰ जयप्रकाश कर्दम, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 197
2. दलित समाज (आज की चुनौतियाँ) पूर्वकथन से उदधृत जियालाल, आर्य प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
3. हिंदीकाव्य में दलित काव्यधारा, डॉ॰ माताप्रसाद, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 26
4. हिंदीकाव्य में दलित काव्यधारा, डॉ॰ माताप्रसाद, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 27
5. दलित साहित्य वार्षिकी 2015, संपादक डॉ॰ जयप्रकाश कर्दम, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 22
6. हिंदीकाव्य में दलित काव्यधारा, डॉ॰ माताप्रसाद, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 25
7. दलित साहित्य परंपरा और विन्यास, डॉ॰ एन॰ सिंह, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, पृ॰ 69
8. दलित साहित्य परंपरा और विन्यास, डॉ॰ एन॰ सिंह, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, पृ॰ 76
9. दलित हस्तक्षेप, डॉ॰ रमणिका गुप्ता, शिल्पायन, दिल्ली, पृ॰ 25
10. दलित साहित्य वार्षिकी 2016, संपादक डॉ॰ जयप्रकाश कर्दम, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 419

एच-316, **इंद्रलोक कालोनी**
कृष्णानगर, मानसनगर
कानपुर रोड, लखनऊ 226023
मो॰ 9455163128

वर्तमान सामाजिक–आर्थिक परिदृश्य में स्त्री सशक्तिकरण की चुनौतियाँ

डॉ॰ जयप्रकाश यादव
एसो॰ प्रोफेसर (हिंदी विभाग)
एम॰एम॰ पी॰जी॰ कॉलेज
मोदीनगर, गाजियाबाद (उ॰प्र॰)

वर्तमान सामाजिक–आर्थिक परिदृश्य में स्त्री सशक्तिकरण एक बड़ी चुनौती है। शिक्षा एवं जागरूकता ही इस समस्या से मुक्ति दिला सकती है। इस समस्या के बीज हमारे समाज में हैं इसलिए पुरुष वर्चस्व के इस समाज में स्त्री की स्थिति एवं उससे जुड़े विभिन्न सामाजिक–आर्थिक सवालों पर विचार करना आवश्यक है।

वर्तमान समय में कुछ बड़े घरानों की महिलाओं ने दुनिया की सौ प्रभावशाली महिलाओं की सूची में अपना नाम दर्ज कराकर यह भी साबित कर दिया है कि वे विश्व की महिलाओं से कहीं पीछे नहीं हैं। अमेरिकी अति महत्त्वपूर्ण पत्रिका 'फोर्ब्स' द्वारा जारी दुनिया की सौ प्रभावशाली महिलाओं की सूची में 'पाँच भारतीय महिलाओं ने स्थान पाया है। सबसे आगे हैं आई॰सी॰आई॰सी॰आई बैंक की सी॰ई॰ओ॰ चंदा कोचर। इसी सूची में एच॰सी॰एल॰ की सी॰ई॰ओ॰ रोशनी नादर, बायोकॉन की संस्थापक चेयरपर्सन किरन मजूमदार शॉ, एच॰टी॰ मीडिया की चेयरपर्सन शोभना भरतिया और फिल्म अभिनेत्री प्रियंका चोपड़ा शामिल हैं। सूची में पेप्सिको की सी॰ई॰ओ॰ इंदिरा नूयी (11वाँ स्थान) और संयुक्त राष्ट्र में अमेरिकी राजदूत निक्की हेली (43 वाँ स्थान) भी शामिल है। ये दोनों भारतीय मूल की महिलाएँ हैं।'[1] दुनिया की शीर्ष प्रभावशाली महिलाओं का चयन उनके सशक्तिकरण एवं उपलब्धि के चरम को दर्शाता है। 'फोर्ब्स' पत्रिका में 'दुनिया की सबसे ताकतवर महिलाओं का चयन चार बिंदुओं पर किया गया है। धन (कुल संपत्ति, कंपनी की आय, पूँजी या जी॰डी॰पी॰) मीडिया में चर्चा प्रतिष्ठा व प्रभाव के क्षेत्र, अपने–अपने क्षेत्र (मीडिया तकनीक, बिजनेस, सामाजिक कार्य, राजनीति और आर्थिक प्रबंधन) और उसके बाहर महिलाओं के प्रभाव के आधार पर सूची तैयार की जाती है।'[2]

फोर्ब्स पत्रिका में जारी शीर्ष महिलाओं की सूची में दर्ज कुछ महिलाओं का नाम देखकर हम यह नहीं कह सकते कि भारत देश में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी हो गई है। अब लोगों की परंपराग सोच में बदलाव देखने को जरूर मिल रहा है, किंतु संख्या कम है। पुरुष के एक खास वर्ग ने ही स्त्रियों को सम्मानपूर्वक एवं आत्मविश्वास के सभी जीने की आजादी देनी शुरू की है। नीलिमा चौहान ने ठीक कहा है कि 'समाज में जो नियम आदिकाल से चले आ रहे हैं,

वह स्त्री और पुरुष में भेदभाव उत्पन्न करते हैं। धर्म, राजनीति और संस्कृति सभी समानता का दर्जा नहीं देते। कोई भी स्त्री आज भी पितृसत्ता के खिलाफ आवाज नहीं उठा सकती। यौन-शोषण को मतलब सिर्फ दैहिक शोषण ही नहीं है, बल्कि हर वह कृत्य है, जो महिला को उसके अधिकारों से वंचित रखता है एवं उसकी स्वायत्ता का अपमान करता है। दैहिक आजादी हमें माँगनी नहीं, अर्जित करनी हैं। हर स्त्री को मेरा तन, मेरा मन, मेरा धन और फिर मेरी कलम का रास्ता अख्तियार करना चाहिए।'[3]

आज स्त्री को अपना विमर्श स्वयं खड़ा करने की जरूरत है। यौन-हिंसा से जुड़े प्रश्नों पर गौर किए बिना हम स्त्री-विमर्श को सही मुकाम तक नहीं ले जा सकते। नाईश हसन यौन-विमर्श पर चर्चा करते हुए कहती हैं 'मर्दों ने सदियों से औरतों को अपनी तरह से गढ़ा है, जिसमें स्त्री सिर्फ भोग की वस्तु है। लिहाजा वह स्त्री के मन को नहीं, सिर्फ तन को प्रेम करना चाहता है और करता है।'[4] आर्थिक आत्मनिर्भरता स्त्रियों के लिए अति आवश्यक है। आर्थिक आत्मनिर्भरता से स्त्री के प्रति हमारे समाज के दृष्टिकोण में व्यापक बदलाव दिखाई दे रहा है।

आज की स्त्री के लिए पारंपरिक रूप से वर्जित क्षेत्र में प्रवेश करना जरूरी है। प्रश्न यह बार-बार उठता है कि वह कब तक दबी कुचली, सहमी एवं डरी रहेगी। वह कब तक अपनी आकांक्षाओं का दमन करती रहेगी। विवेक मिश्र, रजनी गुप्त के उपन्यास, 'ये आम रास्ता नहीं' की समीक्षा करते हुए लिखते है कि 'जब वह स्त्रियों के लिए वर्जित और गैरपारंपरिक कहे जाने वाले क्षेत्र राजनीति में प्रवेश करती है तो लोगों से रास्ता पूछने में और उस क्षेत्र में सफलता पाने के गुण सीखने में परहेज नहीं करती। वह वहाँ उस क्षेत्र में अनायास नहीं है बल्कि उसके खतरे समझते भाँपते उनसे जूझते हुए वहाँ आई है और आगे बढ़ रही है। ये अलग बात है कि उसका संघर्ष उस क्षेत्र के पुरुषों से अधिक गाढ़ा बहुस्तरीय है।'[5] एक स्त्री बराबर द्वंद्व की स्थिति में रहती है। यह द्वंद्व परंपरा एवं आधुनिकता के बीच का होता है। वह किसी निर्णय पर जाने से पहले दस बार सोचती है कि 'क्या उसका इस तरह अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के लिए घर-परिवार बच्चों को नजरअंदाज कर आगे बढ़ना उचित है। सबसे पहले उसे अपने भीतर अपने आपसे जीतना है, फिर पति-परिवार घर की दहलीज, जो उसके अपने हैं, पर वह उसके समर्थन में नहीं बल्कि हर बात पर उसके विरोध में खड़े हैं, उनसे निपटना है। तब कहीं वह बाहर उस जमीन पर पैर रख सकेगी, जहाँ असली संघर्ष शुरू होना अभी बाकी है। जहाँ हर कदम पर कोई घात लगाए बैठा है। जहाँ जो जितना करीब है, जो मदद करने का आश्वासन दे रहा है, वही सबसे बड़ा शिकारी है।'[6]

यह एक सच्चाई है कि समाज में स्त्री की भूमिका और उसकी हैसियत का निर्धारण पुरुष द्वारा हुआ है। समाज द्वारा स्त्री को जो दर्जा दिया गया है, वह उसकी मानसिक बनावट का नियामक है, फ्रेंच नारीवादी लेखिका सिमन द वोउवा 'द सेकेंड सेक्स' में ठीक लिखती हैं कि 'नारी बनती नहीं बल्कि बना दी जाती है।'[7] इस प्रकार स्त्री-पुरुष में भेद होता नहीं, बल्कि पैदा किया जाता है। उसे यह बार-बार अहसास कराया जाता है कि तुम स्त्री हो। वैसे स्त्री-पुरुष के बीच प्राकृतिक भेद केवल जैविक है। कहना न होगा कि पुरुष ने दमन के लिए स्त्रियोचित व्यवहार के जो प्रतिमान निर्धारित किए हैं, अधिक समय तक अर्जित होने के कारण अब स्वभाव बन गए हैं। 'सेक्स और अर्थ' स्त्री के दो ऐसे मोर्चे हैं, जिस पर वह पुरुष से हमेशा मात खा जाती है। पुरुष उसे वस्तु बनाकर भोगता रहा है और वह भुगतने के लिए अभिषप्त रही है। समाज ने उसे

यह भी सिखाया है कि सेक्स में वह दूसरे नंबर की पार्टनर है। पुरुष की माँग के अनुसार समर्पण करते रहने में ही उसके जीवन की सार्थकता है। स्वयं पहल करना न केवल उसकी निर्लज्जता का लक्षण है बल्कि अनैतिक भी है। इस दमनकारी व्यवस्था में जीनेवाली स्त्री के लिए सशक्तिकरण की कल्पना बहुत कठिन है। भारतीय समाज में कौन क्या हासिल करता है, यह लिंग निर्धारित करता है। नर और मादा का भेद हमारी संस्कृति का अंग बन चुका है। स्त्री की जगह घर के अंदर है और पुरुष की बाहर जैसी मानसिकता नारी को घर एवं परिवार की चारदीवारी के अंदर कैद कर देती है। यहाँ उसके मन की व्याकुलता तड़प, छटपटाहट एवं उससे मुक्ति की आकांक्षा को कोई नहीं सुनता। यहीं वह सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक शक्ति की संभावनाओं से काट दी जाती है। स्वतंत्र लेकर पुरुष और शक्तिशाली हो जाता है और स्त्री शक्तिहीन। अंततः पुरुष की यही शक्ति स्त्री-शोषण, हत्या, बलात्कार का कारण बनती है।

अध्ययनों से पता चल रहा है कि लोग लिंग-आधारित मानसिकता से ग्रसित हैं। सभी को बेटा चाहिए। इसलिए बेटे के इंतजार में बेटियों को खत्म किया जा रहा है। गर्भपात अधिनियम 1972 की धज्जियाँ उड़ाई जा रही हैं। लड़कियों की जन्मदर घटती जा रही है। लड़कियाँ जन्म से पहले मार दी जा रही हैं या जन्म के बाद। विडंबना यह है कि यह काम पढ़े-लिखे संभ्रांत वर्ग द्वारा किया जा रहा है। दिल्ली-हरियाणा एवं पंजाब जैसे विकसित कहे जानेवाले राज्यों में घटता लिंग अनुपात बहुत ही शर्मनाक है। सोचने का विषय है कि स्त्रियाँ नहीं होंगी तो पुरुष कैसे पैदा होंगे। लड़कियों की घटती संख्या से समाज में अराजक स्थिति बनती जा रही है। इस स्थिति से विवाह जैसी संस्था के सामने भी प्रश्नचिह्न खड़ा हो गया है।

भारतीय समाज में स्त्री की सामाजिक स्थिति के साथ-साथ आर्थिक स्थिति भी बहुत दयनीय है। भारतीय अर्थ-व्यवस्था में स्त्रियाँ उत्पादक कार्यों में सक्रिय भागीदारी निभाती हैं। वे समूचे श्रम का एक तिहाई कार्य करती हैं, फिर भी उनका कार्य अदृश्य ही रहता है। समस्या की गंभीरता को मापने के लिए सालीनी डिसूजा के प्रपत्र 'पेड एंड अनपेड विमेन इन साउथ एशिया' पर दृष्टि जाती है। इस प्रपत्र से स्पष्ट है कि 'भारत की अधिकांश नारी-आबादी अनुत्पादक कार्यों में लगी हुई हैं'। निश्चित तौर से आर्थिक तंत्र पर उसका कोई अधिकार नहीं है। नारी एक ओर सामाजिक उपेक्षा की शिकार है तो दूसरी और आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण वह पीढ़ी दर पीढ़ी शोषित होने के लिए समाज के सामने प्रस्तुत हुई है। यू॰एन॰ रिपोर्ट से यह पता चलता है कि गरीब परिवार अपने घर की स्त्रियों के कार्यों पर आर्थिक रूप से अधिक निर्भर रहते हैं। फिर भी इन स्त्रियों के स्वास्थ्य, शिक्षा, भोजन आदि पर पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम खर्च किया जाता है। समाज के उत्पादन में उसकी हिस्सेदारी बहुत कम होती है। स्त्रियों का पोषण पुरुषों की तुलना में कम किया जाता है। इसीलिए महिलाओं की मृत्युदर पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है। अभी भी तीन-चौथाई महिलाओं की आबादी अशिक्षित है। 90 प्रतिशत ग्रामीण एवं 70 प्रतिशत शहरी कामकाजी महिलाएँ प्रशिक्षण के अभाव में अकुशल हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि भूमि-संपत्ति का अधिकार इनके पास नहीं हैं। पत्नी एवं बेटी इस अधिकार से वंचित है।

स्त्री सशक्तिकरण आर्थिक आत्मनिर्भरता से ही संभव है। यह आत्मनिर्भरता कार्यकुशलता से अर्जित आय द्वारा प्राप्त हो सकती है। वे आत्मनिर्भर बनकर अपने सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को ऊँचा कर सकती हैं। उससे वे जनसंख्या-वृद्धि पर नियंत्रण भी पा सकती है। वे बच्चों के

खाने-पीने एवं स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान दे सकती हैं। इस प्रकार वे स्वयं का सामाजिक आर्थिक स्तर ऊँचा कर देश का सम्मान बढ़ा सकती हैं। देश सम्मान नारी-मुक्ति में है और नारी-मुक्ति नारी के आत्मनिर्भर बनने में। इसके लिए उनके शिक्षण-प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं परिवार तथा अन्य क्षेत्रों में काम करनेवाली स्त्रियों को विशेष सुविधाएँ देकर उनकी दक्षता का और विकास किया जा सकता है।

गरीब महिलाएँ अधिकतर कृषि से जुड़े कार्यों में लगी हुई हैं। इधर कृषि-आधारित नई तकनीक आने से इनको थोड़ा आराम मिला है, किंतु भूमिहीन मजदूर महिलाएँ अभी भी दूसरों के खेतों में बंधुआ मजदूरी करने के लिए विवश हैं। यह जरूर है कि काम-काज के लिए बाहर निकलने से इन महिलाओं में उच्चवर्ग की ग्रामीण महिलाओं की अपेक्षा निर्भिकता एवं स्वतंत्रता बढ़ी है। कृषि-क्षेत्र में होनेवाले नए-नए शोध एवं तकनीकी विकास की शिक्षा से कृषि-क्षेत्र में काम करनेवाली महिलाओं को लाभ पहुँचाया जा सकता है। उन्हें नकदी फसलों, सब्जी, फल आदि के उत्पादन के लिए प्रेरित किया जा सकता है। किंतु अभी भी ऐसे विशेषज्ञों का अभाव है, जो महिला किसानों की समस्याओं को समझ सकें और उसका समाधान प्रस्तुत कर सकें।

शहरी महिलाओं की स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है। उनकी संकीर्ण मानसिकता एवं शिक्षण-प्रशिक्षण का अभाव आगे बढ़ने में बहुत बड़ी बाधा है। संगठित एवं असंगठित दोनों क्षेत्रों की ये महिलाएँ तरह-तरह के शोषण की शिकार हैं। निजीकरण एवं भूमंडलीकरण ने इस समस्या को और बढ़ा दिया है। विभिन्न तरह के निर्माण-कार्यों एवं औद्योगिक इकाइयों में काम करनेवाली महिलाओं की स्थिति बहुत चिंताजनक है। वे अधिक घंटे, कम पैसे में अधिक काम करती है। इनका यह भी कार्य अस्थायी ही चलता है। काम बंद हो जाने की स्थिति में वे भुखमरी का शिकार भी हो जाती हैं। 'महिला स्वरोजगार राष्ट्रीय आयोग' ने इनकी सुरक्षा के लिए बहुत से प्राविधान किए हैं, किंतु इनकी अज्ञानतावश वे भी बेमानी साबित हो रहे हैं।

निश्चित रूप से नारी की सामाजिक-आर्थिक दुर्दशा का कारण अशिक्षा है। शिक्षा के माध्यम से ही वह अपने अंदर आत्मविश्वास जगा सकती है और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकती है। शिक्षित होकर ही वह लोगों से खुलकर विमर्श कर सकती है। शिक्षा स्त्री को नए ढंग से सोचने-समझने के लिए प्रेरित कर सकती है एवं नई-नई जानकारियाँ उपलब्ध करा सकती है। शिक्षा के बलपर ही वह अच्छे स्वास्थ्य, पोषण एवं समय पर मेडिकल सुविधाओं का लाभ ले सकती है। बहुत से माता-पिता अर्थाभाव में लड़कियों को शिक्षा नहीं दिला पाते हैं। उन्हें अन्य कामों में लगा देते है या कम उम्र में ही विवाह कर देते हैं। समन्वित बाल विकास सेवा (ICOSQ) ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण (TRY SEM) राष्ट्रीय साक्षरता मिशन (NLM) जैसे संगठनों द्वारा इन्हें प्रशिक्षित करने का प्रयास समय-समय पर किया गया है। वैसे सरकारी स्तर से 1954 से ही महिलाओं के सशक्तिकरण के प्रयास जारी है, किंतु ये प्रयास ज्यादातर परंपरागत ढाँचे में ही हुए हैं। महिलाओं को आर्थिक गतिविधियों की मुख्यधारा में लाने का कार्य 1974 से शुरू हुआ। महिलाओं की गरीबी को देखते हुए छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में समन्वित ग्रामीण विकास योजना (IRDP), ग्रामीण महिला बाल विकास (OWQCRA) जैसे कार्यक्रम शुरू किए गए। शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति (1986) ने भी इस दिशा में कार्य तो किया, किंतु बहुत सफल रही हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। हाल में ही सरकारों ने स्कूल चलो अभियान, दोपहर

 ISSN 0975-735X

का भोजन एवं कन्या विद्या धन योजना द्वारा महिला शिक्षा पर विषेश ध्यान दिया गया है। आशा है इसके कुछ बेहतर परिणाम देखने को मिलेंगे।

सन् 1980 के बाद से सरकारी संस्थाओं के अलावा गैरसरकारी संस्थाएँ (NGO) भी महिला शिक्षा एवं उनके सशक्तिकरण का झंडा फहराए चल रही हैं। ये सरकार एवं वित्तीय बैंकों के साथ मिलकर काम कर रही हैं। उनके कार्य भी बहुत संतोषजनक नहीं कहे जा सकते। इस तरह के संगठन दिन-रात सरकारी अनुदान एवं विदेशी धन की जुगाड़ में ही लगे रहते हैं। ऐसे एन॰ जी॰ओ॰ कम ही हैं, जिन्होंने दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, पिछड़े ग्रामीण एवं शहरी समाज की महिलाओं के सशक्तिकरण के संदर्भ में ईमानदारी से काम किया हो।

शिक्षा मात्र विकास साधन नहीं है, बल्कि सामाजिक आर्थिक मुक्ति का हथियार भी है। स्त्री विकास में बराबर की भागीदारी शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त कर सकती है। सवाल उठता है संविधान में बराबर की भागीदार एवं अवसर-प्राप्ति का अधिकार रखनेवाली स्त्री बार-बार हाशिए पर क्यों चली जाती है? जाहिर है, इसके गहरे सामाजिक-आर्थिक कारण हैं। भेद-भावपूर्ण सामाजिक दृष्टिकोण एवं दकियानूस रूढ़ मान्यताएँ नारी सशक्तिकरण में सबसे बड़ी बाधा हैं। शिक्षा के द्वारा ही वह इन बाधाओं को तोड़ सकती है। इसी के माध्यम से वह जाति, धर्म, क्षेत्र, वर्ग-वर्ण, लिंग-भेद, शारीरिक-मानसिक अलगाव से लड़ सकती है और अपनी स्वतंत्र पहचान कायम कर सकती है। शिक्षा से ही वह घर एवं बाहर पुरुष की बराबरी का बोध एवं लिंग की समानता एवं संभोग में न्याय हासिल कर सकती है।

निश्चित रूप से स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में किए जा रहे सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रयास काफी नहीं है। मुफ्त शिक्षा, वजीफा, पुस्तकें एवं दोपहर का भोजन उपलब्ध कराकर इस समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता। इसके लिए एक ऐसे जनजागृति अभियान की जरूरत है, जिससे स्त्रियाँ अपनी दशा एवं दिशा पर सोचने के लिए स्वयं मजबूर हों। यहाँ समाज की उस मानसिकता को भी बदलना जरूरी है, जहाँ पुरुष उसे घर की मालकिन बनाकर उसके बाहरी सामाजिक आर्थिक विकास की संभावनाओं को काट देता है। इसके लिए न केवल प्राथमिक शिक्षा बल्कि शिक्षा से जुड़े विभिन्न पाठ्यक्रमों में भी स्त्री सशक्तिकरण से संबंधित विषयों का रखा जाना आवष्यक है। निश्चित रूप से वर्तमान सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य में अध्ययन अध्यापन, शोध एवं सेमिनारों से स्त्री सशक्तिकरण में सहायता मिल सकती है। शिक्षा एवं संचार से जुड़े विभिन्न माध्यम स्त्री की सामाजिक मुक्ति एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता की दिशा में महत्त्वपूर्ण साधन बन सकते हैं।

संदर्भ

1. दैनिक जागरण, नई दिल्ली, 3 नवंबर 2017, पृ॰ 11
2. दैनिक जागरण, नई दिल्ली, 3 नवंबर 2017, पृ॰ 11
3. दैनिक जागरण, नई दिल्ली, 5 नवंबर 2017, पृ॰ 8
4. दैनिक जागरण, नई दिल्ली, 5 नवंबर 2017, पृ॰ 8
5. हंस-अक्षर प्रकाशन प्रा॰लि॰ नई दिल्ली, वर्ष 29, अंक 10 मई 2015, पृ॰ 84
6. हंस-अक्षर प्रकाशन प्रा॰लि॰ नई दिल्ली, वर्ष 29, अंक 10 मई 2015, पृ॰ 84
7. सीमोन द बोउवार (अनुवाद) प्रभा खेतान-स्त्री उपेक्षिता, हिंदी पॉकेट बुक, नई दिल्ली, सं॰ 2002

वर्तमान कथासाहित्य में अलका सरावगी का योगदान

डॉ॰ सुचित्रा मलिक
शोध छात्रा **मीनूदेवी**
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

हिंदी कथासाहित्य में स्त्री लेखिकाओं का आगमन कई दृष्टियों में युगांतकारी है। प्रतिभा-संपन्न नारियाँ हर युग में हुई हैं। शक्ति रूपा नारी कल्याणी तथा प्रकृति रूप में वंदनीय है। परिवार में माता का स्थान सर्वोच्च होता है। नारी ने हर युग में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। साहित्यकार का जीवन साधना का जीवन है। दीये की भाँति स्वयं जलकर भी वह दूसरों को प्रकाश देता है जीवन-भर व्यथा में तपकर वह जो पाता है, उसे कंचन-सा निखारकर जगत को लुटा देता है। जीवन और जगत के समस्त विष को अपनी साधना के बल पर अमृत कर देता है। साहित्य का कलागत अनुशीलन कथाकार के व्यक्तित्व के अलावा उन सभी घटकों से अपेक्षा रखता है, जिनमें सृजन की विभिन्न विभीषिकाएँ जन्म लेती हैं और कथाकार अपनी मनपसंद चरित्र-सृष्टियों को उनके परिवेश के साथ अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है, उनमें संघर्ष करता है और साहित्य के उद्देश्यों को परिपूर्णता की ओर अग्रसर करता है। हिंदी कथासाहित्य में अलका सरावगी हिमानी शिखर जैसी गर्वोन्नत दिखाई देती हैं। ये आज के समय की सुविख्यात साहित्यकार ही नहीं, अपितु मर्मज्ञ कलाप्रेमी भी हैं। उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में अलका सरावगी का नाम समकालीन महिला लेखिकाओं में ही नहीं अपितु समकालीन समग्र लेखक जगत में सुपरिचित है। अपनी अनूठी शैली, प्रस्तुतीकरण एवं विषय-चयन के कारण ये बहुचर्चित लेखिका के रूप में प्रसिद्ध रही हैं। हिंदी साहित्य में इनका उल्लेखनीय योगदान है। जो कथाकार यथार्थ से जितना साक्षातकार करता है, वह उतना ही प्रभावशाली लेखन करता है। इनके लेखन में नवीनता इसलिए आ जाती है, क्योंकि अलका अपनी प्रत्येक रचना में मुख्य कथा के साथ-साथ गौण कथाओं को भी अहमीयत देती हैं। इन्होंने मानव-जीवन के उस रूप को अपने शब्दों से बयाँ करने की कोशिश की है, जो गाँव और शहर का आम आदमी है।' अलका सरावगी का मानना है कि दुनिया का सबसे बड़ा रहस्य है मानव-मन और यही साहित्य के सृजन और पाठन के आनंद का आधार भी है। यदि एक व्यक्ति का अनुभव, उसका कष्ट, उसका पल-पल उद्वेलन, उसकी असहाय छटपटाहट कुल मिलाकर उसकी साधारणता ही साहित्य में नहीं आती, तो हम किस साधारण आदमी के साहित्य की बात करते हैं।'[1]

अलका सरावगी ने अपने कथा-लेखन में मानव-जीवन के उन पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है, जो मानव-जीवन में हर क्षण घटित होते हैं। इनके पहले उपन्यास 'कलि-कथा: वाया बाइपास' के प्रकाशन ने हिंदी पाठकों को चौंका दिया था। बेहद चुस्त व सधी भाषा और

 ISSN 0975-735X

एक-एक वाक्य की स्थिति इस उपन्यास का प्राण है। 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार से सम्मानित 'कलि-कथा: वाया बाइपास' की पृष्ठभूमि कलकत्ते के त्रासदीपूर्ण जीवन का चित्रण करती है। अलका सरावगी का यह उपन्यास कैंब्रिज विश्वविद्यालय और इटली के कई विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जा रहा है।

'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास का अँग्रेजी, फ्रेंच और इतावली में अनुवाद स्वयं लेखिका ने किया है। यह उपन्यास अन्य 22 भाषाओं में भी प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास हिंदी साहित्य जगत में इनकी प्रारंभिक मूल आवाज के रूप में पहचाना गया। इस उपन्यास में 1925 में जन्मे किशोर बाबू की काल्पनिक कथा है, जिसके बारे में स्वयं लेखिका का कथन है–

यह कथा किशोर बाबू की कथा है और कथाकार की उपस्थिति इसमें इतनी ही होगी जितनी खाँटी शुद्ध किस्सागोई में होनी चाहिए...इस कथा को लिखवाने के पहले किशोर बाबू ने कथाकार से ऐसा संकल्प करवाया कि वह बंगाल के ख्याति-प्राप्त सुनारों की तरह बाईस-बाईस केरेट शुद्धि के गहनों जैसी कथा लिखे यानी विशुद्ध सोने की चौबीस कैरेट में दो कैरेट की मिलावट करने जितनी ही उसे छूट है।[2]

अर्थात् यथार्थ और कल्पना के इतने मिश्रण से इनके वर्णनों की विश्वसनीयता लगभग शतप्रतिशत है।

इस उपन्यास में बंगाल के अकाल के समय महिलाओं की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्र प्रस्तुत होता है। 'एक साथ कई शैलियों में लिखा गया यह उपन्यास अलग-अलग देशकाल में आगे-पीछे चलता पाठकों को ऐसी यात्रा के लिए आमंत्रित करता है, जिसमें वे चौंकने, रास्ता खोने और फिर उसे खोज पाने के आनंद का अनुभव करें।'[3]

इनका दूसरा उपन्यास 'शेष कादंबरी' एक सदी से दूसरी सदी तक के समय और स्मृतियों के इतिहास के तनाव से नई उत्सुकता जगाता है। यह उपन्यास महिलाओं की त्रासदी के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अलका सरावगी के उपन्यास 'शेष कादंबरी' की पात्र रूबी अपने अस्तित्व की रक्षा में प्रयत्नशील है, 'अपने होने के अर्थ को सत्तर साल की उम्र में 'परामर्श' जैसी संस्था के जरिए अब भी खोजने की कोशिश करती रूबी गुप्ता के 'सोसल वर्क' का उनकी नातिन कादंबरी की दृष्टि में कोई मोल नहीं, क्योंकि कादंबरी के अखबारी मुहावरों में उससे कोई 'सोसल जस्टिस' हासिल नहीं होता। नानी की कहानी लिखने की कोशिश पर भी कादंबरी प्रश्नचिह्न लगाती है और इस तरह रूबी दी के लिए अपनी माँ जैसी कष्टदायक कसौटी बनती जाती है–कादंबरी जिसका एक अर्थ कथा या उपन्यास भी है।'[4]

अलका सरावगी का तीसरा उपन्यास 'कोई बात नहीं' एक विकलांग बच्चे के जीवन की त्रासदी को उजागर करता है। उसकी दादी और मौसी की कहानियाँ उसे जीने के लिए सहारा देती हैं, विकलांग बच्चे का परिवार उसे आत्मविश्वास प्रदान करता है। पूरा उपन्यास कथा कहने जैसा लगता है, 'उपन्यास में शशांक है जो अचानक किसी दुर्घटनावश अपंग हो जाता है और करीब तीन साल तक बीमार रहता है। इस दौरान इन सारे अलग-अलग किस्से से ही बाहरी दुनिया से उसका संपर्क बना रहता है। उसकी दादी जिन्होंने 'देश' का जीवन भी देखा था और अपने 'कल कतिया' पोते को वह देश के किस्से सुनाती हैं, शशांक स्वयं उनकी कहानी लिखना चाहता है। आरती मौसी है जो वैसे तो कहानियाँ लिखती हैं, लेकिन उनकी हर कहानी संपादकों द्वारा

सधन्यवाद लौटा दी जाती है, लेकिन फिर भी वह शशांक के सुने हुए किस्से सुनकर उनको लिखने के उपक्रम में लगी रहती हैं। कुल मिलाकर इतने सारे लोग मिलकर अलग-अलग दौर की इतनी कहानियाँ सुनाने में लगे दिखाई देते हैं कि उपन्यास की मूल कथा, जो अपने अपंग बेटे को उसकी अपंगता से उबारने के लिए माँ द्वारा किए गए संघर्ष की है, दबकर रह जाती है।'[5] 'कोई बात नहीं' उपन्यास में पौराणिक कहानियों आख्यानों का उपयोग करते हुए इसे कई किस्म की कहानियों का गुलदस्ता बना दिया गया है।

अलका सरावगी का चौथा उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' कॉरपोरेट जगत का चित्रण करता है। इस उपन्यास का नायक के॰वी॰ शंकर अय्यर है। साठ वर्ष का हो जाने के बाद भी के॰वी॰ शंकर अय्यर के पास नौकरियाँ चक्कर लगा रही हैं। जहाँ एक ओर कॉरपोरेट जगत आकर्षक और लुभावना है, तो वहीं दूसरी ओर शोषक और बर्बर भी है। के॰वी॰ मानते हैं कि 'इंडिया के इकोनामिक 'बूम' में देश की एक अरब जनता के पास खुशहाली के सपने हैं। दुनिया का शासन अब सरकारों के हाथ में नहीं, कॉरपोरेट कंपनियों के हाथों में है।'[6] अत: कंपनियों या व्यापारिक जगत सरकार से कहीं अधिक देश की जनता के भविष्य का निर्धारण करता है। अलका सरावगी का कथा साहित्य वास्तविक यथार्थ का साहित्यक रूप है और 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास इस तथ्य को प्रमाणित करता है।

अलका सरावगी का पाँचवाँ उपन्यास 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' है, जिसका पहला संस्करण फरवरी 2015 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में जयगोविंद एक कंप्यूटर इंजीनियर है 'वह अपना एक जीवन जयदीप के रूप में जीता है, तो दूसरा जीवन नक्सलबाड़ी आंदोलन से लेकर भारत के एक बड़े बाजार में बदलने या 'नेशन स्टेट' से 'रीयल स्टेट' बनने के यथार्थ में। इस उपन्यास की कथा आजादी के बाद इस देश की जवान हुई पहली पीढ़ी को मिले धोखे और नाकाम 'सिस्टम' की दास्तानें तथा अमेरिका के वियतनाम युद्ध से लेकर विकीलीक्स के धोखे तक फैली है।'[7] अमेरिका इस उपन्यास में एक मोटिफ के रूप में है।

अलका सरावगी के दो कहानी-संग्रह हैं। उनका पहला संग्रह 'कहानी की तलाश में' (1996) आधार प्रकाशन से प्रकाशित है। इस कहानी-संग्रह में 17 कहानियाँ संगृहीत हैं। इन कहानियों को कल्पना के आधार पर रचा हुआ है, किंतु अनुभव से होकर गुजरनेवाला संसार जीवंत और रोचक होता है, इसलिए अलका सरावगी का कथासाहित्य जीवंत और प्रामाणिक है। इनकी कहानी-यात्रा पहले से कोई आयोजित भ्रमण नहीं है, कहानियाँ जानने और जताने की हैं कि 'कैसे कोई कहानी के संसार की यात्रा शुरू कर देता है तो उसे पग-पग पर कहानियाँ मिलती रहती हैं। हाँ इस मिलने से तलाशना जुड़ा है, मिलना सहज संयोग नहीं। लेखिका को सुंदरता और परिपूर्ण जीवन की तलाश है और उसी तलाष में वह कहानी पा लेती हैं–इसमें वह ऐसी सृजनात्मकता का वरण करती है जो सहज है, पर जिनमें जटिलताओं का नकार नहीं। ये कहानियाँ जैनेंद्रकुमार और रघुवीर सहाय जैसे पूर्ववर्ती लेखकों की कहानियों की भी याद दिलाती हैं। इन कहानियों को जीवन की कहानियाँ कहने का मन करता है–रोजमर्रा की जिंदगी का मतलब एक पिटी-पिटाई और ढर्रे की जिंदगी नहीं होता, आखिर हर दिन एक नया दिन भी होता है। यह एहसास ये कहानियाँ करवाती हैं, जो निश्चय ही आज एक अत्यंत विरल अनुभव है।'[8]

अलका सरावगी का दूसरा कहानी-संग्रह 'दूसरी कहानी' के नाम से प्रकाशित है, जो सन्

2000 में राधाकृष्ण प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। दूसरे कहानी-संग्रह में 18 कहानियाँ संगृहीत हैं। 'दूसरी कहानी' समकालीन कहानी से कुछ अलग है, जो कहानी के क्षेत्र में नयी संभावनाएँ प्रदीप्त करती है।

'दूसरी कहानी' कहानी-संग्रह में कहानी को कहानी बनाकर पेश किया गया है। इस कहानी-संग्रह की कहानियाँ इस ओर संकेत करती हैं, कि शायद जीवन की पूर्णता या सार्थकता की संभावना इसी अपूर्णता या अधूरेपन में है। 'पर वह कहानी कभी वही कहानी नहीं रहती–समय के साथ वह हर बार एक बदली हुई कहानी होती है। वह कभी लिखी नहीं जाती। बन जाती है पूरी, पर निराकार रहती है।'[9]

अलका सरावगी ने अपने आधुनिक दृष्टिकोण से कथासाहित्य लिखकर समकालीन कथासाहित्य के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया है। उन्होंने मानवीय जीवन के सभी पक्षों का चित्रण सफलता से किया है।

संदर्भ

1. वीर बैसवारा, 11दिसंबर 2010, पृ॰ 4
2. कलि-कथा : वाया बाइपास, अलका सरावगी, पृ॰ 10
3. कलि-कथा : वाया बाइपास, अलका सरावगी, फ्लैप से
4. शेष कादंबरी, अलका सरावगी, फ्लैप से
5. तद्भव, अगस्त 2004, सं॰ अखिलेश, पृ॰ 243
6. एक ब्रेक के बाद, अलका सरावगी, फ्लैप से
7. जानकीदास तेजपाल मैनशन, अलका सरावगी, फ्लैप से
8. कहानी की तलाश में, अलका सरावगी, फ्लैप से
9. दूसरी कहानी, अलका सरावगी, पृ॰ 15

द्वारा दीपककुमार सैनी
ग्राम मार्जी, पो॰ पिरान
कलियर (हरिद्वार) 247667
मो॰ 9756505214

'मीराबाई' नारी अस्तित्व के रूप में

डॉ॰ पर्वज्योत कौर

नारी संपूर्ण सृष्टि में ईश्वर की अनुपम एवं अद्‌भुत रचना है। नारी ने अपने सौंदर्य तथा गुणों से समाज, साहित्य, धर्म, इतिहास और राजनीति को प्रभावित किया है। परिणामत: इनमें से एक भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जो नारी के अस्तित्व से अछूता रहा हो। ये सभी क्षेत्र नारी के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित रहे हैं। 'विश्व की समृद्ध एवं प्रगतिशील भाषाओं के साहित्यिक ग्रंथों के अध्ययन, मनन तथा अनुशीलन से सतत् ही यह ज्ञात होता है कि उन भाषाओं के साहित्य और उनके अंग-उपांगों को जगत-स्रष्टा जगदीश्वर की अनुपम कृति 'नारी' ने अत्यधिक रूप से प्रभावित किया है।'[1] हिंदी साहित्य के मध्यकाल में मीराबाई का नाम भारत के प्रधान नारीभक्तों में है, इनका गुणगान नाभा जी, ध्रुवदास जी, व्यास जी, मलूकदास आदि भक्तों ने किया है।

मीराबाई के व्यक्तित्व और कृतित्व की महत्ता 20वीं सदी के उत्तरार्ध में बढ़ती गई। भक्तिकाल को स्वर्णयुग के रूप में मूल्यांकित करने की परंपरा जबसे प्रारंभ हुई, तबसे कबीरदास, तुलसीदास, मीरा आदि को नवीन दृष्टि से आँका जाने लगा। तुलसीदास और 'रामचरित मानस' को भारतीय संस्कृति के आदर्श, विधायक स्वरूप का प्रतिनिधि माना जाता है तो कबीर को बहुजनवादी, विद्रोही पक्ष का। मीरा की महत्ता महिला भक्तकवि के रूप में उभरी है, तो स्त्री-मुक्ति, स्त्री-जागरण, स्त्री-विकास, स्त्री-सशक्तीकरण के संदर्भ में अस्मिता युक्त जुझारू आदर्श रूप में भी उजागर हुई है।

भारतीय समाज में एक समृद्ध राजपरिवार, राठौड़ परिवार में संवत् 1573 को मीरा का जन्म हुआ। मीराबाई जोधपुर रियासत के संस्थापक राव जोधा जी के पुत्र राव दूदा जी की पौत्री थीं तथा रत्नसिंह की इकलौती पुत्री थीं। मीरा के वंशज मेड़तिया राठौड़ कहलाते थे।

'मेड़तिया घर जनम लियो है, मीरा नाम कहायो।'[2]

मीरा को मातृ स्नेह से वंचित रहना पड़ा था, क्योंकि मीरा की माता जी का देहांत बाल्यकाल में ही हो गया था। मातृस्नेह से वंचित मीरा का लालन-पालन, दादा राव दूदा जी ने किया। पितामह दूदा जी परम वैष्णव भक्त थे, जो चतुर्भुज विष्णु को अपना आराध्य बनाए हुए थे। उनके प्रभाव से ही मीरा के हृदय में बचपन से ही भगवद्‌भक्ति उत्पन्न हो गई, जिसकी अभिव्यक्ति हमें उनके पदों में मिलती है।

महाँरो प्रणाम बाँके बिहारी जी।
मोर मुगट माथ्याँ तिलक बिराज्याँ, कुंडल अलकाँकारी जी
अधर मधुर धर वंशी बजावाँ, रीझ रिझावाँ, ब्रजनारी जी।
या छब देख्याँ माह्याँ मीराँ, मोहन गिरवरधारी जी।[3]

 ISSN 0975-735X

मीरा की आराधना, उपासना-पद्धति और रचना-संसार के निर्माण में उसके परिवेशगत संस्कार और परिस्थितियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मीरा का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम एकनिष्ठ है, अविच्छिन्न है। मीरा के पदों को नवधा भक्ति की अमिट भव्य अभिव्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है। उनमें श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वंदना, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन आदि के दर्शन होते हैं। मीरा की भक्ति पंथ और संप्रदाय निरपेक्ष है।

अनुमानत: मीरा का विवाह 11-12 वर्ष की आयु में चित्तौड़ के महाराणा राणा संग्रामसिंह के बड़े पुत्र कुँवर भोजराज के साथ हुआ। यहीं से मीरा का जीवन संघर्षमय बन गया। मीरा के स्वतंत्र व्यक्तित्व के कारण परिवार में अशांति का वातावरण बन गया। सास ने कुलदेवी की पूजा के लिए मीरा से कहा तो उसने अपने इष्टदेव 'गिरिधर नागर' के अलावा और किसी की पूजा करने से मना कर दिया। ससुर, सास एवं पति क्रोधित हुए परंतु मीरा अडिग रही–

बोली-जू बिकायो माथो लाल गिरधारी हाथ
और कौन गयै, एक वहै अभिलाखियै।[4]

मीरा ने अपने जीवन में इन आदेशों की परवाह नहीं की। वह निरंतर आगे बढ़ती रहीं।

अँग्रेज अधिकारी कर्नल जेम्स टॉड वह विद्वान था, जिसने सन् 1888 में राजस्थान में घूम-घूमकर चारणों, भाटों, बुजुर्गों से मिलकर, प्राप्त दस्तावेजों को छान-बीन कर, लगन और परिश्रम से सर्वप्रथम मीरा के लोकप्रचलित वृत्त की ऐतिहासिक रूपरेखा को अपनी पुस्तक 'Annals and Antiquities of Rajasthan' में स्थान दिया।'[5] उन्होंने लिखा है, 'मीराबाई अपने समय की सौंदर्य तथा रहस्यपूर्ण भक्ति में सबसे अधिक प्रसिद्ध राजकुमारी थी। इनकी रचना बहुत है, जो कृष्णभक्तों में अधिक प्रचलित है, भाटों में बहुत कम।'[6] मीराबाई एकमात्र ऐसी संत कवयित्री हैं जिन्होंने अपने जीवन की घटनाओं की झलक अपनी रचनाओं में बार-बार दी है।

मीरा का पति-कुल मेवाड़ माना गया है। विवाह के कुछ समय पश्चात् इनके पति का परलोकवास हो गया। गोद सूनी थी। मीरा का वैधव्य करुणा और निराशा की सीमा का उल्लंघन कर गया। मेवाड़ की उज्ज्वल परंपरा के अनुसार मीरा को 'सती' होने के लिए कहा गया। 16वीं शती में जब राजपूत राजाओं के घर-परिवारों में सती-प्रथा का चलन था, तब मीरा ने इस प्रथा का खंडन किया, राजपूतों की इस कुरीति को अपने आप पर हावी नहीं होने दिया। उसने बुलंद स्वर में कहा कि उसका विवाह तो परम अविनाशी पुरुष गिरिधर गोपाल से, बालपने की प्रीतवाले प्रीतम से हुआ है, वह तो चिर सुहागिन है, वह 'सती' नहीं होगी, अत: मीरा ने कृष्णभक्ति के मार्ग को अपना लिया था–

जग सुहाग मिथ्या री सजणी होवां छे
मिट जासी, गिरधर गास्याँ, सती न होस्याँ।[7]

मीरा अपने अनन्य उपास्यदेव के गुणों का गान करतीं तथा नाच करतीं। उनके भक्त-जीवन की कथा आस-पास के गाँवों में फैलने लगी। चित्तौड़ साधु-संतों का तीर्थ बनने लगा। मीरा के चरित्र पर लांछन भी लगे। परिवार द्वारा समझाया, रोका गया परंतु भक्ति की तन्मयता में लीन मीरा अपने पथ पर अचल और अटल रही। परंतु समझानेवालों को मीरा ने स्पष्ट रूप से कह दिया–

'राजपाट भोगो तुम्हीं, हमें न तासूँ काम।[8]

मीरा को उसके पितृकुल, श्वसुरकुल, तत्कालीन धर्म-संस्थानों, नैतिक मूल्यों के संरक्षकों

ने 'कुलनाशी', 'बाबरी', 'लोक-लाज बिसारने वाली' कहा और अयोग्य पुत्री, पत्नी, बहू, स्त्री मानकर परित्यक्त कर दिया गया। यदि वह बैरागियों के मध्य, 'हरिजस' गायकों के बीच पूजनीय थीं तो उससे घर-परिवारजनों को असुविधा होती थी, अतः यह अलिखित आदेश दिया गया कि आगे से किसी लड़की का नाम 'मीरा' मत रखना। पितृसत्तात्मक सामंतवादी युग की, राजकुल की स्त्री जिसे चारदीवारी में होना चाहिए, वह साधुओं की संगति करे, जिसे सोलह शृंगार कर, स्वाधीन-पतिका बन, कभी मानिनी, कभी वासकसज्जा, कभी खंडिता बनना था, वह 'नायिका भेद,' के रसीले उपवनों में प्रवेश करने से ही इंकार कर दे और नुपुर की जगह घुँघरू और कंकण-किंकणी के स्थान पर करताल हाथ में ले ले तो समाज किस प्रकार से उसे क्षमा कर सकता था।

राणा सांगा द्वारा मीराबाई को अनेक प्रकार से यातनाएँ दी गईं, परंतु मीरा ने सहर्ष उन्हें स्वीकार किया–

साँप पिटारा राणा भेज्यो, मीराँ हाथ दियो जाय
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमश्त दीन्ह बनाय
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अँचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीराँ सुलाय।
साँझ भई मीराँ सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।[9]

मीराबाई का यह दृढ़ विश्वास था कि गिरिधर नागर उसे सांसारिक दुःखों से बाहर निकालेंगे। प्रियतम का सबसे बड़ा आकर्षण है, उसका मनोरम रूप। नटवर नागर का, मुरली मनोहर का। उस मधुर रूप को मीरा ने अपने नैनों में बसा लिया था। मीरा का मन तो उसी में अटका हुआ था। मीरा पर उस रूप का, प्रेम का, माधुर्य का नशा चढ़ गया था। उसी खुमारी में उसने दुनिया के दुर्व्यवहारों की चिंता करना छोड़ दिया था।

मीराबाई 16वीं शताब्दी की वह दृढ़प्रतिज्ञ नारी थी, जिसने एक बार निश्चय किया कि वह कृष्णभक्ति में लीन होकर वैराग्य का रास्ता अपनाएँगी तो अंतिम साँस तक उसे निभाया। प्राचीन भारतीय समाज में जहाँ नारी को पर्दे में रखा जाता था, वहाँ मीरा ने स्पष्टतः कहा–

नाचन लगी जब घूँघट कैसो?[10]

मीरा की दृष्टि मे एक-मात्र पुरुष कृष्ण ही थे। संसार ने मीरा की इस गतिविधि को उचित नहीं माना। परंतु मीरा बेपरवाह थी। लोक-लाज, प्रेम-पथ का सबसे प्रबल बाधक है, जिसे उसने संसार को यह सुनाकर तोड़ दिया था कि–

श्री गिरिधर आगे नाचूँगी
नाचि-नाचि पिव रसिक रिझाऊँ, प्रेमीजन को जाचूँगी।[11]

उनके पदों में वह दृढ़ संकल्प झलकता है, जो उनके अस्तित्व को दृढ़ता प्रदान करने के साथ ही संपूर्ण नारी-जाति को जाग्रत करता है, अखिल समाज को ईश्वरमय कर देता है–

मेरे तो गिरिधर नागर दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
माता छोड़ी पिता छोड़े, छोड़े सगा सोई।

संतन संग बैठि-बैठि, लोकलाज खोई।

अब तो बात फैल गई, जाणै सभी कोई।
दास मीरा लाल गिरधर, होनी हो सो होई।'[12]

'उनकी भक्ति का आदर्श अत्यंत ऊँचा था। उनके 'परमभाव' का निर्वाह किसी साधारण भक्त के वश की बात नहीं। यदि पुरुष है तो उस पर अस्वाभाविकता का आरोप होगा। यदि स्त्री है तो उसे अपने ही समाज द्वारा लांछित होना पड़ेगा। मीरा को भी, इसके कारण, विकट यातनाएँ झेलनी पड़ीं। किंतु अपनी धुन की पक्की होने से वे, आपत्तियों की अवहेलना बराबर करती गईं। उन्होंने प्रसिद्ध सूफी साधिका रबिया की भाँति, नितांत एकरस का जीवन-यापन किया। ईसाई भक्तिन मदर टेरेसा की भाँति अपने 'Wound of Love' या 'प्रेम की पीर' का आस्वादन निरंतर आनंदपूर्वक करती रहीं।'[13] मीरा एक अपूर्व, अद्‌भुत मानुषी हैं। राजकुल में जन्मीं, राजकुल में ब्याही और फिर सहज ही राजसी वस्त्रों, अलंकारों को उतारकर रख देनेवाली सदासुहागन, भक्त शिरोमणि मीरा ने जिन अलंकारों को एक बार उतार दिया, उन्हें फिर नहीं पहना और यही मनोदशा, सोच उसकी काव्यरचना में भी है। मीरा का जीवन ही मीरा का काव्य है और मीरा का अनुराग, मीरा का रसराज कृष्ण के प्रति संपूर्ण समर्पण। मीरा में बौद्धिक कलाबाजी, पांडित्य-प्रदर्शन की छाया तक नहीं है। मीरा का जीवन-लक्ष्य क्या था? यह प्रश्न विचारणीय है। मीरा के किसी भी पद में स्वर्ग, सिद्धि-रिद्धि पाने और जन्म-मरण से मुक्ति पाने की आकांक्षा व्यक्त नहीं होती। ईश्वर परमतत्त्व और विभिन्न उपाधियों से, नामों से पहचाने जाते लोकप्रिय रूप–श्रीकृष्ण से मिलन ही उसके जीवन का लक्ष्य था।

भारत देश में अनेक भक्त और संत हुए हैं परंतु मीरा की साधना में ऐसी विशिष्टता थी कि आज पाँच सौ साल बाद भी उसे विस्मृत नहीं किया जा सका। मीराबाई की महिमा, उसकी साधना के स्वरूप की अपूर्वता विराट थी। और उसकी वजह है मनोनुकूल मार्ग पर चलने में बाधा पहुँचानेवाली व्यक्तिगत, पारिवारिक सामाजिक व्यवस्थाएँ। यह निश्चित है कि अन्य वैरागियों, संतों के जीवन में भी ऐसी समस्याएँ आयी होंगी, परंतु मीरा की एक प्रमुख विशिष्टता है, उसकी मुखरता। मीरा के भीतर भी चमकते पत्थर की भाँति आग मौजूद थी। विषम परिस्थितियों सामाजिक-पारिवारिक कलहों, मनोवैज्ञानिक दबावों से टकराकर उसके भीतर से काव्य की चिंगारी छिटकी। कुल-परंपरा का पालन न करना, निरंकुश होकर साधु-संतों की संगत में उठना-बैठना और पैरों में घुँघरू बाँधकर नाच उठना, आज 21वीं सदी के सामान्य परिवारों की सहिष्णुता और मर्यादा की सीमा में नहीं आता, और यह सब हो रहा था 16 वीं सदी में सामंतवाद के चरम प्रतीक राजस्थान की भूमि पर जहाँ कन्या-शिशु की हत्या, बाल-विवाह, 'सती', जौहर जैसे कठोर कार्यों और विधानों के माध्यम से स्त्री की यौनशुचिता को ताले-चौकी में रखा जाता था। स्त्रीवादी दृष्टिकोण से मीरा की रचनाओं का परीक्षण किए जाने पर यह क्रमशः सिद्ध होने लगता है कि मीरा का जीवन समर्पण में नहीं, बल्कि संघर्ष एवं संग्राम में व्यतीत हुआ। मीरा का भक्तिभाव उसके स्त्रीत्व का ही एक आयाम है और मीरा ने अपने स्त्रीत्व को, अस्मिता को कायम रखा है, उसके लिए बड़े-से-बड़े सत्ताकेंद्रों को, पितृसत्तात्मक समाज को, वर्चस्ववाद के विभिन्न रूपों को चुनौती दी है।

वैदिककाल से ही नारी पुरुषसत्तात्मक समाज में अपनी अस्मिता एवं सत्ताहेतु संघर्षरत है। वैदिककाल, उत्तर वैदिककाल, प्राचीनकाल, मध्यकाल तथा आधुनिककाल में नारी पीड़िता और शोषित रही, परंतु वह आँधी में जलते दीपक की भाँति संघर्षरत रहते हुए भी अपने अस्तित्व की लौ को प्रज्वलित किए हुए है। आत्मशक्ति, आत्मबल द्वारा उसने संसार को जिंदादिली के साथ जीवन जी कर दिखाया। 'औरत अधिक ईमानदार, निष्ठावान, कर्मठ, धैर्यवान और बलिदान करने वाली एक ऐसी जीव है, जिसका मुकाबला दुनिया का दूसरा कोई प्राणी नहीं कर सकता।'[14] मीराबाई भी एक ऐसा ही सशक्त उदाहरण हैं। परिवार की प्रताड़ना के बावजूद यदि सामान्य जनों के बीच वह लोकप्रिय और श्रद्धापात्र बनी रहीं तो केवल इसीलिए कि पितृसत्तात्मक नैतिक मूल्यों के अनुसार वह 'पवित्र' और 'कलंकहीना' थी। मीरा वह उन्मुक्त धारा थी, जो तट को तोड़-तोड़कर बहती रही। मीरा वह सुदृढ़ चरित्र है, जो नारी को अबला से सबला बना सकता है।

यह सत्य है, 'नारी सृजन और निर्माण-शक्ति की विभूति है, वह समाज व संस्कृति की जन्मदात्री तथा पोषणकत्री है। इस संसार में यदि नारी न होती तो सभ्यता और संस्कृति न होती।'[15] संतभक्त मीरा 16वीं सदी के भक्ति-आंदोलन के वाड्मय की एक महत्त्वपूर्ण रचनाकार थी। मीरा बीसवीं-इक्कीसवीं सदी के स्त्रीवादी आंदोलन की एक महत्त्वपूर्ण आदर्श हैं। राजस्थान के मेड़ता नामक स्थान पर पैदा हुई यह लड़की घोर सामंतवादी समाज में हलचल मचा देगी, एक विशाल बहुभाषी जनसमाज की हृदय-साम्राज्ञी बनेगी और अंततः आधुनिक युग की एक प्रबल विचारधारा 'स्त्रीवाद' के लिए और 'स्त्री साहित्य' के लिए ऊर्जा, कर्मठता, संकल्प-शक्ति का प्रतीक बनेगी यह कभी किसी ने नहीं सोचा होगा। मीरा ने बगैर किसी योजना के, बिना किसी संस्थागत समर्थन और सहयोग के अपने व्यक्तित्व को ऊर्जस्वी, तेजस्वी कैसे बनाया? यह विचारणीय है। मीराबाई कृष्ण भक्त थी, कृष्ण को ही उसने सर्वेसर्वा मान लिया, 'यह समर्पण, शरणागति, प्रपन्नावस्था ही भक्तिकांड का सर्वस्व है।'[16] मीरा के वंश को आगे बढ़ाने के लिए कोई संतति नहीं थी, मीरा के नाम से कोई पंथ, मार्ग, संप्रदाय भी नहीं फिर भी मीरा एक अकेली 'स्त्री' रूप में अपने रचना-कर्म के बल पर पाँच सौ साल से अधिक वर्षों तक जीवित है। भारतीय हिंदी साहित्य में मीराबाई का स्थान कतिपय चुनिंदा भक्त-संत रचनाकारों के बीच में अति सम्माननीय भाव से लिया जाता है। मुरली श्रीवास्तव लिखते हैं, 'मीरा मेवाड़ की मरुभूमि की मंदाकिनी है, भक्ति की भागीरथी है, महिला कवियों की मुकुटमणि है।'[17]

मीराबाई स्वयं स्त्री थी, मन से, वचन से, संस्कार से, काया से। मीरा के पदों में इसीलिए वह सहजता, सघनता विद्यमान है, क्योंकि वह नारी है। मीरा के काव्य में कृत्रिमता लेशमात्र नहीं है। मीरा ने जो कुछ कहा, किया, जीया वह स्त्रीमुक्ति को दृष्टि में रखकर नहीं किया। मीरा आधुनिक अर्थ में न तो अपने को बंदी पाती थीं और न ही उनसे मुक्ति की कामना चाहती थीं। वस्तुतः मीरा की भावभूमि का निर्माण, विकास-काल में इस प्रकार होता चला गया कि वह अपने को छोटे सांसारिक दायरों में, दायित्वों में, सुखों, लालसाओं में बाँध ही नहीं पाईं। बीसवीं सदी की विख्यात स्त्रीवादी विचारक 'सिमोन द बोउवार' ने अपनी पुस्तक 'सेकेंड सेक्स' में लिखा है, 'स्त्री एक सामाजिक विनिर्मित है। वह मादा पैदा होती है लेकिन समाज उसे स्त्री बनाता है।'[18] मीरा फ्रांस की 'जॉन ऑफ आर्क' की तरह, तमिलनाडु की आंडाल की तरह स्त्री बनने के सामाजिक प्रशिक्षण से मुक्त रही, परंतु पितृसत्तात्मक संस्थान की सबसे प्रथम इकाई 'परिवार' (ससुराल)

और 'विवाह' से संपर्क होते ही उसका सुप्त प्रतिरोध, विद्रोह, अस्मिता के संरक्षण का अदम्य भाव जाग उठा और सुस्थापित सामाजिक ढाँचे की नींव को उसने हिला दिया। मीरा का 'अहिंसात्मक सत्याग्रह' सत्ता के प्रत्येक वर्ग के प्रतिनिधि के लिए चुनौती बना, इसीलिए सुस्थापित मठाधीशों ने उस पर लांछन लगाए तथा बहिष्कृत करने का प्रयास किया।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मीराबाई के जीवनवृत का विश्लेषण किया जाए तो यह प्रतीत होता है कि बचपन के अस्थिर-अशांत जीवन और एकाकीपन के कारण मीरा ने अपने भीतर ही एक सशक्त वैकल्पिक जगत् का निर्माण कर लिया था, एक सखा, प्रियतम, जीवन-संगी की परिकल्पना कर ली थी। मन की सभी भावनाओं को, तन की सभी आवश्यकताओं को 'गिरिधर नागर' की ओर प्रवाहित कर दिया। मीरा का आचरण बाहरी दृष्टि से अव्यावहारिक अर्थात् 'बावरी' सा था, परंतु उसमें क्षमा, शांति, सहिष्णुता, शील, सदाचरण जैसे सभी उच्चतर गुण थे। मीरा ने अपनी समस्त वृत्तियों को 'भक्ति' जैसे विधायक मार्ग में प्रवाहित किया, इसलिए उसके व्यक्तित्व में 'न दैन्यं न पलायनं' का शूरवीर-सा तेज आ गया। 'गिरधर नागर' ने उसके अस्तित्व की रक्षा की, अस्मिता को कायम रखा। मध्ययुग में यह चमत्कार से कम नहीं था, आधुनिक युग में इसे मीरा की अदम्य जिजीविषा, संकल्प-शक्ति और संघर्ष-क्षमता का परिणाम माना जाएगा, इसीलिए आज मीरा, स्त्रीवादी चिंतन और स्त्री-साहित्य के इतिहास के रचनाकारों में अग्रगण्य मानी जाती हैं।

मीराबाई को अपनी 'अस्मिता' की रक्षा के लिए अनेक अवरोधों से गुजरना पड़ा। उन्होंने आयासपूर्वक 'स्त्री-मुक्ति', 'स्त्री सशक्तीकरण' का आंदोलन नहीं किया, लेकिन अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए अस्तित्व को दाँव पर लगाकर स्त्री-जाति का आत्मगौरव बढ़ाया। मीराबाई एक ऐसे पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश में जन्मी-पली-बढ़ी थीं जहाँ एक युगांतर हो रहा था। कट्टरता और उदारता, अमानवीय विषमता और उदात्त समरसता, सांप्रदायिकता और विश्वात्मवाद के मूल्य पैदा हो रहे थे। मीरा का जीवनकाल भक्ति-आंदोलन के द्वितीय चरण का था। उनका अस्तित्व ही उस युग की विशिष्टता में एक बहुत बड़ा योगदान कर रहा था। मीरा के पदों की गूँज आज नए स्त्रीवादी आंदोलन को आवाज दे रही है, ऊर्जावान कर रही है, यही मीराबाई का अपने युग के लिए और परवर्ती युगों के लिए अवदान है।

संदर्भ

1. डॉ॰ वल्लभदास तिवारी, हिंदीकाव्य में नारी, जवाहर पुस्तकालय मथुरा, सन् 1974, आमुख से उद्धृत
2. देवीप्रसाद मुंसिफ, मीराबाई का जीवन चरित्र, जैन प्रेस लखनऊ, संवत् 1955 पृ॰ 89
3. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, शक 1881, पृ॰ 101
4. सदानंद भारती, मीरा की पदावली, एस॰एस॰ मेहता एण्ड बदर्स बनारस सिटी, संवत् 1992 वि॰, पृ॰ 15
5. ब्रजरत्न दास, मीरा-माधुरी, हिंदी साहित्य कुटिर काशी, संवत् 2005, पृ॰ 56
6. उपरिवत्, पृ॰ 56
7. सदानंद भारती, मीरा की पदावली, एस॰एस॰मेहता एंड ब्रदर्स बनारस सिटी, संवत् 1992 वि॰, पृ॰ 26
8. मुंसिफ, देवीप्रसाद, मीराबाई का जीवनचरित्र, जैन प्रेस लखनऊ, संवत् 1995, पृ॰ 91
9. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, शक 1881, पृ॰ 114
10. देवीप्रसाद मुंसिफ, मीराँबाई का जीवन चरित्र, जैन प्रेस लखनऊ, संवत् 1955, पृ॰ 93

11. उपरिवत्, पृ॰ 94
12. परशुराम चतुर्वेदी, मीराँबाई को पदावली, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, शक 1881, पृ॰ 106
13. उपरिवत्, पृ॰ 88
14. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, 2003, पृ॰ 06
15. डॉ॰ गोयल, श्यामबाला, भक्तिकालीन राम तथा कृष्ण-काव्य की नारी भावना : एक तुलनात्मक अध्ययन, विभू प्रकाशन साहिबाबाद, सन् 1976, पृ॰ 13
16. डॉ॰ मुंशीराम शर्मा, भक्ति का विकास, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, सन् 1958, पृ॰ 74
17. मुरलीधर श्रीवास्तव, मीरा दर्शन, साहित्य भवन प्रा॰लि॰ इलाहाबाद, सन् 1956, पृ॰ 9
18. बोउवार, द सिमोन (मूल लेखिका), प्रभा खेतान, (अनुवादक), स्त्री-उपेक्षिता, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, सन्-2002, पृ॰ 156

No. 33 15-A Sec-24-D
Chandigarh
मो॰ 9815624027

 ISSN 0975-735X

भारतीय समाज के बदलते परिवेश में वृद्धजन

डॉ॰ विनीतकुमार पांडेय
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग
बी॰आर॰डी॰ पी॰जी॰ कॉलेज
आश्रम, बरहज (देवरिया)
असिस्टेंट प्रोफेसर
के॰के॰जी॰पी॰जी॰ कॉलेज मुरादाबाद

परिवर्तन प्रकृति का एक शाश्वत नियम है। फिर भी मानव तो प्रकृति की सबसे सुंदर एवं सर्वश्रेष्ठ रचना है। फलत: मानव भी परिवर्तन रूपी निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया से वंचित नहीं रह पाता। मानव अपनी चंचलता व गतिशील अवस्था अर्थात् बाल्यावस्था से युवावस्था तथा प्रौढ़ावस्था से गुजरता हुआ अपनी अंतिम एवं गंभीर अवस्था वृद्धावस्था में प्रवेश करता है। वृद्धजन परिवार के अध्यक्ष होते थे तथा निर्णय, निर्माण में भी इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। वृद्धजन को ज्ञान, अनुभव एवं दूरदर्शिता का प्रकाश-स्तंभ समझा जाता था। भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में वृद्धजन को समाज में उच्च प्रस्थिति प्राप्त होती थी। आज चिकित्साविज्ञान की प्रगति, बेहतर पोषण एवं जनस्वास्थ्य सेवा में सुधार के कारण लोग दीर्घायु होते जा रहे हैं। एक अँग्रेज विचारक पाल वल्लाश ने वृद्धजन की बढ़ती संख्या को उग्र भूचाल की संज्ञा दी है।

औद्योगिकी क्रांति, आधुनिकीकरण, शहरीकरण और शहरों में बढ़ते रोजगार के अवसरों के कारण संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं और सामाजिक सुरक्षा की यह महत्त्वपूर्ण संस्था भंग हो रही है। इसलिए राज्य को अपने नागरिकों को सुरक्षित करने के लिए कदम उठाना पड़ता है। शास्त्रों में भी कहा गया है कि यदि परिवार में कोई सदस्य वृद्धजन, बच्चों या अपंगों की सेवा नहीं करता है या अंत्येष्टि क्रिया नहीं करता है, तो उस राजा का कर्त्तव्य होता है, जिसके राज्य में वह निवास करता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-45 में यह उल्लिखित है कि देश के नागरिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना राज्य की जिम्मेदारी है (अनुच्छेद-14 सातवीं अनुसूची)।

विकसित देशों में वृद्धजन की संख्या में हो रही वृद्धि चिंता का विषय बनी हुई है, वहीं विकासशील देशों में वृद्धजन के भरण-पोषण करने हेतु योजनाओं का अभाव है। वृद्धावस्था एक मंद प्रक्रिया है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को एक विशेष उम्र के बाद गुजरना पड़ता है। वृद्धावस्था को लगभग 60 वर्ष या उसके बाद की अवस्था माना जाता है। एक तरह से यह कहा जा सकता है कि जब मानव में कार्यक्षमता की कमी तथा इंद्रियों में शिथिलता आ जाती है, तो व्यक्ति की वह अवस्था वृद्धावस्था कहलाती है। वृद्धावस्था का अध्ययन जेरेंटलॉजी नामक विज्ञान में करते हैं। वृद्धजन हमारे परिवार, समाज व देश के वरिष्ठ नागरिक माने जाते हैं।'[1] वृद्धावस्था आज की

महत्त्वपूर्ण मानवीय एवं सामाजिक समस्या है। आज के औद्योगीकरण, नगरीकरण के बदलते जीवनमूल्य शहरी रहन-सहन, वातावरण में होनेवाला सामाजिक परिवर्तन वृद्धावस्था को और अधिक जटिल एवं चिंताजनक बना दिया है।

वृद्धजन में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। भारत में सन् 1901 में जहाँ वृद्धजन की संख्या 1.2 करोड़ थी, वहीं 1991 में 5 करोड़ 67 लाख जो पूरी जनसंख्या का 5.76 प्रतिशत था। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत वृद्धजन की संख्या हो गयी है। इसमें 71 प्रतिशत वृद्धजन गाँवों में तथा 27 प्रतिशत वृद्धजन शहरों या नगरों में निवास करते हैं। इसी तरह वृद्धजनों की संख्या बढ़ती गई, तो 2030 तक 18.8 करोड़ तथा 2050 तथा 32.6 करोड़ होने की संभावना है। सेंटर फॉर सोशल रिसर्च के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ के सामाजिक, आर्थिक विभाग द्वारा जारी एक रिपोर्ट में कहा गया है कि वर्तमान में विश्व में प्रत्येक 10वाँ व्यक्ति 60 वर्ष से अधिक आयु का है। रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2050 तक दुनिया का प्रत्येक 5वाँ व्यक्ति वृद्ध होगा और ठीक 100 वर्ष बाद विश्व की एक तिहाई आबादी वृद्धजन की होगी। अनुमानत: वर्ष 2021 तक भारत के 17 राज्यों के वृद्धजन की संख्या 10 प्रतिशत से भी अधिक हो जाएगी।

इस गतिशील समाज के नाभिकीय परिवार एवं सुखभोग ही महत्त्वाकांक्षा ने आज के आधुनिक बेटों की स्वार्थी एवं निर्दयी बना दिया है। कहा जाता है कि बुढ़ापा सौ तरह की बीमारियों का घर होता है, यह सत्य प्रतीत होता है। वृद्धजन शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं से त्रस्त रहते हैं। इनमें सबसे प्रमुख समस्या कुपोषण की है। पौष्टिक आहार की कमी, स्वच्छ भोजन एवं पेयजल का अभाव तथा शारीरिक अस्वच्छता वृद्धजन में डिहाइड्रेशन एवं कुंडा जैसे रोगों को जन्म देते हैं। 'सिन्हा ने अपने अध्ययन में भी पाया है कि अधिकांश वृद्धजन रक्तचाप, पीलिया, डायबिटीज, अस्थमा आदि भिन्न-भिन्न रोगों से पीड़ित थे तथा पक्षाघात की भी संभावना ज्यादा रहती है।[2] सोनेजा एवं त्यागी ने भी अपने अध्ययन में पाया है कि वृद्धजन की रहन-सहन की दशाओं में उनकी वित्तीय प्रस्थिति में कमी के साथ गिरावट आई है। युवावर्ग की सोच उनके प्रति बदली हुई है।[3] क्लार्क एवं उगावा ने भी अपने अध्ययन में पाया है कि वृद्धजन सेवानिवृत्ति की अवस्था में अपने आपको लेकर चिंतित थे।[4] इलांगो एवं शीला ने भी यह पाया है कि 50 प्रतिशत वृद्धजन अपने लोगों से ही उपेक्षित महसूस करते हैं।[5] अभी हाल ही में मुम्बई में एक वृद्ध महिला की मौत अपने पुत्र द्वारा किए गए उपेक्षा से ही हुई है। त्रिपाठी ने भी अपने अध्ययन में पाया कि एकाकी परिवार होने से एक चौथाई लोग अपने बच्चों से अलग रहने को मजबूर हैं।[6] इसके अलावा वृद्धजन के जोड़ों में दर्द, संक्रमण रोग, कार्बोहाइड्रेड की कमी, आँख की रोशनी का कम होना, रतौंधी एवं मोतियाबिंद जैसे रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। आज भी 17.4 प्रतिशत वृद्धजन को चलने-फिरने में, 8 प्रतिशत वृद्धजन को शौच जाने में 2.2 प्रतिशत वृद्धजन को खाने-पीने में दूसरे लोगों पर आश्रित होना पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की 'केयरिंग इल्डर्स' की ताजा रिपोर्ट के अनुसार पुरुषों की तुलना में महिलाओं की जीवन प्रत्याशा अधिक होने के कारण उन्हें आर्थिक एवं सामान्य संकट झेलना पड़ता है। 'ग्लोबल एजवाच इंडेक्सा (2015) की रिपोर्ट के अनुसार विश्व में करीब 4 से 6 प्रतिशत वृद्धजन अपने घर में बुरा व्यवहार झेलते हैं, लगभग 13 प्रतिशत वृद्धजन की बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पातीं, शारीरिक उत्पीड़न तथा 13 प्रतिशत वृद्धजन मानसिक प्रताड़ना झेलना पड़ता है।[7] हेल्पेज इंडिया ने उपर्युक्त निष्कर्ष 4.5 हजार

वृद्धजनों की हालत अति दयनीय अध्ययन करके पाया। इसी अध्ययन में भारत को वृद्धजन की सुरक्षा के दृष्टिकोण से 71वाँ स्थान प्राप्त हुआ।[8] वहीं स्विटजरलैंड, नार्वे, स्वीडन, जर्मनी, कनाडा, नीदरलैंड एवं जापान का क्रमशः 1, 2, 3, 4, 5 एवं 6वाँ स्थान है। इससे यह प्रतीत होता है कि विश्व में प्रत्येक देशों में समाज के वरिष्ठ नागरिकों के साथ दुर्व्यवहार होता है, जो निश्चित ही समाज के अँधेरे की की तरफ जाने का संकेत दे रहा है। (Global Age Watch India-2015).

वृद्धजन की समस्याओं एवं उनके दुर्व्यवहार पर चिंता व्यक्त करते हुए माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने माता-पिता एवं वरिष्ठ नागरिक रख-रखाव एवं कल्याण अधिनियम-2007 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए कहा था कि अगर बेटा/बेटी अपने अभिभावक को प्रताड़ित करते हुए पाए जाते हैं, तो अभिभावक उन्हें अपनी संपत्ति से बेदखल कर सकते हैं तथा अपने घर से भी निकाल सकते हैं। इसके अलावा भारतीय संविधान के भाग-4 में राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत को दर्शाया गया है। अनुच्छेद-41 में कहा गया है कि राज्य वृद्धजन के कल्याण की बात करता है। गोद लेने एवं भरण-पोषण संबंधी 1956 के कानून में वृद्धजनन के लिए विधिक रूप से संरक्षण की व्यवस्था की गयी है। राष्ट्रीय वृद्धजन नीति के तहत सरकार हस्तक्षेप के अनेक क्षेत्रों से वित्तीय सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं पौष्टिक आहार, आवास कल्याण, जानमाल के सुरक्षा की व्यवस्था की गई है। वृद्धजन नीति के कार्यांवयन हेतु मई-1999 में राष्ट वृद्धजन परिषद की स्थापना की गई। यह परिषद वृद्धजन की शिकायतों एवं तकलीफों की सुनवाई करती है। एजबेल फाउंडेशन वृद्धजन परिषद से तालमेल रखती है। वृद्धजन को वृद्धावस्था को त्रासदी से बचाने हेतु सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय ने ओएसिस नामक एक योजना बनाई है, जिसका अर्थ है वृद्धावस्था में सामाजिक व आमदनी संबंधी सुरक्षा। इस योजना ने यह सुझाव दिया कि प्रत्येक युवक अपनी आमदनी का इतना बचत करें कि वह बचत वृद्धावस्था में इनके काम आए।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो॰ योगेंद्रसिंह का भी मानना है कि वृद्धजन के लिए स्वयंसेवी संस्थान एवं ग्रामीण सामुदायिक संस्थान को आगे आना चाहिए। उनके भावनात्मक सुरक्षा से पहले उनके जीने के लिए पहल करनेवाला चाहिए। प्रो॰ सिंह का यह मानना है कि कोई भी संस्था व्यावसायिक संस्था न बन जाए। इसलिए बुजुर्गों के संरक्षण एवं सरकारी कार्यों का समय-समय पर निरीक्षण करना चाहिए। उनका सुझाव है कि वृद्धजन के संरक्षण एवं देखभाल के लिए परिवारनुमा समाज सदृश्य एक ऐसी संस्था विकसित करने की आवश्यकता है, जहाँ वृद्धजन को परिवार से दूर रहने का दुःख न हो।[9] वृद्धजन के सम्मान में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने प्रत्येक वर्ष 01 अक्टूबर को 'अंतर्राष्ट्रीय वृद्ध दिवस' के रूप में मनाने की बात की। वर्ष 1999 को अंतर्राष्ट्रीय वृद्ध वर्ष घोषित किया गया। भारत सरकार ने भी वर्ष-2000 को राष्ट्रीय वृद्ध वर्ष के रूप में मनाया।

निश्चित ही भारत सरकार ने वृद्धजन के सहयोग के लिए वृद्धा पेंशन योजना, अन्नपूर्णा योजना, जीवनधारा योजना, जीवन आश्रय योजना, वरिष्ठ नागरिक यूनिट योजना, चिकित्सा सुविधा नामक चिकित्सीय बीमा योजना के अलावा समय-समय पर अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र में योजनाओं एवं नीतियों का निर्धारण सररकार करती रही। जहाँ सरकार के द्वारा वृद्धजन हेतु प्रयास किए जाते हैं, वहीं गैर-सरकारी संगठनों (एन॰जी॰ओ॰) के द्वारा वृद्धजन के लिए पूर्ण सहयोग किया जाता है।

गैर-सरकारी संगठनों की संख्या लगभग 527, 331 वृद्धाश्रम, दिन के समय देखभाल करने वाले 436 केंद्र, 74 चल चिकित्सा इकाइयाँ तथा 02 गैर-संस्थागत सेवाकेंद्र चलाए जा रहे हैं। वृद्धजन के कल्याण हेतु हेल्पेज इंडिया ने मानव मंदिर, सहारनपुर (उ॰प्र॰) में वृद्धगृहों के निर्माण हेतु 7,36,500 रुपए क्रिश्चियन अस्पताल, जगाधारी (हरियाणा) में नेत्र शिविर हेतु लगभग 1,50,000 रुपए, चिरानबिन, हावड़ा (पं॰ बंगाल) में मोतियाबिंद ऑपरेशन हेतु 2,55,000 रुपए खर्च किए हैं।

उपर्युक्त नीतियों एवं साधनों के अतिरिक्त व्यक्ति को वृद्धजन के प्रति अपने विचारों को बदलना होगा, समाज की मानसिकता बदलनी होगी तथा वृद्धजन में सेवा का नैतिक भाव रखना होगा। यदि वृद्धजन को आदर एवं सम्मान के साथ रखा जाय तथा श्रद्धायुक्त मन से उनकी सेवा की जाए, तो वृद्धजन भावनात्मक रूप से संतुष्ट एवं सुखी रहेंगे। 'जिस घर में वृद्ध की सेवा नहीं, उस घर में मेवा नहीं।' आज के युवक इस आधुनिकता एवं भौतिकता की चकाचौंध में रीति-रिवाजों के साथ-साथ संस्कारों को भी भूलते जा रहे हैं। शायद वे लोग इस बात को भूल जाते हैं कि एक दिन वे भी वृद्ध होंगे। अत: इस आधुनिक समाज को तभी हम सही ढंग से समझ पाएँगे, जब वृद्धजन के अनुभवों, परंपराओं को अपने जीवन में उतारेंगे और यह तभी संभव होगा, जब हम पवित्र विचार, सच्चे हृदय एवं ईमानदारी से वृद्धजन की सेवा करेंगे।

संदर्भ

1. आनंद सिंह, वृद्धजनों का पारिवारिक जीवन, मानविकी विमर्श, अर्धवार्षिकी शोध पत्रिका, दारागंज, इलाहाबाद, 2007, पृ॰ 25
2. एस॰आर॰ सिन्हा, वृद्धों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, के॰के॰ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1998, पृ॰ 67
3. सोनेजा एस॰ एवं आर॰ त्यागी, फेमिली एंड एजिंग : ए स्टडी टू एसेस दी काइंड ऑफ सपोर्ट रिक्वायर्ड बाई द एजेड लिविंग इन फेमिलीज, रिसर्च एंड डेवलपमेंट जनरल, वाल्युम-5, नं॰ 3, 1999, पृ॰ 5- 12
4. आर॰एल॰ क्लार्क एंड एन॰ उगावा 'एजिंग एंड सोसाइटी', वाल्युम-16, नं॰ 4, जुलाई, 1996, पृ॰ 443-465
5. आर॰एम॰ त्रिपाठी, सोशियो-इकोनॉमिक स्टेट्स ऑफ रूरल एजेड, ए केस स्टडी ऑफ इलाहाबाद, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, वाल्युम-15 नं॰ 1, 2002, पृ॰ 43-46
6. पी॰ एंड इलांगो, शीला, पी॰, साइको-सोशल प्राब्लम ऑफ इंस्टीट्यूशनलाइज्ड एजेड पर्सन्स', वाल्यूम-6, नं॰ 3, 1996, पृ॰ 10-19
7. एम॰एन॰ सिंह, आधुनिक समाजशास्त्रीय निबंध, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ॰ 20,
8. ए हेल्पेज इंडिया रिसर्च रिपोर्ट, नई दिल्ली 2015
9. ग्लोबल ऐज/वाच इंडेक्स, विकास योजना, संयुक्त राष्ट्र, न्यूयार्क 2015

मानवतावाद के विशेष संदर्भ में समकालीन कहानीकारों की सार्वभौमिकता

डॉ॰ सीमा चंद्रन
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग एवं शोध केंद्र
एन॰एस॰एस॰ हिंदू कॉलेज
महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय
पेरुन्ना, चेङनाश्शेरी, कोट्टयम

सोलहवीं शताब्दी में 'मानवतावादी' उन लेखकों और शिक्षकों को सूचित करने के लिए कहा जाता था जो 'स्टडिया ह्यूमेनिटेटिस' या 'मानवतावाद' पढ़ाते थे। पुनरुत्थान काल के पूर्व यहाँ यूरोपीय लेटिन संस्कृति पर केंद्रित व्याकरण, इतिहास, कविता, दर्शन आदि रचा जाता था जो कि गणित, प्रकृत विज्ञान और थियोलोजी से काफी भिन्न थी। इस समय ये पठन रोमन संस्कृति और क्लासिक्स पर केंद्रित थी। उन्होंने अधिक जोर अच्छी लेटिन भाषा बोलने और लिखने पर जोर दिया। शिक्षित मानवतावादियों ने कई प्राचीन ग्रंथ ग्रीक और लेटिन में खोजे, संपादित किया और प्रकाशित भी कराया। इस प्रकार यूरोपीय नवोत्थान के दौर में उन्होंने नई सोच और सामग्रियों को इकट्ठा करने में गुणात्मक योगदान दिया। इन मानवतावादियों ने क्लासिक रचनाकारों जैसे अरस्तू, प्लेटो और मुख्यत: सिसेरो पर आधारित कई राजनैतिक, आदर्शपरक और शैक्षणिक साहित्यिक कार्य किए। उन्नीसवीं शताब्दी में मानवीय प्रकृति, सार्वजनिक मूल्य और शैक्षणिक आदर्शों की दृष्टि से एक नया नाम 'मानवतावाद' अस्तित्व में आया। यह नाम उस काल के कई नवोत्थानवादी मानवतावादियों और उसी परंपरा में आनेवाले बाद के कई लेखकों के लिए समान प्रस्थापित चिह्न था।

मानवतावादी उन चिंतकों के लिए प्रयुक्त शब्द है जो मानवीय अनुभवों, कारणों और मानवीय प्रकृति और संस्कृति के मानव-मूल्यों को आत्मसात करते हैं। कुछ लोगों के अनुसार नवोत्थान मानवतावादी वे धार्मिक ईसाई हैं, जो ईसाई जाति के भीतर पुराने जमाने के काफिर विचारों और सोच को थोपते हैं। परिणाम यह हुआ कि वह जाति परलोक से अधिक इहलोक के मूल्यों को अपनाने लगी। वे मानते थे कि व्यक्ति केंद्रित संसार में ऐसा कुछ नहीं हैं, जो मानव नहीं कर सकता। पुराने जमाने की तरह मृत्यु के पश्चात की दुनिया और सांसारिक दुनिया को जोड़कर न देखने की सोच को प्रश्रय दिया। वे कहते थे कि मृत्यु के पश्चात कोई दुनिया नहीं है। मनुष्य अपना कर्ता-धर्ता स्वयं है। फिलिप सिडनी, एडमंड स्पेंसर, जॉन मिल्टन आदि इसे ईसाई मानवतावादी दृष्टि मानते हैं। अठारहवीं सदी में मानवतावादी सैम्युअल जॉनसन जीवित थे। वे समाज में रहते हुए मानव के सही-गलत की पहचान को मानवीय दृष्टि मानते थे। विक्टोरिया युग

के महान मानवतावादी चिंतक मैथ्यू आरनाल्ड ने सामान्य शिक्षा में मानव-विज्ञान के केंद्रीय पठन पर जोर दिया। उनके अनुसार संस्कृति हमारी मृगीयता से अलग सही मानवीयता का पूर्ण रूप है। जो मानव की सुंदरता और सत्ता, आत्मीय अभिव्यक्ति की शक्ति को द्योतित करती है। वे मानवतावाद को कविता के संदर्भ में 'जीवन की आलोचना' मानते हैं।

सन् 1980 में जर्मन दार्शनिक 'विलियम डिल्थे' ने प्राकृतिक विज्ञान के वैविध्य की खोज पर प्रभाव डाला जो मानव-विज्ञान और संक्षिप्त एवं घटती सोच का विश्लेषण करती है। इसका लक्ष्य मानव की सांसारिक यथार्थ से परिपूर्ण सत्ता पर जोर डालना था जो मानवीय अनुभवों से अनुप्रेणित है। अमरीकी आंदोलन के अंतिम दशक (1910-1933) में 'नए मानवतावाद' के जनक इरविंग बेबिट्ट और पॉल एल्मर मोर ने पहले प्राथमिक शिक्षा पर जोर दिया जोकि श्रेष्ठ रचनाओं पर आधारित संकीर्ण विचारों के नैतिक, राजनैतिक और साहित्यिक मूल्यों के लिए था। परंतु समकालीन युग में जहाँ हर क्षेत्र में विशेषज्ञ की माँग है वहाँ सार्वजनिक शिक्षा के लिए विस्तृत मानविकी आधार को कम कर दिया गया है। जहाँ पहले मानविकी एक मुख्य विषय था वहाँ आज शिक्षा क्षेत्र में कम से कम एक मानविकी विषय लेने पर जोर दिया जाता है। उत्तर संरचनावादी मानवतावाद को मानव के अस्तित्व का भ्रामक रूप मानते हैं। वास्तव में मानवतावाद मानव के यथार्थ लोक और मानवीय इहलौकिक सत्य पर आधारित है जो ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास नहीं रखता। साहित्य के क्षेत्र में हिंदी में भी ऐसे कई साहित्यकार कार्यरत हैं जो मानवीय सत्य को एहम् मानते हैं जो कि सार्वभौमिक है।

सार्वभौमिकता की तीव्र गतिविधियों में स्त्री कहानीकारों की छवि घहराती है। सांस्कृतिक संकट के चक्रव्यूह में परंपरा, परिवेश, आधुनिकता घेरा डाले हुए है। इरादों में छिपी वास्तविकता मानवीय भावनाओं को कटघरे में खड़ा करती है। ये भावनाएँ इंसानी सोच और कृत्रिमता से पनपती भयंकर त्रासदी का प्रमाण है। संवेदनाएँ ऐंद्रीय तार से जुड़कर घोर विनाश का क्रंदन पैदा कर रही हैं। भौतिक सुविधाओं में अमानवीकरण के दृश्य-चित्रण सदमन को व्यथित कर रहा है। आपसी ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा, घृणा, अहम् आदि ने मानव की एकता में दरार डाल दी है। इसे जोड़ने का संकल्प आज साहित्यकार कर रहा है। तभी सार्वभौमिकता की संकल्पना साकार हो सकेंगी। स्त्री कहानीकारों ने इसे देखा, परखा और समझकर समकालीन उपभोक्तावादी मानवीय वृत्तियों के विरुद्ध 'कलम' नामक शस्त्र तैयार किया। यह शस्त्र सज्जन व्यक्तियों को समझने-बूझने में सार्वभौमिक तौर पर मजबूर करती है।

इक्कीसवीं सदी के बाजार तंत्र में निर्मम व्यवसायीकरण हो रहा है। 'यूस एंड थ्रो' की अमानवीय संस्कृति बाजार की सौंदर्य प्रतियोगिताओं में स्त्री की माँग करता है। उर्मिला शिरीष की कहानी 'उसका अपना रास्ता' इसी चकाचौंध से आकर्षित स्त्री की कहानी है। बाजारी कूटनीति ने स्त्री को पुतला बना दिया है। जाने-अनजाने बाजार में पदार्थ बेचती स्त्री खुद नग्नता रूपी पदार्थ बनी खड़ी है। आर्थिक लाभ और ऐश्वर्य के लिए वृंदा कहानी में 'शोहरत' और 'ग्लेमर' के पीछे भागती है। बहुराष्ट्र कंपनियाँ ऐसे ही लोगों की ताक में है। शरीर के साथ-साथ यह बाजारवाद, व्यक्ति की आत्मा को भी मतलबी बना देता है। वृंदा को भी अपनी बीमार दादी अस्पताल में बोझ लगने लगती है। सौंदर्य प्रतियोगिताओं में नारी के यौन शोषण का जिक्र कहानी में होता है। वृंदा चाहती है, 'पैसा, ग्लैमर, नाम, शोहरत। आगर मैं मिस इंडिया बन गई, तो मेरा नाम भी चर्चा में आ

जाएगा।...ढ़ेर सारा पैसा, विज्ञापन...। 1. संस्कृति आज खुद एक बाजार बनती जा रही है। 'प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, साहित्य हो या सिनेमा, ज्ञान और मनोरंजन के समस्त क्षेत्रों में सांस्कृतिक वर्चस्व की एक विश्वव्यापी लड़ाई छिड़ गई है। इस लड़ाई में 'सब जायज है' और 'सब चलता है' की नितांत अंधी और अनैतिक नीति के आधार पर सत्य को असत्य से, ज्ञान को अज्ञान से, सूचना को गलत सूचना से, प्रेम को घृणा से, मनुष्यता को बर्बरता से और संस्कृति को अपसंस्कृति से अपदस्थ किया जा रहा है।' 2. मानव लगातार घटित त्रासदियों की विविध श्रृंखलाओं को विविध क्षेत्रों में एवं सार्वभौमिक आयाम में देखता है। व्यक्ति की हैसियत मात्र एक 'चीज' की है जिसे कहीं भी कभी भी आसानी से भूला जा सकता है। चंदन पांडेय की 'भूलना' इस भयानक सोच का साक्षात्कार कराती है। कहानी के केंद्र में मध्यवर्गीय परिवार का बेटा गुलशन है जो बड़ा होनहार लड़का है। जिसकी नौकरी परिवारवालों के आशाओं की पूर्ति की दुकान थी, जहाँ गुलशन कोई फैसला नहीं ले सकता था। उन लोगों के बीच गुलशन मात्र साधन बनकर रह गया है। कहानी का 'मैं' सोचता है–'भाई को लेकर जो हमारी सबसे क्रूर ख्वाइश थी, वह अमीर बन जाने की थी।' 3. गुलशन अपनी सभी अभिरुचियों से वंचित रह जाता है। छोटा बेरोजगार भाई गुलशन के जरिए अपनी मंजिल पाना चाहता है। परिवार का हर सदस्य अपने खोए स्वभाव में रहते हैं। धीरे-धीरे गुलशन परिवार को और परिवार गुलशन को भूल जाता है। घरवाले यह भी भूल जाते हैं कि वह एक मानव है, जीता-जागता, स्वप्न और आशाओं से भरा संवेदनायुक्त मानव। किंतु इस तरह 'भूलने' की प्रक्रिया से वे अनभिज्ञ भी हैं। कहानी में माँ-बाप का कथन देखिए–'गुलशन के पढ़ते रहने को लेकर ह्मारी खुशी इतनी ज्यादा थी कि हम कुछ और देखकर भी नहीं देख पा रहे थे।' 4. उन्हीं की कहानी 'सिटी पब्लिक स्कूल' वाराणसी के ऐसे स्कूल का जिक्र करती है जो प्राइवेट है और अभिभावकों से मोटे तौर पर रकम पाकर ही शिक्षा देती है। बाजार तंत्र में शिक्षा ने भी मानवीयता खो दी है।

राकेश भारतीय की कहानी 'अमेरिका के चपरासी' के ब्राह्मण वंशज 'रमेश' और राजपूत वंशज 'धनंजय' ऐसे ही 'कॉल सेंटर्स' में काम करनेवाले हैं। इन सेंटर्स में भारतीय संस्कृति के बदलाव का प्रतीकात्मक ढ़ंग प्रस्तुत है। ट्रेनिंग के दौरान दोनों अमरीकियों के अँग्रेजी पैमाने में खरे उतरने के लिए जबान को घिस-घिसकर ट्रेनिंग देते हैं। मानसिक दबाव में काम करना मजबूरी बन जाती है। अमेरिकी जीवन के अनुसार अपना दैनिक जीवन रूपायित करना होता है। रात को जगना, सुबह सोना। स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। रमेश और धनंजय जैसे स्वाभिमानी, संवेदनशील युवकों को अपने इज्जत की धज्जियाँ उड़ते हुए महसूस होती है। एक बार तो अमरीकी महिला धनंजय को गाली दे देती है। परंतु 'कस्टमर कितने भी बेहुदे ढ़ंग से बात करें जवाब संयत होकर देना' वाली हिदायत चुप करा देती है। मानसिक तौर पर वह टूटने लगता है। 'कभी दीवार पर उसे वह पुश्तैनी तलवार दिखती थी जिसे विजयदशमी के दिन हर वर्ष पूजा जाता था और साथ ही तलवार का वह जंग लगा भाग भी दिखता था जिस पर पिछली पूजा के दौरान धनंजय की दृष्टि टिकी थी।...और दीवार से छनकर उसे नयी उम्मीद से भरी माँ की वह हँसी भी आती दिखती थी, जो उन्होंने फोन पर उसकी नौकरी लगने की बात सुनते हुए बिखेरी थी। फिर उसे सिर्फ दीवार दिखती थी–सपाट, बेचेहरा और बेआवाज।' 5. प्रियदर्शन की कहानी 'पेइंग गेस्ट' भी युवा वर्ग के मशीन बन जाने और मानवीय संवेदना के खो देने की कहानी है।

उसी प्रकार आधुनिकता में बिखरी स्त्री की अतिसंवेदनशील कहानी है अल्पना मिश्र की 'उपस्थिति'। कहानी की नायिका पति के अनमने भावों को समझाती है। वह आजादी नहीं पति का प्रेम और संवाद चाहती है। मानवीकरण के संदूक में स्त्री जीवन घिसते-घिसते संवादहीन हो जाता है। नायिका कावेरी काफी कोशिश करती है पर पति से सीधा संवाद नहीं हो पाता। अंत में वह मक्खी से रिश्ता जोड़ लेती है। उसे लाड़ करती है। संवाद करती है। उसी प्रकार कथा के गैरजरूरी प्रदेश में दाम्पत्य जीवन की हार दिखाई देती है। एक ही छत के नीचे दोनों अकेले हैं, अजनबी हैं। कहानी, अमानवीयता का कारण पूँजीवादी दौर को मानती है। मंजुल भगत की 'ब्यूटी सैलून' ऐसी 'मार्कटैजेशन' का फार्मुला बताता है जहाँ औरतें खुद को सुंदर बनाने के लिए बार-बार ब्यूटी पार्लर जाती हैं। इस कहानी की नायिका ब्यूटीशियन है। वह ब्यूटी सैलून में रोज नया कुछ सीखती है। 'निढ़ाल स्त्रियों को ताजगी और चुस्ती प्रदान करते-करते उसने और भी कुछ सीख लिया है।' 6. कावेरी की 'नव प्रसूता' दलित परिवारों में दलित स्त्री शोषण को बयान करती है। इसमें स्त्री को केवल भोग की वस्तु समझने वाले पुरुष अमानवीयता को वाणी दी गई है। शुभा के साथ ससुराल में बहुत बुरा घटता है। अंत में अपने अधिकारों से सचेत शुभा पति को छोड़ देती है और अपने पैरों पर खड़ी होकर इज्जत की जिंदगी जीने को तैयार हो जाती है। बेटी से कहती है–'तुझे भी मजबूत बनना है मेरी तरह।' 7. अमिताभ शंकर राय चौधरी की कहानी 'नोनाजल' सुनामी में ग्रस्त मछुआरों का चित्रण करती है जो अपना सब-कुछ खोकर रिलीफ केंप में जी रहे हैं। सरकार की ओर से मिलनेवाले रुपए के लिए उनसे रेशन कार्ड आदि पूछा जाता है। जिनके पास केवल पहना हुआ कपड़ा है उनसे कागजात पूछना बेईमानी और अमानवीयता ही तो है। बैंक नाव के लिए कर्ज देने को तैयार है। मगर एक बार कर्ज ले लिया तो वे कहीं के नहीं रहेंगे। क्योंकि मछली पकड़ने के लिए ट्रॉलर चलाने से उन्हें मछलियाँ कम मिलती है। गरीबों की टूटी झोंपड़ी बनाने के लिए सरकार के पास पैसा है न समय। किंतु सुनामी ग्रस्त बड़े-बड़े होटल मकान आसानी से बन जाते हैं। कहानी में मछुआरा सरवनमुत्तु लाचार होकर मजदूरी करता है। अपने अस्तित्व का विस्थापन उसे असहज बना देता है। वह चिल्ला उठता है–'हम रजवाड़ों के पूत हैं–भीम, अर्जुन की देह में हमारा खून है।' 8. 'नोनाजल' कृत्रिम संस्कृति का बखघन करता है जो सार्वभौमिक होती जा रही है, जिसमें पड़कर प्राकृतिक संस्कृति का ह्रास हुआ है। निरुपमा सेवती की कहानी 'बद्धमुष्टि' में स्त्रियों पर स्थापित नैतिक न्यायविधान का विरोध है। यह कहानी अपसंस्कृति में जीकर लड़कियों को संस्कृति की सूली पर चढ़ाने की ईमानदारी पर व्यंग्य करती है। साथ ही स्त्री पर होते सार्वभौमिक अत्याचार को भी प्रस्तुत करता है। कुसुम अंसल की कहानी 'इंतजार' पति-पत्नी द्वारा खुद को समकालीन दौर में किसी भी तरह फिट कर देने की त्रासदी का सार्वभौमिक चित्रण करता है। कहानी की देविशा तरक्की के लिए अपने मालिक से यौन संबंध स्थापित कर लेती है। किंतु जब तरक्की नहीं होती तो दोनों पति-पत्नी परेशान हो जाते हैं। पश्चिम की हेलो-हाय संस्कृति, भोग प्राधान्य डेटिंग-किसिंग रॉक शो, क्लब, मदिरापान, कॉल गलर्स आदि बाजार को चित्रित करती कहानियों में मंजुल भगत की 'नालायक बहू' मणिका मोहिनी की 'हम बुरे नहीं थे', चित्रा मुद्गल की 'वाइफ स्वेपी' आदि शामिल हैं।

संक्षेप में समकालीन कहानियाँ मानवतावाद के दायरे से निकलकर अमानवीय दुर्दशा का दृश्य चित्रण करा रही हैं। सार्वभौमिक दृष्टि से बदलता दौर मानवीय संवेदना का स्पंदन खो बैठा

है, जिसे पुनः गठित करने का प्रयास कहानीकारों ने किया है। उपनिवेशी बाजार तंत्र में खुद को कर्ता-धर्ता समझनेवाला मानव, मानवतावाद के सही माइने भूलता जा रहा है। सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी कहानीकार इसे याद दिलाने का भरपूर प्रयास कर रहे हैं।

संदर्भ

1. उर्मिला शिरीष, उसका अपना रास्ता, पृ॰ 117
2. रमेश उपाध्याय और संज्ञा उपाध्याय, सांस्कृतिक साम्राज्यवाद, पृ॰ 8
3. चंदन पांडेय, भूलना, पृ॰ 52
4. वही, पृ॰ 55
5. राकेश भारतीय, अमेरिका के चपरासी, वसुधा, अक्टूबर-दिसंबर 2007, पृ॰ 152
6. मंजुल भगत, ब्यूटी सैलून, कितना छोटा सफर, पृ॰ 96
7. दलित साहित्य (वार्षिकी) 1999, कावेरी-नव प्रसूता, पृ॰ 33
8. अमिताभ शंकर राय चौधरी, नोनाजल, समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून 2008, पृ॰ 100

Palakkil Kaliyath House
Odayammadam
Po. Cherukunnu
District Kannur
Kerala 670301
M. 9447720229

आदिवासी समुदाय की अस्मिता के विकास में सोशल नेटवर्किंग साइट्स की भूमिका (सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में)

राकेशकुमार दुबे
पत्रकारिता व जनसंचार विभाग
उड़ीसा केंद्रीय विश्वविद्यालय

मार्शल मैकलुहान ने अपनी पुस्तक 'अंडर स्टैंडिंग मीडिया : एक्सटेंशन ऑफ मैन' में कल्पना की थी कि संभवत हमारी दुनिया एक वैश्विक गाँव बनने की दिशा में बढ़ रही है। उनकी यह कल्पना 1964 में सामने आई थी, तब इनकी कल्पना को खारिज कर दिया था, लेकिन सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में लगातार होनेवाले विस्फोट और शक्तिशाली कंप्यूटरों के आने के बाद और इंटरनेट की वजह से आज पूरी दुनिया एक वैश्विक नगर में तब्दील हो गई है। इंटरनेट की शुरुआत सितंबर 1959 से मानी जाती है, जब अमेरिका की यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया और लॉस एंजलिस में मौजूद दो कंप्यूटरों के बीच पहली बार आँकड़ों का आदान-प्रदान हुआ। यह प्रतिरक्षा विभाग की पहल थी, लेकिन पाँच वर्ष पूर्व ही मैकलुहान ने वैश्विक ग्राम के संकेत दिए थे। आज इंटरनेट के उपयोग से सोशल साइट्स का प्रयोग भारतीय संविधान में प्रदत्त वाक् अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मजबूती प्रदान कर रहा है। मौजूदा सदी में तमाम तरह की उपलब्धि तकनीकी के बीच अपनी अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करने का एक नया और सशक्त माध्यम सोशल साइट्स के रूप में दिया है, जो तेजी से लोकप्रियता के नए आयामों को तोड़ता प्रगति-पथ पर अग्रसर है।

आज टेक्नोलॉजी ने जीवन की गति को बहुत तीव्र कर दिया है और इस गति ने हमारे दिमाग पर बहुत तेजी से आक्रमण करना शुरू कर दिया है। ज्यादातर नए उपक्रम मनुष्य से उसकी मनन-शक्ति छीनने की कोशिश कर रहे हैं। अध्यापक, संपादक आदि से ज्यादा महत्त्वपूर्ण प्रबंधक होते जा रहे हैं और प्रबंधन का सारा बल निवेश को कई गुना लाभ में बदलने में लगता जा रहा है। दरअसल, हाल के दिनों में जो सबसे बड़ा संकट दिखता है वह यह है कि मनुष्य रूपी चिंतनशील और विवेकशील प्राणी दिन-प्रतिदिन एक भोग करनेवाले प्राणी में बदलता जा रहा है। आप सिर्फ आँख बन जाएँ, जीभ बन जाएँ, कान और नाक बन जाए, अंग बन जाएँ, परंतु दिमाग न रहने पाए इसकी बड़ी भारी साजिश की जा रही है और दुनिया के हजारों वैज्ञानिक इस साजिश को अमलीजामा पहनाने में लगे हुए हैं। सोचना खतरनाक है, क्योंकि यह सवाल बड़ा खड़ा करता है, सवाल खड़ा करने वाली सबसे बड़ी ताकत मीडिया थी, इसलिए उसे पूँजी का गुलाम बनाकर उसका स्वरूप बदल दिया गया, वह सूचना की बजाय मनोरंजन केंद्रित हो गया। उसका लक्ष्य हो

 ISSN 0975-735X

गया कि मनुष्य के भीतर से भेजा निकालकर उसकी जगह मजा रख दिया जाए। मानी हुई बात है ऐसे गाने गुलजार जैसे लोग ही लिख सकते हैं–

गोली मार भेजे में
के भेजा शोर करता है
भेजे की सुनेगा तो मरेगा कल्लू मामा

आप रचनाकार न बने, उपभोक्ता बने। सवाल करनेवाला चेतन मस्तिष्क तो कतई ना बने। यह तो खतरनाक है। जिस अनुपात में सोचने पर पहरे लगाए जा रहे हैं, शिक्षकवर्ग की जिम्मेदारी बढ़ती जा रही है। सोशल मीडिया के रूप में उसे एक ताकतवर माध्यम भी मिल गया है, लेकिन बड़ा सवाल यह है कि शिक्षक इस माध्यम का उपयोग कर रहा है या यह माध्यम शिक्षक का उपयोग कर रहा है। महत्त्वपूर्ण यह है कि किस समुदाय को समाज अथवा देश का दिमाग कहा जा सकता है।

संचार एक ऐसी प्रक्रिया है, जो हर संवाद के लिए आवश्यक है। मानव-सभ्यता से पहले भी यदि कोई प्रक्रिया इस संसार में आई तो वह है संचार। आदिवासियों जैसा ही यह भी आदिकालीन है। संसार में प्रत्येक अवस्था संचार-प्रक्रिया से होकर गुजरती है। जन्म लेते ही मनुष्य रो-रोकर विश्व को अपनी यह अभिव्यक्ति प्रस्तुत करने का प्रयास करता है कि अब, आज से, जगत में उसका कोई अस्तित्व है और अपने अंतिम पल के शाब्दिक या अशाब्दिक अभिव्यक्ति के द्वारा वह विदा लेता है। अभिव्यक्ति का यह प्रयास यदाकदा स्वरूप में जारी रहता है। इस बीच वह अपनी संचार-प्रक्रिया में भावनाओं, विचारों, संवेदनाओं को विविध तरीके से लोगों के बीच पहुँचाने का कार्य करता है। जनसंचार माध्यमों के द्वारा अभिव्यक्ति की ताकत को पहचाना गया, लेकिन इंटरनेट के विकास में अभिव्यक्ति के माध्यम से जोड़कर एक नई संचारक्रांति की कल्पना को स्वीकार किया गया। दुनिया जिस संचार-व्यवस्था की कल्पना आज कर रही है और अभिव्यक्ति का प्रयोग करके राष्ट्र-निर्माण में सहयोग कर रही है।

सोशल मीडिया की क्रांति महज दो दशक पुरानी है। सबसे पहले 1994 में सोशल मीडिया जिओ साइट्स के रूप में सामने आया। विद्वानों की टोली ने अनेक साइट्स को लेकर विचार-विमर्श किया। मौजूदा सदी का पहला दशक तथाकथित सोशल मीडिया के संदर्भ में आमूलचूल परिवर्तनों और नवीन खोजों का रहा। सोशल नेटवर्किंग साइट फ्रेंडस्टर 2002 में आई और ट्राइब 2003 में शुरू हुई। लिंक्डइन और मायस्पेस 2003 में आई और मायस्पेस इसको इस लिहाज से सफल पहल कहा जा सकता है। फेशबुक की शुरुआत फरवरी 2004 में हुई और इसमें क्रांति कर दी। जुलाई 2010 तक उसके पंजीकृत यूजर 50 करोड़ हो गए जो आज भी बहुत तेजी से बढ़ रहे हैं। जीमेल ने बहुत प्रचारित' गूगल बज' सेवा फरवरी 2010 में शुरू की, जबकि निंग भी 2004 से काम कर रही है। उसके आलावा इंटरनेट के बिना हर कुछ सुना सा लगाने लगा। सो तमाम टेलिकॉम सेवा-प्रदाताओं ने तरह के लोक-लुभावन विवरणों और योजनाओं की गणना करनी शुरू कर दी। और इस दौर में मुकेश अंबानी के जिओ के आने के बाद तो मानो हर कोई वैश्विक ही हो चला भले हीं वह स्थानीयता से कितना भी दूर क्यों न चला जाए!

फेशबुक ट्विटर, लिंक्डइन, गूगल प्लस, टू, माय स्पेस, वे एन आर इंस्टाग्राम विंडोस लाइव, मेसेंजर, ऑर्कुट, व्हाट्सएप, नेटवर्क के साथी यू ट्यूब भी सोशल नेटवर्किंग साइट्स में

गिने जाते हैं। इनके अलावा भी बाडू, बिग अड्डा ब्लैक प्लेनेट, ब्लांक, बजनेट, क्लासमेट्स डॉट कॉम, कोजीकॉट, फोटो लॉग, फ्रेंडिका, हॉटलिस्ट, आईबीओ, इंडिया टाइम, निंग, चीन के टंसंट क्यूक्यू, ट्न्संट वेइबो, क्यूजोन व न्टीज, फ्रांस के हाब्बो, स्काइप, बिंबो, सहित आज के तारीख में सैकड़ों की संख्या में सोशल नेटवर्किंग साइट देश-दुनिया में प्रचलित हैं। सामान्यतया लोगों की ऐसी धारण बनती जा रही है कि आज इनके बिना जनजीवन तो नामुमकिन सा ही है। अगर आप सोशल नेटवर्किंग साइट पर सक्रिय नहीं है तो मानो आपसे पिचर कोई भी नहीं।

सोशल नेटवर्किंग साइट इंटरनेट माध्यम पर उपलब्ध ऐसे साइट्स हैं, जिन पर हम अपने संपर्कों का दायरा बढ़ाते हुए अपने संबंधित क्षेत्रों के लोगों तक अपने विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। सोशल नेटवर्किंग साइट्स एक तरह की वेबसाइट हैं, जिनसे जुड़कर स्काइप पर जुड़े हुए अन्य लोगों से भी जुड़ा जा सकता है, क्योंकि साइट्स पर देश-दुनिया के और वे लोग जुड़े रहते हैं, इसलिए इनसे जुड़ने पर हम परोक्ष-अपरोक्ष रूप से इन लोगों से जुड़ जाते हैं या जुड़ सकते हैं। लेकिन वास्तव में जुड़तें है या बिछडते हैं यह दीगर बात है। इन लोगों में हमारे वर्तमान और कई बार वर्षों पूर्व बिछड़े हुए दोस्त तथा सैकड़ों हजारों किलोमीटर दूर रह रहे परिजन, मित्र हो सकते हैं, जिनसे हम इन साइटों पर जुड़ने के बाद बिना शुल्क के जितनी देर चाहे, चैटिंग या संदेशों के माध्यम से बात, विचार-विमर्श कर सकते हैं। अपने विचारों को शब्दों के माध्यम से या बोलकर पूरी दुनिया के सामने रख सकते हैं, यही नहीं, एक-दूसरे के फोटो और वीडियो भी देख सकते हैं, जबकि अन्य किसी माध्यम से ऐसे वार्तालाप बेहद महँगे पड़ते हैं। लिहाजा सोशल साइट काफी लोकप्रिय होती जा रही हैं।

प्राचीन राजनीतिक विचारक अरस्तु का कथन 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है' हममें से सभी ने सुना तो है ही। समाज में रहना ही उन्हें पसंद होता है, इसलिए सामाजिक स्वरूप में सक्रियता होना भी मनुष्य की आदत बन जाती है, यह एक मनोवैज्ञानिक कारण है। संचार की आवश्यकता भी विचार आदान-प्रदान कर प्रतिक्रियाएँ जानने की उत्सुकता है ऐसे माध्यम जिसमें 'टू वे कम्युनिकेशन' हो और त्वरित गति से सूचना मिले ऐसी सारी महत्त्वाकांक्षाओं के लिए सोशल साइट्स पूर्ण विकल्प देता है। यहीं से सामाजिक मीडिया के उपयोगकर्ताओं में सामाजिक आंदोलन एवं कुरीतियों को दूर करने के लिए सोशल साइट्स का उपयोग करना शुरू किया।

प्रजातांत्रिक प्रक्रिया को सुचारु रूप से चलाने के लिए बोलने की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की आजादी बहुत जरूरी है और इसे आजादी की पहली शर्त माना गया है। बोलने की स्वतंत्रता सभी अधिकारों की जननी है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक मुद्दों पर लोगों की राय जानने के लिए स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की आजादी महत्त्वपूर्ण है। 'मेनका गांधी बनाम भारतीय संघ' के मामले में न्यायमूर्ति भगवती ने बोलने की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की आजादी के महत्त्व पर जोर देते हुए व्यवस्था दी थी कि लोकतंत्र मुख्य रूप से स्वतंत्र बातचीत और बहस पर आधारित होता है। अगर लोकतंत्र का मतलब लोगों का, लोगों के द्वारा शासन है, तो यह स्पष्ट है कि हर नागरिक को प्रजातांत्रिक प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार होना जरूरी है और अपनी इच्छा से चुनने के बौद्धिक अधिकार के लिए सार्वजनिक मुद्दों पर स्वतंत्र विचार और बहस बेहद जरूरी है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ं) के तहत मिली अभिव्यक्ति की आजादी में कोई

 ISSN 0975-735X

भी नागरिक किसी भी माध्यम के द्वारा, किसी भी मुद्दे पर अपनी राय और विचार दे सकता है। भारत में प्रेस की स्वतंत्रता को अनुच्छेद 19 के तहत मिली बोलने की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की आजादी से ही संबद्ध किया गया है। प्रेस की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए अलग से कोई प्रावधान नहीं है। 'सकाल अखबार बनाम भारतीय संघ' के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि प्रेस की स्वतंत्रता की उत्पत्ति अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से हुई है। सुप्रीम कोर्ट ने कई मामलों में प्रजातांत्रिक समाज में प्रेस की स्वतंत्रता को बनाए रखने पर जोर दिया है। प्रेस तथ्यों और विचारों को प्रकाशित कर लोगों की सूची बनाकर एक ऐसी तार्किक विचारधारा उत्पन्न करता है, जिसके बिना कोई निर्वाचक मंडल सही फैसला नहीं दे सकता।

मीडिया प्रजातांत्रिक व्यवस्था था चौथा स्तंभ है। बाकी तीनों स्तंभों में, जहाँ विधायिका समाज के लिए कानून बनाती है, वहीं कार्यपालिका उसे लागू करने के लिए कदम उठाती है, तीसरा महत्त्वपूर्ण स्तंभ न्यायपालिका है, जो यह सुनिश्चित करती है सभी कार्यवाइयाँ और फैसले वैधानिक हैं, और उनका सही तरीके से पालन किया जाए। चौथे स्तंभ यानी प्रेस को इन कानूनों और संवैधानिक प्रावधानों के अंदर रहकर सार्वजनिक और राष्ट्रीय हित में काम करना होता है। इससे यही संकेत मिलता है कि कोई भी कानून से ऊपर नहीं है। जब भारत के संविधान में नागरिकों के लिए संविधान में बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सुनिश्चित किया गया, तब यह भी सुनिश्चित किया गया कि यह स्वतंत्रता पूर्ण नहीं थी और कोई भी अभिव्यक्ति चाहे वह शाब्दिक हो या दृश्य माध्यम से वह विधायिका द्वारा बनाए गए और कार्यपालिका के द्वारा लागू किए गए संवैधानिक नियमों का उल्लंघन न करती हो। अगर प्रिंट या इलैक्ट्रॉनिक मीडिया अपने अधिकार-क्षेत्र से बाहर आकर काम करता है, तो न्यायपालिका के पास उस पर मौलिक अधिकार उल्लंघन के तहत कार्रवाई का हक है। साथ ही सोशल मीडिया के लिए भी यही प्रावधान है।

समय के साथ पूरी दुनिया में संस्कृति के बीच संस्कारों में विभिन्नताएँ देखी जा सकती हैं। भारतीय परंपरा में आदिवासी संस्कृति की उपेक्षा सबसे अधिक की गई है। भारत की 130 करोड़ की कुल जनसंख्या में 8.2 प्रतिशत संख्या रखनेवाले आदिवासी समूह में धर्म की अनेक भ्रातियाँ या कहें तो उनके विश्वासों में विविधता रही है। साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में यह जनसमूह अपना निवास-स्थान एक क्षेत्र-विशेष में अपने समुदाय के साथ संगठित होकर करता है। उन्हें विशेष स्थान रखने के कारण इन्हें जनजाति (जंगल में पाई जानेवाली जाति), रिवासी (गिरि अर्थात पर्वत में वास करनेवाले), वनवासी (वनों में निवास करनेवाला) या आदिवासी (आदि समय से पाई जानेवाली जाति) इत्यादि कई नामों से पुकारा जाता है। इस प्रकार ये सारे नाम पाठ्यक्रमों में भी शिक्षाशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों के मतानुसार सभ्य समाज की देन हैं।

आदिवासी साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारत के आदिवासी हिंदू नहीं हैं, मुसलमान, सिक्ख, इसाई नहीं हैं, इन सवाल का जवाब उभरकर आता है, आदिवासी का धर्म आखिर है क्या? क्या आदिवासी का कोई धर्म नहीं है, तार्किक रूप से सभ्यता-संस्कृति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जो आदिवासी समुदाय हमेशा प्रकृति के सानिध्य में रहते हैं। इसी प्रकार प्रकृतिपूजा स्वयं अपने आपमें धर्म है। तथागत गौतम बुद्ध ने इस पर कहा है कि भारत में

धर्म के संबंध में उच्च वर्गों द्वारा बनाई गई धारणाएँ ही प्रचलित हैं। धर्म के संबंध में प्रमुखता से कहा गया है कि धर्म ईश्वर पर घनिष्ठ विश्वास है। धार्मिक पहचान से सांस्कृतिक पहचान बनाने की जद्दोजहद के बीच आदिवासी पहचान और संस्कृति का ह्रास हुआ है। शिक्षा का भाव और अभिव्यक्ति के समुचित प्रयोग न होने से समाज के बुद्धिजीवियों ने आदिवासियों की विशाल संस्कृति और बौद्धिक संपदा का नामकरण अपने हिसाब से करने की सोची। लेकिन भारतीय संविधान के मौलिक अधिकार के अंतर्गत प्रत्येक वर्ग, समूह अपनी अभिव्यक्ति का प्रयोग करके संस्कृति और समाज के प्रश्नों की पुनर्व्याख्या कर रहा है। मिथक और यथार्थ के बीच आदिवासी समुदाय के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रचार-प्रसार में सोशल मीडिया की उपयोगिता बढ़ गई है।

सोशल मीडिया पर जो समय हम और आप खर्च कर रहे हैं, उसकी सही कीमत शायद हमें नहीं मालूम, न ही हम उसका कोई अंदाजा लगा पाते हैं, वजह ये है कि हमें खुद अपने समय की कीमत नहीं मालूम। आज की व्यस्त और भागदौड़ भरी दुनिया में हम अपने समय को मैनेज नहीं कर पाते, हम ये तय नहीं कर पाते कि जो समय हमारे पास है, उसका किस तरीके से सार्थक उपयोग हम कर सकते हैं।

यही वजह है कि सोशल मीडिया पर निरर्थक बहसबाजी और गप्पबाजी में हमारा कितना समय जाया हो जाता है, इसका हिसाब हम नहीं रख पाते। शायद हम हिंदुस्तानियों के पास धन-दौलत की कमी भले हो, लेकिन समय इफरात में है, जिसका हम भरपूर इस्तेमाल ऐसे निरर्थक कामों में करते हैं, जैसे सोशल मीडिया पर फिजूल की चौटिंग में। अक्सर किशोरों और युवावर्ग में ऐसा देखा जाता है कि वे सोशल मीडिया पर ज्यादा-से-ज्यादा मशगूल रहते हैं–दोस्तों से गप्पें लड़ाने में, लड़कियों को पटाने की कोशिश में, या फिर गेमिंग और ऐसी हरकतों में जिनसे उनके करियर या जिंदगी में कोई फायदा तो नहीं ही हो सकता। ऐसे चंद, बिरले ही युवा हैं, जिनकी सोशल मीडिया पर सक्रियता उनके लिए किसी तरह से लाभकारी साबित हुई हो, चाहे काम-काज या नौकरी के सिलसिले में या फिर निजी जीवन के किसी पहलू में।

सैकड़ों सोशल साइट होने के बावजूद सोशल साइट का उपयोग भारत में होता है। बहुमुखी प्रतिभासंपन्न भारतीय सोशल साइट्स का प्रयोग करते हैं, जिससे आसानी से विचार को साझा किया जा सके। वर्तमान में फेसबुक देश में सबसे अधिक लोकप्रिय सोशल नेटवर्किंग साइट्स रही है, इस साइट्स पर प्रतिदिन 51 प्रतिशत प्रयोगकर्ता लॉगइन करते हैं, दूसरी ओर इंस्टैंट मैसेजिंग एप्स की सूची में व्हाट्सएप पर है। 50 देशों के 60500 इंटरनेट प्रयोगकर्ताओं के डिजिटल व्यवहार व स्थितियों के एक ग्लोबल अध्ययन, कनेक्टेड लाइफ के निष्कर्ष के मुताबिक, प्रतिदिन 55% प्रयोगकर्ता इंस्टैंट मैसेजिंग पर एक्टिव होते हैं। भारत में, सोशल नेटवर्किंग प्लेटफार्म पर फेशबुक 51 प्रतिशत युवक के साथ आगे हैं वहीं इंस्टैंट मैसेजिंग की सूची में व्हाट्स-अप्प 56% प्रयोगकर्ताओं के साथ सबसे आगे है। भारत में फेशबुक 125 मिलियन के साथ दूसरे पायदान पर है। अमेरिका में फेशबुक की संख्या सबसे अधिक है।

अभिव्यक्ति और माध्यम की उपस्थिति से आदिवासी समुदाय के युवा अब इस सोशल साइट्स का प्रयोग करके आदिवासी समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रचार-प्रसार में योगदान दे रहे हैं। सोशल नेटवर्किंग साइट पर आज संविधान पर अटूट आस्था के साथ आदिवासी संस्कृति का प्रचार हो भी रहा है। ज्ञानवृद्धि की परंपरा आदिवासी समुदाय से जुड़कर किस रूप में रहती है,

 ISSN 0975-735X

इसके लिए फेसबुक में बनाए पेज के विश्लेषणात्मक अध्ययन से तथ्य को जान सकते हैं। अभिव्यक्ति के माध्यमों में शोधकार्य की अनिवार्यता अब पत्रिका के स्वरूप में भी आ चुकी है। आज मौजूदा फेसबुक पर अनगिनत सोशल साइट्स बने हुए हैं, जिसमें प्रमुख रूप से अखिल भारतीय गोंड महासभा, गोंडवाना गणतंत्र, आदिवासी मंच, आदिवासी मोर्चा, हूल जोहार, जय सेवा जय गोंडवाना आदि है। इन सोशल साइट्स पर हजारों की संख्या में प्रयोगकर्ता जुड़े हुए हैं। आदिवासी समाज के बुद्धिजीवियों ने सोशल साइट्स को अभिव्यक्ति के माध्यम का मंच बना दिया है। बहुतायत संख्या में सोशल साइट्स के द्वारा मार्शल मैकलुहान ने जो परिकल्पना विकसित की थी, बिल्कुल वैसा ही संचार के वैश्विक गाँव में तब्दील हो रहा है।

तकनीकी विकास के इस दौर में इंटरनेटप्रयोगकर्ताओं की संख्या हर दिन बढ़ रही है। 2G, 3G, 4G के उपयोगकर्ताओं को उनके सुविधानुसार ऊपर देख एंड्राइड फोन पर इंटरनेट प्रयोग को सरल बना दिया है, इस बीच ऐप्स डाउनलोड की प्रक्रिया में हर महीने लाखों ऐप्स स्टोर होते हैं। इंटरनेट पर सोशल साइट सामाजिक गतिविधियों में इतने सक्रिय हैं कि इनकी आबादी देश की संख्या के अनुरूप बढ़ रही है। आदिवासी समुदाय के परिपेक्ष्य में आदिवासी समुदाय शिक्षा के प्रचार-प्रसार स्वयं विकास के पायदान पर है, लेकिन कुछ सामाजिक कुरीतियाँ अभी भी दूर नहीं हुई हैं। इसके लिए धनी संपदा से लोगों में जागरूकता का कार्य करने के लिए सोशल मीडिया एक सशक्त माध्यम बना हुआ है। सोशल साइट ने आदिवासी संस्कृति के बारे में आमजनों में जागरूकता फैलाने का काम किया है। आदिवासी अस्मिता और आदिवासी वर्चस्व कायम रखने के लिए सोशल साइट्स की उपयोगिता आदिवासी समाज के सर्वांगीण विकास की ओर बढ़ने की नई शुरुआत है और समाज का विकास संभवत: तकनीकि के विकास और उपयोग के साथ जुड़ा हुआ है। आदिवासी समुदाय के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रचार-सोशल मीडिया की उपयोगिता प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में रही है।

सोशल मीडिया बहुत सशक्त है। उसकी पहुँच में लगभग हर शिक्षित व्यक्ति है। उसका कार्यक्षेत्र केवल सूचनाओं को उपलब्ध कराने तक ही सीमित नहीं रह गया है। सामान्य व्यक्ति केवल मीडिया से इसलिए नहीं जुड़ता कि उसे कुछ सूचनाएँ, समाचारों और घटनाओं का खुलासा चाहिए, बल्कि वह मीडिया से इसलिए जुड़ता है कि उसकी भाषा, संस्कृति और संस्कार परिष्कृत हो सकें। यह बात अलग है कि सोशल मीडिया यह करने में भी सक्षम इसलिए नहीं है कि उसमें भाषा-परिष्कार और संवेदनशीलता का वह स्तर नहीं है, जो कभी प्रिंट मीडिया में हुआ करता था।

संदर्भ

1. मीडिया एंड द लैंग्वेज, आनंदिता पैन, मीडिया वॉच 23-28, वॉल्यूम 3, जुलाई-दिसंबर 2012
2. शालिनी जोशी और शिवप्रसाद जोशी 2015, 'नया मीडिया: अध्ययन और अभ्यास, पेंग्वीन , दिल्ली
3. द न्यू मीडिया हैंडबुक, एंड्रयु ड्युडने ऐंड पीटर राइड, रूटलेज, 2006
4. शिलर, हरबर्ट आई॰,(अनु॰) राम कवींद्र सिंह, संचार माध्यम और सांस्कृतिक वर्चस्व, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली
5. भगवान देव पांडेय, मिथिलेशकुमार पांडेय, ग्लोबल मीडिया टुडे, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
6. सुरेशकुमार, इंटरनेट पत्रकारिता, 2004, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली

7. जगदीश्वर चतुर्वेदी, मिडिया समग्र, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली
8. सुभाष धूलिया, सूचना क्रांति की राजनीति और विचारधारा, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली
9. हरमन, एडवर्ड एस और मैकचेस्नी, रोवर्ट डब्ल्यू, (अनु॰), चंद्रभूषण, भूमंडलीय जनमाध्यम निगम पूँजीवाद के नए प्रचारक, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली
10. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधासिंह (अनु॰) 2008, वैकल्पिक मीडिया और लोकतंत्र, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली
11. श्याम माथुर, वेव पत्रिका, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
12. नंदकिशोर त्रिखा, 2012, विधि, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
13. पृथ्वीनाथ पांडे, 1995,जनसंचार दृश्य प्रदर्शन, उमेश प्रकाशन, इलाहाबाद
14. शालिनी जोशी, शिवप्रसाद जोशी; 2012,वेव पत्रिका नया मीडिया नए रुझान, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली
15. अकबर 2006, मीडिया का वर्तमान, अनन्य प्रकाशन नई दिल्ली
16. राजेशकुमार झा, (सं॰)योजना, मई 2015, सूचना भवन, सी॰जी॰ओ॰ काम्प्लेंस, लोधी रोड नई दिल्ली
17. जी॰एस॰ भार्गव, भारत मेँ प्रेस, नेशनल बुक ट्रस्ट (एन॰बी॰टी॰) नईदिल्ली
18. रॉबिन जेफ्री, भारत की समाचारपत्र क्रांति, आई॰आई॰एम॰सी॰, नई दिल्ली
19. मनोहरश्याम जोशी, मास मीडिया और समाज, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
20. प्रेमसिंह, कट्टरता जीतेगी या उदारता, राजकमल प्रकाशन दिल्ली
21. प्रेमसिंह, उदारीकरण की तानाशाही, राजकमल प्रकाशन दिल्ली
22. अरविंदमोहन लोकतंत्र का नया लोक (दो खंड), वाणी प्रकाशन, दिल्ली
23. भारतीय विज्ञापन में नैतिकता, मधु अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
24. आउटलुक साप्ताहिक 16 अक्टूबर 2006
25. भूमंडलीय ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990
26. State of the media the social media report 2016, Featured Insights Global Media Entertainment Nielsen Retrieved 9 December 2016
27. www.newswrite_in@socialstics
28. फेसबुक पेज और वार्डसब से संगृहीत डाटा/ साक्षात्कार
29. http:èèen.wikipedia.orgèwikièsocial participatory media

rkdubey-bharat@gmail-com

मोहन राकेश के नाटकों में दृश्यबंध योजना (प्रातिनिधिक नाटकों के संदर्भ में)

प्रा॰ जयराम गाडेकर
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
फर्ग्युसन महाविद्यालय, पुणे (महा॰)

मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभासंपन्न नाटककार थे। राकेश के नाटकों में उनकी प्रतिभा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे एक भावुक, सर्जक, समीक्षक और सूक्ष्म विश्लेषक रहे हैं। राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' (1958), 'लहरों के राजहंस' (1963), 'आधे अधूरे' (1969) काफी चर्चित नाटक हैं। उनका 'पैर तले की जमीन' अधूरा नाटक है, जो बाद में कमलेश्वर ने पूरा किया है। यहाँ तीन ही नाटकों के संबंधित दृश्यबंध योजना का विचार किया गया है। राकेश के तीनों भी नाटकों में रंगमंच के नए-नए आयामों को उद्‌घाटित करने में सक्षम रहे हैं। दृश्यबंध नाटक का बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है। दृश्यबंध केवल मंच पर जो रिक्तता होती है, उसे भरने का नहीं करता, बल्कि रंग-प्रस्तुति के लिए आवश्यक वातावरण निर्मित करता है। दृश्यबंध केवल तकनीकी ज्ञान न होकर कल्पनाशीलता, समझदारी और सूझ-बूझ भरा सृजन होता है। आधुनिक रंगमंच पर तीन प्रकार की दृश्यबंध या दृश्यसज्जा दिखाई देती है–1. चित्रांकित दृश्यबंध : इसमें चित्रित पर्दों, पार्श्वों (विंग्स) का प्रयोग किया जाता है। 2. प्रकृतिवादी दृश्यबंध (बाक्स सेट) : इसमें यथार्थवादी ढंग का दृश्यबंध होता है। इसमें पार्श्व को जोड़कर तीन दीवारें खड़ी कर किसी घर या कमरे का दृश्य खड़ा किया जाता है। चौथी दीवार तथा छत की कल्पना दर्शकों को करनी होती है। अभिनेता को इस तरह का अभिनय करेंगे कि वहाँ दर्शक है ही नहीं। उनके और दर्शकों के बीच में कमरे की अदृश्य चौथी दीवार की कल्पना करनी है। 3. प्रतीक दृश्यबंध : इसमें यथार्थवादी दृश्यबंध की अपेक्षा प्रतीकात्मक रूप में कम-से-कम चीजों का प्रयोग करके दृश्यबंध का निर्माण किया जाता है। मोहन राकेश के दृश्यबंध के संदर्भ में डॉ॰ गोविंद चातक लिखते हैं–'राकेश ने अपने नाटकों के लिए जिस मंच (दृश्यबंध) की कल्पना की थी, वह संभवत: 'बाक्स सेट' पर आधारित थी। इस परिकल्पना का सबसे बड़ा लाभ यह है कि उनके नाटकों में दृश्यों की बहुलता नहीं है। वे एक ही दृश्यबंध पर खेले जा सकते हैं।'[1] इससे स्पष्ट होता है कि मोहन राकेश के नाटकों में 'बाक्स सेट' का प्रयोग दिखाई देता है।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की कथावस्तु कालिदास के अंतरंग जीवन से संबंधित है। इस नाटक के संबंध में रंगकर्मियों का कहना है–'इस नाटक की प्रत्यक्ष विषयवस्तु कालिदास के जीवन से संबंधित है, परंतु उसके प्रसिद्धि को प्राप्त होने से पहले उसकी प्रेयसी मल्लिका का यह नाटक है–एक सीधी-सादी समर्पित लड़की की नियति का चित्र, जो एक कवि से प्रेम ही नहीं

करती, उसे महान होते भी देखना चाहती है। महान वह अवश्य बनती है, पर इसका मूल्य मल्लिका अपना सर्वस्व देकर चुकाती है। अंत में कालिदास भी उसे केवल अपनी सहानुभूति ही दे पाता है, और चुपके से छोड़कर चले जाने के अतिरिक्त उससे कुछ नहीं बन पड़ता। मल्लिका के लिए कालिदास उसके संपूर्ण व्यक्तित्व के, जीवन में, साथ एकाकार सुदूर स्वप्न की भाँति है, कालिदास के लिए मल्लिका उसके प्रेरणादायक परिवेश का एक अत्यंत जीवंत तत्त्व मात्र। अनन्यता और आत्मलिप्तता की इस विसदृशता में पर्याप्त नाटकीयता है।'[2] इस मंतव्य से स्पष्ट है कि मोहन राकेश प्रस्तुत नाटक में एकाग्रता, तीव्रता और गहराई के साथ चित्रण करने में सफल हुए है। मोहन राकेश का 'आषाढ़ का दिन' पहला प्रयोगधर्मी नाटक है, जिसमें संस्कृत के महाकवि कालिदास के जीवन से जुड़ी लोकप्रसिद्ध घटनाओं का ताना-बाना बुना गया है। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक का शीर्षक महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' के 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' से लिया गया है। यह नाटक राकेश की यह प्रौढ़ कृति है, पुरानी परंपराओं को साथ लेकर भी नवीन चेतना के अनुकूल है। साथ ही युग के अनुसार नया संदर्भ देने में भी यह नाट्यकृति सक्षम एवं प्रसिद्ध रही है। प्रस्तुत नाटककार ने घटनाओं का संयोजन बड़े कौशलपूर्ण ढंग से किया गया है। कालिदास और मल्लिका का प्रेम संबंध, कालिदास को उज्जयिनीनरेश द्वारा बुलावा आना, मल्लिका द्वारा कालिदास को जाने के लिए प्रेरित करना, प्रियंगु से परिणय, मल्लिका के ग्राम प्रांतर में कालिदास का आना, कश्मीर का उपद्रव, घायल कालिदास, मल्लिका के जीवन से कालिदास की वितृशणा आदि प्रसंगों को छोटी-छोटी घटनाओं के सहारे विकसित किया है। प्रस्तुत नाटक कुल तीन अंकों में विभाजित है। नाटक में अंबिका, मल्लिका, कालिदास, दंतुल, निक्षेप, विलोम, रंगिणी, संगिनी, अनुस्वार, अनुनासिक, प्रियंगुमंजरी आदि पात्रों का संयोजन है।

नाटक के प्रथम अंक में दृश्यबंध योजना इस प्रकार है–'एक साधारण प्रकोष्ठ। दीवारें लकड़ी की हैं, परंतु निचले भाग में चिकनी मिट्टी से पोती गई हैं। बीच-बीच में गेरू से स्वस्तिक-चिह्न बने हैं। सामने का द्वार अँधेरी ड्योढ़ी में खुलता है। उसके दोनों ओर छोटे-छोटे ताक हैं, जिनमें मिट्टी के बुझे हुए दीये रखे हैं। बाईं ओर का द्वार दूसरे प्रकोष्ठ में जाने के लिए है। द्वार खुला होने पर उस प्रकोष्ठ में बिछे तल्प का एक कोना ही दिखाई देता है। द्वारों के किवाड़ भी मिट्टी से पोते गए हैं और उन पर गेरू एवं हल्दी से कमल तथा शंख बनाए गए हैं। दाईं ओर बड़ा-सा झरोखा है, जहाँ से बीच-बीच में बिजली कौंधती दिखाई देती है। प्रकोष्ठ में एक ओर चूल्हा है। आस-पास मिट्टी और काँसे के बरतन सहेजकर रखे हैं। दूसरी ओर, झरोखे से कुछ हटकर तीन-चार बड़े-बड़े कुंभ रखे हैं, जिन पर कालिख और काई जमी है। उन्हें कुशा से ढककर ऊपर पत्थर रख दिया गया है। झरोखे से सटा एक लकड़ी का आसन है, जिस पर बाघ-छाल बिछी है। चूल्हे के निकट दो चौकियाँ हैं।'[3] इस प्रकार प्रथम अंक में दृश्य सज्जा दिखाई देती है।

नाटक के दूसरे अंक में कुछ वर्षों के अनंतर 'वही प्रकोष्ठ। प्रकोष्ठ की स्थिति में पहले से कहीं अंतर आ गया है। लिपाई कई स्थानों से उखड़ रही है। गेरू से बने स्वस्तिक, शंख और कमल अब बुझे-बुझे-से हैं। चूल्हे के पास पहले से बहुत कम बरतन हैं। कुंभ केवल दो हैं और उन पर ऊपर तक काई जमी है। आसन पर कुछ भोजपत्र बिखरे हैं, कुछ एक रेशमी वस्त्र में बँधे हैं। आसन के निकट एक टूटा मोढ़ा है, जिस पर भोजपत्र सीकर बनाया एक ग्रंथ रखा है। चूल्हे के

 ISSN 0975-735X

निकट कोने में रस्सी बँधी है, जिस पर कुछ वस्त्र सूखने के लिए फैलाए गए हैं। अधिकांश वस्त्र फटे हैं और उन पर जगह-जगह टाकियाँ लगी हैं। एक टूटा मोढ़ा ड्योढ़ी के द्वार के पास रखा है। चौकी एक ही है।'[4]

नाटक के तीसरे अंक में कुछ और वर्षों के बाद–'वर्षा और मेघगर्जन का शब्द। परदा उठने पर वही प्रकोष्ठ। एक दीपक जल रहा है। प्रकोष्ठ की स्थिति में पहले से बहुत अंतर दिखाई देता है। सब-कुछ जर्जर और अस्तव्यस्त है। कुंभ केवल एक है और उसका भी कोना टूटा है। आसन अपने स्थान से हटा हुआ है और उस पर अब बाघ-छाल नहीं है। दीवारों पर से स्वस्तिक आदि के चिह्न लगभग बुझ चुके हैं। चूल्हे के पास केवल दो-एक बरतन हैं, जिन पर स्याही चढ़ी है। एक कोने में फटे-मैले वस्त्र एकत्रित हैं।'[5]

उपर्युक्त तीनों दृश्यबंध में एक ही दृश्य बंध है। लेकिन दूसरे और तीसरे अंकों में जो परिवर्तन हुआ, वह समय के अंतराल को दर्शाता है। इसमें पात्रों, परिवेश और उनके जीवन में आए बदलाव, उनकी आर्थिक-सामाजिक स्थितियाँ, उनके बनते-बिगड़ते संबंध प्रतिबिंबित होते है। यह नाटक 1958 ई॰ में प्रकाशित हुआ है। नाटककार रंगमंच की सीमाओं से परिचित था। उन्होंने भारतीय परिवेश के अनुरूप ग्राम्य-प्रदेश के घर के प्रकोष्ठ की परिकल्पना की है, जिसके हर एक उपकरण तत्कालीन परिवेश के अनुरूप हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि नाटककार ने संस्कृत नाटकों का सूक्ष्म अध्ययन किया है। प्रस्तुत नाटक में दृश्यबंध की सार्थकता के संदर्भ में डॉ॰ सुषमा बेदी कहती है–'इस नाटक में आद्यंत एक-सा दृश्यबंध रखा है। कथा की गति और पात्रों की मन:स्थिति के अनुरूप उसी दृश्यबंध में हल्के परिवर्तन कर दिए गए हैं जैसे की पहले अंक में गेरू से बनी दीवारों पर स्वस्तिक, शंख और कमल के चित्र निखरे हुए हैं, साफ-सुथरा आँगन, लिपी-पुति भित्तियाँ हैं। दूसरे अंक में ये चित्र फीके पड़ जाते हैं। लिपाई उखड़ने लगती है। तीसरे अंक में वह बेहद टूटी और गिरी हालत में है। इस प्रकार वह मल्लिका की टूटी हालत के साथ-साथ टूटता रहता है। ऐसा अंक-विभाजन भी हिंदी-नाटक के लिए अपूर्व है, जहाँ क्रमश: मल्लिका और कालिदास की टूटन और नाटकीय तनाव बढ़ता जाए और हर अंक के साथ एक ऊँचाई पर पहुँच जाए।'[6] इससे स्पष्ट है कि अंकों में किस तरह परिवर्तन होता है। कुंभों का कम होना, बरतनों का कम होना, कपड़ों में पैबंद लगना और मानसिक टूटन के साथ-साथ आर्थिक अभावों का बढ़ जाना आदि का बोध दर्शकगण को स्पष्ट होता है।

'लहरों के राजहंस' नाटक की कथावस्तु ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की है। प्रस्तुत नाटक तीन अंकों में विभाजित है। नाटक का कथानक साधारणत: एक ही स्थान पर पूरा होता है। इतिहास में गौतम बुद्ध के सौतेले भाई नंद की पत्नी सुंदरी रूपवान और सुंदर थी। नंद उसके सौंदर्य पर मोहित होकर उसके इशारों से ही राज्य कर रहा था। एक दिन नदी के तट पर बुद्ध ने दीक्षा-समारोह का आयोजन किया था, ठीक उसी समय और दिन सुंदरी ने राजमहल में 'कामोत्सव' का आयोजन किया था। नंद दीक्षा-समारोह में जाना चाहता है और उसे अपने पत्नी का अनुराग भी खींच रहा है। 'नंद कभी सुंदरी के रंग में डूबता है तो कभी तथागत के व्यक्तित्व के आलोक-परलोक कल्पना में, जिस प्रकार लहरों पर तैरता राजहंस कभी स्थिर नहीं रह पाता, उसी प्रकार नंद भी भोग-विलास, राग-रंग और बौद्ध प्रभाव की तरंगों में अपने को स्थिर नहीं कर पाता।'[7] इससे स्पष्ट है कि नंद की स्थिति लहरों पर तैरनेवाले राजहंस की तरह होती है। इसीलिए प्रस्तुत नाटक का नाम 'लहरों के

राजहंस' रखा गया है। नाटक में दश्श्यबंध बौद्धकालीन कपिलवस्तु के राजकुमार नंद के भवन के सुंदरी का कक्ष है। नाटक का संपूर्ण दृश्यबंध इसी कक्ष पर घटित होता है। नाटक कुल मिलाकर तीन अंकों में विभाजित है। प्रस्तुत नाटक रात्रि के आरंभ से शुरू होकर अगली रात्रि में समाप्त होता है।

नाटक के प्रथम अंक में परदा सुंदरी के कक्ष में खुलता है। कक्ष में राजसी वैभव झलकता है। सामने से देखने पर पीछे दाईं ओर चबूतरा, बाइ ओर झूला तथा मत्स्याकार आसन हैं। आगे दाईं ओर मदिरा-कोष्ठ तथा बाईं ओर शृंगार का कोष्ठ हैं। पीछे और आगे अलग-अलग भागों में दो दीपाधार हैं। एक शिखर पर पुरुषमूर्ति, बाँहें फैली हुई हैं और दूसरे शिखर पर नारीमूर्ति बाँहें सिमटी हुई हैं। उसकी आँखें धरती की ओर झुकी हुई हैं। उद्यान का मार्ग बाईं ओर से है तो बाहर का मार्ग सामने से है। कक्ष के अन्य भागों में जाने का मार्ग दाईं ओर से है। साज-सज्जा से कामोत्सव का आयोजन झलकता है। कई कर्मचारी फूल सजाने में तो कोई कोष्ठों को व्यवस्थित करने तथा कोई मुद्राएँ अंकित करने में व्यस्त हैं।

नाटके के दूसरे अंक में वही कक्ष है, लेकिन रात का अंतिम पहर है। कक्ष में अस्तव्यस्तता आई है। सुंदरी झूले में सोई है। नंद अस्थिर भाव से कक्ष में टहल रहा है। चबूतरे का बिछावन अस्तव्यस्त है। झूले में बिछावन अस्त-व्यस्त है। दो-एक तकिए नीचे इधर-उधर पड़े हैं। चबूतरे पर तथा आसपास कुछ टूटी हुई फूल-मालाएँ बिखरी हैं। एक मदिरा-पात्र नीचे औंधा पड़ा है। लगता है, वहाँ की कई वस्तुएँ आवेश में इधर-उधर फेंकी गई हैं। एक वाक्य में कहें तो सुंदरी का पूरा कक्ष अस्तव्यस्त है।

नाटक के तीसरे अंक में कक्ष की मंचसज्जा सब-कुछ व्यवस्थित है। कक्ष में दीपाधारों के सभी दीपक जल रहे है। फिर भी कक्ष में सूनेपन का आभास होता है। कक्ष में कोई भी व्यक्ति नहीं है। सामने के द्वार बंद है। उद्यान की ओर सुंदरी और अलका बात करती हुई आती हैं। अब सुंदरी के बाल खुले हैं। वेश वही है, जो दूसरे अंक के अंत में था।

उपर्युक्त तीनों अंकों में एक ही कक्ष है, लेकिन अंक के परिवर्तन के साथ दृश्यबंध भी परिवर्तन होते हैं। दृश्य बंध में अधिक प्रतीकात्मकता दिखाई देती है। दीपाधार में पुरुष-स्त्री की मूरतें प्रतीकात्मक भाव से नंद और सुंदरी की मनोवैज्ञानिकता के ही द्योतक हैं। तीसरे अंक में मंचसज्जा व्यवस्थित होते हुए भी सूनापन है। वह नंद और सुंदरी के मन के सूनेपन को व्यक्त करता है। राकेश ने नाटक के माध्यम से नंद और सुंदरी के खंडित व्यक्तित्व को अभिव्यक्त किया है। नाटक के दृश्यबंध योजना के संबंध में डॉ॰ जयदेव तनेजा लिखते हैं–'नाटक का संपूर्ण दृश्य कार्यव्यापार सुंदरी के कक्ष में ही प्रस्तुत करके नाटककार ने एक ओर यदि वस्तुधर्मी यथार्थवादी ठोस दृश्यबंध को बदलने की प्रस्तुतकर्ता की व्यावहारिक कठिनाई और असुविधा को दूर कर दिया है तो दूसरी ओर नाटक के प्रभाव को तीव्र और अनवरत पैना बनाए रखने के लिए स्थान-अन्विति को भी बनाए रखा है।'[8] इससे स्पष्ट होता है कि नाटककार ने एक दृश्यबंध के माध्यम से तीनों अंकों का कार्यव्यापार व्यक्त किया है। नाटक के दृश्यबंध का विधान सिर्फ ऐतिहासिक परिवेश या सौंदर्यबोध का निर्वाह नहीं करता, बल्कि उसने नाट्य-अन्विति में उसका पूरा योग दिया है। दीपधार, झूला, मत्स्याकार आसन, मदिरा-कोष्ठ, शृंगार-कोष्ठ, चबूतरा, कामोत्सव आदि सभी नाट्य-स्थितियों और पात्रों के सूक्ष्म अभिनय को अभिव्यक्त करने में नाटक

सक्षम है।

'आधे-अधूरे' मोहन राकेश का तीसरा नाटक है। इस नाटक में आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार की कथा है। इसमें पति-पत्नी के आपसी तनाव, परिवार के सदस्यों की घुटन, बिखराव, तनाव में आधे-अधूरा जीवन जीते हैं। नाटक में एक अंक के बाद अंतराल विलल्प है। अंकों में विभाजन नहीं है। नाटक का पूरा रचना-तंत्र उसके दृश्यबंध के साथ जुड़ा है। नाटक का स्थान मध्यवित्तीय स्तर से ढहकर निम्न मध्यवित्तीय स्तर पर आया एक घर है। प्रस्तुत नाटक के दृश्यबंध योजना के संबंध में नेमिचंद्र जैन लिखते हैं–'सब रूपों में इस्तेमाल होनेवाला कमरा, जिसमें उस घर के व्यतीत स्तर के कई एक टूटते अवशेष-सोफा-सेट, डाइनिंग टेबल, कबर्ड और ड्रेसिंग टेबल आदि-किसी-न-किसी तरह अपने लिए जगह बनाए हैं। जो कुछ भी है, वह अपनी अपेक्षाओं के अनुसार न होकर कमरे की सीमाओं के अनुसार एक और ही अनुपात से है। एक चीज का दूसरी चीज से रिश्ता तात्कालिक सुविधा की माँग के कारण लगभग टूट चुका है। फिर भी लगता है कि वह सुविधा कई तरह की असुविधाओं में समझौता करके की गई है–बल्कि कुछ असुविधाओं में ही सुविधा खोजने की कोशिश की गई है। सामान में कहीं एक तिपाई, कहीं दो-एक मोढ़े, कहीं फटी-पुरानी किताबों का एक शेल्फ और कहीं पढ़ने की एक मेज-कुरसी भी है। गद्दे, परदे, मेजपोश और पलंगपोश अगर हैं, तो इस तरह घिसे, फटे या सिले हुए कि समझ में नहीं आता कि उनका न होना क्या होने से बेहतर नहीं था! तीन दरवाजे तीन तरफ से कमरे में झाँकते हैं। एक दरवाजा कमरे को पिछले अहाते से जोड़ता है, एक अंदर के कमरे से और एक बाहर की दुनिया से। बाहर का एक रस्ता अहाते से होकर भी है। रसोई में भी अहाते से होकर जाना होता है। परदा उठने पर सबसे पहले चाय पीने के बाद डाइनिंग टेबल पर छोड़ा गया। अधटूटा टी-सेट आलोकित होता है। फिर फटी किताबों और टूटी कुर्सियों आदि में से एक-एक। कुछ सेंकड बाद प्रकाश सोफे के उस भाग पर केंद्रित हो जाता है, जहाँ बैठा काले सूटवाला आदमी सिगार के कश खींच रहा है। उसके सामने रहते प्रकाश उसी तक सीमित रहता है, पर बीच-बीच में कभी यह कोना और कभी वह कोना साथ आलोकित हो उठाता है।'[9] इससे स्पष्ट होता है कि घर की चीजों में कोई क्रम नहीं दिखाई देता। इन चीजों की तरह घर के परिवार के विचारों में भी क्रम नहीं है। फटे परदे फिर सिले हुए तथा होकर भी न होने की स्थिति में हैं। महेंद्रनाथ और सावित्री के परिवार की भावनात्मक स्थिति, आर्थिक स्थिति, पुराने टूटे-फूटे फर्नीचर, बिखरी हुई चीजें, धूल-भरी फाइलें, बिखराव, आक्रोश आदि के माध्यम से महेंद्रनाथ के परिवार की दशा व्यक्त करने में दृश्यबंध-योजना सक्षम है।

अत: कह सकते हैं कि नाटककार ने उक्त नाटकों में दृश्यबंध का बखूबी प्रयोग किया है। दृश्यबंध नाटक की पृष्ठभूमि होती है, जिसके बीच में से अभिनेता या पात्र अभिनय करता है। प्रस्तुत नाटकों का दृश्यबंध केवल नाटकों के परिवेश को ही नहीं उजागर करता, बल्कि नाटक के मूल भावों को, समय, संदर्भों को, नाटककार की रंग-संकल्पना, निर्देशकीय संकल्पना को अभिव्यंजित करता है। राकेश के तीनों भी नाटकों में दृश्यबंध विधान प्रेक्षकों को आकर्षित करके नाटकीय परिवेश को जीवंत बनाने में सक्षम रहा है।

संदर्भ

1. आधुनिक नाटक का मसीहा मोहन राकेश, डॉ॰ गोविंद चातक, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, सं॰ 1975,

पृ॰ 164
2. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक, संपा॰ नेमिचंद्र जैन, राजपाल एंड संस, दिल्ली, सं॰ 2014, पृ॰ भूमिका से
3. आषाढ़ का एक दिन, मोहन राकेश, राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, सं॰ 2010, पृ॰ 7, 8
4. वही, पृ॰ 50, 51
5. वही, पृ॰ 87
6. हिंदी नाट्य : प्रयोग के संदर्भ, डॉ॰ सुषमा बेदी, पराग प्रकाशन, दिल्ली, सं॰ 1996, पृ॰ 160, 161
7. मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ॰ एस॰ घनानंद, जदली शर्मा, पृ॰ 108
8. मोहन राकेश : रंग-शिल्प और प्रदर्शन, डॉ॰ जयदेव तनेजा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 170
9. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक, संपा॰ नेमिचंद्र जैन, राजपाल एंड संस, दिल्ली, सं॰ 2014, पृ॰ 24

मो॰ 09922088035

 ISSN 0975-735X

जैनेंद्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक धरातल

यशपाल सिंह राठौड़
शोधार्थी, हिंदी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

हिंदी साहित्य जगत् में जैनेंद्रकुमार की पहचान मनोवैज्ञानिक कथाकार की है। उनके उपन्यासों में व्यक्ति के बाह्य संघर्ष की अपेक्षा अंत:संघर्ष का चित्रण है। उपन्यासकार व्यक्ति के अवचेतन तथा उपचेतन की परतें खोलने लगता है। इस दिशा में पश्चिमी विचारक फ्रायड, युंग, एडलर आदि ने जैनेंद्रकुमार के चिंतन को प्रभावित किया। जैनेंद्र ने व्यापक समाज को अपने उपन्यासों का विषय नहीं बनाया, अपितु व्यक्ति-मानस की शंकाओं, उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया है। उनके उपन्यासों में अधिकतर एक ही परिवार की कहानी होती है और वे शहर की गली और कोठरी की सभ्यता में ही सिमटकर व्यक्ति की मानसिक गहराइयों में प्रवेश करने की कोशिश करते हैं। इस दृष्टि से उन्होंने उपन्यास को सामाजिक यथार्थ ही नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक यथार्थ के क्षेत्र में प्रवेश करने की राह सुझाई। इसीलिए जैनेंद्र को हिंदी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का पुरस्कर्ता माना जाता है।

वस्तुत: हिंदी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों पर फ्रायड के यौनवाद का अधिक प्रभाव रहा है। इसी कारण इसमें दमित वासना व यौन कुंठाओं का अधिक चित्रण हुआ है। डॉ॰ जयकिशन शर्मा के अनुसार–'हिंदी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में सैक्स-संबंधी कुंठाओं व दमित वासनाओं का चित्रण अत्यंत मार्मिक एवं कहीं-कहीं नग्न रूप में हुआ है। इन ग्रंथियों के उद्‌घाटन एवं अवचेतन मन के निरूपण पर फ्रायड, एडलर आदि के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का स्पष्ट तथा गहन प्रभाव परिलक्षित होता है।'

जैनेंद्र के उपन्यासों में अंतर्मन के चित्रण का प्राधान्य है। उन्होंने 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी' आदि में स्त्री-पुरुष के प्रेम की समस्या का मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रण किया। जैनेंद्र मूलत: व्यक्ति-बोध के साहित्यकार हैं। उन्होंने प्रेमचंद की सामाजिक दुनिया से हटकर व्यक्ति-मन की भीतरी गहराइयों में झाँका है। उनका संपूर्ण कथासाहित्य व्यक्ति की व्यथा एवं आत्मपीड़न से पूरित है, क्योंकि उनका मानना है कि व्यक्ति ही वह आधारबिंदु है, जिस पर समस्त जीवन की भित्ति स्थापित है। डॉ॰ विजय कुलश्रेष्ठ के शब्दों में–'जैनेंद्र ने व्यक्तिवादी विचारों को प्रतिपादित करते हुए व्यक्ति के व्यक्तित्व की अपेक्षा उसकी वैयक्तिकता को महत्त्व दिया है और मनोविश्लेषण के आधार पर स्त्री-पुरुष की सत्ता के स्तर पर नवीन विचारों का प्रतिपादन किया है। पति-पत्नी संबंधों की तिर्यक् रेखाओं के मध्य जीवन की सक्रियता का सूक्ष्मता से विश्लेषण करते हुए उन्होंने यौन-संबंधों की स्वतंत्रता, पति-पत्नी के व्यक्तित्व एवं

तज्जन्य प्रेम की व्यापकता और पुरुष की अंगीकारिता तथा विवाह-संस्था के शैथिल्य के माध्यम से नारी का चित्रण ही व्यापक रूप से किया है।'[1] अर्थात् स्त्री-पुरुष के रूप में जैनेंद्र के उपन्यासों के पात्र जहाँ वैवाहिक या सामाजिक स्तर का निर्वाह करते दिखाई देते हैं, वहीं उनके संबंधों में कामाकर्षण, अतृप्त यौन-भावनाएँ, अंतर्द्वंद्व, आत्मपीड़न और परपीड़न जैसी मनोगत प्रवृत्तियाँ भी दिखाई पड़ती हैं। अत: कहा जा सकता है कि जैनेंद्र के उपन्यासों में कथ्य के अंतर्गत मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति प्रमुख है।

जैनेंद्र का प्रथम प्रौढ़ उपन्यास है 'सुनीता'। सुनीता की कथा को जैनेंद्र ने न केवल मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है, अपितु इसके माध्यम से अपने काम और प्रेम-संबंधी दर्शन को चरितार्थ किया है। इस उपन्यास के केंद्र में विवाह और प्रेम की समस्या है। इसके साथ घर की एकरसता की भी समस्या है। यह एकरसता किसी आर्थिक-सामाजिक कारण से उत्पन्न नहीं होती। इसका कारण है बँधा हुआ जीवन। तालाब के जल को जब निकास नहीं मिलता है तो उसमें सडांध आने लगती है। विवाह एक सामाजिक व्यवस्था है, जिसका अर्थ खो जाने पर फिर उसे वह अर्थ कभी नहीं मिलता, जो समाज ने दिया था। इस उपन्यास का पात्र हरिप्रसन्न काम-कुंठा से ग्रस्त है। क्रांति के नाम पर वह अपनी हिंसावृत्ति को तुष्ट करता है। यह हिंसावृत्ति उसकी आत्मरति का परिणाम है। इस उपन्यास में जैनेंद्र कामकुंठा से उत्पन्न हिंसावृत्ति को प्रेम से सिक्त कर अहिंसक बना देते हैं। उपन्यास में तीन पात्र हैं–सुनीता, श्रीकांत और हरिप्रसन्न। सुनीता और श्रीकांत पति-पत्नी हैं। हरिप्रसन्न श्रीकांत का मित्र है। श्रीकांत की प्रेरणा से सुनीता हरिप्रसन्न को संतुष्ट रखने की हरसंभव कोशिश करती है। हरिप्रसन्न सुनीता को समूची पा लेना चाहता है। सुनीता निरावरण हो जाती है। हरिप्रसन्न लज्जित हो जाता है। सुनीता के आत्मदान से वह काम-कुंठा से मुक्त हो जाता है। जैनेंद्र का कथन है–'भावना तो स्वस्थ वस्तु है। विकार बढ़ता है, तब वही वासना में रूपांतरित हो जाता है। विकार अधिकांश तब उत्पन्न होता है, जब भावना को राह नहीं मिलती और दब-घुटकर कुचली जाती है। तब वह आत्मरक्षण में उद्धत होती है। जिसको निरासक्त व्यक्ति कहें, उसके समक्ष वासना मानो खुलकर उसी तरह स्वस्थ होने का अवकाश पाती है, जैसे कोई सील और गंध से भरी जगह सूरज की धूप के आगे खुली रहने पर। धूप सील को सोख जाएगी, गंध को उड़ा देगी और अँधेरे को वहाँ से गायब कर देगी।'[2] अपनी इसी मान्यता को साकार करते हुए जैनेंद्र ने सुनीता के माध्यम से हरिप्रसन्न की वासना को, उसके अहं को और उसकी कुंठा को मिटाया है। उक्त कथा के माध्यम से जैनेंद्र ने काम और प्रेम के विषय में अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की कोशिश की है और इसमें काफी हद तक सफल होते भी दिखते हैं।

'त्यागपत्र' उपन्यास में मृणाल के अभिशप्त जीवन की कथा कही गई है। इसमें लेखक ने नारी के आत्मदान में ही उसकी मुक्ति के दर्शन का प्रतिपादन किया है। जैनेंद्र सत्य-असत्य की पूर्व निर्धारित कोटियों में विश्वास नहीं करते। उपन्यास वैवाहिक विडंबना पर आधारित है। विवाह का संबंध केवल दो ही व्यक्तियों से नहीं, पूरे समाज से है। इस विडंबना का शिकार है मृणाल। मृणाल को आर्यगृहिणी के ढाँचे में ढालने की कोशिश की गई। कड़े अनुशासन में रखा गया, किंतु उसके लिए ये सभी घेरे छोटे पड़ गए। 'त्यागपत्र' में एक व्यक्ति से प्रेम और दूसरे से विवाह मृणाल को अभिशप्त और निर्वासित बना देता है। अपनी सहेली शीला के भाई को वह प्रेम करती

है। इसके लिए उसे प्रताड़ित किया जाता है। इस प्रताड़ना से वह अंदर तक टूट जाती है। टूटने की इस जटिल मानसिक प्रक्रिया को जैनेंद्र ने कुछ प्रतीक संकेतों के द्वारा अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है–'वह मुझे अब उपदेश नहीं देती, बल्कि अपनी छाती से लगाकर जाने पार कहाँ देखने की कोशिश करती है। वह शाम के वक्त छत पर बैठी ऊपर उड़ती हुई चीलों को चुपचाप देख रही है। कभी पतंग के पेंच देखती है, और कटी हुई पतंग पर जब तक वह ओझल न हो जाए, आँखें गाड़े रहती है।'[3] जैनेंद्र जी इस पार की जटिलता पर गहरी रोशनी डालते हैं। पतंग की पेंच, चील, कीरम काँटे आदि उसकी उलझी हुई मनोवृत्तियों, विक्षोभ और गहन से गहनतर होती हुई व्यथा को प्रतीकित करते हैं।

शीला के भाई के प्रति रागदृष्टि मृणाल के पैरों की बेड़ी बन जाती है। वह किसी अन्य के साथ विवाह की लौह-शृंखला में जकड़ दी जाती है। एक दिन प्रणयी के प्रेमपत्र की चर्चा वह अपने अधेड़ पति से कर देती है। फलतः पति उसे घर से निकाल देता है। फिर वह अपने अभिजात समाज में नहीं लौटती। तथाकथित नीच समाज में रहना पसंद करती है, क्योंकि वहाँ सदाचार का आवरण नहीं है। जहाँ कहीं आश्रय मिलता है, वहीं टिक जाती है। वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकती रहती है। सभ्य समाज से निवार्सित होकर असभ्य लोगों के बीच रहती है जहाँ इंसानियत का निवास है। अंत में मृणाल की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु की इस लंबी प्रक्रिया से गुजरनेवाली बुआ को देखकर प्रमोद आहत है–'घटनाएँ होती हैं, होकर चली जाती हैं। हम जीते हैं और जीते-जीते एक रोज मर जाते हैं। जीना किस हौसले से आरंभ करते हैं, पर जीवन के इस किनारे आते-आते कैसी ऊब, कैसी उकताहट जी में भर जाती है। मैं इस लीला पर, इस प्रहेलिका पर सोचता रह जाता हूँ। कुछ पार नहीं मिलता, कुछ भेद नहीं पाता।'[4] यहाँ जैनेंद्र भारतीय दर्शन के लीलावाद पर पहुँच जाते हैं। लीलावाद कहीं ले नहीं जाता। लीला का कहीं भेद नहीं मिलता, पर जैनेंद्र का यह उपन्यास लीलावाद बन जाता है। मृणाल समुद्र में तैर रही है। दयाल किनारे खड़ा है। मृणाल किनारे लौट नहीं सकती और दयाल समुद्र में कूद नहीं सकता। इस रूपात्मक भाषा में जैनेंद्र मृणाल की आत्महत्या ही कराते हैं। ऐसी चरम कोटि की स्वतंत्रता की परिणति यही होती है। दयाल संन्यासी बन जाते हैं। 'त्यागपत्र' छायावादी वेदना की गद्य कृति है।

जैनेंद्र के 'कल्याणी' उपन्यास में परिस्थितियों के बंधन में जकड़ी हुई नारी का करुण क्रंदन सुनाई देता है। उपन्यास की मुख्य पात्र कल्याणी असरानी डॉक्टरनी है तथा उनके पति मिस्टर असरानी डॉक्टर हैं। कल्याणी का उदार मन रूढ़ियों के बंधन में न बँधकर खुले वातावरण में रहना चाहता है। डॉक्टर असरानी में रूढ़िवादी संस्कार बड़ी दृढ़ता से जड़ जमाए हुए हैं। वह चाहते हैं कि श्रीमती असरानी आदर्श गृहिणी बनें। कल्याणी स्वयं भी गृहलक्ष्मी बनकर रहना चाहती है, परंतु गृहस्थी की आर्थिक स्थिति उनसे परिश्रम की अपेक्षा करती है। उनकी समस्या है कि उनका विवाह और डॉक्टरी, पत्नीत्व एवं निजत्व परस्पर कैसे निभे! डॉक्टरी के सिलसिले में उन्हें अच्छे-बुरे सब प्रकार के लोगों के संपर्क में आना होता है। डॉ॰ असरानी पत्नी के प्रति बड़े सतर्क एवं संदेहशील रहते हैं। एक-दो बार कल्याणी पर दुश्चरित्रता का आरोप लगाकर उसे निर्दयतापूर्वक पीटते भी हैं, किंतु विवाह-बंधन की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए कल्याणी पति के निर्मम अत्याचार का प्रतिवाद न करती हुई मूक भाव से सब सहन कर लेती है। पति की इच्छा के सम्मुख अपने निजत्व को बरबस दबाए रखने के प्रयत्न ने उसके जीवन को अतिशय दुःखमय

बना दिया है। अपने जीवन के समस्त असंतोष, वेदना एवं संताप के लिए वह एक दिन सदा के लिए मूक हो जाती है। इस उपन्यास में जैनेंद्र आधुनिक नारी की समस्या को लेकर चले हैं। कल्याणी विलायत से डॉक्टरी पास करके आती है और पति के साथ रहकर डॉक्टरी करती है। उसके सम्मुख एक ओर विलायती वैभव-विलास और शिक्षा-संस्कृति की चकाचौंध है तो दूसरी ओर भारतीय गृहस्थी का प्राचीन आदर्श। इन दोनों विरोधी आदर्शों की विषमता के संघर्ष में पिसते हुए वह स्वयं समाप्त हो जाती है। कल्याणी के जीवन की समस्या उसके शब्दों में यूँ मिलती है– 'विवाह से पहले मैं खुद थी। विवाह बिना मैं रह सकती थी। मेरा बोझ मुझसे उठ सकता था। विवाह से स्त्री पत्नी बनती है। पत्नी यानी गृहिणी। पत्नी से पहले स्त्री कुछ नहीं होती, बस वह कन्या होती है। पर मैं कुछ थी। निरी कन्या न थी, डॉक्टर थी। अब सवाल है मेरी शादी और मेरी डॉक्टरी, मेरा पत्नीत्व और निजत्व ये परस्पर कैसे निभें?'[5] स्पष्ट है कि कल्याणी का व्यक्तित्व दुविधाग्रस्त है और उसका चरित्र अस्पष्ट है।

'सुखदा' जैनेंद्र का अगला महत्त्वपूर्ण उपन्यास है इसमें काम, प्रेम और परिवार को आधार बनाकर एक प्रकार से प्रेम की पीड़ा का दर्शन प्रतिपादित है। पति-पत्नी को प्रेम के बल पर पाना चाहता है। वह पत्नी के प्रेम को सहज भाव से लेता है। अपने को पीड़ित करता है, क्योंकि प्रेम की पीड़ा पवित्र है। इस उपन्यास में क्रांतिकारी जीवन को कथा का आधार बनाया गया है। सुखदा एक संपन्न घराने की लड़की है। उसका विवाह श्रीकांत से होता है, जो आर्थिक दृष्टि से हीन है। यह वैषम्य पति-पत्नी में कुछ दूरी उत्पन्न करता है। हरीश क्रांतिकारी है और श्रीकांत का मित्र है। सुखदा पति से हटकर क्रांतिकारी जीवन में आती है। उसका संपर्क हरीश से होता है। हरीश के ही स्थान पर उसे लाल मिलता है। लाल भी क्रांतिकारी है। लाल सुखदा में अनुरक्त हो जाता है। श्रीकांत समय-समय पर जो सहायता हरीश को देते हैं, वह सब लाल सुखदा को लौटा देता है। लाल के प्रति दल के लोगों की धारणा अच्छी नहीं है। उस पर सुखदा में आसक्त होने का आरोप लगाया जाता है। लाल विदेश जाना चाहते हैं। हरीश सुखदा को आदेश देते हैं कि वह लाल को अपने प्रेम-पाश में बाँधकर बचा ले, नहीं तो उसका प्राणदंड निश्चित है। लाल सुखदा को छोड़कर चला जाता है। हरीश दल भंग कर देता है। हरीश के आग्रह पर श्रीकांत उसे पुलिस के हवाले कर उसको पकड़वाने के निमित्त घोषित पाँच हजार का इनाम ले लेता है। पति के इस कार्य से सुखदा को ठेस पहुँचती है। वह अपनी माँ के साथ रहने लगती है और अंततः क्षयग्रस्त होकर अस्पताल पहुँच जाती है।

इस उपन्यास में जैनेंद्र ने प्रेम की चरम परिणति का भी दिग्दर्शन कराया है। उन्होंने अपनी साहित्यिक कृतियों में अहं को गलाया है आत्मपीड़न के द्वारा। दूसरे के लिए सहकर-गलकर, अपने को मिटाकर उनके पात्र जीवन की सार्थकता अनुभव करते हैं। यह आत्मपीड़न एक प्रकार का तप है। अहिंसा का दर्शन इसका समर्थन करता है। मनोविज्ञान से इसकी पुष्टि होती है और जैन दर्शन से इसे बल प्राप्त होता है। इसीलिए जैनेंद्र का जीवन (दर्शन) सत्य अनेक बिंदुओं और कोणों से जुड़ा हुआ है। किंतु अलग-अलग कोणों से देखने पर उसका मूल रूप अभेद की अंतिम निष्ठा-दृष्टि से ओझल हो जाता है और हम अवांतर संदर्भों में भटक जाते हैं। जैनेंद्र का यही दर्शन उनके अन्य उपन्यासों में किसी-न-किसी रूप में दृष्टिगत होता रहता है।

जैनेंद्र का अगला प्रसिद्ध उपन्यास है 'जयवर्द्धन'। इस उपन्यास में जैनेंद्र की कला अरूप की

प्रतिष्ठा करने में सार्थक हुई है। जयवर्द्धन में कथासूत्र दो स्तरों पर संचालित हुआ है–व्यक्तिगत व राजनीतिक। दोनों सूत्रों के केंद्र में इला है, जो आचार्य की कन्या है। स्वामी चिदानंद के आश्रम में उसका पालन हुआ है, यहीं जयवर्द्धन से उसका परिचय होता है। इला जयवर्द्धन के प्रति अनुराग रखती है। उपन्यास के पात्र अलग-अलग राजनीतिक विचारों के समर्थक हैं। जयवर्द्धन धर्म और नैतिकता के आधार पर राज्य का संचालन करता है और सत्ता का विरोधी है। वह सत्ता को व्यक्ति समाज के कल्याण का साधन मानता है। व्यक्ति के पूर्ण संस्कृत हो जाने पर सत्ता की आवश्यकता नहीं रहेगी, ऐसा उसका विश्वास है। इला और जयवर्द्धन साथ रहने लगते हैं। दोनों का संबंध चर्चा का विषय बन जाता है, क्योंकि पति-पत्नी की भाँति रहते हुए भी वे विवाहित नहीं हैं। इस संदर्भ को लेकर जयवर्द्धन का विरोध किया जाता है। आचार्य जय से इला के विवाह की अनुमति देते हैं। विवाह संपन्न हो जाता है, किंतु जय सत्ता से अलग हो जाता है। जैनेंद्र ने जयवर्द्धन के रूप में एक राजनेता के मन के अंर्द्वंद्व को मूर्त करने की कोशिश की है। वैयक्तिक धरातल पर राजसत्ता की आवश्यकता प्रमाणित करना लेखक का उद्देश्य रहा है। वह कहता है–'शासन कभी अपनी ओर से अपने को समाप्त करनेवाला नहीं है। समाज को नीचे से अपने को शासनमुक्त करते हुए उठाना होगा।'[6]

'मुक्तिबोध' जैनेंद्र का साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास है। इसमें एक मुक्तकामी राजनीतिक नेता के जीवन की करुण कहानी अंकित की गई है। जैनेंद्र की दार्शनिक प्रवृत्ति मुक्तिबोध के प्रश्न को लेकर समाधान ढूँढने में गहनतर होती गई है। मुक्ति का यह प्रश्न सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर सुलझाया जा सकता है या आत्मिक स्तर पर? लेखक का दुविधापूर्ण मनोमंथन कृति की महत्ता का आधार बन गया है। जैनेंद्र की यह कृति उनके चिंतन और सृजन के नए आयाम की साक्षी है। प्रेम और विवाह की समस्या यहाँ भी है। कथानायक सहाय के जीवन में पत्नी राजेश्वरी और प्रेयसी नीलिमा दोनों का महत्त्व है। पत्नी से उसे समर्पण, सेवा और वत्सलता मिलती है। प्रेयसी उसे प्रेरणा और स्फूर्ति देती है। लेखक ने पुरुष के जीवन में दोनों की स्थिति को महत्त्व दिया है तथा अपने आदर्शवादी दर्शन को आरोपित करते हुए दोनों के बीच के द्वंद्व को समाप्त कर दिया है। कथा के सूत्र यहाँ भी अविश्वसनीय और अवास्तविक हैं।

जैनेंद्र ने 'अनंतर' उपन्यास में स्त्री-पुरुष, हिंसा-अहिंसा, काम-ब्रह्मचर्य, बुद्धि-श्रद्धा आदि के द्वंद्व पर विचार किया है। इस उपन्यास का सबसे अबूझ पात्र अपराजिता है। वह विलायत में अपने व्यवसायी जीवन से ऊबकर और पति चार्ल्स को तलाक देकर आई है। यहाँ की पतिव्रता और स्त्री के प्रति उसके मन में आकर्षण है। लेकिन धर्मपत्नी का अर्थ उसके लिए पुरुष की पत्नी से आगे बढ़कर धर्म की पत्नी हो गया है। वह स्त्री के प्रति पुरुष के सच्चे प्यार को बहुत महत्त्व देती है, इसीलिए वह किसी एक में अपने को खो नहीं सकती। उसे लगता है कि सच्चे प्रेम का मार्ग कठिन है, जहाँ अहं का पूर्ण विसर्जन है। अपराजिता इसी मार्ग पर अग्रसर है। कथालेखक प्रसाद (प्रकारांतर से जैनेंद्र) प्रेम की व्याख्या करते हुए कहता है–'प्रेम सदा परीक्षा होता है। वह पुरुषार्थ है। वह तपश्चर्या है। उसमें अंत तक देना और सहना होता है। जीवन तक देना। बिना प्रतिदान देना ही देना।'[7] प्रसाद की पत्नी रामेश्वरी कहती है–'प्रेम तो खुद को तिल-तिल मारता रहता है।'[8] इस उपन्यास में भी जैनेंद्र ने मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में प्रेम के दर्शन को प्रतिपादित किया है।

जैनेंद्र ने 'अनाम स्वामी' उपन्यास में भी प्रेम और काम को कथा का आधार बनाया है। उपन्यास में प्रेम, विवाह, हिंसा, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि पर गहन विचार किया गया है। वसुंधरा के पति कुमार पक्षाघात से पीड़ित हैं। शंकर उपाध्याय उनके मित्र हैं। कुमार वसुंधरा को पूरी देखना चाहते हैं। स्वयं असमर्थ हैं। शंकर उपाध्याय वसुंधरा के पूर्व प्रेमी हैं। प्रेम में असफल होने के बाद सामाजिक क्रांति के अग्रदूत बन जाते हैं। वे समाज को रूढ़ियों से मुक्त करना चाहते हैं। कुमार की प्रेरणा से वसुंधरा उपाध्याय के पास पूर्णता प्राप्त करने के लिए जाती है, लेकिन उसका तिरस्कार होता है। वह कहती है–'मैं तुम्हारी नहीं हूँ। हाँ, पर उनकी खातिर जिनकी होकर आई हूँ। वह मुझे अधूरी रह गई देखना नहीं चाहते। पुरुष के योग से मुझे भरपूर पाना चाहते हैं। पर तुम पुरुष हो नहीं। फिर महापुरुष हो या कापुरुष पता नहीं।'[9] उपन्यास में शंकर उपाध्याय नैतिक मूल्यों को आरोपित एवं कृत्रिम माननेवाले एक विचारक के रूप में सामने आए हैं। अनामस्वामी के प्रतिरूप। उनके चरित्र में प्रेम की असफलता से उत्पन्न कुंठाजनित और अहंकारगर्भित निष्कामता है। वे सहज नहीं हैं। वे वसुंधरा को निरंतर पीड़ित करते रहते हैं और अंत में उसकी हत्या कर देते हैं। वसुंधरा के अनुसार उनकी तटस्थता और निष्कामता के मूल में उनका अहं है।

जैनेंद्र का अंतिम उपन्यास है 'दशार्क'। इसमें उन्होंने वेश्या के प्रश्न को उठाया है और उसका उत्तर भी अपने चिर-परिचित प्रेम के दर्शन के आधार पर देना चाहा है। उपन्यास की नायिका रंजना एक सुशिक्षित और संभ्रांत महिला है। पति की आय सीमित होने के कारण उसे लगता है कि वह अपनी पत्नी को उसके स्तर के अनुकूल सुविधाएँ प्रदान नहीं कर पा रहा। उसका खर्च पूरा करने के लिए वह जुआ खेलता है। धीरे-धीरे वह घर की सारी संपत्ति हार जाता है। दोनों में कटुता बढ़ जाती है। पत्नी 'सरस्वती' पति से मुक्त हो वेश्या के रूप में अवतरित होती है। रंजना सभी का रंजन करती है, किंतु अपने को बचाए रखकर। वह कहती है–'मैंने पाया तन से भी ज्यादा कुछ प्यास है, जो मन की है। प्यास की उस तरस को, जाड्य को कोई नहीं पूछता। वह तन की नहीं, उससे बड़े प्यार की प्यास है। मैंने उसे समझा और पाया कि उस प्यास में प्राणों के रोग का गहरा इलाज भी है।'[10] रंजना समाज की उसी प्यास को तृप्त करके अपनी सार्थकता अनुभव करती है। लेखक ने पहले भी यह अनुभव किया है कि समाज में नैतिकता और मर्यादा के आत्यंतिक आग्रह ने कामाचार को बढ़ावा ही दिया है। रंजना के पास सभी प्रकार के लोग आते हैं–स्मगलर, अधिकारी, पूँजीपति, व्यापारी, पत्रकार आदि। वह सभी को अपनी बौद्धिक तर्कशक्ति से पराभूत करती है। शरीर को अपना मूलधन मानती है। उसे सुरक्षित रखती है। लेखक ने अपने ढंग से फ्रायड और मार्क्स के चिंतन में संगति बैठाने की चेष्टा की है। लेकिन यह सब- कुछ धारणामूलक और अविश्वसनीय बन गया है। तन और मन के अलग-अलग स्तरों पर जीने का प्रयोग वास्तविक नहीं लगता। रंजना लेखक के बौद्धिक चिंतन का प्रतीक बन गई है। उपन्यास में हम जैनेंद्र को ही सर्वत्र लक्षित करते हैं।

कहा जा सकता है कि जैनेंद्र अपने उपन्यासों में जीवन की बाह्य वास्तविकताओं से अधिक पात्र के आंतरिक संघर्षों को मूर्त करते हैं। जैनेंद्र का प्रतीक-विधान मनोवैज्ञानिक है। प्रतीकात्मकता के कारण ही उनके उपन्यासों में रहस्यात्मकता आ गई है और इस क्रम में उपन्यास उनके मानसिक सत्य की अभिव्यक्ति के माध्यम बन गए हैं। जैनेंद्र की सबसे बड़ी दुर्बलता सहज विश्वसनीयता का अभाव है। उनके अधिकांश पात्र जीवन की वास्तविक स्थितियों से उत्पन्न नहीं

लगते। वे उनके अमूर्त चिंतन के प्रतीक बन गए प्रतीत होते हैं। शायद इसीलिए नंददुलारे वाजपेयी ने कहा है कि 'जैनेंद्र का रचनात्मक साहित्य एक रोमानी कल्पना का प्रयोग मात्र बनकर रह गया है।'[11] जैनेंद्र की अगर कोई त्रुटि है, तो केवल यह है कि वे अपने पात्रों को पहेली बनाकर छोड़ देते हैं और पाठक उस मनोवैज्ञानिक पहेली को सुलझाने की असफल कोशिश में उलझा रह जाता है। बहरहाल जैनेंद्र ने अपना जो दर्शन विकसित किया है, उसे सर्वोपरि प्रतिष्ठा देना चाहते हैं। जब कभी वे भौतिक विज्ञान, मार्क्सवाद या फ्रायडीय मनोविज्ञान की बात करते हैं तो लगता है उन्होंने कुछ अपनी धारणाएँ बना ली हैं और अपने दर्शन के अनुकूल उन्हें प्रस्तुत करते हैं। इसके बावजूद जैनेंद्र के अबूझ रहस्मय व्यक्तित्व ने उनके उपन्यासों को एक विशिष्ट भंगिमा प्रदान की है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

संदर्भ

1. जैनेंद्र के उपन्यासों की विवेचना, डॉ॰ विजय कुलश्रेष्ठ, पृ॰ 37
2. काम, प्रेम और परिवार, जैनेंद्रकुमार, जैनेंद्र रचनावली खंड 7, पृ॰ 46
3. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ॰ बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 381
4. वही, पृ॰ 382
5. कल्याणी, जैनेंद्रकुमार, जैनेंद्र रचनावली खंड 1, पृ॰ 420
6. हिंदी का गद्य साहित्य, डॉ॰ रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1955, पृ॰ 709
7. अनंतर, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 71
8. वही, पृ॰ 137
9. अनामस्वामी, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय सं॰ 1976, पृ॰ 154
10. दशार्क, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं॰ 1984, पृ॰ 180
11. हिंदी का गद्य साहित्य, डॉ॰ रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1955, पृ॰ 711

फ्लैट नं॰ 1115 **(प्रथम तल), ब्लॉक** 29
रंगोली गार्डन्स, वैशाली नगर
जयपुर (राज॰) 302034
मो॰ 9829424348

चरित्रों के सामाजिक संबंध एवं उनके स्वरूपों का विवेचन

(हजारीप्रसाद द्विवेदी के कथाचरित्रों के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ॰ मनमोहन शुक्ल (शोधनिर्देशक)
स्मिता पांडेय (शोधछात्रा हिंदी)
नें॰ग्रा॰भा॰ विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सृष्टि के विकास के प्रारंभ से ही मानवता का विकास नर-नारी संबंधों के आधार पर होता आया है। चाहे उसे पुरुष-प्रकृति कहा गया हो, चाहे ब्रह्ममाया कहा गया हो या शिवशक्ति कहा गया हो, किंतु यह सुनिश्चित है कि सृष्टि के विकास में दोनों का महत्त्व है। पुरुष और स्त्री दोनों ही समान रूप से आधारभूत भूमिका निभाते आए हैं। यही कारण है कि दोनों का संबंध अन्योन्याश्रित रहा है। व्यावहारिक जगत में उसी नियामिका का रूप स्त्री के रूप में और विराट नियामक पुरुष के रूप में इस सृष्टि संरचना के भागीदार बनते हैं और अपना भाग पूरा करते हैं। इन दोनों के मध्य जिन संयोग के माध्यम से संबंधों का सूत्रपात होता है वह मूलत: काम के रूप में अभिहित किया गया है। उस विराट के संबंध में उसी काम से मंडित श्रेय के फलस्वरूप विराट की इच्छा का परिणाम सृष्टि है।[1]

यह काम नर-नारी संबंधों का मूल, आदिम शक्ति तत्त्व के रूप में रहा है-'न शिवेन बिना देवी न देव्या च बिना शिव:' की उक्ति इसी मूल आदिमशक्ति को ही द्योतित करती है। व्यावहारिक जगत् में भी काम इनके संबंधों का सूत्रधार है और मनोवैज्ञानिक तथा जैविक दृष्टि से संबंधों को जोड़ने-तोड़ने और विभिन्न रूप देने में काम तत्त्व ही अपनी विविध भूमिका निभाता है। दांपत्य अथवा पारिवारिक संबंधों के अतिरिक्त प्रणय, वात्सल्य, संख्य, जातीय, आर्थिक मानसिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जितने भी प्रकार के नर-नारी संबंध समाज में बनते हैं, उनमें कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी भोग की लिप्सा अवश्य रहती है और इस भोग के प्रति आकृष्ट करनेवाली शक्ति काम है। इसलिए हमारे लिए आवश्यक है कि नर-नारी संबंधों की व्यावहारिक विवेचना से पूर्व इनके संबंधों के सूत्रधार काम तथा इसकी सूत्रधारिणी रति के संबंध में भी संक्षिप्त विवेचना आवश्यक है।

काम का स्वरूप ऋग्वेद में बह्मा के संकलन रूप में प्रतिष्ठित है जो आदिम शक्तितत्त्व के रूप में सृष्टि का विधाता भी है और समवादी कारण भी। इस दृष्टि से वह बह्म और जगत् दोनों से अभिन्न है-'कामस्तस्मे समवर्त्सताधि, मनसो रते: प्रथमं पदासीत्।'

इंद्र-संबंधी ऋग्वैदिक सूत्रों से स्पष्ट है कि इंद्र रूप में आत्मा का स्तवन किया गया है। काम आत्मा की शक्ति है। अत: इंद्र और काम परस्पर भक्ति एवं अनुगृहीत है। यह संबंध परवर्ती साहित्य में भी मान्य है। रस रूप पूर्ण इंद्रियाँ भी इंद्र की भोग्या अप्सराएँ हैं और इंद्रियों के

 ISSN 0975-735X

अधिष्ठाता देवों से ही सुरलोक निर्मित है। इंद्रियों के सम्मिलित दान से 'समुद्रभूत' रति सुंदरी का 'वरणीय' काम है। इंद्र के 'पंक्षतियों' वाले देवलोक के समस्त पुरुष सुखों एवं भोगों का अधिकारी काम ही है और केवल सम्राट पद के कारण इंद्र भोक्ता रूप में निर्दिष्ट है।[2]

उपनिषदों में काम को पुरुष रूप में भी निर्दिष्ट किया गया है। संकल और सुरक्षा रूप में भी।[4]

स आत्मा गनोस्य देवं वक्षु: स वा एव एवेन देवेन तक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते।[5]

ज्ञानेंद्रियों के समस्त निर्विकल्प और सविकल्प प्रत्यक्ष ही मधु है, जो काम चिरसखा बसंत के रूप में प्रसिद्ध है। यही 'मधु' वह सोमरस है, जो पंचक्षितियों के पंचश्रोतों से पंचगुणों के आवाहन से निरंतर इंद्रदेव को समर्पित होता रहता है। ऋग्वेद में मधु शब्द समस्त भोग पदार्थों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और उपनिषद् में सृष्टिपोषक अमृत तत्त्व के अर्थ में–

अमित्व पूर्व पीतये सृजामि सौम्यं मधु मरूदिभृग आद गहि
मधुवाता प्रतायते, मधुक्षरन्ति सिन्धव: मध्वीर्न: सन्त्वो सधी:
मधुनवत मृतोषसो, मधुमत् पार्थिव रज: मधु द्योरस्तु न: पिता।
युमान्ना वनस्पतिर्मर्थुया अस्तु सूर्य: माध्वीर्गावो भवन्तु न:।[6]

रति काम की देवी है, जिसका निर्देश 'वृहदारण्यकोपनिषद' में 'तस्य का तस्यदेवतेतिस्त्रिय:' रूप में हुआ है। रति मन के जगत की व्यवहारशील वृत्ति है। रति और काम प्रेमोपासना का वरदान पुत्र आनंद है। 'वृहदारण्यक' उपनिषद् में यह निर्दिष्ट है कि आत्म मन के द्वारा प्रस्तुत काव्य में मन पुत्र काम के द्वारा आनंद तत्त्व से पुत्र के रूप में जन्म लेता है।

मनसावै सम्राट स्त्रियभिहार्यते। तस्यां प्रतिरूप: पुत्रो जायते
समन्दो मनो पै सम्राट परम् ब्रह्म।[7]

आनंद अनंत सृष्टि विस्तार का प्रेरक और पोषक है। वह ब्रह्म ही रूप है और अखिल विश्व का आधार है। श्रेय और प्रेय दो भिन्न धाराओं का संगम-स्थल आनंद ही है। इन चरित्रों के अतिरिक्त दर्शन, छवि, मनकामना कल्पना, विलासिनी, वासना, भोग, घृणा, हिंसा, संशय, करूणा, मनीषा और ज्ञान का दर्शन की समस्त कल्पना आनंद में की गई है। रति का पिता प्रत्यक्ष अथवा दर्शन और माता प्रकृति काम मनसिज मन का पुत्र है जैसे उसका सखा बसंत है वैसे ही रति की सखि कामना या कल्पना है। वासना की सखी विलासिनी है तथा वासना रति की प्रतिद्वंद्वी है, जो रति की सफलता से खिन्न और क्षुब्ध होकर भोग का वरण करती है। ज्ञान काम के क्षेत्र का प्रतिपक्षी है।

काम को ज्ञान के दिग्विजय में मधुरतापूर्ण हीनता से दोनों में प्रसन्न समन्वय और रमणीय सहयोग स्थापित हुआ है। श्रेय आदि प्रणय आराधना उत्कृष्ट एवं परिपूर्ण जीवनदर्शन है जो लोक समाज और व्यक्ति के पूर्णविकास में चिरंतन प्रेरक सिद्ध होगा।[8]

व्यावहारिक दृष्टि नर-नारी संबंध की दृष्टि दांपत्य संबंध है, जहाँ से सृष्टि के विकास का श्रीगणेश होता है। दांपत्य के रूप में नर-नारी सृष्टि के विकास के जिस क्रम को आगे आते हैं उनके संबंधों का श्रीगणेश भी वहीं से हो जाता है। वास्तव में नर-नारी का परस्पर संबंध उतना ही प्राचीन और शाश्वत है जितना कि सृष्टि एवं स्रष्टा।

प्रकृति के बिना पुरुष पंगु है, शक्ति के बिना शव के समान है शिव। सृष्टि रचनेवाले स्रष्टा

ने बहुत-सी सृष्टि कर डाली, लेकिन कोई उत्साह नहीं, वृद्धि की आशा नहीं, नीरस नर कर ही क्या सकता है? सूखे आटे में जब तक जल न पड़े, सरस न हो, तब तक रोटी नहीं बन सकती है। सूखे आटे में तृप्ति न पाकर ब्रह्मा ने अपने-आपको कृतार्थ नहीं समझा। अंत में ब्रह्मा के दो रूप हो गए। एक अंग से नारी, दूसरे से नर। उनमें कोई अंतर नहीं था। छोटे-बड़े का भेदभाव नहीं था। किंतु जो नारी रूप हुआ—उसमें सुकुमारता, मादकता, मृदुलता, वशीकार्यता, सौंदर्य, सरसता तथा आकर्षण नर से अधिक हुआ। इसी गुण से सृष्टि-वृद्धि में स्फूर्ति आ गई। उसकी एकांतप्रियता नष्ट हो गई। उसे मैथुनधर्म में सरसता का अनुभव हुआ और सृष्टि की वृद्धि हुई। यदि नारी न होती तो सृष्टि का विकास संभव नहीं था।

इसप्रकार हम देखते हैं कि जीवन का मूल आधार प्रेम ही है। यह प्रेम संसार में पशु-पक्षी, जीव-जंतु, मानव-मानवेतर सभी प्राणियों में पाया जाता है और इनके विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं। समवयस्कों में यह मैत्रीभाव, गुरुजनों या महापुरुषों के प्रति श्रद्धाभाव तथा कहीं पुत्र-पुत्री, लघुभ्राता तथा अपने से छोटे के प्रति वात्सल्यभाव दिखाई देता है।

नर-नारी के विभिन्न संबंधों में दांपत्य संबंध एक ऐसा संबंध है, जो व्यक्ति के स्वयं के द्वारा और समाज के द्वारा स्वीकृत होता है। इस संबंध में प्रेम के अतिरिक्त यौन भावनाओं को प्राथमिकता दी गई है। प्रेम एक नैसर्गिक एवं सहजवृत्ति है। प्रेम के बिना मैथुन का कोई मूल्य नहीं। मुख्यत: उसे प्रेम के उद्देश्य से किया गया प्रयोग ही मानना चाहिए। यहाँ तक आकर प्रेम अहम् की कठोर प्राचीरों को गिरा देता है और दो आत्माएँ मिलकर एक में समाविष्ट हो जाती हैं। यहाँ आकर नर-नारी सामाजिक चेतना से ऊपर उठकर देवत्व की स्थिति में पहुँच जाते हैं यही उनके दांपत्य जीवन में पवित्रता की चरमस्थिति होती है।

उदात्त प्रेम के अंतर्गत कभी-कभी ऐसा लगने लगता है कि दांपत्य संबंधों में सामाजिक बाधाएँ मार्गावरोध कर रही हैं, किंतु जातीय संबंध इतना गुरुतर होता है कि बाह्य की अपेक्षा अंत: की ओर अधिक प्रवत्त हो जाता है। द्विवेदीजी के कथाचरित्र रानी चंद्रलेखा तथा महाराज सातवाहन के मिलन के पश्चात उनका विवाह पारस्परिक ढंग से होता है। धीर शर्मा के द्वारा विवाह संपन्न कराने के पश्चात चंद्रलेखा के सौंदर्य का चित्रण करते हुए कथाकार ने अपने कथानायक सातवाहन से दांपत्य संबंधों की बड़ी अच्छी विवेचना कराई है—'मेरा मन कहता है कि बाह्य सौंदर्य केवल आकस्मिक घटना नहीं है। वह परा-संवित स्वरूपा महामाया का विलास है, केवल जड़ प्रकृति का आकस्मिक संघटन मात्र नहीं है। इसमें अमंगल की आशा क्या हो सकती है? अमंगल कहीं अन्यत्र होना चाहिए। महनीय वस्तु का महनीय से सामंजस्य न होना अमंगल का द्योतक है। महनीय वस्तु यदि अपने-आपमें अमंगल को हेतु होगी तो मानना पड़ेगा कि यह दृश्यमान चराचर सृष्टि केवल जड़तत्त्वों का आकस्मिक संघटन मात्र है। उसके भीतर किसी प्रकार की चित्तशक्ति की सामंजस्य योजना नहीं है। मेरा अंतरतर तो नवनीत की भाँति गलकर रानी के अस्तित्व में समा जाना चाहता है, वह क्या केवल भोगेच्छा मात्र है? मेरे अंतर्यामी इसी कल्पना मात्र से विद्रोह कर उठते हैं। निश्चय ही मेरे अंतर में कहीं कोई एक बड़ा संबंध सूत्र है, जो रानी के दर्शन मात्र से ही चंचल हो उठा है।'[9]

इतना ही नहीं, लेखक आगे कहता है—'देवी मुझे अपना जन्म-जन्मांतर कृतार्थ जान पड़ता है। तुम्हारे सान्निध्य से मुझे इतनी तृप्ति मिल रही है जैसे कोई भीतर और बाहर सर्वत्र अमृतरस का

लेप कर रहा हो। मेरे वृद्ध पुरोहित, जो समस्त शास्त्रों के अविसंवादित पंडित हैं, आनंद से गद्‌गद् होकर आज कह रहे थे कि उन्होंने अस्सी वर्ष के जीवन में प्रथम बार बत्तीस लक्षणों से युक्त सौभाग्यवती पद्‌मिनी नारी को देखा है। वे मेरे भाग्य की सराहना कर रहे थे, परंतु साथ ही मेरे वृद्ध मंत्री विद्याधर के साथ वह सहमते थे कि मैंने कोई जोखिम उठाया है। संशय पर आरोहण कर रहा हूँ। मुझे ठीक समझ में नहीं आ रहा है कि तुम्हारी जैसी देवी को पाकर मैंने जोखिम कौन-सा उठाया।'[10]

लेखक की कथाचरित्र चंद्रलेखा अपने बेबाक शब्दों में बोली–'तुमने तो मेरी जाति-पाँति के बारे में संदेह नहीं किया। महाराज मैंने कहा 'तुम मुझे रानी बना लो' और तुमने बना लिया। नगर में आई तो न वृद्ध पुरोहित ने ही कुछ कहा, न मंत्री ने ही आपत्ति की। मैं शान से अंत:पुर में चली आई और तुम नौकर की तरह पीछे-पीछे हो लिए। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है? है तो आश्चर्य की बात। तुम्हें घोड़े पर बैठाने के समय मन में कई प्रकार विचार आए। मुझे अधिक आश्चर्य तब हुआ, जब लगा कि राजधानी के लोग पहले से इसके लिए तैयार थे। सबने मायाविभूत की भाँति मेरा स्वागत किया।'

रानी फिर हँसने लगी और बोली जहाँ संदेह करना चाहिए, वहाँ लोगों का संदेह न करना सचमुच आश्चर्य की बात है, परंतु मुझे बिल्कुल आश्चर्य नहीं है। मैं जानती थी कि अब तक मेरे जितने जन्म हुए सबमें तुम्हारी रानी थी, परंतु मैं यह भी जानती हूँ कि अगले जन्म में तुम मुझे रानी के रूप में नहीं पा सकोगे। यह क्या अद्‌भुत नहीं है। आश्चर्य की बात नहीं है महाराज? इसी तरह आश्चर्य से मेरी आँखें टँक गईं। यह तो मेरा रोम-रोम कहा रहा है कि चंद्रलेखा जन्म-जन्मांतर की मेरी हृदयेश्वरी है। ऐसा न होता तो मैं परवश की भाँति इस प्रकार का आचरण न कर बैठता।[11] ऐसे कथन दांपत्य संबंधों के विशिष्ट वाहक हैं।

इसी प्रकार औसस्ति जैसे चरित्र के द्वारा 'रैक्व' को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश की बड़ी अच्छी विवेचना कराई गई है–'जानता है सौम्य पितृऋण से मुक्त होने के लिए कुलीनजन विवाह करते हैं। विवाह के ही माध्यम से स्त्री और पुरुष पूर्णता प्राप्त करते हैं। संसार के सबसे बड़े लक्ष्य प्रेम की प्राप्ति करते हैं।'[12]

बाणभट्ट की निपुणिका की अभिव्यक्ति भी दांपत्य संबंधों की व्याख्या बड़े अच्छे ढंग से करती है–'निर्दय तुमने बहुत बार बताया था कि तुम नारी-देह को देवमंदिर के समान पवित्र मानते हो, पर एक बार भी तुमने समझा होता कि यह मंदिर हाड़मांस का है, ईंट-चूने का नहीं। जिस क्षण में अपना सर्वस्व लेकर इस आशा से तुम्हारी ओर बढ़ी थी कि तुम उसे स्वीकार कर लोगे, उसी समय तुमने मेरी आशा को धूलिसात कर दिया। उस दिन मुझे निश्चित विश्वास हो गया कि तुम जड़-पाषाण पिंड हो। तुम्हारे भीतर न देवता है, न पशु है, एक अडिग जड़ता। मैं इसीलिए वहाँ ठहर नहीं सकी। जीवन में मैंने उसके बाद बहुत दुख झेले हैं, पर उस क्षणभर के प्रत्याख्यान के समान कष्ट मुझे कभी नहीं हुआ। छह वर्षों तक इस कुटिल दुनिया में असहाय मारी-मारी फिरी और अब मेरा मोह भक्ति के रूप में बदल गया है। भट्ट तुम मेरे गुरु हो, तुमने मुझे स्त्री-धर्म सिखाया है। छह वर्ष कठोर अनुभवों के बल पर मैं कह सकती हूँ कि तुम्हारी जड़ता ही अच्छी थी। मैं अभागिन थी, जो तुम्हारा आश्रय छोड़कर चली आई।'[13]

द्विवेदीजी ने दांपत्य संबंधों के अतिरिक्त अपने कथाचरित्रों के अन्य सामाजिक संबंधों को

भी विभिन्न स्वरूपों में रूपायित किया है। सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से जातीय संबंध, प्रणय संबंध, वात्सल्य संबंध, सख्य संबंध आदि अनेक रूपों को कथाचरित्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। अनामदास का रैक्व प्रणय-संबंधों के कारण पीठ खुजलाता रहता है और इसके प्रति अनुरागिनी 'जाबाला' इसके भोलेपन पर ही मुग्ध है। वह कहती है 'हाय रे भोला, तू तो जानता ही नहीं कि केशों को मुलायम बनाने के लिए कितनी दासियाँ लगी रहती हैं, कितना तेल-उबटन खर्च होता है। कहीं तेरे बालों की भी ऐसी ही सेवा हुई होती तो क्या कम सुंदर या कमनीय होते। जाबाला के मन में एक विचित्र प्रकार की गुदगुदी अनुभूति हुई। अगर उसे अवसर मिलता तो उसका शरीर तप्त कांचन की भाँति लहक उठता। नाई बुलाकर उसके सुंदर-सुंदर मुख को चाँद की तरह चमका देती। तीन दिन के तेल-उबटन से वह दिव्य पुरुष की भाँति खिल उठता। मगर है हठी। नाई से ही झगड़ पड़ेगा। तेल-उबटन न लगानेवालों से तो लड़ ही पड़ेगा। सब तो वायु का खेल है, तुम कौन होते हो दखल देनेवाले! मगर जब वह गुस्सा होगा तो उसका भोला मुँह और भी कमनीय हो जाएगा।'[14]

'पुनर्नवा' के देवरात मंजुला के अनुराग से मुग्ध हैं ही, मंजुला भी अपने देवता की उपेक्षा न करके उसे अपने प्रणय रूप में व्यक्त कर देना चाहती है—मंजुला भहरा गई। वह इतनी जल्दी उपसंहार के लिए प्रस्तुत नहीं थी। वह बहुत सुनाना चाहती थी। उसे थोड़े में संतोष नहीं हो रहा था। हाय! उसके भीतर भी देवता—चिर-उपेक्षित, चिर-पिपासित, चिर-अपूजित! उसकी बड़ी-बड़ी आँखें धरती की ओर जो झुकीं, सो मानो चिपक ही गईं। वह दाहिने पैर के नाखून से धरती कुरेदती खड़ी रही। नानाभाव तरंगों के आघात-प्रत्याघात से वह जड़प्रतिमा की भाँति निश्चेष्ट हो गई। देवरात मुग्धभाव से उसकी मनोहारिणी शोभा को देखते रहे। वे भी चित्रलिखित से खड़े-के-खड़े रह गए।'[15]

सख्य संबंधों के लिए भी इनके चरित्र बड़ा अच्छा ताना-बाना बुनते हैं। सुमेर काका मृणाल मंजरी को समझाते हुए स्पष्ट कहते हैं कि बिटिया रानी तेरा काका पहेली नहीं बुझाता, कभी-कभी ठीक समाचार भी देता है। गुरु है तेरा बाप देवरात और चेला है तेरा सखा गोपाल आर्यक! वह जो गंगा के किनारे-किनारे लौंडो का दल चिल्लाता हुआ जा रहा है न, वह लहुरावीर की उपासना करनेवालों का दल है उसका नेता गोपाल आर्यक। सुना है, मथुरा के अमीरों ने नए देवता का संधान पाया है और वहाँ से अब यह नया देवता उत्तरापथ के हर घर में पहुँचता दिखाई दे रहा है। यहाँ यह गोपाल आर्यक है, जो लघुरावीर का सबसे बड़ा सेवक बना है। कहता फिरता है कि राजा अत्याचारी हो गया है, उसको ध्वस्त करने का आदेश लहुरावीर ने दिया है। नगरवासी अपनी कष्टकथा आर्यक को ही सुनाते हैं। आर्यक ने सैकड़ों युवकों की एक छोटी-मोटी सेना ही तैयार कर ली है। उसका दल नगर की गली-गली में घूमा है और उसने लोगों को अभय का आश्वासन दिया है। राजा ने अभी तक तो छेड़छाड़ नहीं की है, लेकिन बादल घुमड़ रहे हैं। कब बरस पड़ें, कहा नहीं जा सकता।'[16]

इसी प्रकार वात्सल्य संबंधों की विवेचना भी द्विवेदीजी ने अपने कथाचरित्रों के माध्यम से सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत की है। भोला रैक्व स्त्री पदार्थ समझकर जब वृद्धा माँ से मिलता है तो उसके भोलेपन पर औसस्ति की पत्नी का वात्सल्य उमड़ पड़ता है—'वृद्धा माता की आँखें डबडबा आईं—हाय! तुझे न माता का सुख मिला, न पिता का। अच्छा बेटा, तू यहीं रहकर जैसा चाहे चिंतन

मनन कर। माँ को छोड़कर कहीं मत जा। कल तिल के पत्ते लाकर तेरे केश साफ कर दूँगी। तेरे शरीर पर मैल भी जम गई है। इंगुदी तेल में थोड़ा सा जौ पीसकर उबटन बनाऊँगी और तुझे खुद नहवाऊँगी। हाय, सोने जैसा चेहरा कैसा हो गया है। यह तू बार-बार पीठ क्यूँ खुजला रहा है बेटा, वहाँ भी मैल जम गई होगी।'[17]

इसीप्रकार द्विवेदीजी के कथासाहित्य में इनकी चरित्र योजना निराली है। इनके कथाचरित्र आदर्श मानव से लेकर सामान्य आदमी तक की भूमिका निभाते हैं और नारी-चरित्र भी पूज्या से लेकर भोग्या तक की भूमिका में दिखाई पड़ती है। हाँ, इतना अवश्य है कि ये कथाचरित्र आचार्य द्विवेदी के भीतर संस्कारों में जुड़े हुए जीवनमूल्यों एवं सांस्कृतिक परंपराओं की विरासत के विपरीत कहीं भी जाते दिखाई नहीं पड़ते। द्विवेदीजी की चरित्र योजना की यही सबसे विशिष्ट उपलब्धि है और उनकी मौलिकता का पुष्ट प्रमाण भी।

संदर्भ

1. काममंगल से मंडित श्रेय सर्ग इच्छा का है परिणाम, कामायनी
2. अनंग, आमुख, चंद्रकार
3. वृहदारण्यकोपनिषद अ॰ 3, ख॰ 9, 11
4. छांदोग्योपनिषद अ॰ 3, ख॰ 14, 4
5. वही, अ॰ 5, ख॰ 14, 4
6. वही, अ॰ 5, ख॰ 14, 4
7. वृहदारण्यकोपनिषद अ॰ 4, ब्राह्मण 1-6
8. अनंग आमुख चंद्रकार
9. चारुचंद्रलेख, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ॰ 27
10. वही, पृ॰ 27-28
11. वही, पृ॰ 27-28
12. अनामदास का पोथा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ॰ 67
13. बाणभट्ट की आत्मकथा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ॰ 24
14. अनामदास का पोथा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ॰ 36
15. पुनर्नवा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ॰ 23
16. वही, पृ॰ 46
17. वही, पृ॰ 56

पत्नी श्री विजयप्रकाश पांडेय
ग्राम-अकरियापार, पोस्ट-जेठवारा
जिला-प्रतापगढ़ 230129
मो॰ 945390088

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य

डॉ॰ अभिलाषा शर्मा

मनुष्य सभ्य कहलाता है क्योंकि उसके पास ज्ञान का भंडार है और मन का चेतन। मन एक हिमशिला की भाँति है, जिसमें विभिन्न वेग-संवेग विद्यमान होते हैं, क्योंकि इनमें तथ्य और घटनाएँ बड़ी ही विचित्र परिवर्तनशील एवं जटिल प्रकृति की होती हैं। जब व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार किसी क्षेत्र में उतरता है तो वह उस क्षेत्र के किसी एक अंग में बँधकर नहीं रहता, क्योंकि उसकी जिज्ञासु प्रवृत्ति उसे आगे बढ़ने को प्रोत्साहित करती है।

'डॉ॰ गिरिराज शरण अग्रवाल व्यक्ति और साहित्य' शोध ग्रंथ है। डॉ॰ हरीशकुमार सिंह द्वारा लिखा गया है, जिसे हिंदी साहित्य निकेतन बिजनौर द्वारा सन् 2006 में प्रकाशित किया गया है। जिसका मूल्य 250 रु॰ है। 216 पृष्ठ की इस पुस्तक में डॉ॰ अग्रवाल द्वारा साहित्य की विविध विधाओं का लेखन किया गया है।

उन्होंने आगे यह स्वीकार किया है कि प्रस्तुत पुस्तक को यह रूप प्रदान करने का संपूर्ण श्रेय मेरे गुरु एवं शोधप्रबंध के निर्देशक डॉ॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व अध्यक्ष एवं आचार्य हिंदी अध्ययनशाला, उज्जैन को जाता है। प्रस्तुत शोधकार्य को शोधकर्ता हरीशकुमार सिंह ने नौ अध्यायों में विभक्त किया है।

डॉ॰ अग्रवाल का 14 जुलाई सन् 1944 ई॰ में उत्तरप्रदेश के मुरादाबाद जनपद में संभल नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम श्री रघुराजशरण अग्रवाल तथा माता जी श्रीमती कमला देवी हैं। बचपन से ही इनका झुकाव साहित्य की ओर था। इनके पिता आरंभ से ही खंडसारी का व्यवसाय किया करते थे, लेकिन अग्रवाल को अपने पैतृक व्यवसाय में कोई दिलचस्पी नहीं थी। विधाता ने उनके भाग्य में साहित्य क्षेत्र में कार्य करना लिख दिया था। डॉ॰ अग्रवाल के दो भाई हैं, जिनमें बड़े हरिराजशरण अग्रवाल, छोटे हंसराज अग्रवाल है। डॉ॰ अग्रवाल एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसने अपनी प्रतिभा और रचनात्मक कार्यों से अपने पूरे परिवार का नाम रोशन किया है, साथ ही आधुनिक हिंदी साहित्य में अपनी एक पहचान बनाई है। उनकी सहधर्मिणी डॉ॰ मीना अग्रवाल स्वयं भी अच्छी साहित्यकार हैं। कविसम्मलेन के माध्यम से गिरिराज को मीना मिलीं और फिर इस दंपती ने मिलजुलकर जीवन को खुशगवार बनाने के लिए संघर्ष छेड़ा, जो आज भी चल रहा है।[1]

शिक्षा के क्षेत्र में उनकी यात्रा किस दशा की तरफ बढ़ रही थी, यह यात्रा के पहले चरण में ही स्पष्ट होने लगा था।

डॉ॰ अग्रवाल के व्यक्तित्व में जितने भी गुण हैं, उनमें सबसे बड़ा गुण उनका निरंतर क्रियाशील रहना है। वे आरंभ से ही महनती रहे हैं। संघर्ष उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण विशेषता रही

 ISSN 0975-735X

है। संघर्षों से घबराकर बैठ जाना उनका स्वभाव नहीं रहा।

डॉ॰ अग्रवाल के व्यक्तित्व को समेट पाना इतना आसान नहीं है, क्योंकि वे एक उच्चकोटि के साहित्यकार, व्यंग्यकार, कहानीकार, तथा नाट्य शिल्पी भी हैं। कवि और ग़ज़लकार, सिद्धहस्त संपादक और प्रकाशक तथा समाजसेवी भी। इनका इतना फैला हुआ व्यक्तित्व जो हर क्षेत्र में अपना प्रभाव स्थापित कर रहा हो, समेट पाना असंभव है। निश्तर ख़ानक़ाही ने गिरिराज जी के संबंध में निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं–'गिरिराज कुल मिलाकर एक भले आदमी हैं। मैंने इस लेख के शुरू में कहा था कि उनका जीवन अधिकतम मामलों में गणित के हिसाब से चलता है। वे सहयोग दे दें लेकिन यह तय करके कि वे कितना सहयोग देने की स्थिति में हैं और लेनेवाला कितने सहयोग का अधिकारी है।'[1]

लेखक ने डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की रचनाओं का विवरण देते हुए उनका वर्गीकरण किया है। डॉ॰ अग्रवाल द्वारा लिखित एवं संपादित साहित्यिक पुस्तकों की संख्या 150 से अधिक है। साहित्य की प्रत्येक विधा पर डॉ॰ अग्रवाल ने लेखन किया है।

डॉ॰ हरीशकुमार सिंह ने लिखा है कि डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल स्वयं एक अच्छे ग़ज़लकार हैं तथा उन्होंने ग़ज़ल को ध्यान में रखकर ग़ज़ल के विभिन्न पहलुओं की समीक्षा करते हुए ग़ज़ल और उसके व्याकरण की रचना की है। प्रसिद्ध ग़ज़लकार दुष्यंतकुमार तथा अन्य कई ग़ज़लकारों पर समीक्षात्मक लेख इन पुस्तकों में हैं। ग़ज़ल के व्याकरण, ग़ज़ल की संरचना, ग़ज़ल के समास ग़ज़ल के प्रमुख प्रचलित छंद, ग़ज़ल की प्रमुख त्रुटियों एवं दोष तथा हिंदी ग़ज़ल के संबंध में विस्तार से चर्चा की गई है।

डॉ॰ अग्रवाल का मत है, ग़ज़ल जो कुछ भी हो, लेकिन वह गीत कदापि नहीं है। ग़ज़ल गीत की विधा से एकदम भिन्न और बिल्कुल अलग विधा है। अपनी बनावट और अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों पर इसकी समानता गीत से नहीं हैं।[2]

ग़ज़ल की कला संकेतों, उपमाओं और प्रतीकों के प्रयोग की कला है। इसमें एक शेर की दो पंक्तियों में कवि को अपना अनुभव और चिंतन प्रस्तुत करना होता है। वह भी इस रूप में कि शैली गद्यात्मक न हो जाए। तात्पर्य यह है कि बड़ी-से-बड़ी बात को कम से कम शब्दों में कहना, गागर में सागर भरना ग़ज़ल की पहली विशेषता होनी चाहिए। जिनका स्वभाव काव्यात्मक है वे आसानी से ग़ज़ल कह सकते हैं। इस तरह ग़ज़ल हिंदी-उर्दू भाषा की छंदबद्ध या तुकांत कविता है।[3]

ग़ज़ल में जो शब्द प्रयुक्त होते हैं, वे अपने अर्थों में शाब्दिक न होकर प्रतीकात्मक होते हैं। प्रतीकात्मक शब्दों का एक दुर्भाग्य यह है कि बार-बार प्रयोग किए जाने पर न केवल नीरस हो जाते हैं, अपितु अपना वास्तविक अर्थ खो बैठते हैं। उदाहरणत: उर्दू-ग़ज़ल के पहले शायर ने जब अपने किसी शेर में कफस शब्द का प्रयोग किया होगा तो उसका सीधा अभिप्राय किसी भी स्थिति में पिंजड़ा नही होगा। निश्चय ही उसने कफस कहकर किसी घुटन या कारावास की ओर इशारा किया होगा, जिसमें मानव-जीवन की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। कफस का यह शब्द बार-बार प्रयोग किए जाने पर अपना प्रतीकात्मक अर्थ खो बैठा और बादवाले शायरों के हाथों में पड़कर केवल पिंजड़े के शाब्दिक अर्थ में रूढ़ हो गया। इसके साथ ही पिंजड़े की तिल्लियाँ उसमें बंद पंछी को पकड़ कर बंद करनेवाला शिकारी, ये सब भी ग़ज़ल की शब्दावली में प्रविष्ट

हो गए। इस प्रकार ऐसा प्रतीकात्मक शब्द, जो मानव-जीवन की घुटन को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हुआ था, धीरे-धीरे निर्जीव होकर बाँस की तिल्लियों से बने पिंजड़े में सिमट गया और उसने कृत्रिम शब्दों की एक शृंखला भी अपने साथ बना ली। ग़ज़ल के दूसरे प्रतीकात्मक शब्दों के साथ भी यही हुआ। ग़ज़ल के पहले शेर को मतला कहते हैं। मतला का शाब्दिक अर्थ उदय होना है।[4]

'सन्नाटे में गूँज' ग़ज़ल-संग्रह में डॉ॰ अग्रवाल कहते हैं कि ग़ज़ल की कला संक्षेप में चिंतन, विचार तथा भावना के मिश्रण की कला है। अकेला चिंतन उसे खुरदरा और नीरस बना देता है। अकेला भाव उसे इकहरा, सतही और क्षणिक बना देता है। केवल विचार सामग्री उसे जीवन की वास्तविकता से अलग हटा देती है। इसलिए ग़ज़लकार का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह विचार को चिंतन में और चिंतन को भाव में इस प्रकार परिवर्तित करे कि इन्हें एक-दूसरे से अलग न किया जा सके, ये तीनों पिघलकर एकाकार हो जाएँ।

भारतेंदुजी हिंदी के प्रथम नाटककार हैं। ब्रजरत्नदास ने भारतेंदुजी के नाटकों के संबंध में लिखा है, उन विकासशील प्रवृत्तियों को तो देखा ही जा सकता है साथ ही राष्ट्रीयता और समाज सुधार का स्वर, भी सुनाई देता है। उनके नाटकों में रोचकता एवं प्रभावशीलता तो है साथ में कलात्मकता भी है।[5]

लेखक ने नाट्य साहित्य पर प्रकाश डाला है। हिंदी साहित्य में नाटक शब्द संस्कृत के रूपक और अँग्रेजी के ड्रामा शब्द का पर्यायवाची है और दोनों का एक सम्मिलित प्रभाव उत्पन्न करता है। मूलत: नाटक संस्कृत रूपक का एक भेद है और आज व्यापक अर्थ में सभी प्रकार के रूपक या दृश्य-काव्य के लिए प्रयुक्त होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में नाट्यकला का सर्वप्रथम विशद् विवेचन भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' नामक ग्रंथ में मिलता है। शास्त्रों और कलाओं की दृष्टि से नाटक का महत्त्व बहुत अधिक है। इसमें सभी कलाओं का समावेश हो जाता है। जैसे- चित्रकला, संगीत-कला, काव्य, इतिहास, समाजशास्त्र, वेशभूषा आदि। भारतीय आचार्यों ने काव्य के दो भेद किए हैं, श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य। श्रव्यकाव्य वह काव्य है, जिसका आनंद कानों से लिया जा सके और दृश्यकाव्य वह काव्य है, जिसका आनंद आँखों के माध्यम से लिया जा सके। दृश्यकाव्य के अंतर्गत ही नाटक आते हैं। काव्यकला में नाटक का प्रमुख स्थान माना जाता है। 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' की उक्ति यह सिद्ध करती है कि काव्य में रम्य व स्थायी प्रभाव डालने वाली यदि कोई विधा है तो वह नाटक ही है।

लेखक ने डॉ॰ अग्रवाल की कहानियों पर प्रकाश डाला है। आपकी कहानियाँ हिंदी कहानियों की परंपरा को आगे बढ़ाती हुई महसूस होती है। आधुनिक हिंदी कहानी के विकास के संबंध में श्री धनंजय वर्मा ने लिखा है, बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में पश्चिम के संपर्क में ही विकसित हुई आधुनिक कहानी ने लगभग एक शताब्दी की यात्रा संपन्न कर ली थी। उसके अनेक रूप और परिभाषाएँ बन और टूट चुकी थीं।'[6]

प्रसिद्ध कहानीकार प्रेमचंद्र के बाद हिंदी कहानी कई ऐतिहासिक मोड़ों से गुजरी है तथा कहानी से अकहानी पुन: कहानी और फिर प्रतीकात्मक कहानी के रूप में प्रचलित हुई। प्रेमचंद की रचना-प्रक्रिया और सृजनात्मक चेतना से प्रभावित होकर डॉ॰ अग्रवाल ने उसी धरातल पर नए प्रयोग किए हैं। प्रेमचंद ने जहाँ भारत के ग्राम्यजीवन को अपनी कहानियों का विषय बनाया था

वहीं डॉ॰ अग्रवाल ने शहरी जीवन की झाँकी अपनी कहानियों में प्रस्तुत की है। डॉ॰ अग्रवाल मानते हैं कि घटना के बिना कहानी का स्थापित होना संभव नहीं है। अर्थात् अगर कोई घटना नहीं है तो कहानी भी नहीं है। अत: डॉ॰ अग्रवाल ने नया प्रयोग करते हुए घटना-प्रधान कहानियाँ लिखी और प्रस्तुतीकरण तथा अभिव्यक्ति के अंदाज में ऐसा नयापन लाने का प्रयास किया कि उनकी कहानियाँ परंपरावादी कहानियों से अलग हो गई हैं।

लेखक ने डॉ॰ अग्रवाल के व्यंग्य-साहित्य का समीक्षात्मक विवेचन किया है। शोधकर्ता डॉ॰ हरीशकुमार सिंह ने अपने शोध में बताया है कि डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के तीन व्यंग्य-संग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं।

डॉ॰ शेरजंग गर्ग के मत से 'व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है, जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, करनी एवं कथनी के अंतरों की समीक्षा अथवा निंदा होते हुए गंभीर हो सकती है, निर्दयी लगते हुए दयालु हो सकती है, प्रहारात्मक होते हुए तटस्थ लग सकती है, मखौल लगती हुई बौद्धिक हो सकती है, अतिशयोक्ति एवं अतिरंजना का आभास देने के बावजूद पूर्णत सत्य हो सकती है।[7] व्यंग्य को लेकर अग्रज व्यंग्यकारों और व्यंग्य के समालोचकों ने व्यंग्य को परखने के कई मापदंड स्थापित किए हैं। व्यंग्य-रचना का कथ्य और प्रभाव व्यंग्यकार को लोकप्रिय बनाता है, क्योंकि ऐसी व्यंग्य-रचना, जो हमेशा पढ़ने पर ताजा और रुचिकर लगे, व्यंग्य को सार्थकता प्रदान करती है। स्पष्ट है कि यहाँ व्यंग्य के शाश्वत होने की बात हो रही है।

लेखक ने बताया है कि डॉ॰ अग्रवाल के व्यंग्य-लेखन की अपनी अलग भाषा एवं शैली है। सामान्य भाषा में विचारों की ऐसी बानगी डॉ॰ अग्रवाल की रचनाओं में है, जो उनके अनुभव, अध्यापन और दर्शनिकता का बोध कराए बिना नहीं रहती। कहते हैं कि बौद्धिक दृष्टि से परिपूर्ण लेखक ही व्यंग्य लिख सकता है। बौद्धिकता के अभाव में व्यंग्य निष्प्राण और निर्जीव हो जाता है। बौद्धिकता से ही व्यंग्य के लिए आवश्यक तार्किकता आती है। व्यंग्यकार का प्रमुख लक्ष्य व्यंग्य को गंभीरता प्रदान करते हुए अभिष्ट किंतु सटीक प्रहार करना होता है।

शैली की दृष्टि से व्यंग्य-लेखन का अपना अलग भाषिक संसार है। व्यंग्कारों ने विशिष्ट रचनात्मक लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए विभिन्न संरचनात्मक यात्राएँ की हैं। व्यंग्य-भाषा की गत्यात्मक योजना द्वारा प्रविधियों के रुँधे आकाश को खोलने की बेचैनी हर व्यंग्यकार के भीतर रहती है। हिंदी की व्यंजना का संपूर्ण वितान रचनाकार के संकल्प और संप्रेषण की विलक्षणताओं पर आधृत है। व्यंग्य हर समय परिवेशगत अंतर्विरोधों एवं तेज हथियार की भूमिका में रहता है। व्यंग्यकार अपने समय की शोषित-भ्रमित जनता के दर्द का अभीष्ट उद्घोषक होता है। जैसा कि लूशुन ने एक जगह लिखा है—व्यंग्य का निशाना समाज है और जब-तक समाज बदल नहीं जाता, व्यंग्य कायम रहेगा। व्यंग्य के आलोचक डॉ॰ बालेंदुशेखर तिवारी के अनुसार सही भाषा को तलाशती हुई व्यंग्य-रुचि के भटकाव का समापन व्यंग्य-विधा की प्रतिष्ठा के बाद हुआ। व्यंग्य विधा में पहुँचकर जीवन प्रसंगों की साक्षी-तराशी हुई व्यंग्यभाषा ने पूरी अर्थवत्ता के साथ यथार्थ को पकड़ा है, उसे कहा नहीं जा सकता है।[8]

हिंदी के व्यंग्यकारों के पास उद्देश्य की स्पष्टता गंभीर मानसिकता और संप्रेषण की भंगिमा है। व्यंग्य की आत्मा को भाषा में पिरोकर डॉ॰ अग्रवाल ने कथ्य को तीखा बनाने के साथ-साथ

अभिव्यंजना द्वारा अपनी सर्जना को घुमावदार पगडंडियों पर चलने का उपक्रम किया है। अग्रवाल जी ने अपनी व्यंग्यभाषा के माध्यम से चुस्तबयानी की है तथा शब्दक्रम की विलक्षण सृष्टि के द्वारा अपनी व्यंग्यभाषा को नवीनता प्रदान की है। व्यंग्य-लेखन इस स्थिति का प्रमाण है कि दरअसल, सत्य को संप्रेषित करना पड़ता है उसे कहा नहीं जा सकता है द्य व्यंग्य केवल लिखे जाने के लिए नहीं लिखा जाता अपितु व्यंग्य करने के लिए लिखा जाता है।[9]

अर्थ और शब्द एक-दूसरे से स्वतंत्र नहीं रह सकते हैं, लेकिन साथ-साथ रहते हुए भी दोनों की अस्मिता स्वतंत्र है। व्यंग्यभाषा शब्दों के स्वीकृत व्यत्पत्तिमूलक अर्थ को अतिक्रमित कर नए व्यंग्यार्थ, अर्थ के भी अर्थ का निर्धारण करती है।[10]

लेखक ने डॉ॰ अग्रवाल के समीक्षात्मक साहित्य का अध्ययन एवं विश्लेषण किया है। अपनी विचार और पैनी दृष्टि से उन्होंने समीक्षात्मक साहित्य का भी सृजन किया है। समीक्षात्मक साहित्य के अंतर्गत उनकी तीन पुस्तकों, 'ग़ज़ल और उसका व्याकरण', 'हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम' एवं 'मानवाधिकार: दशा और दिशा' को अध्ययन का विषय बनाया है। डॉ॰ अग्रवाल ने हिंदी-पत्रकारिता पर भी पुस्तक लिखी है, जिसमें पत्रकारिता का इतिहास विस्तार से बताया है। भारत में पत्रकारिता का जन्म कैसे हुआ, इस पर प्रकाश डाला गया है। 'ग़ज़ल और उसका व्याकरण' पुस्तक में गजलबंदी, ग़ज़ल के व्याकरण, ग़ज़ल की संरचना पर समीक्षात्मक सामग्री है। 'मानवाधिकार दशा और दिशा' में मानवाधिकार के प्रारंरिभक चरण से लेकर मानवाधिकार की पड़ताल करते नजर आते हैं। मानवाधिकार की समस्या को इतिहास-पूर्व की पृष्ठभूमि से लेकर अब तक की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। मानवाधिकारों को लेकर डॉ॰ अग्रवाल की यह पुस्तक मानवाधिकार के संबंध में वर्तमान कानून, उपलब्ध न्याय आदि की समीक्षा करती है।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ऐसे साहित्यकार है, जिन्होंने साहित्य की विविध विधाओं में 125 से अधिक पुस्तकों के लेखन, संपादन और समीक्षा का श्रमसाध्य और कठिन कार्य किया है। हास्य, व्यंग्य, ग़ज़ल, गीत, कहानी, एकांकी बालसाहित्य और समालोचना में डॉ॰ अग्रवाल ने मौलिक लेखन किया है।

डॉ॰ अग्रवाल की दो पुस्तकों को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ का पुरस्कार वर्ष 1996 एवं 1997 में मिल चुका है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, भारत सरकार नई दिल्ली ने डॉ॰ अग्रवाल की पुस्तक 'मानवाधिकार दशा और दिशा' को प्रथम पुरस्कार वर्ष 1998 में प्रदान किया। डॉ॰ अग्रवाल की पुस्तक 'आओ अतीत में चलें' को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का सूर पुरस्कार वर्ष 2001 में प्रदान किया गया। डॉ॰ अग्रवाल ने ग़ज़ल-लेखन में ख्याति प्राप्त की है।

डॉ॰ अग्रवाल का व्यक्तित्व बहुआयामी है और कई नाट्यकृतियाँ इन्होंने हिंदी साहित्य को प्रदान की हैं। देशभर में अनेक साहित्यिक संस्थाओं ने आपका सम्मान किया है। डॉ॰ अग्रवाल ने गजल पर नौ पुस्तकें लिखी हैं। हिंदी ग़ज़ल के क्षेत्र में उनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है।

प्रबंधकार के द्वारा डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के संपूर्ण साहित्य का बड़ी गंभीरता एवं सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया गया है।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के व्यक्ति और साहित्य से जहाँ सभी जिज्ञासु परिचित होंगे, वहीं अन्य शोधार्थियों के लिए भी एक नया मार्ग प्रशस्त होना है। डॉ॰ अग्रवाल की विभिन्न साहित्यिक

विधाओं का अध्ययन एवं मीमांसा आधुनिक हिंदी साहित्य में उनके रचनात्मक योगदान को प्रकट करना है। डॉ॰ अग्रवाल की व्यंग्य की अपनी शैली है। वे किसी व्यंग्य-परंपरा से बँधे नहीं हैं।

शोधकर्ता का निष्कर्ष है कि डॉ॰ अग्रवाल का लेखन उनकी तटस्थता और आग्रहहीनता का परिचायक है, वहीं उनकी स्वतत्र चेतना का भी। यही स्वतंत्र चेतना अंदर के लेखन को मानव-जीवन की त्रासदियों, विसंगतियों और घटनाओं का मुक्त चित्रण करने को बाध्य करती है। डॉ॰ अग्रवाल की यही स्वतंत्र चेतना उन्हें किसी विचारधारा या वाद से बँधने नहीं देती। उपर्युक्त विश्लेषण डॉ॰ अग्रवाल के विविध रचना-साहित्य का है जिसमें उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

डॉ॰ हरीशकुमार सिंह द्वारा डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल : 'व्यक्ति और साहित्य' में उनके विविध आयामों, उनकी गंभीरता और सूक्ष्म दृष्टि से उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को सामने लाने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ

1. कैसे कैसे लोग मिले, निश्तर खानकाही, पृ॰ 70
2. ग़ज़ल और उसका व्याकरण, निश्तर खानखाही एवं डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ॰ 16
3. वही, पृ॰ 14
4. ग़ज़लें और ग़ज़लसराई, सं॰ भरतराज पृ॰ 17
5. भारतेंदु ग्रंथावली, ब्रजरत्नदास पृ॰ 740
6. आधुनिक हिंदी कहानी (भूमिका भाग) धनंजय वर्मा, पृ॰ 4
7. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य, डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ॰ 27, 28
8. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, हरिशंकर परसाई पृ॰ 14
9. व्यंग्य की शैली (लेख)डॉ॰ बालेंदुशेखर तिवारी पृ॰ 185 (व्यंग्य विधा और विविधा, डॉ॰ मधुसुदन पाटिल)
10. व्यंग्य भाषा की अर्थ संपदा (लेख) डॉ॰ बालेंदुशेखर तिवारी पृ॰ 193 (व्यंग्य विधा और विविधा, डॉ॰ मधुसुदन पाटिल)

एफ॰ 5/53, **एल॰आई॰जी॰**
ऋषिनगर, उज्जैन (म॰प्र॰)
मो॰ 9826666258

गीतांजलिश्री के उपन्यास और मानववादी तत्त्व

अनिता गोयल
व्याख्याता (हिंदी विभाग)
राजकीय डूँगर महाविद्यालय
बीकानेर (राजस्थान)

मानववाद एक जीवनदृष्टि है, जो मनुष्य की नैतिकता, समता, तर्क का समर्थन करती है। मानववाद अलौकिकता तथा अंधविश्वास को नकारती है। दर्शनशास्त्रा के अनुसार मनुष्य के मूल्यों और उनसे संबंधित पहलुओं का विश्लेषण करने तथा अलौकिक विचारपद्धतियों को हीन माननेवाली विचारधारा मानववादी विचारधारा है। मानववादी विचारधारा भारतीय तथा पाश्चात्य दृष्टि से अति प्राचीन दृष्टि है। भारतीय चार्वाक दर्शन में इसका प्रारंभिक रूप देखा जा सकता है। यूरोप में मानववाद पुनर्जागरण व ज्ञानोदय का परिणाम था।

नालंदा विशाल शब्द सागर के अनुसार

वह वाद या सिद्धांत जिसके द्वारा ऐसा समझा जाता है कि मध्ययुग से आधुनिक युग तक निरंतर मनुष्य का मानसिक विकास होता रहा है और होता रहेगा।'[1] अर्थात् मनुष्य की गतिशीलता व आशावादिता को लेकर चलनेवाली विचारणा मानववाद है।

ऑक्सफॉर्ड डिक्शनरी के अनुसार

एक दृष्टिकोण अथवा वैचारिक व्यवस्था, जिसका संबंध मानव से है, न कि दैवी अथवा अलौकिक पदार्थों से। मानववाद एक विश्वास तथा दृष्टिकोण है, जो सामान्य मानवीय आवश्यकताओं पर बल देता है। मानवीय समस्याओं के समाधान के लिए केवल तर्कसंगत समाधान तलाशता है और मानव को उत्तरदायी एवं प्रगतिशील बुद्धिजीवी मानता है।'[2]

नवलकिशोर लिखते हैं

'पश्चिमी यूरोप में मध्ययुग की समाप्ति के समय कला, साहित्य और चिंतन के क्षेत्रा में एक ऐसा विशाल परिवर्तनकारी आंदोलन स्थापित हुआ जिसे लगभग क्रांति ही कहा जा सकता है। साहित्य और बौद्धिक क्षेत्रों में इस आंदोलन को मानववाद की संज्ञा दी गई।'[3]

वस्तुतः दर्शन व साहित्य का संबंध बहुत प्राचीन है। मानववाद का केंद्र मनुष्य है, उसी प्रकार मानववादी साहित्य-दृष्टि का आधार मानवीय कल्याण और मानवीय सुख है। साहित्यकारों का एक वर्ग मनुष्य के प्रति तो दूसरा वर्ग अदृश्य सत्ता के प्रति आस्थाशील देखा जा सकता है। मनुष्य के प्रति आस्था रखनेवाला साहित्यकार ही मानववादी साहित्यकार है।

 ISSN 0975-735X

मानववाद की मान्यताएँ

मानववाद अपने भीतर कुछ दृढ़ मान्यताओं का आधार लेकर चलता है–

1. मानव और मानव के भविष्य के प्रति विश्वास।
2. मानवोपरिसत्ता और अपर जीवन के विचार की अस्वीकृति।
3. नियतिवाद और भाग्यवाद का विरोध।
4. व्यक्ति-मानव व व्यक्ति-समता का समर्थन।
5. मनुष्य की स्वतंत्रता का पक्षधर।
6. परिवर्तन के लिए शांतिपूर्ण ढंग का समर्थन।
7. रूढ़ मान्यताओं का विरोध, समकालीन संदर्भ में नए मानवमूल्यों की स्थापना।
8. भावों के निषेध को अनुचित मानना।
9. नैतिकता की अर्थ की अपेक्षा गहराई से ग्राह्यता।

संक्षेप में मानववाद की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके चिंतन के केंद्र में मानव है। मनुष्य के विकास में सहायक विचारों का समर्थक मानववाद मनुष्य के विकास की चिंता सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही करता है। सामाजिक उत्तरदायित्व से विहीन ऐकांतिक जीवन से उसका कोई सरोकार नहीं है।

मानव के अस्तित्व, उसकी स्वतंत्रता, उसकी समता का पक्ष रखने वाली गीतांजलिश्री एक दृढ़ मानववादी लेखिका के रूप में हमारे सामने आती हैं। उनका मानववाद एक अमूर्त विचार की अपेक्षा ठोस परिस्थितियों की उपज है। विषम परिस्थितियों के बीच जूझते, अपनी क्षमताओं का विकास करते इनके पात्रा कहीं परिस्थितियों, परिवेश से टकराते तो कहीं व्यक्तियों से टकराते हैं।

गीतांजलिश्री अपने कथासाहित्य के माध्यम से मानव में अपने विश्वास को व्यंजित करती हैं। मानव आज एक अदृश्य कारा में कैद है। लौकिक क्षेत्रों से दिखाई न देने पर भी बंधन की बेचैनी मानव के वजूद का अहम हिस्सा बन चुकी है। गीतांजलिश्री के पात्रा इस बंधन से मुक्त हो अपने अस्तित्व की पहचान के आकांक्षी हैं। 'खाली जगह' उपन्यास का प्रमुख पात्रा जो 18 वर्ष का होने तक भी अपनी पहचान के संकट से जूझ रहा है। पुनः उसी बम विस्फोट की जगह जाकर अपनी पहचान पा लेना चाहता है–

'कौन जाने, पर हैं तो वहीं के! जाऊँगा तो वहीं, मरा मन फिर भी बोला। शायद उस धरती से कोई जुड़ाव उठे।'[4]

इसी प्रकार 'माई' उपन्यास में माई का रज्जो के रूप में परिचय उस वजूद का परिचय है जो 'खोखल' से परे है। माई जो सबकी आज्ञाकारी है, कहा जाए वह सब मानती है, जिसका अपना कुछ नहीं, वह केवल एक खोखल है। वह माई भीतर से कितनी सशक्त है, इसका परिचय शायद उसकी बेटी सुनैना को भी नहीं था। सेवा, श्रद्धा, दृढ़ता से ओतप्रोत माई एक सशक्त मानवीय रूप का प्रतीक है।

मानव की शक्ति में विश्वास रखनेवाली गीतांजलिश्री भाग्यवाद व नियतिवाद की आड़ में अपने पात्राों को बेबस नहीं बनाती हैं। परिस्थितियों को स्वीकार करने के बावजूद भीतर की जिजीविषा इनके उपन्यासों में झलक पड़ती है। 'खाली जगह' उपन्यास में बमविस्फोट की घटना के बावजूद सुरक्षित बचा वह तीन वर्ष का बालक भी भाग्य या नियति को स्वीकार करने की

अपेक्षा कर्मशील पथ का अनुशरण कर अपनी पहचान को पाना चाहता है। इसी प्रकार 'माई' उपन्यास की 'माई' सामंती परिवेश से झुकी होने के बावजूद टूटी नहीं है। तभी तो कभी ढाल बनकर या कभी सीढ़ी बनकर बच्चों के लिए खड़ी रहती है। इसी प्रकार 'तिरोहित' उपन्यास की अंबिका और ललना पति की उपेक्षा को नियति मानकर आँसू बहाने नहीं बैठी रहती, अपितु दोनों मिलकर अपने लिए नई दुनिया बनाती हैं। 'हमारा शहर उस बरस' में भी दद्दू आततायी दंगाइयों के समक्ष हाथ-जोड़कर खड़े नहीं हो जाते, अपितु बुलंद आवाज में उनका प्रतिरोध करते हैं।

'मारो! मारो।' दद्दू की आँखों में खून है। जिनके कोई भगवान नहीं, वह और क्या कर सकते हैं–अपने शिक्षक को मार ही तो सकते हैं? क्या बचता है–'[5]

मानववाद समतामूलक समाज की स्थापना का पक्षधर है, ऐसा समाज जहाँ धर्म, जाति, रंग, धन व लिंग के आधार पर कोई भेदभाव न हो। 'हमारा शहर उस बरस' धार्मिक विभिन्नता के विरोध में खड़ा है। हनीफ व श्रुति का दांपत्य, हनीफ व शरद की दोस्ती, दद्दू का श्रुति व हनीफ के प्रति स्नेह धार्मिक समता का ही उदाहरण है। वहीं 'माई' उपन्यास में सुबोध के दोस्तों के प्रसंग में जातीय एकता की बात का संकेत देख सकते हैं। 'माई' उपन्यास लैंगिक समानता का भी समर्थन करता है। माई स्वयं अत्याचार सहन करती है, लेकिन अपने पुत्रा व पुत्राी को समान प्यार करती है, समान अवसर प्रदान करती है। ऐसा कृत्य समतावादी समाज की नींव का निर्माण करता है।

मानववादी साहित्यकार परिवर्तन का समर्थक होता है। यह समर्थन 'माई' उपन्यास में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। तीन पीढ़ियाँ, दादी-माई-सुनैना के माध्यम से परिवर्तन की यात्राा कहती है। दकियानूसी दादी से सुनैना तक का सफर परिवर्तन की गाथा है, जिसका आधार बनती है 'माई' परंतु माई इस परिवर्तन के लिए तीव्र विरोध या विद्रोह की अपेक्षा सतत दृढ़ता के मार्ग का अनुसरण करती है।

'वह कठपुतली थी, इतनों की डोरों पे फिरकते हम उसे देखते बड़े हुए। पर इतनों के खिंचने पर भी वह टुकड़ों में छितरी नहीं, साबुत रही और खिंचती रही, अपने संचालन की डोर खुद भी थामे। बस पीठ झुक गई।'[6]

गीतांजलिश्री न केवल शांतिपूर्ण परिवर्तन का समर्थन करती हैं बल्कि समाज की रूढ़िग्रस्त सड़ी-गली मान्यताओं पर भी अपने पात्राों के माध्यम में कटाक्ष करती हैं। 'माई' उपन्यास में लड़के-लड़की के बीच भेद करनेवाली मानसिकता देखी जा सकती है। रूढ़िग्रस्त समाज में दादी और बाबू तथा दादा की नजर में सुबोध का महत्त्व अधिक है। दादी तो लड़कों के लिए घी के लड्डू शब्द का प्रयोग करती है, जो यदि टेढ़ा भी है तो भी अच्छा। लेकिन तीसरी पीढ़ी का पुरुष अर्थात् सुबोध इस विचारधारा के विपरीत अपनी बहिन सुनैना को समान अधिकार और संरक्षण देता है। यह माई की परवरिश का ही नतीजा है। इसी प्रकार लड़कियों के पहनावे, उनके विवाह जैसी रूढ़ियों पर भी प्रहार किया गया है। 'माई' उपन्यास में सुबोध कहता है–

'आपकी देवी नंगी हो तो आपको कुछ नहीं होता। देवी है इसलिए नजर नहीं आता', सुबोध लगा रहा। उन कैलेंडरो का लक्ष्य कर रहा था, जिनमें लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा की भड़ाका तस्वीरें होतीं, कसे, झीने, कपड़े में तन झलकाती।

पर जब सुबोध बोला कि 'आप लोग अपनी सास के अत्याचार का बदला हर जवान लड़की

 ISSN 0975-735X

को नीचा दिखा के लेती हैं, खाली डब्बा हैं आप, जो डाल दें वही खड़ाखड़ा देती हैं', तो अचानक बुआ का चेहरा शुष्क हो गया।'[7]

'तिरोहित' उपन्यास में समाज की एकतरफा सोच पर आघात है। पति चाहे पत्नी की उपेक्षा करे किंतु पत्नी वही आदर्श है, जो पति की सेवा करे। लकवाग्रस्त ओमबाबू के प्रति उपेक्षाभाव रखकर अंबिका इस खोखली रूढ़ि का तिरस्कार करती है।

मानववादी साहित्य ईश्वर व धर्म के सम्बंध में अपनी निजी मान्यताएँ रखता है। मानव धर्म के समक्ष अदृश्य धर्म की अवहेलना करता है। माई उपन्यास में सुनैना के माध्यम से स्पष्ट कथन भी है–

'भगवान पीछे छूट गए, रीति-रिवाज धरे रह गए, पर यह अंश मुझसे कभी नहीं मरा, उसने मुझे पकड़े रखा और मैं उसे खुद में न चाहते हुए भी उसे निकालने के ख्याल से ही घबरा जाती।'[8]

इसी प्रकार 'हमारा शहर उस बरस' में भी सांप्रदायिक दंगों के बीच होनेवाले बिखराव, टकराव को व्यर्थ बताते हैं। वे कहते हैं मंदिर-मस्जिद जो मूर्त रूप हैं वे टूटते हैं, उनके टूटने से उनमे रहनेवाला ईश्वर या अल्लाह नही मरता अर्थात् मानवीयता नहीं मरती। दद्दू का चरित्रा कई स्थानों पर श्रेष्ठ मानवीय रूप में हमारे सामने आता है। धर्मांध भीड़ के समक्ष हनीफ की रक्षा के लिए खड़ा होना, धर्म के नाम पर की जा रही हिंसात्मक कार्यवाहियों के प्रति व्यंग्यात्मकता, श्रेष्ठ मूल्यों के प्रति आस्था उन्हें मानवीय पात्रा बनाती है। मानववादी विचारधारा नैतिकता को केवल शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से ग्रहण नहीं करती, अपितु वह गहराई से उसे पकड़ती है। नैतिकता वहाँ पात्रों का नेतृत्व करती है, कर्म की प्रेरणा देती है। 'हमारा शहर उस बरस' में दद्दू और बाबू पेंटर का चरित्रा, 'खाली जगह' उपन्यास में माँ का चरित्रा नैतिकता को गहराई से ग्रहण करने का उदाहरण हैं। अपने 18 वर्ष के बेटे को बमविस्फोट में खो चुकी 'खाली जगह' उपन्यास की माँ तीन साल के लावारिस बच्चे को अपने बच्चे की तरह पालती है। 'हमारा शहर उस बरस' में बाबू पेंटर शहर की भलाई के लिए अपने धर्म को आड़े नहीं आने देते।

एक तथ्य और है, जो गीतांजलिश्री को मानववाद का पक्षधर बनाता है। मानववादी साहित्यकार परिवर्तन का आकांक्षी होता है, लेकिन वह इसके लिए शांति का मार्ग अपनाता है। 'माई' उपन्यास इस तथ्य का विशिष्ट उदाहरण है। 'माई' स्वयं सामंतवादी सोच के पति, सास और ससुर के अत्याचार सहन करती है, परंतु अपनी बेटी को इस अत्याचार से मुक्त रखती है। उसे अपने बेटे के समान ही पढ़ने व बढ़ने का अवसर देती है। इस परिवर्तन के लिए माई किसी विद्रोह का मार्ग नहीं अपनाती, अपितु शांति से परिवर्तन करती है।

यथार्थ क्या है? सतह पर दिखाई देनेवाली वीभत्स नरसंहार, वैमनस्य, पशु-सुलभ वासनाएँ ही क्या यथार्थ हैं? या इन विकृतियों और वासनाओं से हजारों सालों से लड़ते हुए मानव की जिजीविषा, ऊपर उठने का उसका संघर्ष सत्य है। यह जिजीविषा और यह संघर्ष गीतांजलिश्री के मानवमूल्य समर्थक दृष्टिकोण का परिचायक है। सांप्रदायिक दंगे (हमारा शहर उस बरस), आंतकवाद (खाली जगह) जैसी घटनाएँ भी मानवीय मूल्यों को नष्ट नहीं कर पाईं। इन उपन्यासों के पात्रा दद्दू, बाबू पेंटर, श्रुति, माँ इत्यादि उन मूल्यों की मशाल थाम मार्ग प्रशस्त करते नजर आते हैं।

अंत में कह सकते हैं कि गीतांजलिश्री के उपन्यास मनुष्य के प्रति विश्वास को मजबूत बनाते हैं, वे मनुष्य के श्रेष्ठ भविष्य के प्रति आशान्वित है। मानव से इतर ईश्वरीय या सर्वोपरि सत्ता की अपेक्षा मनुष्य को अधिक महत्त्व देती हैं। मनुष्य की स्वतंत्रता समता की पक्षधर, नियति या भाग्य के भरोसे बैठे रहने की अपेक्षा कर्म की प्रेरणा देती है। मनुष्य में अतीव संभावना है, इस मत को स्पष्ट समर्थन करती गीतांजलिश्री एक मानववादी दृष्टि की स्थापना करती है।

संदर्भ

1. नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ॰ 1086
2. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, httpsèhim.wikipedia.org
3. नवलकिशोर, मानववाद और साहित्य, पृ॰ 36
4. गीतांजलिश्री, खाली जगह, पृ॰ 193
5. गीतांजलिश्री, हमारा शहर उस बरस, पृ॰ 349
6. गीतांजलिश्री, माई, पृ॰ 124
7. गीतांजलिश्री, माई, पृ॰ 132
8. गीतांजलिश्री, माई, पृ॰ 135

anitasolanki2000@gmail.com

ISSN 0975-735X

रीतिमुक्त कवि ठाकुर के काव्य में रसानुभूति

रामवीर, पूर्व शोधछात्र

काव्य का प्राणतत्त्व स्वीकार किया गया रस आनंद की परम अनुभूति है। इसे काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया है। 'काव्यानुभूति आनंदात्मिका है और ब्रह्मास्वाद सहोदरा है। जो निस्संदेह इंद्रिय संवेदनों की सीमा में नहीं आ सकती। भवभूति ने करुणरस को मूल रस मानकर और शेली ने करुणतम भावों को मधुरतम संगति कहकर कविता की जिस अनिर्वचनीयता की ओर संकेत किया है, वह भी काव्य की इसी दिशा की ओर जाता है। नाटक में करुण दृश्यों को देखकर या काव्य में दु:खपरक शोकगर्भित वर्णन पढ़कर हम जो हल्केपन या भारमुक्तता का अनुभव करते हैं, वह भाव-विरेचन का प्रभाव है। इस क्रिया द्वारा करुण दृश्यों का दर्शन या वर्णन हमारे हृदय से शोक और भय के भावों को निकाल देता है। इस प्रकार हम उनसे मुक्त होकर आनंदमयता या सत्य की अवस्था में उसी प्रकार पहुँचते हैं।'[1] मानव के द्वारा मन में भावना- शक्ति के द्वारा जिसका संभावन किया जाता है, वह भाव है। भावना-पथ का उल्लंघन कर जाने पर साहंकार हृदय में जब भाव का परम स्वाद लिया जाता है, तब वह रस कहलाता है। भाव की स्थिति में मानव अपार बुद्धिशाली होता है। उसकी बुद्धि भाव में मग्न रहती है। भाव को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती और भावन पर्यंत वहीं स्थिर रहती है। यह भाव भावना से ही संभव होता है। हृदय पर परिस्थितियों का जो प्रभाव पड़ता है, उसकी गहन अनुभूमि का नाम ही भाव है। जो विद्वान भाव को विचारों की या विचार को भाव की आधारभूमि समझते हैं, वे जीवन और जगत के शृंखला संबंध को दृष्टि से ओझल कर देते हैं। वस्तुत: जीवन जैसी परिस्थिति में पड़ता है, वैसी ही भाव या विचार की शृंखला में आबद्ध हो जाता है। बाहर की नानारूपता का भीतर की नानारूपता के साथ बिंब-प्रतिबिंब संबंध है। हमारे मन के विचारों और भावों की जो विविधता है, वह बाह्य परिस्थितियों की विविधता के समानांतर है। जहाँ इन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा वहीं भीतर या तो कोई विचार जाग्रत होगा, या भाव। कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं, जो मानव को चिंतनशील या विचार-प्रधान बना देती हैं और कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं, जो उसके अंदर किसी भाव का जागरण करती हैं। अत: विचार और भाव मूलत: एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं और परिस्थितियों की उपज हैं। कवि लौकिक घटनाओं के वर्णन द्वारा अलौकिक भावधारा में अपने पाठक को वहाँ ले जाता है, फलत: पात्र पाठक के सामने से हट जाता है और केवल भाव हृदय के समक्ष रह जाता है। हमारी समझ में यह अलौकिकत्व यह देह रहित निराकार भाव ही पाठक को अलौकिक आनंद की ओर ले जाता है, अत: काव्यानुभूति भावानुभूति ही है। कविवर ठाकुर ने ठीक ही लिखा है–

मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अक्षर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ कथा हरिनाम की बात अनूठी बनाइ सुनावै।
ठाकुर सो कवि भावत मोहि जो राजसभा में बडप्पन पावै।
पंडित लोक प्रवीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त कहावै।[2]

उपर्युक्त संदर्भ में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का यह कथन द्रष्टव्य है कि 'कविता केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं। उसका उद्देश्य मन-हरण करना है। इसीलिए काव्य को मनोहर होना चाहिए। अनुभूति में बाहरी आकर्षण न भी हो तो भी वह हृदय खींच लेती है। अनुभूति हृदय से उठती है। हृदय को आकृष्ट करती है। उसके लिए किसी अन्य माध्यम की अपेक्षा नहीं। भंगिमा हृदय से प्रेरित भी हो सकती है और कवि से प्रेरित भी। हृदय से प्रेरित भंगिमा आकर्षक होती है, पर वह सीधे हृदय में नहीं पहुँचती। उसके लिए माध्यम की अपेक्षा होती है वह बुद्धि के नियम विधि निष्णात होना चाहिए। अनुभूति के लिए न कर्ता को उस शास्त्रविधि की विशेष आवश्यकता है और न ग्राहक को[3] मन के अनुरंजन का प्रयोजन चित्त-वृत्ति को रस-दशा की उस भाव-भूमि पर पहुँचाकर संलग्न रखना है, जहाँ काव्य के मूल भाव से प्रभावित होते समय पाठक या श्रोता की चित्तवृत्ति इधर-उधर न हो जाय। मनुष्य की चित्तवृत्ति इतनी व्याकरणात्मक है कि जब तक उस पर किसी प्रकार का मधुर प्रतिबंधन नहीं रखा जाय या उसके सामने कोई प्रलोभन या आकर्षण न रखा जाय, तब तक वह एक स्थिति में कुछ देर के लिए भी नहीं रह सकती। चित्त की ऐसी स्थिति में काव्य अपने सारे उद्देश्यों को लेकर मनोरंजन के पीछे-पीछे चलता है। उस समय पाठक या श्रोता की अपनी सत्ता काव्य के तथ्य से पृथक नहीं रहती, उसी में मिल जाती है। यदि काव्य का उद्देश्य शुद्ध मनोरंजन ही रहता, तो इसके लिए काव्य-जैसे दुर्लभ व्यापार को घसीटने की आवश्यतकता नहीं। किसी के बेढंगेपन पर हम हँसते हैं, थोड़ी देर के लिए उससे हमारा मनोरंजन हो जाता है, परंतु क्या वह बेढंगापन काव्य की समता पर सकता है। काव्य जैसे गंभीर विषय का उद्देश्य मनोरंजन जैसा हल्का विषय नहीं हो सकता। मनोरंजन को हल्का कहने से हमारा तात्पर्य यही है कि उसका कोई उससे भिन्न उद्देश्य नहीं होता। हास्यरस में मनोरंजन की सत्ता बड़ी प्रत्यक्ष रहती है। इस मनोरंजन के अतिरिक्त पाठक या श्रोता के हृदय पर किसी और बात का भी संस्कार जमता है, जिसे वह उस समय मनोरंजन-मात्र ही समझकर रह जाता है और उसका हृदय एक अज्ञात दिशा की ओर बढ़ जाता है।' जिस प्रकार शारीरिक बल के लिए शारीरिक व्यायाम की आवश्यकता है, उसी प्रकार शक्ति के लिए भावों का व्यायाम अपेक्षित है। प्रत्येक अंग के विकास के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यायाम के ढंग निश्चित है। मानसिक शक्ति के विकास के लिए नाना प्रकार के भावों का विन्यास करना पड़ता है, जीवन में काव्य की सफलता का यही परिणाम है।'[4] रीतिमुक्त कवि ठाकुर ने अपने काव्य को प्रेम के आनंद या रस से परिपूर्ण माना है। उनका यह आनंद जीवन-अनुभवों का निचोड़ है, जिसमें वे पूरी तल्लीन हो जाते हैं। उनकी प्रेमकथा अकथनीय भी है–

यह प्रेमकथा कहिवे की नहीं कहवोई करौ कोउ मानवता है।
पुनि ऊपरी धीर धरायौ चहै तन रोग नहीं यह चाँनत है।
कहि ठाकुर जाँहि लगी कसके नहिं सोकस के उर आनत है।
बिन आपन पाँव बिबाई गए, कोउ पीर पराई न जानत है।[5]

 ISSN 0975-735X

उनके कृष्ण आनंद के भंडार और बहुत बड़े रसिया हैं। वह शृंगाररस के देवता हैं–

चाहे देखी चोजवारी आस देखी आनंद की,
रस देख्यो रसवारो जानी बड़ रसिया
तौन सब झूठी भई, एक ही अनूठी भई,
साँची भई एक मानी फासी लिए फसिया
ठाकुर कहत उपावानो या प्रभान्यौ गयो,
मान्यो गयो मंत्र सौ न सहूँ उमसिया
स्वाद ते न छाँड़यौ जादू टेढ़े ते न लीलि सके,
प्रीति भई मोहन की गुर भरी हँसिया।[6]

डॉ॰ मनोहरलाल गौड़ ने स्पष्ट किया है कि कवि ने रीतिकालीन काव्य-परंपरा में विकसित काव्यशैली के माध्यम से शृंगार का व्यापक आनंदमय स्वरूप प्रस्तुत किया है। इनके काव्य में 'प्रेम तथा अन्य भावों की वह साधारण अनुभूति है, जो व्यक्तिगत होकर सार्वजनीन है, जिसका हृदय में स्पंदन होना है और जो कवि-परंपरा की कृत्रिमताओं से उन्मुक्त है। स्वाभाविक है कि वह कवि की आपबीती सी लगती है। जिस प्रकार अनुभूति का सीधा-सादा सरल स्वरूप है, उसी प्रकार अकृत्रिम उसकी अभिव्यक्ति है। इसलिए सरलता और क्षिप्र संवेद्यता इनके पद्यों का सर्वोत्कृष्ट गुण है। सूखे ईंधन में जिस प्रकार अग्नि शीघ्र प्रविष्ट हो जाती है, उसी प्रकार कवि के भाव श्रोता को शीघ्र प्रभावित करते हैं। शब्दों की बाह्य सज्जा या अर्थ-संबंधी चमत्कार जनक वक्रता लाने की ओर कवि का ध्यान नहीं गया'[7] ठाकुर का मूल प्रतिपाद्य शृंगाररस है। इसके देवता श्रीकृष्ण की इन्होंने सदैव स्तुति की है। कृष्ण का प्रेम ही इनका आधार है–

देह मेरी छूटै पै न छूटै मोह मोहन सौं
खूटै गुर लोग टूटै सब ही सों रसुरी,
चाहो कहौ कुलटा कलंकनी कुनारि कहौ,
चाहौ कहो मानस है चाहौ कहौ वसु री।
ठाकुर कहत तो सो सीखहि सिखायौं कौन,
तै ही तो बिचारि कछू मेरा रह्यौ बसु री
नाम बस्यौ रसना मैं अंतर सरूप बस्यौ
आँखिन मैं छवि बसी कानन मैं बाँसुरी।[8]

इन्होंने 'सुहाग राधा रानी को'[9] और युगल प्रेम[10] का वर्णन करते हुए संयोगशृंगार के अत्यंत उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किए हैं–

राधिका स्याम लासै पलका पर का पर जाति कही छविहाल की,
आपने हाथ सौ भावती लै कर प्रीति सो आजुरी जोरी गुपाल की।
ठाकुर तापै धरो मुख बाल नै को बरनै उपमा बहि काल की,
पानन मैं तिय आनन यौ दियै चंद चढ़ो मनो कंडा की नालकी।[11]

कवि ने राधा के रूप में तत्कालीन नायिकाओं के सहज-सुंदर रूप का विवेचन किया है। छोटी नथुनी में बड़े मोती और बड़ी-बड़ी आँखे राधा के सौंदर्य की विशेषताएँ हैं–

येई है वृषभानुसुता जिनसो मनमोहन मोह करै है।

कामिन तौ उनसी नहिं दूसरि दामिन की दुति को निदरै है।
ठाकुर के हमही यह जानती के उनहू को जनाइ परै है।
छोटी नथूनी बड़े मुतिमान बड़ी आँखियान बड़ी सुघरै है।[12]

नेत्रों के माध्यम से विकसित अनुभूत राधा के उपर्युक्त स्वरूप का आनंद अलौकिक और अपार है। कवि ने इनके 'पूर्वराग'[13] का वर्णन किया है। आनंद के भंडार कृष्ण करुणानिधान[14] हैं। कवि ने राधा और कृष्ण का जो 'विरह'[15] वर्णन किया है, वह भी सभी प्रकार से विषादजनित आनंद के रस की वर्षा करने में समर्थ है। इसमें 'उद्धव प्रसंग'[16] विरह का सरोवर है। कवि ने लोकोक्तियों और मुहावरों के माध्यम से इस प्रसंग को और अधिक हृदयग्राही बना दिया है–

वे तो हुते गोप गोपी, हम हुती हो चुकी वा
सब वे महीप रानी कैसे हूजियत है।
उन ही दयो तो भोग, उनही वियोग दीनो,
उनही पठायो जोग, मान लीजियतु है।
ठाकुर कहत अवसर न संवाद कछू
उधौ सो वृथा ही वकवाद कीजियतु है।
ऐसी सुनै इतै कितै हेरती हौ मेरी वीर
जैसी चलै बात तैसी पीठि दीजियतु है।[17]

डॉ॰ चंद्रशेखर ने इस प्रकारण में बहुत ही सही प्रकार से टिप्पणी की है–'प्रेम-व्यंजनापरक लोकोक्तियों में उनका प्रणय-दर्शन तथा अंतर की, हूक और संभ्रांत सौंदर्य बीज अभिव्यक्ति पाते हैं। उनका प्रेम-चित्रण सदैव शालीन है। स्वच्छंद कवियों में वे मर्यादित स्वच्छंदतावादी कवि हैं। संभवत: इसी कारण उन्होंने अपनी प्रेमानुभूतियों के लिए कहावतपरक अप्रस्तुत योजनाओं का संचयन किया है, क्योंकि उनमें एक परंपरित और चिपरिचित विंब विद्यमान रहता है।'[18] उनका प्रयोगशील कवि यहाँ भी सतर्क रहा है। कहावतपरक अप्रस्तुतों के रूढ़ विंबों को भी इन्होंने बनाया और सँवारा है, उनके फीके पड़ रहे रंगों में नए रंग भरे हैं, रेखाएँ जोड़ी हैं तथा उन्हें नई अर्थवत्ता से सचेतन बनाया है। संदर्भ की अनुकूलता उनकी विशेषता है, जो कि प्रक्रिया की सहज पूर्णता का परिणाम है। अत: सृजन-प्रक्रिया की दृष्टि से वे पूरी तरह परिपक्व और प्रभावशाली हैं।

ठाकुर कवि ने नायिका की यौवन[19] 'छटा', 'रूपमाधुरी'[20], 'नेत्र'[21], इत्यादि का वर्णन करके शृंगाररस के विभिन्न आलंबन उद्दीपन तथा विभाव-अनुभाव आदि का सुंदर वर्णन किया है–

मरद मुछारे गभुवारे जौन होनहार,
तेउ झूमि-झूमि मतवारे से परे रहै।
कोउ घाट-बाट, कोऊ चौहट अथाइन में,
कोऊ पौर खोरिन मैं ऊसई धरे रहै।
लागत न दारू उपचार करि हारे वैद
ठाकुर कहत ऐसे हिय मैं अरे रहै।
एक दस सौ लौ सहस्र लौ कहा लौ कहौ,
आँखन के मारे केयो लाखन डरे रहै।[22]

 ISSN 0975-735X

कवि का 'परकीया'[23] वर्णन भी सहज और स्वाभाविक और तत्कालीन लोकसंस्कृति के अनुरूप है। भारतीय संस्कृति में परकीया कहीं-न-कहीं हीनता की मनोग्रंथि से प्रभावित होती है। उसे अपने किए का अफसोस भी होता है और उसका साहस विशेष उल्लेखनीय रहता है–

छोड़ि पतिव्रत प्रीति करी निबही नहिं स्रौन सुनी हम सोऊ।
मौन भए रहनेई परो सहनेईपरो जो कहे कुछु कोऊ।
साँची भई कहनावति वा कवि ठाकुर कान सुनी हती जोऊ।
माया मिली नहिं राम मिले, दुबिधा में गए सजनी सुनि दोऊ।[24]

भावों के उद्दीपन के संदर्भ में ठाकुर कवि द्वारा किया गया ऋतुवर्णन पर्याप्त मनोहर तथा हृदयग्राही प्रतीत होता है। उन्होंने 'बसंत'[25] और 'वर्षा'[26] ऋतु के साथ-साथ इनसे संबंधित उत्सवों का भी वर्णन किया है। बसंत वर्णन का एक उदाहरण देखिए–

पत्रबन बेलिन के किसलै कुसुम देख,
बन बन बाँग ये छबीले कवि छाबने।
कोकिला की कूक सुनि हूक होते कैसी देख,
ऐसे निसि-बासर सु कैसे के गँबावने।
ठाकुर कहत हिए बिसद विचारु देख,
ऐसे समय स्याम हू कौ नहिं तरसावने।[27]

वर्षाऋतु के वर्णनों में कवि का बिंब-विधान और चित्रात्मकता देखते ही बनती है–

देखि तमासो दिसा बिदिसा बिरही उर अंतर काँपति-सी है
के की पपीहन की बरबानी झिली झनकार को झाँपति-सी है।
ठाकुर ठाढ़ी मनोहर पास कहै बरबाल निसापति-सी है।
काम किसान की डोरी चली, चपला फिरै मेघन मापति-सी है।[28]

'होली'[29] बसंत ऋतु का प्रमुख उत्सव है। नायिका के संयोग और वियोग में इसकी विशेष चर्चा रहती है। ठाकुर ने इस उत्सव का संयोग की स्थिति में वर्णन किया है। उनके नायक और नायिका की होली क्रीड़ा अत्यंत नयनाभिराम और मादक प्रतीत होती है–

फागुन के औसर अनोखे बनि बानिक है,
लीन्हे ग्वालवाल स्याम काग आइ जोरी है।
पाई सुधि डगरी नवेली राधिका के संग
रंग लै उमंग अंग-अंग बैस थोरी है।
ठाकुर कहत प्यारी स्याम तन हेरि-हेरि
मुरि मुसक्यात ठाढ़ी नवल किसोरी है
दौरी लै गुलाल ब्रजवाला चाट्यौ औरन है
होरी लाल होरी लाल होरी लाल, होरी है।[30]

'अखती'[31] या अक्षय तृतीया का उत्सव भी बसंत ऋतु के अंत में आता है। इसमें नायिका और नायिका के प्रेम का एक और रूप देखने को मिलता है। इसमें इक दूसरे को लौंद या मुलायम छड़ी से पीटा जाता है। वर्षा ऋतु में 'हिंडोला'[32] और 'कजली'[33] भी आते हैं। कवि ने नायिका के पूर्वराग के साथ-साथ उसके मानसंयुक्त स्वरूप का भी वर्णन किया है–

जाननी को पिय को मिलाप उर आन आन,
मानिनी न मान्यौ उपदेश काम गुर को।
चंचला चमकिवे के चावन भरी है खरी
मोरन को मन सुनि मोजन को मुरकौ।
ठाकुर कहत पौन परम प्रमोद् भरयो
सीतल सुगंध मंद तीनो भात ढुरको।
देख लौ असाढ़ की सुहाई साँझ मेरी बीर
आज आसमान मानों सेदुर सो भुरको।[34]

कवि ने नायिका के 'मान'[35] वर्णन में पर्याप्त कुशलता दिखाकर पाठकों रसमग्न करने प्रयास किया है। एक उदाहरण देखिए–

तन देखि, बन देखि भूषन बसन देखि,
पिय देखि त्यारो देखि बचन सहेली के।
रितु देखि, राति देखि, रोस देखि, रस देखि,
रीझि-रीझि देखि के ये समय सहेली के।
ठाकुर कहत कैसो मौन धरि बैठी आज
छोड़ि के सुभाय ये सकल अलबेली के।
चंद देखि, चाँदौ देखि, चाँदिनी बिछौना देखि
चाँद नीहि देखि-देखि चौसर चमेली के।[36]

कवि ने तुलसीदास जी की वाणी की विशेष प्रशंसा की हैं–

बेदमत सम्मत पुरानऊ पुरानन को,
संभु को बिलास इतिहास परसत हैं।
सोभामई सीलमई रीतिमई प्रीतिमई
नीति के प्रयानन प्रसिद्ध दरसत है।
ठाकुर कहत धन्य तुलसी तिहारी बानी,
अकह कहानी रस सानी सरसत है।
चंद-सी, चमेली-सी गिरा-सी गंगधर कैसी,
मघा मेघमई रामजस बरसत है।[37]

ठाकुर ने शांतरस के भी सुंदर वर्णन प्रस्तुत किए हैं। 'भक्त का उलाहना'[38] 'चेतावनी'[39] 'ईश्वर'[40] का कार्य विभाग, 'समर्थ'[41] स्वामी और 'बैराग्य'[42] नामक शीर्षक से विरचित छंद इस संदर्भ में अवलोकनीय हैं। एक उदाहरण देखिए–

छावन सुधा है सुधा विष को सवाद चाख्यौ
तप बेद भाख्यो अभिलाख्यो भेद जान्यो री।
छोभ छल छिद्र मैं लगावत को टोभ गोभ,
लोभ की लहर आए को न ललचान्यौ री।
ठाकुर कहत दुख सुख हीर पीन जानै,
जान्यौई परत यह अकह कहान्यौ री।

 ISSN 0975-735X

तन धन जीवन नगर बन गाँऊ सोऊ

आपनो सो अपना विरानो सो विरानो री।[43]

कवि ठाकुर ने अपने कवित्त और सवैयों में काव्यानंदस्वरूप रस की यथेष्ट वर्षा के द्वारा पंडित और प्रवीणों से इस संदर्भ में प्रशंसा प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है। उन्होनें शृंगाररस के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। परकीया नायिका के प्रेम का अत्यंत स्वाभाविक वर्णन किया है, जिसमें भारतीय संस्कृति के उच्च संस्कारों के 'माया मिली नहिं राम मिले' के द्वारा प्रायश्चित का भाव भी दृष्टिगोचर होता है। संयोग, शृंगार, शांतरस और वात्सल्य के उदाहरण भी उन्होंने यथासंभव कुशलता से प्रस्तुत किए हैं। विभिन्न उत्सवों तथा ऋतुवर्णनों में प्रवाहित आनंद की तरंगिणी इस दृष्टि से विशेष सराहनीय है।

संदर्भ

1. डॉ॰ मुंशीराम शर्मा, साहित्यशास्त्र, श्री भारत भारती प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली, सन् 1963, पृ॰ 81
2. ठाकुर ग्रंथावली संपादक चंद्रशेखर मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी संवत् 2030, छंद 6
3. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिंदी साहित्य का अतीत, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संवत् 2036, भाग 2 पृ॰ 301
4. डॉ॰ लक्ष्मीनारायण सुधांशु, जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत, ज्ञान प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पटना तृतीय संस्करण, पृ॰ 55
5. ठाकुर ग्रंथावली संपादक चंद्रशेखर मिश्र, छंद 53
6. वही, छंद 138
7. डॉ॰ मनोहरलाल गौड़, घनानंद और स्वच्छंद काव्यधारा, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, वि॰ संवत 2029, पृ॰ 267, 268,
8. ठाकुर ग्रंथावली संपादक चंद्रशेखर मिश्र, छंद 27
9. वही, छंद 9
10. वही, छंद 10,11,12,13,14,15,16,17
11. वही, छंद 18
12. वही, छंद 19
13. वही, छंद 20, 21, 22, 23, 24, 27
14. वही, छंद 28
15. वही, छंद 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37
16. वही, छंद 38, 39, 40, 41, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 50, 51, 52, 53, 54, 55, 56, 57, 58, 59, 60, 61, 62, 63, 64, 65, 66, 67, 68, 69, 70, 71
17. वही, छंद 47
18. डॉ॰ चंद्रशेखर, रीतिमुक्त कविता : मुक्त रचनाविधान, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली प्रथम संस्करण, पृ॰ 121–122
19. ठाकुर ग्रंथावली, संपादक चंद्रशेखर मिश्र, छंद 72
20. वही, छंद 73
21. वही, छंद 74, 75, 76, 77, 78, 79, 80, 81

22. वही, छंद 79
23. वही, छंद 83, 84, 85, 86, 87, 88, 89
24. वही, छंद 84
25. वही, छंद 90, 91, 92
26. वही, छंद 107, 108, 109, 110, 111, 112, 113, 114, 115, 116, 117, 118, 119, 120, 121
27. वही, छंद संख्या 91
28. वही, छंद संख्या 119
29. वही, छंद संख्या 93, 94, 95, 96, 97, 98, 99, 100, 101
30. वही, छंद संख्या 96
31. वही, छंद संख्या 102, 103, 104, 105, 106
32. वही, छंद संख्या 122
33. वही, छंद संख्या 123
34. वही, छंद संख्या 147
35. वही, छंद संख्या 148, 149, 150, 151, 152, 153, 154, 155, 156
36. वही, छंद संख्या 154
37. वही, छंद संख्या 199
38. वही, छंद संख्या 213
39. वही, छंद संख्या 214
40. वही, छंद संख्या 215
41. वही, छंद संख्या 217
42. वही, छंद संख्या 218
43. वही, छंद संख्या 219

टी-51 ए रेलवे नार्थ कालोनी
बरेली (उ०प्र०)
मो० 9411029855

 ISSN 0975-735X

'मोहनदास' दीर्घ कहानी में चित्रित आम आदमी का यथार्थ

शोधछात्र **कु॰ सविता सुरेश मोरे**
शोध निर्देशक **डॉ॰ पी॰व्ही॰ कोटमे**
हिंदी अनुसंधान केंद्र
के॰टी॰एच॰एम॰ महाविद्यालय, नाशिक

वर्तमान में 'आम आदमी' शब्द केंद्र में आ गया है। इसके पहले स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श आदि की चर्चा मीडिया तथा साहित्य में बहुत हो चुकी है। लेकिन इस उपभोक्तावादी, उपयोगितावादी संस्कृति, बाजार, व्यवहार आदि कई जगह 'आम आदमी' शब्द बड़ा ही चर्चित है।

मृदुल जोशी जी के अनुसार 'आम आदमी' दो शब्दों का संयुक्त प्रयोग है–'आम' और 'आदमी'। वस्तुतः हम 'आम आदमी' संबोधन को आंग्ल भाषा के 'ऑर्डिनेरी पर्सन' के समतुल्य रख सकते हैं, जिसका ध्वनितार्थ है–पद व स्तर से अविशिष्ट व्यक्ति, जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करनेवाला, निचले स्तर का साधारण, ग्राम्य या अशिष्ट व्यक्ति।"[1] अँग्रेजी के 'ऑर्डिनेरी' शब्द का हिंदी रूपांतरण–साधारण, मामूली, व्यावहारिक, आम, घटिया है।

इस तरह स्पष्ट है कि समाज का जो एक बड़ा हिस्सा अनेक समस्याओं से घिरा है, समान स्तर पर जीवन-यापन करता हुआ, समान दुःखों का भागीदार है, समान विषमताओं से जूझ रहा है, उस वर्ग के अंतर्गत परिगणित किया जा सकता है, जिसे हम 'आम आदमी' का वर्ग कह सकते हैं।

'आम आदमी' के संदर्भ में मृदुल जोशी आगे कहते हैं, 'आम आदमी सामाजिक वैषम्य की व्यवस्था से ग्रस्त और शोषित व्यक्ति है और प्रत्येक अवस्था में स्वयं को विवश पाता है। इस वैषम्य की दुरवस्था को बदलने की शक्ति उसके दुर्बल हाथों में नहीं है। यह वह व्यक्ति है, जिसके पास कोई शक्ति नहीं है, किंतु जो उन शक्तिमानों की शक्ति का माध्यम बना है, जो शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार के बल पर तिजोरियाँ भरते हैं।'[2] इस प्रकार हताश और जीवन-संघर्ष में अनवरत जूझते शोषित व्यक्ति को ही 'आम आदमी' कहा जा सकता है।

हिंदी साहित्य के चर्चित कहानीकार उदयप्रकाश जी ने 'मोहनदास' कहानी में 'आम आदमी' का यथार्थ प्रस्तुत किया है, जिसमें 'मोहनदास' 'आम आदमी' जीवित रहने के लिए भागदौड़ करनेवाला व्यक्ति है। अनवरत श्रम के पश्चात् ही उसे दो जून की रोटी मिलती है, जिसके सहारे वह जीवित रह सकता है। श्रम से जूझते रहने से उसके शरीर की खाल खपरैल

जैसी बन गई है, जिसे किसी भी मौसम के मार की चिंता नहीं है। जैसे–'गाँव में उसे कहीं ठहरकर बात करते, ताश खेलते, हँसी-ठिठोली करते या टी॰वी॰ देखते नहीं देखा। एक कोई लाचार और भयभीत जल्दबाजी है, जो उसे कहीं स्थिर रहने नहीं देती। मोहनदास के बारे में लोग कहते हैं कि वह हमेशा कोई न कोई काम पकड़कर रखता है, क्योंकि उसे पानी पीने के लिए हर रोज एक नया कुआँ खोदना पड़ता है और खाने के लिए हर रोज नई फसल पैदा करनी पड़ती है।'[3] इससे 'मोहनदास' की स्थिति का पता चलता है कि एक 'आम आदमी' जो पढ़ा लिखा होने के बावजूद अपने परिवार के लिए पेट भरने योग्य कमाई नहीं कर सकता। वह कितनी भी मेहनत-मजदूरी कर लें, किंतु उसके लिए वह काफी नहीं है। इसलिए उसे कोई पक्की सरकारी या प्राइवेट नौकरी की जरूरत है। जो आजकल बहुत कम युवकों के नसीब में होती है।

आज देश में सबसे बड़ी समस्या बेकारी की है। हम देख सकते हैं कि सरकारी तथा प्राइवेट सेक्टरों में ज्यादातर ऐसे लोगों को नौकरी मिलती है, जिसको किसी की सिफारिश मिली हो या वह किसी बड़े नेता या अधिकारी का रिश्तेदार, बेटा, दामाद आदि को नौकरियाँ मिलती हैं। एक आम इंसान धूल मात्र बनकर रह जाता है। आज का 'आम आदमी' घोर आर्थिक विपन्नता में जी रहा है। पूँजीवाद ने समाज में अनेक दोषों को जन्म दिया है। आज भी देश में बेकारी-बेरोजगारी की समस्या बढ़ती जा रही है। शिक्षित लोग रोजगार की तलाश में भटकने एवं अपना अस्तित्व तक समाप्त कर देने हेतु विवश हैं।

प्रस्तुत कहानी 'मोहनदास' में आम आदमी अपने अधिकार हासिल करने हेतु भ्रष्ट नेता, अधिकारियों और पूँजीवादियों के डर तथा जीतिभेद आदि से परेशान होकर यह कहने के लिए मजबूर हो गया है कि 'मैं आप लोगों के हाथ जोड़ता हूँ। मुझे किसी तरह बचा लीजिए। मैं किसी भी अदालत में चलकर हलफनामा देने के लिए तैयार हूँ कि मैं मोहनदास नहीं हूँ। मेरे बाप का नाम काबादास नहीं है। और वह मरा नहीं है, अभी जिंदा है। जिसे बनना हो बन जाए मोहनदास। मैं नहीं हूँ मोहनदास। मैंने कभी कहीं से बी॰ए॰ नहीं किया। कभी टॉप नहीं किया। मैं कभी किसी नौकरी के लायक नहीं रहा। बस मुझे चैन से जिंदा रहने दिया जाए।'[4] यह यथार्थ आज के नौकरी की तलाश करनेवाले बेरोजगार युवकों का है। उन्हें नौकरी तो दूर की बात ऊपर से ऐसे षड्यंत्र में फँसा दिया जाता है। एक ईमानदार आदमी उससे बाहर निकलने के लिए झूठ का सहारा लेता है।

मोहनदास वह 'आम आदमी' है, जो सिर्फ नाम और काम से ही नहीं, जाति से भी आम होने के कारण उसकी यह दयनीय स्थिति हो गई है। मोहनदास जैसे, निम्नजाति के लोगों के अधिकार उच्चजाति के लोग अपने मतलब के लिए इस्तेमाल करते हैं तथा निम्नजाति के लोगों का अस्तित्व भी छीनकर खुद अपना रास्ता बना लेते हैं। जैसे कि संविधान में जिन निम्न लोगों के लिए जो अधिकार बनाए हैं, उसका दुरुपयोग तो 'मोहनदास' कहानी के धोखेबाज तथा पूँजीपति बिसनाथ, जैसे लोग उठाते हुए नजर आते हैं। कई बार 'मोहनदास' जैसे लोगो को जो छोटी जाति के हैं, सरकार के उन भ्रष्ट नेता या अधिकारियों के कारण अपने हक से वंचित रहना पड़ता है। आज भी समाज में ऐसी स्थिति नजर आती है। जो अपनी मेहनत के दम पर पढ़- लिखकर आगे बढ़ते हैं और ईमानदारी से अपना कर्तव्य निभाना चाहते हैं, उन्हें भ्रष्ट सोच-विचार करनेवाले तथा जातीवाद निर्माण करनेवाले कुछ लोग अपने अधिकार से वंचित कर देते हैं। इन लोगों के दिमाग में यह बात नहीं बैठती कि जातिवाद सिर्फ एक मूर्खता है, जिससे सिर्फ एक विकृत स्थिति का

निर्माण होता है, जो एक इंसान-दूसरे इंसान के बीच लकीर पैदा करके एक दूसरे के प्रति घृणा निर्माणकर आपसी दुश्मनी बढ़ाते हैं। एक या दो इंसानों के कारण संपूर्ण व्यवस्था और समाज में जातिवाद जैसी खतरनाक व्यवस्था का उदय ही होता रहेगा।

इसलिए समस्त देश के लोगों में जातीय रिश्ता न रहकर सिर्फ मानवीयता और इंसानीयत का रिश्ता बने रहना जरूरी है। इसके लिए देश में, आपस में सब लोगों के बीच भाईचारा बढ़ना चाहिए। समाज में भिन्न-भिन्न जाति, परंपरा, रूढ़ि आदि का समावेश है। इन सबका बँटवारा करने वाला सिर्फ मनुष्य है, किंतु यह बँटवारा किसी भी एक समाज या जाति के लोगों का नहीं होता। ऐसा भी नहीं है कि कोई समाज या जाति ऐसी है, जहाँ सभी लोग धनाधीश या गरीब है। इसका एक कारण यह भी संभव है कि कुछ लोग खुद का विकास करने के लिए प्रयास ही न करना चाहते हों तथा दूसरा यह कारण है कि प्रयास करनेवाले लोग हर बार किसी-न-किसी कारण पीछे छूट जाते हैं। कितना भी परिश्रम या मेहनत कर लें किंतु उनके हाथों में सफलता नहीं आती। कुछ लोग 'मोहनदास' जैसे, अनवरत परिश्रम करने के पश्चात् सफलता तक पहुँचते-पहुँचते कुछ पूँजीपति या समाज के भ्रष्ट नेता या अधिकारियों के कारण अपना सब-कुछ खो बैठते हैं। उनके कठिन परिश्रम का फल उन्हें निराशा, गरीबी, लाचारी, दरिद्रता ही हाथ आती है। विवशताजन्य परिस्थितियों के समक्ष लाचारी से घुटने टेकने एवं भीतर ही भीतर कुंठित होने के अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं कर पाते हैं। असमानता को प्रोत्साहित करती भ्रष्ट व्यवस्था की दीवार जब तक इनके सामने बाधा बनकर खड़ी है, तब तक देश का विकास सही रूप में नहीं होगा। शिक्षित रोजगार काम की तलाश में भटकने एवं अपना अस्तित्व भी समाप्त कर देने को मजबूर होते रहेंगे। दूसरी ओर रिश्वतखोरी एवं भ्रष्टाचार के कारण निम्न मध्यवर्ग का शोषण बढ़ता ही जा रहा है।

इस प्रकार उदयप्रकाश जी ने 'मोहनदास' शीर्षक दीर्घ कहानी के माध्यम से 'आम आदमी' की करुण व्यथा को प्रस्तुत किया है। आज 'आम आदमी' किस तरह रात-दिन रोजी-रोटी के लिए चिंतित हैं। उसके आगे नोटबंदी, जीएसटी कोई मायने नहीं रखती। उसे सिर्फ पेट भरने के लिए काम चाहिए। यह व्यथा-कथा है देश के अशिक्षित, शिक्षित, उच्चशिक्षित आम आदमी की। अत: खाली हाथों को काम ही देश की समृद्धि, शांति का आधार है। यह माँग भारतीय 'आम आदमी' की है।

संदर्भ

1. समकालीन हिंदी कविता में आम आदमी, मृदुल जोशी, पृ॰ 16
2. वही, पृ॰ 18
3. मोहनदास, उदयप्रकाश, पृ॰ 8
4. वही, पृ॰ 85

मो॰ 9561685840

हिंदी नुक्कड़ नाटकों में चित्रित ग्रामीण-शहरी जीवन

शोध छात्र **जगदीश राजारामसिंग परदेशी**
शोध निर्देशक **डॉ॰पी॰व्ही॰ कोटमे**
हिंदी विभाग प्रमुख
के॰टी॰एच॰एम॰ महाविद्यालय, नाशिक

समाज विकास के आधार पर दो स्तरों में बँट जाता है–एक ग्रामीण समाज और दूसरा शहरी समाज। गाँव में रहनेवाले लोगों के संस्कार, रुचि, परंपरा तथा रहन-सहन में विशेष मेल होता है। उनकी दिनचर्या कई बार एक जैसी होती है, परंतु शहर में बसनेवाले लोग उनकी शिक्षा, व्यवसाय, रहन-सहन तथा बोलचाल में काफी अंतर होता है। कहा जाता है कि गाँव का विकसित रूप शहर होता है, लेकिन शहर की प्राथमिक जरूरतों को पूरा करानेवाला तो गाँव ही होता है। इस प्रकार दो संस्कृतियों के मेल से देश या राष्ट्र बनता है। इन दो स्तरों पर रहनेवाले लोगों के जीवन में सूक्ष्म अंतर है।

साहित्य में काल-विभाजन के आधार पर आधुनिककाल में ग्रामीण तथा शहरी जीवन का चित्रण अधिक हुआ है। वैसे, भारत को गाँवों का देश ही कहा जाता है। अँग्रेजों के आगमन तथा कल-कारखानों के विकास के साथ ही महानगरीय जीवन-शैली प्रारंभ हुई। उनसे पहले भारतीय समाज में ग्राम और नगरीय जीवन में सुविधाओं के रूप में अधिक अंतर नहीं था। अँग्रेजों द्वारा उनके देश की सुख-सुविधाएँ नगरों में आने से ग्राम-जीवन और शहरी-जीवन में अंतर आया। ग्राम जीवन और महानगरीय जीवन में जो भेद है, वह आजादी के बाद अधिक हुआ है और आज भी दिखाई दे रहा है। हिंदी साहित्य की विविध विधाओं ने ग्रामजीवन तथा महानगरीय जीवन को चित्रित किया गया है। हिंदी नुक्कड़ नाटक विधा ने भी ग्रामीण-शहरी जीवन पर, उनकी समस्याओं पर प्रकाश डाला है। ग्रामजीवन की पहली समस्या शिक्षा को लेकर है। अशिक्षा के कारण ही गाँवों में कई मुसीबतें निर्मित हुई हैं। एक ओर मानवीयता के दर्शन ग्रामजीवन में होते हैं, तो दूसरी ओर शोषण तथा निर्धनता को भी देखा जाता है। शहरों में एक ओर बेरोजगारी, जीवनसंघर्ष की समस्या है, तो दूसरी ओर शिक्षा तथा स्वास्थ्य संबंधित सुविधाएँ आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं। अर्थात् आज भी ग्रामजीवन की अपनी समस्याएँ हैं, तो दूसरी ओर महानगरों में रहनेवाले लोगों की अपनी समस्याएँ हैं। भारतीय समाज में व्याप्त मानवता, भाईचारा, शोषण, गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, बढ़ती आबादी आदि को हिंदी नुक्कड़ नाटककारों ने ग्राम तथा महानगरीय जीवन के माध्यम से उजागर किया है। वह इस प्रकार–

सन 1978, अलीगढ़ में हुए दंगों के बाद लिखा गया नुक्कड़ नाटक 'हत्यारे' में अलीगढ़ के हिंदू-मुसलमान लोगों की एकता को दुनिया के सामने रखने का प्रयास जननाट्य मंच ने किया

 ISSN 0975-735X

हैं–'इस शहर को आप जरूर पहचान लीजिए, यहाँ घर-घर में ताले बनते हैं, कहीं ढलाई होती है तो कहीं गढ़ाई, कहीं चाबी बनती है, कहीं टाँका लगाया जाता है। कुछ लोग तो सिर्फ तैयार माल पर नक्काशी ही करते हैं। इस काम में हर जात, हर मजहब का कारीगर लगा हुआ है। मसलन अगर ढलाई का काम सिर्फ मुसलमान करते हैं, तो गढ़ाई के तमाम माहिर हिंदू हैं। अलीगढ़ का ताला भी क्या खूब है इसकी शुरुआत बिस्मिल्लाह और आखिर राम-नाम से होती है।'[1] अर्थात अलीगढ़ के लोग अच्छी तरह समझते हैं कि एक-दूसरे के बिना कोई काम नहीं हो सकता। भारत में कई सारे गाँव और शहर अपनी संस्कृति को बचाए हुए हैं। आज भी गाँवों में एकता का भाव दिखाई देता है। नुक्कड़ नाटककारों ने इस एकता के साथ गाँव शहरों से जुड़े हुए कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों को भी उद्घाटित किया है। जैसे, आज गाँवों से शहर में कई सारे लोग आकर बस जाते हैं। इसलिए गाँव अब वीराने होते जा रहे हैं और शहर अधिक आबाद। अर्थात् इसकी पहली वजह यह है कि गाँवों में गरीब मेहनत करनेवाले मजदूर और कम पढ़-लिखे लोगों के पास कोई काम नहीं रहा है। दूसरी ओर बड़े शहरों का आकर्षण लोगों में दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। अधिक मजदूरी भी लोगों को शहरों की तरफ खींच लाती है। इसलिए उन लोगों में शहरों में जाकर छोटी-मोटी नौकरी तथा कोई भी मजदूरी कर अपना पेट पाल सकने की उम्मीद होती है। इसलिए लोग गावों से शहरों की ओर चले जाते हैं। 'मत बाँटो इंसान को' नुक्कड़ नाटक में गाँव से आए हुए तथा गाँव के साहूकार ने जिनका सब-कुछ लूट लिया है, ऐसे पति-पत्नी के संवादों को उजागर किया है–

औरत : हाँ, दो बार दस हो गए। पर अभी तो हम शहर में पहुँचे ही हैं और तुमने यह लेन-देन का हिसाब शुरू कर दिया।

आदमी : (हँसते हुए) चल पगली कहीं की, तेरे दिमाग से भी गाँव निकलेगा नहीं। अरे हम शहर में हैं और फिर मैं तो इस सामने वाली इमारत की मंजिलें गिन रहा था।

औरत : अब रहने भी दो। इतनी ही गिनती का हिसाब-किताब आता तो साहूकार के हाथों अपना घर-बार न लुटाना पड़ता और हमें शहर न आना पड़ता।'[2]

इस प्रकार शहर आने की भी वजह बताई जा सकती है। शहर आ जाने पर इन लोगों के सामने मजदूरी की समस्या आ जाती है तब वह रास्ते के किनारे या फिर शहर के बाहर, खाली जगह पर कहीं पर भी अपनी झुग्गी-झोपड़ियाँ लगा लेते हैं। इससे शहरों की जो आबादी बढ़ती है, उसमें बाहर से आनेवाले लोगों की संख्या अधिक होती है। जनसंख्या बढ़ जाने से शहरों में इन लोगों के रहन-सहन से लेकर मजदूरी तक की कई समस्याएँ भी निर्माण हो जाती हैं। अर्थात् ये लोग अपनी खेती-बाड़ी छोड़कर आते हैं, परंतु उन्हें इतना विश्वास है कि वह गाँव की तरह भूखे नहीं मरनेवाले हैं। लेकिन इससे पर्यावरण प्रदूषण, पानी, सड़क, स्वास्थ्य, निवास आदि कई समस्याएँ महानगरों में बढ़ रही हैं।

आदमी : हाँ, इतना सब-कुछ है यहाँ पर तो हमें सिर छुपाने को एक छत मिल ही जाएगी। मेहनत-मजूरी करेंगे तो भगवान सब-कुछ देगा। उसके घर देर है, लेकिन अंधेर नहीं।

औरत : हाँ यहाँ किसी चीज की कमी नहीं है। हर तरफ खुशहाली ही खुशहाली है।[3]

अर्थात् शहर की चकाचौंध को देख गाँव से शहर लोग आ तो जाते हैं, परंतु उनका जीवन बहुत सारी समस्याओं से भरा होता है। दिन-रात मेहनत भी करते हैं, लेकिन उन्हें कई सारे मजबूर हालातों से गुजरना पड़ता है। शहर की जिंदगी भी आम लोगों के लिए आसान नहीं होती है।

राजेशकुमार ने अपने नुक्कड़ नाटक के माध्यम से इस यथार्थ को अभिव्यक्त किया है कि शहरी जीवन की त्रासदी बड़ी भयानक होती है। आज भी कई सारे परिवार उसे भुगत रहे हैं। जैसे–

तीन : यहाँ सुबह भी हमारी नहीं है।

चार : सुबह होती है कि फैक्टरी का भोंपू बस्ती में शोर मचाने लगता है।

पाँच : हमें जगाकर, अपने बाल-बच्चों, पत्नी की गोद से छीनकर फैक्टरी में झोंक देता है।

तीन : जहाँ मौत हमेशा हमारा पीछा करती है।

चार : हम मजदूर हैं न!

पाँच : धत्...जमीन पर रेंगता हुआ एक कीड़ा![4]

शहर में आकर मजदूरी करनी पड़ती है। लेकिन जीवन में खुशियाँ नहीं मिलतीं। अपने बाल-बच्चों तथा परिवार की तरफ ध्यान नहीं दे सकते। गाँव से शहर आनेवाले मजदूरों ने जो सुख-स्वप्न देखे थे, वे पूरे नहीं होते हैं। यह शहर में रहनेवाले कई सारे आम व्यक्तियों तथा मजदूरों के जीवन में निर्माण हुई समस्या है। वैसे, शहरों में ही कई सारी समस्याएँ हैं, ऐसा नहीं है। गाँवों के उस यथार्थ को भी नुक्कड़ नाटककारों ने व्यक्त किया है। गाँव में रहनेवाले लोगों के जीवन में भी कई सारी ऐसी बातें होती हैं, जो उन्हें परेशान करती हैं। खेती से संबंधित समस्याओं ने तो किसानों के सामने आत्महत्या को मजबूर कर दिया है। खेती में पकनेवाली फसल को अच्छे दाम नहीं मिलते। बिजली, पानी से संबंधित कई सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। 'मत बाटो इंसान को' नुक्कड़ नाटक में शहर में रहनेवाले लोगों की जरूरतें भी गाँव ही पूरा कर रहे हैं तथा शहर के जीवन में समस्या नहीं होगी, यह सोचकर आनेवाले लोगों की कैसी निराशा होती है, इसका चित्रण किया है–

औरत : अजी सुनते हो तेल और नून की कमी ने यहाँ भी लोगों को परेशान कर रखा है।

आदमी : अरी पगली! जहाँ पैदावार होती है, जब वहाँ ही लोगों को पूरा नहीं पड़ता तो शहरों का हाल कौन जाने।

औरत : और हम यह लंबी-चौड़ी सड़कें, बड़ी-बड़ी इमारतें देखकर समझ बैठे थे कि यहाँ किसी चीज की कमी नहीं है।[5]

आज शहरों में भी आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति है। सड़क, बिजली, पानी आदि को लेकर लोगों को कई सारी समस्याएँ झेलनी पड़ती हैं। वैसे आधुनिक युग को यंत्रयुग के नाम से भी जाना जाता है। परंतु इस यंत्रयुग की सबसे बड़ी आवश्यकता है बिजली। बिजली गाँव और शहरों के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देनेवाली है। घर, खेती से लेकर कारखानों, अस्पतालों, व्यवसायों आदि जगहों पर बिजली की आवश्यकता बन गई है। यंत्रयुग ही पूरा बिजली पर अवलंबित हैं। जब बिजली नहीं होती है, तब सब काम रुक जाते हैं। जो बिजली जीवन को आसान बनानेवाली होती है, वह भी कभी-कभी मुश्किलें पैदा कर देती है। खेती में जो फसल होती है, उसे समय पर पानी नहीं मिला तो किसानों का नुकसान हो जाता है। और फैक्टरियों में बिजली चली गई तो समय और पैसों का नुकसान हो जाता है। इसलिए बिजली से संबंधित मुसीबतों को नुक्कड़ नाटककारों ने व्यक्त किया है।

सब : बिजली गुल हो गई!

एक : पिछले साल की तरह फिर घाटा न लग जाए।

दो : अँधेरे में पेशेंट की जान न चली जाए!

तीन: कहीं परीक्षा में फेल न हो जाऊँ!

चार: रास्ता कहीं भटक ना जाऊँ!

सब: ऊ! बिजली के बिना मौत है, मौत![6]

अर्थात् जीवन में आवश्यक वस्तुओं का रहना और उनकी पूर्ति करना तथा समय पर उपलब्ध होना भी आवश्यक है। गाँव और शहर से संबंधित कई सारी बातों को उनके यथार्थ जीवन के सत्य को नुक्कड़ नाटककारों ने इस प्रकार से चित्रित किया हैं।

निष्कर्ष रूप से कह सकते है कि किसी भी देश का समाज ग्रामीण-शहरी इन दो स्तरों विभाजित होता है। ग्रामीण-शहरी जीवन की अपनी-अपनी समस्याएँ होती हैं। दोनों स्तरों पर निर्माण होनेवाली समस्याओं से प्रशासन का गहरा संबंध होता है। जब तक प्रशासन दोनों जगह के लोगों की जीवन आवश्यक जरूरतों की पूर्ति नहीं करेगा, तब तक न गाँव का विकास होगा, न ही शहरों का विकास। विकास ही मनुष्य के जीवन का संघर्ष समाप्त करता है। अत: ग्रामीण-शहरी जीवन को उन्नत बनाने के लिए सभी लोगों को दोनों के स्तरों के फासले कम करने का प्रयास करना होगा तो ही ग्रामीण-शहरी जीवन की विषमता को दूर किया जा सकता है।

संदर्भ

1. जनम, चौक चौक गली गली में, भाग-2, पृ॰ 02
2. जनम, चौक चौक गली गली में, भाग-1, पृ॰ 130
3. वही, पृ॰ 130
4. राजेशकुमार, पाँच नुक्कड़ नाटक, पृ॰ 42
5. जनम, चौक चौक गली गली में, भाग-1, पृ॰ 131
6. राजेशकुमार, भ्रष्टाचार का आचार, पृ॰ 80

'मैं बंजारा हूँ' बहिष्कृत भारत की बुलंद आवाज

शोधछात्रा **भाग्यश्री अनंत भावसार**
शोध निर्देशक डॉ॰ पी॰व्ही॰ कोटमे
हिंदी अनुसंधान केंद्र
के॰टी॰एच॰एम॰ महाविद्यालय, नाशिक

देश के हर एक कोने में आदिवासी, घुमंतू तथा बंजारा, अस्पृश्य आदि जातियाँ निवास करती हैं। हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, पंजाब एवं केंद्रशासित प्रदेश दिल्ली, पांडिचेरी एवं चंडीगढ़ को छोड़कर सर्वत्र आदिवासी, घुमंतू तथा बंजारा, अस्पृश्य आदि निवास करते हैं। पूर्वांचल राज्यों में इन जातियों का बाहुल्य है। देश में इन निम्न जातियों का बाहुल्य इन राज्यों में मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पश्चिमबंगाल एवं राजस्थान आदि में है। दक्षिण भारत के राज्य केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक व आंध्रप्रदेश के कुछ भागों में भी ये जातियाँ निवास करती हैं।

भारत में स्वतंत्रता से पूर्व आदिवासी, अस्पृश्य, घुमंतू तथा बंजारों के विकास हेतु केवल नाम-मात्र के प्रयत्न किए गए, जिनका परिणाम यह हुआ कि ये निम्न जातियाँ देश की मुख्यधारा से कट गईं। प्रारंभ से ही निर्जन एवं दूरस्थ स्थानों पर निवास के कारण इन जातियों को शहरी सभ्यता एवं विकास के साधनों सें वंचित रहना पड़ा है। इसी कारण ये जातियाँ प्रगति के साधनों से दूर रही हैं। भारत में आज भी आदिवासी, घुमंतू, बंजारा, अस्पृश्य आदि जातियों को विषमतावादी समाज-व्यवस्था के कारण गाँव के बाहर बहिष्कृत कर दिया गया है। ये जातियाँ किसी शहर के बाहर सड़कों के किनारे झुग्गी-झोपड़ियों में रहकर रोजी-रोटी कमाते हैं।

हमेशा से ही दूरस्थ क्षेत्र में निवास के कारण तथा आवागमन के साधनों के अभाव के कारण आज भी ये जातियाँ शहरी सभ्यता से कटी हुई हैं। आज भी सरकारी व्यवस्था का ध्यान इनके विकास की ओर न होने के कारण ये पिछड़ी हुई हैं। आज भी इन जातियों में आदिवासी समुदायों में परंपरागत जात पंचायतों का स्वरूप कहीं-न-कहीं विद्यमान हैं, जिसमें इन जातियों की अपनी विशिष्ट न्याय पद्यति है, जिसे वे आज भी मानते हैं। परंतु शिक्षा के प्रचार- प्रसार, शहरीकरण के प्रभाव एवं न्यायालयों की व्यवस्था सुदृढ़ होने के कारण इनका प्रभाव शनैः-शनैः घटता जा रहा है।

'विश्व में हमारी संस्कृति सबसे महान है' यह विधान आज भी भारत के उपेक्षित तबकों की अनुभूति के धरातल पर खरा नहीं उतरा है। डॉ॰ बाबासाहब आंबेडकर कहते हैं, 'भारत एक देश है, लेकिन उसमें दूसरा एक देश है, उसका नाम है 'बहिष्कृत भारत'।'[1] यहाँ डॉ॰ बाबासाहब आंबेडकर जी ने जिस दूसरे देश का उल्लेख किया है, उसे ही विषमतावादी समाज-व्यवस्था की उपज कहा जा सकता है। इस विषमतावादी समाज-व्यवस्था में न तो घुमंतुओं को स्थान दिया गया

 ISSN 0975-735X

है और न ही अस्पृश्य या आदिवासियों को इन जातियों को तो सदियों से ही गाँव के बाहर बहिष्कृत कर दिया गया है। आज राजनीति के क्षेत्र में सर्वधर्म समभाव का नारा लगाने वाले राजनीतिक, सफेदपोश वर्ग भी बड़ी चालाकी से इन जातियों को नजरअंदाज कर रहे हैं। डॉ॰ बाबासाहब आंबेडकर जी ने अस्पृश्य, आदिवासी, घुमंतुओं तथा बंजारा समाज को मतदान का अधिकार देकर कहीं-न-कहीं इन जातियों की समाज में प्रतिष्ठा बढ़ा दी है। इन जातियों को आरक्षण देकर उन तक ज्ञान का उजाला पहुँचाने का काम आंबेडकर जी ने किया है। किंतु आज भी भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था इन आरक्षणों का फायदा निम्न जातियों तक पहुँचने नहीं देती।

डॉ॰ सुनील जाधव के 'मै बंजारा हूँ' काव्य-संग्रह में घुमंतू जाति के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त हुई है। इस काव्य-संग्रह में डॉ॰ सुनील जाधव ने 'बंजारा' जाति के चुभते सवालों को खड़ा किया है। साथ ही इस काव्य-संग्रह में जिन कविताओं का समावेश किया गया है, उन कविताओं का जन्म बेरोजगारी, घुटन, हताशा, उपेक्षा, अपमान आदि के परिणामस्वरूप हुआ है। स्वयं बंजारा जाति के होने के कारण कवि के इस शब्द को गहन रूप से महसूस किया है। जैसे कवि के मन में ये शब्द खामोश थे। उनकी कविताओं के माध्यम से यह शब्द जीवित हो गए हैं।

'मैं बंजारा हूँ' में कवि के साथ अन्य युवकों के डिप्रेशन की कविताएँ हैं। कवि सुनील जाधव कविताएँ लिखते गए। जब उन्होंने इन कविताओं पर सोचा, तब उन्होंने यह तय किया कि, इन कविताओं को उनके वर्ण्य-विषय के अनुसार 'बंजारा', 'मन', 'प्रकृति', 'प्रेम', 'समाज और', 'राजनीति के संग' के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है। उन्होंने अपनी 72 कविताओं को उपर्युक्त विषयों के आधार पर विभाजित किया है।

'बंजारा' शीर्षक के अंतर्गत जिन 12 कविताओं का समावेश किया गया है, वे बंजारा जाति के प्रति समाज के दायित्व इनकी प्रबल अभिव्यक्ति हैं। 'इन कविताओं में बंजारा समाज की दरिद्रता, उपेक्षा, प्रताड़ना, हताशा, भूख-बेरोजगारी आदि को अभिव्यक्ति मिली है। बंजारा जाति के लोग सुविधाओं से वंचित रहकर जिस जीवन को जी रहे हैं, उसकी अभिव्यक्ति 'हम बंजारा लोग' कविता के माध्यम से की गई है। जैसे–गाँव से दूर बस्ती का होना, पर्वत और जंगलों में रहना, पक्की सड़क न होने के कारण मीलों तक पैदल चलना, कर्ज से सुन्न किसान, भूखे बच्चों को केवल कहानियों के द्वारा पंचपक्वानों का मिलना, सर्दी-गर्मी, बरसात में भी मेहनत करना, बेटी के दहेज की चिंता, राजनीति के ठेकेदारों द्वारा खेला जानेवाला खेल आदि को 'हम बंजारा लोग' कविता के माध्यम से व्यक्त किया गया है। 'हम घुमंतू बंजारे' कविता में पढ़े-लिखे बेरोजगार बंजारा जाति की व्यथा को व्यक्त किया गया है, जो डिप्रेशन के शिकार बन गए हैं–

हमारे ही आवाजाही मार्ग पर
निज देश ने लिया
महामार्ग का आकार
देश की प्रगति के हैं,
हम ही दावेदार।[2]

बंजारा लोगों के आने-जाने के मार्ग पर देश की व्यवस्था ने महामार्ग का आकार लिया। अर्थात् देश की प्रगति के दावेदार यह बंजारा लोग ही है। फिर भी उन्हें समाज द्वारा दुत्कारा जाता है। 'कई सड़कों पर' कविता में बंजारा व्यक्ति को अन्यों से भीख माँगते हुए दिखाया गया है।

'जागो-जागो रे बंजारा' कविता में बंजारा जाति का शिक्षा-प्राप्त लड़का अपने समाज को जगाने के लिए कहता है। यह लड़का शिक्षा प्राप्त कर यह घोषणा करता है कि बंजारों को जो पर्वतों-जंगलों, गाँवों-शहरों में बिखरे हुए है सबको एक हो जाना है। क्योंकि एकता की शक्ति ही देशभक्ति है–

एकता में है शक्ति,
शक्ति ही है देशभक्ति,
अंमल में लाओ ये उक्ति
जागो जागो रे बंजारा![3]

फिर भी आज देश के किसी भी कोने में रहकर बंजारों ने अपनी भाषा-वेशभूषा, संस्कृति को भुलाया नहीं है।

'मन' शीर्षक के अंतर्गत जिन कविताओं का समावेश किया गया है, वे कविताएँ कवि के डिप्रेशन की कविताएँ हैं। बार-बार मिलनेवाली असफलता, निराशा के भीतर ही भीतर कई दिनों से घुटता रहा बंजारे का वर्णन किया गया है। यह बंजारा अपने सपने पूरे न कर पाने, अपने ही अंदर उन सपनों का गला घोंटता रहता है। बंजारा लोगों की अनेक इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं। शिक्षा पूरी होने पर वह नौकरी करे या फिर व्यवसाय। शादी-ब्याह, घर या माता-पिता को सुखी रखे आदि कई इच्छाएँ जो पूरी नहीं होतीं, तब दु:ख और निराशा से वह अकेलेपन को महसूस करता है। अकेले में विचारों और सोच के महाभयंकर युद्ध से त्रस्त होकर आत्महत्या जैसे विचार उसके मन में पनपने लगते हैं। वह कई बार मरता है। हर रोज आत्महत्या करता है और जिंदा लाश बन जाता है। ऐसे समय वह गलत मार्ग का चयन करता है। जो समाज और देश के लिए घातक सिद्ध होता है। कवि स्वयं जिस डिप्रेशन से गुजरा है, उसकी सच्ची अभिव्यक्ति को इन कविताओं के माध्यम से हुई है।

'प्रकृति से' शीर्षक के अंतर्गत जिन कविताओं का समावेश किया गया है, उसमें कवि ने प्रकृति से संबंधित अपने स्वयं के अनुभवों को व्यक्त किया है। कवि का कथन है कि वे बचपन से ही प्रकृति की गोद में पले-बढ़े हैं। किनवर के जंगलों, नदियों में खेलना-कूदना, नहाना तथा भोकर, मुद्खेड में अपने चाचा-मौसी के खेतों में अरहर, टमाटर, आम, मूँगफली, जामुन, तरबूज, शहद चुराकर खाना बचपन की ये सारी स्मृतियों को कवि ने कविता के द्वारा अभिव्यक्त किया है।

'समाज और' शीर्षक में जिन कविताओं का समावेश किया गया है, उनमें शोषित-पीड़ित, गरीब-किसान, मजदूर आदि की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत की गई है। समाज में कई लोग दो-दो मुखौटे पहनकर घूमते हैं। एक खुद का असली चेहरा और दूसरा दिखाया जाने वाला चेहरा। ये कविताएँ समाज के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास करती हैं। बंजारा लड़की पढ़ना चाहती है, जिससे वह अपने भाई और बहन का अधूरा पेट भर सके। बंजारा लड़की अँधेरे की जगह रौशनी लाना चाहती है। केवल इतना ही नहीं, पढ़ने के पीछे उसका यह भी मकसद है कि वह भविष्य में अपने बच्चों को पढ़ा सके।

'कपड़ा' नामक कविता में कवि ने आज के जमाने की फैशन के बारे में लिखा है–

कुछ अमीर पहनते हैं
फटा हुआ कपड़ा।
क्योंकि पहनना उनकी भी मजबूरी है।

वह पहनता है, तन ढकने के लिए कपड़ा।
यह पहनते हैं,
तन दिखाने के लिए कपड़ा।[4]

अर्थात् कवि का कहना है कि गरीब तथा बंजारा लोगों को अपना तन ढकने के लिए कपड़ा चाहिए और अमीरों को अपना तन दिखाने के लिए फटा कपड़ा चाहिए। यह देश की कितनी बड़ी विडंबना है। गरीब लोग शर्म के मारे तन ढकने हेतु कपड़ा पहनते हैं। वे नहीं चाहते कि उनके नग्न अंगों को कोई देखें किंतु अमीर लोग यह चाहते हैं कि, हमारे नग्न अंगों को सब लोग देखे, कोई छूट न पाए। इस प्रकार एक ओर कपड़े की मजबूरी और दूसरी ओर फैशन की चाहत।

'राजनीति के संग' शीर्षक के अंतर्गत जिन कविताओं का समावेश किया गया है, वे कविताएँ व्यवस्था की कमियों पर व्यंग्य करने वाली कविताएँ हैं। 'इंसान बूढ़ा हो गया' कविता के माध्यम से भारत के स्वाधीन हो जाने पर भी बंजारा लोगों की क्या स्थिति है, यह दिखाया गया है। 'थूक मेरे मुँह पे' कविता में आधुनिक युग में लिया जाने वाला काला धन, भ्रष्टाचार आदि का वर्णन किया गया है। साथ ही गरीबों के पैसों से ही अमीर लोग घर, कार सब-कुछ खरीदते हैं। देश का संपूर्ण खजाना राजनेता खा गए है फिर भी उनका पेट है कि भरता ही नहीं–

लोग मरे, तो मरे
कसाब भाईजान बिरयानी खाएँ,
इसीलिए खुल रहे हैं, विदेशी स्टोर...
लूट रहे हैं देश को सरकारी चोर।[5]

अर्थात् एक ओर कसाब जैसे आतंकवादी, जिसने कितने ही लोग मारे, उसे बिरयानी खिलाई जाती है और दूसरी ओर देश में लोग भूखे मरते है। संपूर्ण देश को सरकारी चोर लूट रहे हैं, आदि का वर्णन किया गया है। साथ ही सरकार को लगनेवाली पैसे की भूख और पैसे की भीख को 'भूख लगी है सरकार को' कविता के द्वारा व्यक्त किया गया है।

इस प्रकार समाज एवं राष्ट्र की वास्तविक तस्वीर उभारने का प्रयास कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से किया है। सरकार द्वारा इन जातियों के लिए विभिन्न योजनाओं का आयोजन किया जाता है। किंतु वास्तविकता कुछ और ही होती है। सरकार द्वारा आयोजित योजनाओं का लाभ इन जातियों तक नहीं पहुँचाया जाता है। स्वतंत्रता के पश्चात् भी आज भारत में बंजारा, घुमंतू, अस्पृश्य जाति के लोग इधर-उधर भटकने के लिए विवश हैं। आज भी उनके सामने रोजी-रोटी, कपड़ा और आवास, बेरोजगारी आदि प्रश्न खड़े हैं। बंजारा, घुमंतू, अस्पृश्य आदि जातियों के सामने खड़े रोजी-रोटी, कपड़ा और आवास, बेरोजगारी आदि प्रश्नों से भारत की राजनीतिक, सामाजिक विषमता बयान होती है।

संदर्भ

1. मैं बंजारा हूँ, डॉ॰ सुनील जाधव, भूमिका से
2. मैं बंजारा हूँ, डॉ॰ सुनील जाधव, पृ॰ 26
3. मैं बंजारा हूँ, डॉ॰ सुनील जाधव, पृ॰ 31
4. मैं बंजारा हूँ, डॉ॰सुनील जाधव, पृ॰ 105
5. मैं बंजारा हूँ, डॉ॰ सुनील जाधव, पृ॰ 114

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में आज के संदर्भ

शोधछात्र **कोमलराम मनोहर**
शोध निर्देशक **डॉ॰ पी॰व्ही॰ कोटमे**
हिंदी अनुसंधान केंद्र
के॰टी॰एच॰एम॰ महाविद्यालय, नाशिक

दुनिया में हुए कई परिवर्तनों से शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र के साथ सामाजिक जीवन में भी अनेक बदलाव हुए हैं। नारी-पुरुष समानता ने आज एक नई दिशा दी है। हर पुरुष की प्रेरणा का कारण कोई-न-कोई स्त्री जरूर है। भारतीय नारी शिक्षित होने के कारण आज बहुत बदल गई है। वह आधुनिकता को धारण कर चुकी हैं। भारत की यही आधुनिक महिलाएँ उच्च सम्मान की दृष्टि से देखी जाती हैं। उन्हें सभी मामलों में पुरुषों के बराबर माना जाता है। आज की स्त्री अपने कर्तव्यों के प्रति जितनी समर्पित है, उतना ही अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी है। निर्भीकता उसकी चेतना का नया आयाम है, जिसके बल पर उसने अपनी परंपरागत पहचान से हटकर नई पहचान बनाई है।

आदिवासी लेखिका 'निर्मला पुतुल एँलान' का कहना हैं कि 'स्त्री आज हर रूपों में सफल है, उसके हर रूपों में उसकी उपस्थिति महत्त्वपूर्ण होती है।' अत: स्पष्ट होता है कि आज की स्त्री अपने हर रूपों में सफल पाई गई है। वह आज पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चल रही हैं।

हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश ने अपने नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में नारी के उच्च स्वरूप को दिखाने का प्रयत्न किया है। यह महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध होने से पहले की प्रेयसी मल्लिका के जीवन पर आधारित नाटक है–'एक ऐसी समर्पित नारी की नियति का चित्र, जो कवि से अटूट प्रेम ही नहीं करती, बल्कि किसी भी मूल्य पर उसे महान होते हुए देखना चाहती है।' जैसे कि आज हम देखते हैं, देश और दुनिया के हर सफल पुरुष के पीछे एक स्त्री ही प्रेरणा स्थान बनकर खड़ी हुई दिखाई देती है। कवि कालिदास जी के महान कवि बनने के पीछे उनकी प्रेमिका मल्लिका है, जो कालिदास से सच्चा प्यार करती है। उन्हें जीवन में अपार सफलता मिले, इसके लिए कामना व्यक्त करती है और वह कालिदास को उज्जियिनी जाने के लिए प्रेरणा देती है, जहाँ पर कवि कालिदास जाकर एक महान कवि बन जाते हैं।

यदि आज हम कुछ अपवादों को छोड़कर पुरुषों की मानसिकता की बात करें, तो वह नारी को सफल होते हुए नहीं देखना चाहते। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में आज के पुरुषों की मानसिकता के प्रत्येक 'विलोम' को दर्शाया है। विलोम एक असफल कालिदास है और कालिदास एक सफल विलोम।' 'विलोम' शायद मल्लिका को इतना नहीं चाहते, जितना यह चाहते हैं कि,

 ISSN 0975-735X

मल्लिका कालिदास से प्रेम न करे। इस पात्र के माध्यम से आज के पुरुष की मनोवृत्ति को दिखाने का प्रयत्न किया है।

स्त्री एक सफल गृहणी, पत्नी, बहन के साथ-साथ माँ भी है। एक माँ के रुप में स्त्री की भूमिका सर्वोपरि होती है। मल्लिका की माँ अंबिका का चरित्र नितांत यथार्थवादी दृष्टि से गढ़ा गया है। नाटक में लेखक का कथन है, 'मेरी वह अवस्था बीत चुकी है, जब यथार्थ से आँखें मूँदकर जिया जाता है।' अपने विषय में उसका कथन बिलकुल उचित है। अंबिका कालिदास को संदेह और वितृष्णा की दृष्टि से देखती है, घृणा करती है। उसे यह असहनीय है कि कालिदास मल्लिका से विवाह न करे। वह जीवन की आवश्यकताओं को ही सर्वोच्च प्राथमिकता देती है। वह चाहती है कि मल्लिका यथार्थ जीवन की कठोरता को समझे और अपेक्षाकृत व्यावहारिक व्यक्ति विलोम से विवाह कर ले।

इस तरह दुनिया में जिन महान पुरुषों और सृजनात्मक प्रतिभाओं ने कार्य किए हैं, उनको अनादिकाल से कितनी माताओं, परिवारों, सच्ची प्रेमिकाओं की प्रेरणा जरूर मिली है। भारतीय महिलाएँ विश्व के किसी भी अन्य देश की महिलाओं से कम नहीं है। यह सही है कि हमारे देश में महिला-साक्षरता की दर अपेक्षाकृत कम है, पर सूझ-बूझ एवं कर्मठता में भारतीय महिलाएँ बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रही हैं। अब तो महिला सशक्तिकरण का युग है। हमें उनके हाथों को मजबूत बनाना है। उन्हें आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से मजबूत बनाना है, तभी भारत मजबूत बन सकता है। निस्संदेह, नारी की वर्तमान दशा में निरंतर सुधार, राष्ट्र की प्रगति का मापदंड है। वह दिन दूर नहीं, जब नर-नारी, सभी के सम्मिलित प्रयास फलीभूत होंगे और हमारा देश विश्व के अन्य अग्रणी देशों में से एक होगा।

प्राचीनकाल में भारतीय नारी को विशिष्ट सम्मान व पूज्यनीय दृष्टि से देखा जाता था। सीता, सती-सावित्री, अनसूया, गायत्री आदि अनेक भारतीय नारियों ने अपना विशिष्ट स्थान सिद्ध किया है। जैसे, जीजाबाई, रानी लक्ष्मीबाई, रजिया सुलतान, सरोजिनी नायडू आदि। वहीं प्रसिद्ध लेखिकाओं में मीराबाई, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, सुधा अरोड़ा, कुसुम अंसल, सुनीता जैन, ममता कालिया आदि महिला साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाई हैं। समाज में किसी भी विशिष्ट कार्य के संपादन में नारी की उपस्थिति महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। 'राजेश जोशी' के शब्दों में–

वह साफ की गई जगह पर अपने स्पर्श
और बोलने की रखती जाती है
कि उसके कहीं जाने के बाद वह
उतनी ही बनी रहती है।'

कहते हैं, हर सफल पुरुष के पीछे एक औरत का हाथ रहता है। संत कवि तुलसीदास को महान कवि बनाने में उनकी पत्नी का हाथ था, महात्मा ज्योतिबा फुले के पीछे सावित्री फुले, महात्मा गांधी जी ने जो भी अपने जीवन में सफलताएँ पाई, उनके पीछे कहीं-न-कहीं उनकी पत्नी कस्तूरबा का त्याग था। वहीं संविधाननिर्माता डॉ॰ बाबासाहब अंबेडकर के पीछे भी उनकी पत्नी का सहयोग था। यदि हम आज की स्त्री के बारे में बात करें तो कला, क्रीड़ा, राजनीति, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन में भी अहम भूमिका मान सकते हैं। स्त्रियों ने समाज व राष्ट्र को

यह सिद्ध कर दिखाया है कि शक्ति अथवा क्षमता की दृष्टि से वह पुरुषों से किसी भी भाँति कम नहीं है। इसतरह **'आषाढ़ का एक दिन'** नाटक को एक कालजयी रचना मानकर उसमें हम मनुष्य, स्त्री-पुरुष के माध्यम से वर्तमान के कई संदर्भ अनुभूत करा सकते हैं। यही इस नाटक की आज तक कई रूपों प्रासंगिकता है।

संदर्भ

1. इक्कीसवीं सदी की कविता : संवेदना के नए स्वर, सं॰ डा॰ शैलजा भारद्वाज, पृ॰ 38
2. आज के हिंदी रंग नाटक, डॉ॰ जयदेव तनेजा, पृ॰ 55
3. वही, पृ॰ 58

 ISSN 0975-735X

मुनि पुलकसागर जी महाराज के साहित्य में 'सत्यम् शिवम् सुंदरम' की भावना

डॉ॰ नीति गोयल

संक्षिप्त विवरण

हिंदी साहित्य अनेक रंगों से रँगा हुआ है। साहित्य में आत्मा और परमात्मा के आत्मसात् होने की बात सभी ने स्वीकार की है। जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के उपरांत ही मानवयोनि प्राप्त करता है। मनुष्य योनि में ही उसे सत्य, शिव और सुंदर का बोध होता है, जिसके माध्यम से वह सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर परमात्मा से मिलन कर चिरकालिक स्वरूप ईश्वरत्व को प्राप्त कर सकता है। मानव शरीर की महत्ता को अनेक संतों द्वारा भक्तों तक पहुँचाया जाता रहा है। इसी शृंखला की नींव परमपूज्य तपोनिधि युवा मनीषी संत मुनिश्री पुलकसागर जी महाराज हैं, जो सौम्य, तेजपूर्ण मुख सरल, शांत स्वभाव, कुछ ऐसे चुम्बकीय दिव्य आकर्षण हैं जो सहज ही भक्त को गुरु चरणारविंदों का चंचरीक बना देते हैं। उनके वचन जो भी सुनता है या उनका साहित्य पढ़ लेता है, वह उनका ही हो जाता है। उनका समस्त साहित्य, धार्मिक उपासना और उत्सर्ग का साहित्य है। उनका साहित्य मंगलमय यात्रा का ज्योतिर्मय चरण-चिह्न है, संतप्तों, भटके हुए, व्यथित जीवन की समस्याओं से जूझते हुए के संताप को शीतल करने लिए मेघ के समान है। संतश्री के साहित्य में सत्य, शिव और सुंदर का गहरा संबंध है। यह एक-दूसरे के पूरक हैं। सत्य के बिना शिव अधूरा है तथा शिव के बिना सुंदर। संतश्री के संपूर्ण साहित्य में सत्य के दर्शन होते हैं। जैनधर्म सत्य का ही दूसरा नाम है। धर्म को मानवधर्म मानना ही शिवत्व की भावना है तथा सुंदर सत्य का ही रूप है।

पूर्वकाल में उपनिषद्, पुराण, स्मृति ग्रंथों द्वारा मानव-समाज को दिशा दी जाती रही है। राजा-महाराजाओं ने भी इन ऋषियों, मुनियों तथा संतों की इस जन-कल्याणी वाणी व कृत्यों का पूरा सम्मान किया और उन्हें संरक्षण व सहयोग दिया। देश के विभिन्न हिस्सों में अनेक संत अपनी अमृत वाणी से मानव-समाज का दु:खहरण करके मार्ग प्रशस्त करते रहे हैं। प्रत्येक युग में संत अपने समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों व जन-विरोधी प्रवृत्तियों से जनजागृति का महान प्रयास करते रहे हैं। गीता के श्लोकों में ईश्वर के अवतार रूप द्वारा पाप और अधर्म का विनाश करना सत्य, समाज तथा मानव-जाति का कल्याण शिव और धर्म को मानवधर्म बनाकर उसकी स्थापना करना सुंदर माना गया है।

चरित्र निधि, मनस्वी, तपस्वी, युवा दिगंबर संतमुनि श्री पुलकसागर जी महाराज वर्तमान में लोकप्रिय आराध्य हैं, जिसमें जन-जन अपनी सत्कल्पनाओं की साकारता के दर्शन करते हैं।

सत्कल्पनाओं का अभिप्राय उस कल्पना से होता है, जो आदर्शमूलक होती है। आदर्श की चाह अच्छे संस्कारों की पहचान है। जब किसी महापुरुष में गुणों की, सभी आदर्शों की दीप्ति विद्यमान होती है, तब भक्त अर्चना व आराधना से उनके समीप आना चाहता है तथा महापुरुष भी असाधारण होने के कारण अपने गुणों से, अपौरुषेय से संस्कार संपन्न कर दिशा देता है, सत्य के दर्शन कराता है।

जहाँ दिगंबरता हो वहाँ शांतिधाम होता है, नभ के सितारे अठखेलियाँ करते प्रतीत होते हैं, सभी कार्य स्वेच्छापूर्वक हो जाते हैं, पुण्य के द्वार स्वत: खुल जाते हैं, समस्त वातावरण पुष्पों की भाँति सुगंधित प्रतीत होता है। वर्तमान में संगठन को सींचना, पल्लवित व पुष्पित करना किसी तप-साधना से कम नहीं है, ऐसे में मुनिश्री स्वयं तो समाजसेवा करते ही हैं, साथ ही दूसरों को पल्लवित व पुष्पित जीवन की ओर अग्रसर करते हैं।

आज के जाति-पाँति और धार्मिक मतभेद के युग में इन संतों की वाणी अनमोल है, क्योंकि इन्होंने जैनधर्म के आश्रम में रहकर भी सभी धर्मानुयायियों के अनुकरण व अनुसरण योग्य बहुत कुछ लिखा है।

मुनिश्री के साहित्य में सत्य, शिव व सुंदर का शास्त्रीय रूप विद्यमान है। सत्य क्या है? जीवन की वास्तविकता का नाम ही सत्य है। आज की पाखंडी, असंप्रदायिक मानवमूल्यों, राष्ट्र की मूर्च्छित काया को सत्यता की क्रांति द्वारा ही सँभाला जा सकता है। यदि प्रत्येक मानव को अपने जीवन की सत्यता के दर्शन हो जाएँ तो वह परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। लोग लोभवश यह भूल जाते हैं कि वह जिस जीवन पर गर्व कर रहे हैं, एक समय आने पर वह जीवन उसी परमात्मा में लीन हो जाएगा तथा देह तो मिट्टी है उसी मिट्टी में मिल जाएगी। जन्म के बाद बचपन, जवानी और बुढ़ापा जीवन का सत्य है परंतु बुढ़ापे के बाद तो सबको जाना है, यही सोचकर मनुष्य को समय रहते पाप की गठरी को कम कर देना चाहिए। मौत ही जीवन का सत्य है। इसके उपरांत कुछ अपना नहीं रह जाता है। जिस वेग से सूर्य निकलता है, उसी वेग से सूर्य छिप भी जाता है। दोनों समय एक ही वातावरण होता है। अंतर इतना ही होता है कि जब सूर्य उगता है तो नई ऊष्मा का संचार सभी में भर देता है, परंतु जब अस्त होता है तब सभी थककर रात्रि में प्रवेश कर जाते हैं अर्थात् जब जीवन की शुरुआत होती है तो नई रोशनी का प्रादुर्भाव होता है, परंतु वृद्धावस्था आते-आते थककर मृत्यु का इंतजार ही शेष रह जाता है। मुनिश्री जीवन के इसी सत्य की ओर इशारा करते हुए कहते हैं 'मौत भोजन क्या पूरा संसार छुड़ा लेती है, पर मौत का डटकर मुकाबला करते हैं मौत उसे छोड़ देती है।[1] अर्थात् मौत आए उससे पहले ही जीवन के सत्य को अपनाकर सांसारिक मोह को त्यागना ही श्रेष्ठ है।

मनुष्य तो संसार में एक भटके हुए पथिक की भाँति जीवनपर्यंत विचरण करता रहता है, जबकि इस जीवन का रास्ता तय कर उसे मौत के अनंत सागर में डूब जाना है, यही जीवन का सत्य है, फिर भी मोहमाया की आस छोड़ प्रभुभक्ति में लीन नहीं हो पाता–

जन्म मृत्यु के समर में,
मोती क्या ढूँढ़े लहर में
रेत के महलों में घर न भूल जाना,
ओ मुसाफिर! तुझको अपने देश जाना।[2]

 ISSN 0975-735X

शिव अर्थात् कल्याण की भावना। मनुष्य को स्वार्थी नहीं बल्कि कल्याणकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। दूसरों पर दया मुनिश्री का प्रमुख नियम है। वह अपने जीवन के विषय में लिखते हैं–

हम वो इंसा हैं, जो काँटों पे चला करते हैं,
फूलों की राह तो औरों को दिया करते हैं।
सारे गम अपने ही सीने में छुपा रखता हूँ,
पाय आए कोई खुशियों से भरा करते हैं।[3]

संसार में रहकर मानव धन-लालसा से सभी को ताक पर रख सकता है, धन के साथ-साथ धर्म को भी ध्यान में रखा जाए तो वह एक-दूसरे के पूरक हो जाते हैं। जिस प्रकार आत्मा के अभाव में शरीर व्यर्थ है, उसी प्रकार धर्म आत्मा तथा धन शरीर रूप में विद्यमान है। धन के अभाव में धर्म की जरूरतों को पूरा करना असंभव है। परंतु धन को व्यर्थ कार्यों द्वारा संचित किया जाए तो वह धर्म के लिए कल्याणकारी नहीं हो सकता है–'यदि तुम्हारा अर्थ धर्म को ताक पर रखकर आया है तो वह अर्थ, अर्थ नहीं जीवन के लिए अनर्थ हो जाएगा। जो अर्थ जीवन का अनर्थ करे, वह अर्थ व्यर्थ है।'[4] धन को तीन कार्यों में लगाया जा सकता है–भोग, नाश और दान। दान ही शिव मार्ग है। मृत्यु के बाद तो सब यही रह जाना है इसलिए धन को धर्म में लगाकर पुण्य को साथ ले जाना ही हितकर है। 'लोभी आदमी, हिंसक आदमी से ज्यादा खतरनाक है, क्योंकि हिंसक तो एक दो को ही मारता है, लेकिन लोभी परिवार, समाज, राष्ट्र व धर्म सभी की हत्या कर देता है। ऐसा धन जीवन के लिए अभिशाप बन जाता है।'[5]

मुनिश्री के विचारों में जीवन की वास्तविकता अर्थात् सत्य को ही सुंदरता का दूसरा रूप माना गया है। जीवन-मृत्यु होना सत्य है और इसी सत्य को जीवनपर्यंत निर्वाह करना सुंदर है। जीवन के निर्वाह के लिए जितना अनिवार्य सत्य है, उतना ही शिव भी है। गुरुओं द्वारा दर्शाए मार्गों का अनुसरण कर 'सत्य शिव और सुंदर' को जीवन में लाया जा सकता है। प्राचीनकाल से ही जीवन को सुंदर बनाने के लिए गुरुओं की परंपरा को स्वीकारा व समझा गया है। मुनिश्री अपने जीवन को गुरुओं पर छोड़ चुके हैं–

एक विद्या एक पुष्प, दोनों ने मुझे सँवारा
अंतर न दोनों की प्रीत में कोई
एक मुक्तिप्रदायक, एक पथदर्शायक।[6]

एक व्यक्ति संपूर्ण जीवन किसी न किसी सहारे पर निर्भर रहता है, परंतु सत्य तो यही है कि वह गुरुओं के पश्चात् परमात्मा के अतिरिक्त किसी सहारे पर निर्भर रहकर जीवन में सुंदता की भावना नहीं प्राप्त कर सकता है। 'जिस-जिसने भी प्रभु के चरण का सहारा लिया है, वह संसार-सागर में पतित होने से बच गया।'[7]

जिस प्रकार सुई में धागा होने से वह गिरने के उपरांत भी मिल जाती है, उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा में ईश्वर का नाम होने से वह पतित होते जीवन को भी उच्च शिखर पर पहुँचा सकता है। ईश्वर पर विश्वास करना ही सबसे बड़ा सहारा है।

अब छोड़ दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में,
है जीत तुम्हारे हाथों में और हार तुम्हारे हाथों में।[8]

मुनिश्री पुलकसागर जी महाराज के विचारों में 'सत्यं, शिवं तथा सुंदरम्' का स्पष्ट रूप झलकता है। जीवन के सत्य को जितना समझा जाएगा, उतना ही कल्याण अर्थात् शिव होगा और शिव से स्वयं ही जीवन सुंदर हो जाएगा। मनुष्य के जीवन का एकमात्र लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति का होना चाहिए। समाज में व्याप्त बुराइयों से निकलकर परमात्मा की सच्ची आराधना जो भी कर ले, वही जीवन में 'सत्यम् शिवम् और सुंदरम् के यथार्थ का ज्ञाता हो सकता है।

संदर्भ

1. ऐसे भी जिया जाता है, पुलक ग्राफिक्स, दिल्ली, अगस्त 2002, पृ॰ 37
2. मेरी आवाज सुनो, पृ॰ 26
3. मेरी आवाज सुनो, पृ॰ 24
4. ऐसे भी जिया जाता है, पुलक ग्राफिक्स, दिल्ली, अगस्त 2002, पृ॰ 44
5. ऐसे भी जिया जाता है, पुलक ग्राफिक्स, दिल्ली, अगस्त 2002, पृ॰ 48
6. मेरी आवाज सुनो, पृ॰ 54
7. ऐसे भी जिया जाता है, पुलक ग्राफिक्स, दिल्ली, अगस्त 2002, पृ॰ 18
8. आस्था और आराध्य, न्यू ऋषभ ऑफसेट प्रिंटर्स, मेरठ, पृ॰ 16

पत्नी अभिषेक अग्रवाल
मो॰ गुरातियान तह॰ जसपुर
होली चौक ठाकुर मंडी
ऊधमसिंह (नगर) 244712
मो॰ 7055851392

ISSN 0975-735X

पंजाब की लोककहानियों का वर्गीकरण

संदीप कौर
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (पंजाब)

पंजाबी लोकसंस्कृति अपने आपमें समृद्ध और विशाल है। इसके अंतर्गत पंजाबी लोकसाहित्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह साहित्य पंजाब के लोगों की भावनाओं, अनुभूतियों, मनोवेगों और संकल्पों के साथ जुड़ा होने के कारण पंजाबी संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। यह साहित्यकारों के माध्यम से रचित विशिष्ट साहित्य की अपेक्षा बहुत सी बातों में अधिक श्रेष्ठ है। इसके साथ किसी विशेष लेखक का नाम जुड़ा नहीं होता, बल्कि यह लोक की सामूहिक निधि है।

लोकसाहित्य पर विचार करने से पहले 'लोक' के बारे में जानना आवश्यक है। 'लोक का अर्थ है आम लोग, लोगों का समूह आदि।'[1] अपनी परंपराओं में रहते हुए सहज जीवन जीने वाली समस्त जनता लोक है। इसी लोक का साहित्य 'लोकसाहित्य' कहलाता है। करनैलसिंह थिंद के अनुसार, 'लोकसंस्कृति के अंशों से भरपूर लोकमानस की सहज, स्वाभाविक अभिव्यक्ति लोकसाहित्य है, जिसका संचार लोकबोली के माध्यम से मौखिक रूप में हुआ हो। इस रचना के साथ किसी लेखक का नाम जुड़ा हुआ नहीं होता और लोकसमूह की परवानगी लेकर पीढ़ी दर पीढ़ी आगे चलती है।'[2] इस प्रकार लोकसंस्कृति, लोकबोली, लोकपरंपरा, लोकसमूह की परवानगी और मौखिक संचार ऐसे तत्त्व हैं, जो किसी रचना को लोकसाहित्य बनाते हैं। लोकसाहित्य के विभिन्न रूपों-लोकगीत, लोक-कहानी, लोकनाटक, कहावतें, मुहावरे इत्यादि में से लोककहानियों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरशब्द रत्नाकर महान कोश के अनुसार, 'कथा के अर्थ हैं कथा, कहानी, कथन, बयान करना इत्यादि।'[3] पंजाबी में कथा शब्द कहानी के लिए प्रयोग किया जाता है। डॉ॰ बाठ के अनुसार, 'लोककथाओं में आदिम मानव की मूलभूत भावनाओं का प्रत्यक्ष परोक्ष रूप में प्रकाशन हुआ करता है। ये मात्र मनोरंजन देने की साधन न होकर इतिहास के अनेक प्रकाशित गुप्त पृष्ठों को अपनी कोख में समेटे रहती हैं।'[4] लोकजीवन से संबंधित समस्त उपलब्धियाँ और त्रासदियाँ इन लोककहानियों की गोद में समाई हुई हैं। ये कहानियाँ जीवन के संपूर्णत्व को समेटे हुए हैं। पंजाबी समाज व संस्कृति को जानने के लिए लोकसाहित्य के विभिन्न रूपों में से पंजाबी लोककहानियाँ महत्त्वपूर्ण स्रोत का कार्य करती हैं।

लोककहानियों का क्षेत्र उतना ही विस्तृत एवं विशाल है, जितना मानव-जगत का कार्यक्षेत्र। जीवन और समाज का कोई भी पक्ष अथवा सत्य लोककहानियों की दृष्टि से नहीं बच पाया।

इनकी विशालता के कारण कोई भी विद्वान लोककहानियों के वर्गीकरण को लेकर एकमत नहीं है। 'सोफिया बर्न ने लोककहानियों के सत्तर रूपों का उल्लेख किया है।'[5] डॉ जोगिंदरसिंह कैरों ने पंजाबी लोककहानियों को लोककहानी, दंतकथा और मिथकथा इन तीन रूपों में बाँटा है। उनके अनुसार, लोककहानियाँ बच्चों के लिए, दंत कथाएँ नौजवानों के लिए और मिथ कथाएँ बड़ी उम्र के बच्चों के लिए शिक्षा और मनोरंजन का साधन बनती हैं।'[6] इसका अर्थ यह भी नहीं है कि एक वर्ग की कहानियाँ दूसरे वर्ग के लिए नहीं हैं। डॉ॰ जसविंदर सिंह ने पंजाबी लोककथाओं का अध्ययन करते हुए केवल प्रह्लाद भगत की लोककहानी को चुना है। वे लिखते हैं कि 'लोककथाओं के विभिन्न रूपों में हम प्रह्लाद भगत की मिथ कथा का अध्ययन पेश करेंगे। यह भारतीय मिथिहास में प्रचलित मिथों में एक है। हमारी यह धारणा नहीं है कि लोककथाओं में इसका कोई बिल्कुल अलग अस्तित्व या असाधारण मान्यता है। पंजाबी लोकसाहित्य बहुत विशाल और समग्र खजाना है, जिसमें लोककथाओं के विभिन्न रूप प्रचलित हैं। अध्ययन मॉडल के व्यवहारिक नमूने के तौर पर यह प्रारंभिक सा प्रयत्न है।'[7] प्रह्लाद भगत की कथा मूल रूप में मिथक कथा है। वणजारा बेदी ने 25 प्रकार की लोककहानियों का वर्गीकरण किया है। उनके अनुसार, 'कथा, बचन, साखी, सुखन, असला, मसला, महातम, चलित्र, हिकायत, परी कथा, तंत्र कथा आदि कथाएँ सब व्यक्तिगत स्तर पर सृजित कर किसी समूह, कबीले और संप्रदाय में बार-बार दुहराई जाती रही हैं।'[8] इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी 'मध्यकालीन पंजाबी कथा : रूप ते परंपरा' पुस्तक में प्रमाण, सिधी, बुझावल कथा, नीतिकथा, दंतकथा, गल्लाँ, हसावणी, फक्कड़, गप्प, चुटकला, कहावत, टोटका, मिथ लोककहानियों का वर्णन किया है। करनैल7सिंह थिंद के अनुसार, 'पंजाबी लोककहानियों की प्रवृत्ति, स्वभाव, विषय, पात्रों, घटनाओं इत्यादि को मुख्य रखते हुए इनको निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा जा सकता है–

1. मिथक कथाएँ (myth)
2. दंतकथाएँ (legends)
3. पशु/पक्षी कहानियाँ (animal/ birds tales)
4. नीति कथाएँ (fables)
5. परी कहानियाँ (fairy tales)
6. प्रेत कथाएँ (ghosts stories)
7. बुझावल कहानियाँ (riddle tales)
8. टोटके या हिकायतें (anecdotes)[9] इस प्रकार करनैलसिंह थिंद ने पंजाब की लोक कहानियों को आठ भागों में बाँटा है। यहाँ उन्हीं के वर्गीकरण को आधार बनाया गया है।

1.1 **मिथक कथाएँ**

मिथक कथाएँ पूर्व ऐतिहासिक युग में घटित घटनाओं से संबंधित हैं। ये देवताओं, प्राचीन योद्धाओं, धार्मिक विश्वासों, सांस्कृतिक तत्त्वों से संबंधित होने के साथ-साथ लोगों की अलौकिक परंपराओं से भी जुड़ी हुई हैं। 'मिथ अँग्रेजी भाषा का शब्द है और यह यूनानी शब्द माईथास से लिया गया है। जिसका भाव 'तर्कहीन कथन' से है।'[10] मिथ में ब्रह्मांड, प्रकृति और प्राणी-जगत के रहस्यों को कल्पना के स्तर पर समझने की चेष्टा की जाती है। जिस कारण यह तथ्य से अधिक काल्पनिक होती है।

 ISSN 0975-735X

मिथक कथाओं के माध्यम से मनुष्य प्रकृति, समाज, दैवी संसार से संबंध स्थापित कर अपना विस्तार करता है। पंजाबी मिथक कथाएँ भारतीय मिथिहास का ही एक अंग हैं। इन पंजाबी मिथकों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, दुर्गा, वरुण, इंद्र, पवन, अग्नि, शिव आदि अनेक देवताओं से संबंधित कहानियाँ प्रचलित हैं। इनमें लोकमन के भीतर परमात्मा, ब्रह्मांड, मनुष्य, प्रकृति से संबधित अनेक रहस्यों का मानवीय स्पष्टीकरण होता है। धार्मिक विश्वासों और अनुष्ठानों से भी इनका गहरा संबंध होता है।

1.2 **दंतकथाएँ**

पंजाब की लोककथाओं के अंतर्गत अद्‌भुत और अलौकिक रूप दंतकथाओं का है। लोककहानी के क्षेत्र में इनका विशिष्ट स्थान है। दंतकथाओं के लिए भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न नामों का प्रयोग किया जाता है। पूनी के अनुसार, 'पाली में अवदान शब्द का प्रयोग किया जाता है। अँगेजी वाले लीजिंड शब्द का प्रयोग करते हैं। पंजाबी में दंतकथाएँ शब्द प्रयोग किया मिलता है।'[11] दंतकथा ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित किसी ऐतिहासिक व्यक्ति से संबंधित कहानी होती है, किंतु इसमें ऐतिहासिकता के साथ-साथ कल्पना और विश्वासपरक तथ्य भी समाए होते हैं। बेदी के अनुसार, 'दंतकथा का शाब्दिक अर्थ है, वह सुनी-सुनाई बात जो लोकचर्चा का विषय बन गई हो।'[12] यह किसी सत्य घटना के रूप में कही जानेवाली कहानी होती है। इसमें भले ही ऐतिहासिक तत्त्वों के साथ-साथ काल्पनिक तत्त्व भी समाए होते हैं, किंतु फिर भी ये लोक में चर्चित हैं।

दंतकथाओं की अनेक श्रेणियाँ हैं। प्रथम श्रेणी जोगमत से संबंधित श्रेणियों की है। गोरखनाथ, पूरननाथ, मछंदरनाथ, गोपीचंद, भरथरी हरी आदि से संबंधित अनेक दंतकथाएँ हैं। इनमें मोह-माया और स्त्री के त्याग की भावना प्रबल है। दूसरी श्रेणी में पीरों फकीरों से संबंधित कहानियाँ आती हैं जैसे सखी सरवर, गुग्गा पीर, नौगजे इत्यादि से संबंधित दंतकथाएँ। तीसरी श्रेणी में गुरुओं और भगतों से संबंधित दंतकथाएँ हैं। भगत कबीर, भगत रविदास, गुरु नानकदेव, बाबा दीपसिंह और अन्य शहीदों से संबंधित विभिन्न दंतकथाएँ प्रचलित हैं। इनमें मानवीय जीवन के रहस्यों को समझने और नैतिक मूल्यों पर बल दिया गया मिलता है।

प्रेम भी एक विश्वव्यापक भावना है। प्रत्येक देश में प्रेम से संबंधित लोककथाएँ अवश्य मिलती हैं। पंजाब में प्रचलित दंतकथाएँ प्रेमकहानियों से भी संबंधित हैं। पूनी के अनुसार, 'पंजाब के नौजवान हीर-राँझा, सस्सी-पुन्नू, सोहनी-महींवाल को दिल से प्रेम करते हैं। इनकी प्रीत कथाएँ उनको अपनी प्रीत कथाएँ लगती हैं। प्रत्येक पंजाबी नौजवान मिर्जे, राँझे, महीवाल की तरह प्रेम करना चाहता है और उनकी होनी को भोगना चाहता है और प्रत्येक मुटियार सस्सी, सोहनी और हीर बनना सोचती है।'[13] इस प्रकार पंजाबी लोकमन पंजाब में घटित इन घटनाओं को वास्तविक घटनाएं स्वीकार करता हुआ इन्हें ऐतिहासिक यथार्थ मानता है।

प्रेमकथाओं के अतिरिक्त वीरता से संबंधित दंतकथाएँ भी पंजाब में बहुत प्रचलित हैं। प्राचीनकाल से संबंधित राजा सलवान, राजा रसालू और मुगलों के आखिरी समय के भाई मनीसिंह, बंदासिंह बहादुर, बाबा दीपसिंह और उनके उपरांत दुल्ला भट्‌टी, सुच्चा सूरमा आदि से संबंधित अनेक दंतकथाएँ प्राप्त हैं। इतिहास और परंपरा को एक ओर कर दिया जाए तो विश्वास

और परंपरा के माध्यम से ये कहानियाँ हमारी संस्कृति को जीवित रखती हैं। इनके इसी महत्त्व को मुख्य रखते हुए 'सर रिचर्ड टैंपल ने भट्ट, मिरासियों और गायकों से सुनकर इन्हें तीन जिल्दों में Legends of the Punjab नाम से प्रकाशित करवाया।'[14] पंजाब में अनेक दंतकथाएँ मिलती हैं, जो मौखिक रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चली आ रही हैं।

1.3 **पशु-पक्षी विषयक कहानियाँ**

पशु-पक्षीविषयक कहानियों को संसार की सबसे प्राचीन कहानियाँ माना जाता है। ये संसार के लगभग प्रत्येक देश में ही व्याप्त हैं। इन कहानियों का प्रमुख पात्र कोई पशु-पक्षी ही होता है। 'घर की बड़ी बुजुर्ग दादी भी अपने पोते-पोतियों को सबसे पहले चिड़िया-कौवे की कहानी ही सुनाती आई है। बच्चों के लिए अधिकतर कहानियाँ पशु-पक्षियों के बारे में ही हैं। पशु-पक्षियों का मानवीकरण कर उन्हें मनुष्यों की तरह सोचते, काम करते, बोलते, नाचते, कूदते दिखाया गया है। ईश्वर ने भिन्न-भिन्न पशु-पक्षियों को जो विशेष खासियतें प्रदान की हैं, उनके अनुसार वह कार्य करते हैं, कौवा समझदार है, लोमड़ी चालाक है, शेर बहादुर है और बघियाड़ लालची, इत्यादि।'[15] पशु-पक्षियों की बातचीत करवाकर निर्जीव वस्तुओं का भी मानवीकरण किया जाता है। इनका संसार मानवीय संसार से मिलता जुलता होने के बावजूद उससे भिन्न होता है।

मिथक कथाओं और दंतकथाओं में भी पशु-पक्षी रूपी पात्रों के संकेत मिलते हैं। जैसे भगवान शिव का वाहन बैल है और गणेश का चूहा, विष्णु भगवान का गरुड़ और गुरु गोबिंदसिंह शेर की खाल गीदड़ पर डालकर शिक्षा देते हैं। कुछ गौण पशु पात्र नायक-नायिकाओं की समस्याओं का समाधान करते दिखाई देते हैं। पशु-पक्षीविषयक कहानियों के महत्त्व के कारण इनसे संबंधित लोककहानियों के संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं जैसे वणजारा बेदी का 'पंजाब दीयां जनौर कहानियाँ', गोपालसिंह का 'इक सी चिड़ी', घुंमन का 'जनौर बातां', अमरीकसिंह का 'पंछी दी नसीयत' इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं।

1.4 **नीति कथाएँ**

नीति कथाएँ नैतिक शिक्षा से संबंधित हैं। इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य उपदेश देना होता है। थिंद के अनुसार, 'उपदेश या शिक्षानीति कथा का बुनियादी तत्त्व है।'[16] वास्तव में नीति कथा ऐसा परंपरागत रूप है, जिसमें पशु-पक्षियों को मानवीय गुण प्रदान कर मनुष्य को बड़े ही कटाक्षमयी और व्यंग्यात्मक रूप से नैतिक शिक्षा या उपदेश दिया जाता है। नीति कथा में किसी उपदेश या शिक्षा का होना अति आवश्यक है, क्योंकि इन कथाओं का मुख्य उद्देश्य मानवीय जगत् की भलाई और उनको शिक्षा देना होता है।

भारत की नीति कथाओं के दो संग्रह 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश' संसारप्रसिद्ध हैं। 'संस्कृत के 'हितोपदेश' और 'पंचतंत्र', भर्तृहरि कृत 'नीतिशतक' जैसी रचनाओं की श्रेणी में और बहुत कुछ उन्हीं से प्रभावित पंजाबी में कई कई नीति-कथाएँ प्रचलित हैं।'[17] इनमें से पंचतंत्र तो इतना प्रसिद्ध है कि दुनिया की पचास भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। 'पंचतंत्र' की कहानियों के बारे में यही मत प्रचलित है कि एक बादशाह के नालायक पुत्रों को राजनीति के गुण सिखाने और शिक्षा देने के लिए रचित कहानियों का संग्रह है।

अत: पंजाब की नीति कथाएँ पंजाब के लोगों की सोच और उनके जीवन के नैतिक मूल्यों

में पूरी तरह से सहायक हैं। यह पंजाब की सांस्कृतिक विरासत का महत्त्वपूर्ण अंग है।

1.5 **परी कहानियाँ**

किसी परी, अप्सरा जैसे अमानवीय पात्रों से संबंधित कहानियों को परी कहानी कहा जाता है। 'परी फारसी का शब्द है, जो 'परीदीन' से विकसित हुआ है। परीदीन का शाब्दिक अर्थ है– उड़ना।'[18] पश्चिमी देशों में इन्हें fairy कहा जाता है और इनसे संबंधित कहानियों को fairy tales कहा जाता है। थिंद के अनुसार, 'परी का भारतीय या पंजाबी संकल्प ऐसी अमानवीय युवती से है, जो आकाश में या दूर पहाड़ों पर निवास करती हैं और अपनी अलौकिक सुंदरता के कारण मोहित कर लेने की शक्ति रखती है।'[19] परियाँ अलौकिक सौंदर्यवाली ऐसी युवतियाँ होती हैं, जो अपने पंखों के माध्यम से स्वच्छंद होकर आकाश में उड़ती हैं।

पंजाबी लोककहानियों के अंतर्गत नूराँ शहजादी, खरबूजा जादी, लालपरी, फूलाँ शहजादी से संबंधित अनेक परी कहानियाँ प्रचलित हैं। परियों के अतिरिक्त इन कहानियों में सहायक पात्र बादशाह, सौदागर भी होते हैं। अनेक प्रकार की अनहोनी और असंभव घटनाएँ इन कहानियों में घटती हैं।

इन कहानियों का उद्देश्य केवल मंनोरंजन करना ही नहीं है। ये कहानियाँ मनुष्य को अच्छे मानवीय गुणों की ओर प्रेरित करती हैं। ये मनुष्य के अंदर साहस और उत्साह की भावना पैदा करती हैं। साहित्य सदैव मनुष्य का पथ-प्रदर्शन करता आया है। जो व्यक्ति कुदरती और अद्‌भुत शक्तियों को अजीब समझता आया है, वह इन शक्तियों से लड़ने के लिए लोकसाहित्य के इस अंग से प्रेरणा ग्रहण करता है। वर्तमान समय में बच्चे इन कहानियों में बहुत रुचि लेते हैं और अब इनको टी॰वी॰, सिनेमा पर भी दिखाया जा रहा है।

1.6 **प्रेत-कथाएँ**

भूत, प्रेत, जिन्न, डायन, चुड़ैल आदि से संबंधित कहानियों को प्रेत कहानियाँ कहा जाता है। पंजाबी लोककथाओं के अंतर्गत इनकी संख्या असीमित है। थिंद के अनुसार, 'मानवीय विश्वास के अनुसार जो आत्माएँ मरने के उपरांत मुक्ति प्राप्त नहीं करतीं, वे प्रेत बन जाती हैं। इस प्रकार जो जीव बेमौत मरते हैं, उनकी आत्माएँ भूतों का रूप धारण करती हैं। ऐसे सभी पात्र इस संसार से जा चुकी रूहों का मानवीकरण हैं, जो संगठित रूप में रहते हैं। वास्तव में भूत, प्रेत और अन्य अमानवीय पात्र मानवीय कल्पना और विश्वास की देन हैं। प्रेतकथाओं में स्वकल्पना, अथाह रोमांस, घटनाओं की भरमार, गुंझलदार प्लाट, नायक का आदर्शमय होना इत्यादि गुण प्रधान होते हैं। प्रत्येक प्रेतकथा का अंत सुखमय होता है और उद्देश्य निरोल मंनोरंजन।'[20] मनुष्य की अपने से अधिक शक्तिशाली शक्तियों से लड़ने और उन पर जीत हासिल करने की सहज भावना से भूत-प्रेत से संबंधित कथाओं का उदय हुआ। लोक का भी विश्वास है कि जिन मनुष्यों की इस संसार में रहते हुए इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं और वे किसी दुर्घटना में मारे जाते हैं या खुदकुशी कर लेते हैं, वह भूत-प्रेत के रूप में अपनी इच्छाओं को पूरा करते हैं। विज्ञान भले ही इसको अस्वीकार करता है किंतु लोकमन इसको स्वीकारता है।

1.7 **बुझावल कहानियाँ**

बुझावल कहानियाँ वे होती हैं, जो किसी पहेली या बुझारत के रूप में चलें, जिसके अंत में

सारी कहानी का रहस्य खुले। थिंद के अनुसार, 'जिस लोककहानी में पहेली, अटकल या प्रश्न के माध्यम से समस्या का उल्लेख किया गया हो उसे बुझावल कथा कहा जा सकता है। वास्तव में बुझावल कथा का संबंध किसी भी वर्ग या श्रेणी की लोककहानियों से हो सकता है–अलिफ-लैला, सिंहासन बत्तीसी और बैताल पचीसी आदि संग्रहों की बहुत सी कहानियाँ इसी श्रेणी की हैं।'[21] इन कहानियों में दिमागी कसरत भी होती है, क्योंकि इनमें कोई-न-कोई रहस्य व पहेली होती है, जो काफी दिमाग प्रयोग करने पर सुलझती है। भिन्न-भिन्न प्रकार की दंतकथाओं, नीति कथाओं इत्यादि में भी इस प्रकार की बुझावल कथाओं के रूप मिलते हैं, जिसके अंत में सारा रहस्य खुलता है।

बुझावल कहानियों की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये मंनोरंजन देने के साथ-साथ हमारी बुद्धि को तीक्ष्ण भी करती हैं, हमारे ज्ञान को बढ़ाती हैं, क्योंकि इनमें कोई-न-कोई सामाजिक सत्य भी छिपा होता है। ये लोकमानस की ऐसी मौखिक अभिव्यक्ति हैं, जो हमें गहराई से सोचने पर विवश करती हैं। इन कहानियों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इन कहानियों को सुननेवाला केवल श्रोता न रहकर, इस प्रकार की कहानी के अंत में समस्या के समाधान के लिए समझ, झान और अनुभव का परिचय देता है।

1.8 **टोटके या हिकायतें**

टोटके या हिकायत भी पंजाबी लोककहानियों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट रूप है। 'हिकायत' मूल रूप में अरबी का शब्द है, जिसके अर्थ हैं–कथा, कहानी या साखी इत्यादि। मध्यकाल में इस्लामी राज्य के जमाने में फारसी साहित्य के प्रभाव से यह शब्द फारसी से पंजाबी में प्रचलित हुआ है।'[22] फारसी का शब्द होने के कारण यह शब्द फारसी मूल की ही उन कथाओं के लिए प्रयोग होता रहा, जो फारसी साहित्य में हिकायत के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन कहानियों की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह अन्य कहानियों की भाँति बिल्कुल कल्पना पर आधारित न होकर जीवन की हकीकत या सच्चाई से संबंधित होती हैं। इनमें एक विशिष्ट नुक्ता या विचार प्रकट किया गया होता है। यह अद्‌भुत, दिलचस्प, रोचक होने के साथ-साथ शिक्षाप्रद और भावपूर्वक भी होती हैं। ये मंनोरंजक होने के साथ-साथ जीवन के यथार्थ पक्षों का उल्लेख भी करती हैं।

अत: लोककहानियों को विद्वानों की ओर से वर्गों में विभाजित करने के प्रयत्न होते रहे हैं किंतु अभी तक कोई भी विद्वान ऐसा विभाजन नहीं कर पाया, जो सर्वस्वीकृत हो। लोककहानियाँ स्वभाव की दृष्टि से तीन प्रकार की होती हैं–मिथ, दंत और काल्पनिक कथा। मिथ पूर्व ऐतिहासिक युग में घटित हुई मानी जाती हैं और ये ईश्वर, मनुष्य, विश्व, प्रकृति से संबंधित शंकाओं और रहस्यों का कल्पना के स्तर पर स्पष्टीकरण करती हैं। दंतकथा काल्पनिक और ऐतिहासिक तत्त्वों का सुमेल होता है। ये किसी ऐतिहासिक या काल्पनिक व्यक्ति, भौगोलिक स्थान और ऐतिहासिक कार्य से संबंधित होती हैं। तीसरे काल्पनिक कथा रूप के अंतर्गत पशु-पक्षी विषयक कहानियाँ, नीति कथाएँ, परी कहानियाँ, प्रेत-कथाएँ, बुझावल कहानियाँ, टोटके या हिकायतें आते हैं, जो कि निरोल काल्पनिक हैं। अत: लोककहानियाँ पंजाब की अमीर सांस्कृतिक विरासत हैं। ये विभिन्न श्रेणियों में हमें प्राप्त होती हैं। इसीलिए पंजाब के विभिन्न विद्वानों ने इन्हें एकत्रित कर उसी रूप में संकलित किया है। ये भले ही विभिन्न श्रेणियों में प्राप्त होती हैं, किंतु ये

एक दूसरे में गहरे से समाई हुई हैं। पंजाब की लोक-मानसिकता में यह अपना घर बना चुकी हैं।

संदर्भ

1. जतिंदर कौर, 'लोक कथावाँ: पछान चिन्न' (आलेख), सभ्याचार पत्रिका (अंक-11), सं॰ जसबीर कौर, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, पृ॰ 62
2. करनैलसिंह थिंद, लोकयान अते मध्यकालीन पंजाबी साहित, रवी साहित प्रकाशन, अमृतसर, 2011, पृ॰ 30
3. भाई काह्नसिंह नाभा, गुरशब्द रतनाकर महानकोश, भाषा विभाग, पंजाब, 1960, पृ॰ 219
4. सुखविंदर कौर बाठ, पंजाबी लोकसाहित्य : संस्कृति का आईना, शिवहरि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977, पृ॰ 134
5. उद्धृत करनैलसिंह थिंद, पंजाब दा लोक विरसा (भाग-एक), पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 2002, पृ॰ 162
6. जोगिंदरसिंह कैरों, पंजाबी लोककहानियाँ दा संरचनात्मक अध्यैन अते वर्गीकरण, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 1987, पृ॰ 6
7. जसविंदरसिंह, पंजाबी लोकसाहित शासतर, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 2003, पृ॰ 79
8. सोहिंदरसिंह वणजारा बेदी, मध्यकालीन पंजाबी कथा : रूप ते परंपरा, परंपरा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977, पृ॰ 14
9. करनैलसिंह थिंद, पंजाब दा लोक विरसा (भाग-एक), पृ॰ 163
10. जोगिंदरसिंह कैरों, पंजाबी लोककहानियाँ दा संरचनात्मक अध्यैन अते वर्गीकरण, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 1987, पृ॰ 7
11. बलबीरसिंह पूनी (सं॰), पंजाबी लोककहानियाँ : पाठ, सरूप ते सारथिकता, वारिस शाह फाउंडेशन, अमृतसर, पृ॰ 15
12. सोहिंदरसिंह वणजारा बेदी, मधकालीन पंजाबी कथा : रूप ते परंपरा, परंपरा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977, पृ॰ 108
13. बलबीरसिंह पूनी, पंजाबी लोकधारा अते सभ्याचार, वारिसशाह फाउंडेशन, अमृतसर, 2013 पृ॰ 56
14. वही, पृ॰ 57
15. करनैलसिंह थिंद, पंजाब दा लोक विरसा (भाग-एक), पृ॰ 176
16. वही, पृ॰, 177
17. सुखविंदर कौर बाठ, पंजाबी लोकसाहित्य : संस्कृति का आईना, पृ॰ 133
18. कर्मजीत कौर (सं॰), पंजाबी लोककहानियाँ : पाठ ते समालोचना, वारिसशाह फाउंडेशन, अमृतसर, 2012, पृ॰ 22
19. करनैलसिंह थिंद, पंजाब दा लोक विरसा (भाग-एक), पृ॰ 190
20. वही, पृ॰ 180
21. वही, पृ॰ 181
22. कर्मजीत कौर (सं॰), पंजाबी लोककहानियाँ : पाठ ते समालोचना, पृ॰ 02

मो॰ 09888050733

sandyjattana12@gmail.com

मानस और मानवमूल्य

डॉ॰ जी॰ शांति
असिस्टेंट प्रोफेसर

मानवतावाद, मानववाद, मानवमूल्य सब मानव के मूल में है और मानव-केंद्रित हैं। मानववाद राष्ट्र, जाति, धर्म और इस प्रकार की अन्य सीमाओं का अतिक्रमण करनेवाली नैतिक व्यवस्था में विश्वास रखता है, जो सभी मानवमूल्यों को इसी संसार के अनुभवों और संबंधों पर आधारित मानकर स्वतंत्रता और प्रगति के लक्ष्य पर चलता है। मानववाद उस उत्तम जीवन को आवश्यक मानता है, जो व्यक्ति के आत्मविकास और समाज-कल्याण की भावना से उदित होता है।

'मूल्य अवधारणा' से तात्पर्य मानव की उस मानवतावादी दृष्टि से है, जिससे मानव अपना 'मम्' और 'ममेतर' से ऊपर सार्वजनिक हित और सुख के नियमों या धारणाओं का विकास करता है। मानवतावादी दृष्टि से निष्पन्न चेतना का नाम ही मूल्य-अवधारणा है।

बोगार्ड्स के अनुसार सभी मानवीय संबंध और व्यवहार मूल्य ही हैं। मानवीय क्रियाओं में आचार-व्यवहार में अच्छाई या शिवत्व का मूल्य क्या है, यही नीतिशाास्त्र का विषय है।

—डॉ॰ प्रभाकर माचवे

स्पष्ट है कि मूल्यों का व्यक्तिगत जीवन में ही नहीं, सामाजिक संदर्भ में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय आचार्यों और ऋषि मुनियों ने जीवन को श्रेष्ठ बनाने और परमानंद की प्राप्ति के लिए जिन पुरुषार्थों की रचना की है, उन्हें ही भारतीय दर्शनशास्त्र में मूल्यों के रूप में स्वीकार किया गया है। इनका अनुसरण कर मानव इहलोक और परलोक दोनों में सुख प्राप्त कर सकता है। प्रेम, दया, करुणा, सत्य, अहिंसा, विनय, समभाव, समर्पण, वात्सल्य, भ्रातृत्व, मातृप्रेम, कर्तव्यपालन, स्नेह आदि ऐसे मूल्य हैं, जिन्हें हर काल और हर देश में समान रूप एवं दृष्टि से स्वीकारा जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास हिंदी रामभक्ति काव्यधारा के श्रेष्ठ भक्तकवि हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति में उदात्त, श्रेष्ठ एवं मांगलिक तत्त्वों को समाहित कर जन-जन के लिए प्रेरणास्रोत बना दिया। मानवीय जीवन के मूल्य-निर्माण में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारतीय संस्कृति के विकास में ये जीवनमूल्य काफी सहायक रहे हैं, जिनके बिना जीवन का विकास संभव नहीं है। उन्होंने श्रीराम के चरित्र द्वारा जिस आदर्श जीवन का निर्माण किया है, उसे समस्त मानव-जाति का उच्च आदर्श स्वीकारा जा सकता है। तुलसी का रामचरितमानस हर प्रकार से जनजीवन से जुड़ा हुआ है।

विश्व के प्राणियों में 'मानव' श्रेष्ठ माना जाता है। तमिल कवयित्री औवैयार का कथन है—'अरिदल अरिदल मानिडराय पिरत्तल अरिदु' अर्थात् मानव-जीवन या जन्म अति दुर्लभ है। इसलिए भगवान विष्णु भी अपने रामावतार में मानव के रूप में, मानव बनकर मानवीय जीवन की

 ISSN 0975-735X

बिताते हैं। 'मानस' मानव का काव्य है। तुलसी के राम शांति के प्रतीक हैं। वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। वे साक्षात नारायण हैं। फिर भी वे वही करते हैं, जो एक मनुष्य करता है। वे अलौकिक नहीं करते, पर उस मर्यादा और आदर्श की ऊँचाई स्थापित कर जाते हैं, जिसे छूकर मनुष्य भी देवता बन जाता है।

मानव-मात्र में मानवमूल्यों के विकास के लिए तुलसी ने रामकथा को इस प्रकार व्याख्यायित किया है कि 'मानस' मानवीय मूल्यों की आचारसंहिता ही बन गया है। रामकथा में धैर्य, क्षमा, करुणा, संतोष, शील, सत्य, विवेक, संयम, त्याग आदि मूल्यों को समाविष्ट कर दिया गया है, जिनके द्वारा मानव का आध्यात्मिक उत्कर्ष संभव है। तुलसी के अनुसार मानव-मात्र के आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए धर्म पर आस्था अनिवार्य है। वास्तव में धर्म मानव-जीवन को उदात्त और परिष्कृत करने का साधन है। तुलसी के राम तो साक्षात धर्म-विग्रह हैं। इसलिए मानव की आध्यात्मिक उन्नति के लिए राम से श्रेष्ठ प्रतिमान और कौन हो सकता है?

तुलसी ने राम के पृथ्वी पर नर रूप में अवतरण की कल्पना के मूल में दुष्टों का अनाचार, अत्याचार और अन्यायपूर्ण कृत्यों का निवारण ही बतलाया है।

परिवार समाज का अंग है। परिवार एक ओर व्यक्ति की सुख-सुविधाओं का विधान करता है तो दूसरी ओर उनमें अनुशासन, सदाचार, कर्तव्यपरायणता, कष्टसहिष्णुता, त्याग एवं स्नेहशीलता आदि सद्‌गुणों का विकास करता है। तुलसी ने राजा-प्रजा का, भाई-भाई का, गुरु-शिष्य, माता-पुत्र, सास-बहु, पती-पत्नी, सेवक-स्वामी, मित्र-मित्र आदि के बहुत ही उच्च मूल्यों को 'मानस' में प्रस्तुत किया है।

राम बड़े भाई होने पर भी, अपने किसी भाई को क्रोध में डाँटते नहीं। अपनी इच्छा को भी आज्ञा के रूप में नहीं बल्कि सलाह के रूप में भाइयों तक पहुँचाते हैं। कैकेयी के मुख से भरत को राज्य देने की बात सुनकर राम प्रसन्न हो उठते हैं। लक्ष्मण को वन जाने की आज्ञा नहीं, फिर भी वे राम के साथ वन जाने के लिए तत्पर थे।

राजकुमार होने पर भी राम गुरु और मुनियों का सदा आदर करते थे। वन में उनकी भारद्वाज, वाल्मीकि, आत्रेय, अगस्त्य आदि मुनि से भेंट होती है। उन सबके प्रति आदर-भाव की अभिव्यक्ति का तुलसीदास ने स्पष्ट उल्लेख किया है। गुरु वसिष्ठ और विश्वामित्र के प्रति राम ने शिष्य के समान व्यवहार किया है। इससे गुरु-शिष्य-संबंध, गुरुभक्ति, गुरु का महत्त्व के साथ शिष्य के व्यवहार एवं कर्तव्य पर भी प्रकाश डाला गया है।

राम आज्ञाकारी पुत्र थे। माता-पिता की आज्ञा से राज्य को त्यागकर वन निकले। भरत के राज्य लौटाने पर भी नहीं स्वीकारते। कैकेयी के प्रति भी जो विषादरहित स्नेह, विनम्रता व्यक्त करते हैं, वह अनुकरणीय है।

वनमार्ग में राम के प्रति ग्रामवासी नर-नारियों के सहज आत्मीयता-भरे व्यवहार और राम भोले-भाले ग्रामीण जनों से तादात्म्य स्थातिप करना वह सब भी मानवीयता के अद्‌भुत एवं गरिमामय दृश्य हैं। राम को दीन-हीन, गरीब, असहाय, अकुलीन, भूखे-नंगे लोग याद आते हैं, वे ही उनके बंधु हैं। शबरी भील जाति की स्त्री है। लेकिन राम उसके यहाँ कंद-मूल एवं बेर प्रेमपूर्वक खाते हैं। उनके मन में उसके प्रति घृणा नहीं बल्कि अधिक स्नेह ही है। अहल्या गौतम ऋषि की पत्नी है। इंद्र के छल के कारण उसका सतीत्व नष्ट हो जाता है। पति के शाप से पत्थर

बन जाती है। राम उसे पुनः नारी की गरिमा प्रदान करते हैं।

राम निषादराज गुह, सुग्रीव और विभीषण से सखाभाव स्थापित करते हैं। वे बंदर, भालुओं को भरत से भी अधिक प्रिय कहकर मानवता का श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत करते हैं। हनुमान राम के अत्यंत प्रिय तथा सीता के पुत्र हैं। हनुमान के उपकार से राम अत्यधिक कृतज्ञ रहते हैं।

रावण दावन है। वह अन्यायी एवं अत्याचारी है। देव-ऋषियों को तड़पाया है। सीता का हरण किया है। इस प्रकार लोकमर्यादा भंग करनेवाले रावण का नाश करते हैं श्रीराम। पर उसके भाई विभीषण को मित्र एवं बराबरी का स्थान प्रदान करते हैं। विभीषण को राज्य सौंप देते हैं।

तुलसी के राम विनम्र, अहिंसक और शांत स्वभाव के हैं। इसलिए समुद्र से मार्ग देने का अनुरोध करते हैं। जब नहीं मिला तो शस्त्र धारण करने को तत्पर होते हैं। तब समुद्रराज क्षमा माँगता है और समुद्र-बंध का उपाय भी बतलाता है।

पत्नी के सुख का सदा ख्याल रखना, एक आदर्श पति का गुण ही नहीं कर्तव्य भी है। वन-गमन के अवसर पर राम सीता को कर्तव्य, कुटुंब की परंपरा के आधार पर समझाते और वन न आने के लिए बताते हैं। सास-ससुर की सेवा का आदर्श और जंगल के कष्टों से सीता को अवगत कराते हैं।

महारानी सीता भी पत्नी के आदर्श का पक्ष सशक्त रूप में निभाती हैं। सीता सदा पति-हित में तत्पर रहती थीं। अपनी सासों की सेवा भी बड़े निरभिमान भाव से मनोयोगपूर्वक करती है। सीता के लिए सुख एवं संतुष्ट अपने पति श्रीराम के चरणों में ही है। इसलिए वह राजमहल नहीं चाहतीं बल्कि राम के साथ, पति की छाया बनकर पति की छाया में जीना पसंद करती हैं इसलिए वन जाना चाहती हैं। आदर्श पत्नी के रूप में मानस में मंदोदरी, तारा, कौशल्या, सुमित्रा तथा सुनयना का चरित्र-चित्रण किया गया है।

तुलसी के राजा राम लोकनायक अधिक थे, शासक कम। वे विधान नहीं बनाते थे, आचरण प्रस्तुत करते थे, जो श्रुतिपथ द्वारा निर्देशित थे।

राम के व्यक्तित्व में स्वार्थ की छाया भी नहीं थी। राम को सभी चाहते थे, उसका कारण उनका सौंदर्य और शील-स्वभाव ही था। राम धर्मशील, नीतिकुशल और वीर हैं। रामराज्य में मानवजाति को सुख-शांति मिली थी। तुलसी रामराज्य को आदर्श राज्य एवं राम को आदर्श राजा मानते हैं। राम के राज्य में भौतिक समृद्धि, भावनात्मक आनंद तथा वैचारिक समाधान तीनों स्थितियों के लिए पूर्ण सुलभता थी।

रामचरितमानस तुलसीदास का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसके द्वारा तुलसी ने हमारी आध्यात्मिक और भौतिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है। तुलसी ने सामाजिक आदर्शों या लोकहित के रक्षार्थ 'मानस' का निर्माण किया, जिसके अनुसरण से आज भी मनुष्य सही अर्थ में सुख और शांति का जीवन-यापन कर सकता है। समाज में व्याप्त विलासिता, अत्याचार, नैतिक पतन एवं सांस्कृतिक रूढ़िबद्धता ने उन्हें प्रभावित किया और मानस के माध्यम से इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया। राम मानस के नायक ही नहीं, उनका चरित्र मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण है जो हर युग की मानव-जाति का पथप्रदर्शक है। यह अतिशयोक्ति नहीं है कि मानस मानवमूल्यों से भरा अमूल्य निधि का भंडार है।

 ISSN 0975-735X

संदर्भ

1. समकालीन विचारधाराएँ और साहित्य, डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, तक्षशिला प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2002
2. रामचरितमानस विविध संदर्भ, मुकुंदलाल मुंशी, नवोदय सेल्स, दिल्ली, संस्करण 1993
3. गोस्वामी तुलसीदास व्यक्ति और काव्य, संपादक डॉ॰ रमेशचंद्र शर्मा, डॉ॰ रुचि बाजपेई, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2007
4. तुलसी की काव्यभाषा, डॉ॰ हरिनिवास पांडेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2008
5. साहित्य और मानवीय संवेदना, डॉ॰ सदानंद भोखले, विकास प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण 1012
6. नैवेद्य, संपादक यदुवंशराम त्रिपाठी शोभा सत्यदेव, साहित्य परिषद्, अयोध्या।

श्री अबिरामी इल्लम
2/179 B2 **वनप्रस्थारोड, वडवल्लि**
कोयंबत्तूर 641041 **तमिलनाडु**

गोस्वामी तुलसीदास की स्त्रीविषयक दृष्टि

रामबाबू
शोधछात्र, हिंदी विभाग
गुरुकुल काँगड़ी, विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखंड)

हिंदी साहित्य के मस्तक में जगमगाते चंद्रतुल्य गोस्वामी तुलसीदास का पदार्पण संवत् 1589 (सन् 1532 ई॰) में होता है। उनके साहित्य में समाज की उस संजीवनी शक्ति एवं अर्द्धांगिनी का चित्रण मिलता है, जिसके बिना लोकयात्रा निष्फल और सृष्टि-चक्र प्रवर्तन असंभव है। जो कुल एवं समाज को एक सूत्र में पिरोनेवाली तथा शील, स्नेह, सौहार्द और सृजन की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। यदि हम संपूर्ण साहित्य-संसार का अवगाहन करते हैं, तो पाते हैं कि वैदिक काल में स्त्री को पूजनीय माना जाता था। महर्षि मनु ने स्पष्ट रूप से लिखा है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।[1]

परंतु उत्तर वैदिककाल तक आते-आते नारी को पराधीन बनाकर बचपन में पिता को, यौवन में पति को, वृद्धावस्था में पुत्र को उसका संरक्षक नियुक्त कर दिया गया। जैसा कि महर्षि मनु ने लिखा है–

पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः, न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हति।[2]

इस प्रकार पग-पग पर बेड़ियों में जकड़कर उसे भोजन-कक्ष से शयन-कक्ष तक सीमित कर पूर्णयता अबला बना दिया गया। मध्यकाल तक आते-आते तो स्त्रियों की दशा और भी दयनीय हो गई। अब नारी भोग-विलास की वस्तु बन गई, उसे चारदीवारी के अंदर डाल दिया गया। वह बहुविवाह की शिकार हो गई। भक्तिकाल में उसकी स्थिति इतनी दुःखदायी हो गयी कि उसे विवशता, आत्मदमन, बलिदान और दासता का जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था। उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्तित्व नहीं रह गया। तदयुगीन परिस्थितियों का प्रभाव कवि तुलसीदास पर भी पड़ा, क्योंकि किसी कवि या साहित्यकार को प्रेरक बिंदु प्रदान करने में तत्कालीन परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। युगीन घटनाएँ ही साहित्य के स्वरूप को आकार प्रदान करती हैं। तुलसी के समय नारी की वास्तविक स्थिति क्या थी, इसको रेखांकित करते हुए डॉ॰ इंद्रनाथ मदान ने लिखा है–'तुलसी के समय स्त्री को परिवार में बंधन अनेक थे, भय अनेक थे व स्वच्छंदता और अधिकार कम। आर्थिक दृष्टि से वह पुरुष के ऊपर आश्रित थी, मुगलों और पठानों की क्रूर सौंदर्यलिप्सा ने उसे वासनात्मक आकर्षण एवं विलासात्मक महत्त्व ही दे रखा था। उस समय समृद्ध समाज में बहुपत्नीत्व का प्रचलन था।'[3]

 ISSN 0975-735X

यद्यपि हिंदी साहित्य में तुलसीदास किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं, परंतु उनकी नारी-भावना विद्वानों एवं आलोचकों के बीच प्राय: विवाद का विषय रही है। उनकी स्त्रीविषयक दृष्टि पर समाज में अनेक भ्रांतियाँ हैं, कोई उन्हें नारी-विरोधी घोषित करते हुए यह कहते हैं कि तुलसी नारी के प्रति अनुदार थे, वे उसकी निंदा का कोई अवसर नहीं छोड़ना चाहते थे, तो कुछ का यह मानना है कि तुलसी नारी के आदर्श रूप के प्रति सदैव नतमस्तक रहे। यदि इन सभी तथ्यों का विश्लेषण किया जाए और उनके साहित्य का निष्पक्ष अवलोकन किया जाय तो उनकी रचनाओं में मूलत: नारी के दो रूप दिखाई देते हैं–1. कामिनी रूप, 2. पतिव्रता रूप। तुलसीदास ने नारी के इन दोनों रूपों का लक्षण स्पष्ट करते हुए लिखा है–

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय, बचन, मन पतिपद प्रेमा।
जग पतिब्रता चारि विधि अहहीं। वेद, पुरान, संत सब कहहीं।
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।
मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता, पिता, पुत्र निज जैसें।
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई।
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई।
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई।
पतिव्रति कुल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई।[4]

तुलसीदास ने नारी के कामिनी रूप की घोर निंदा की है तथा उसको खूब खरी-खोटी सुनाई है। उनका मानना था कि नारी का यह रूप ही पुरुष के अपकर्ष एवं विनाश का प्रमुख कारण है। नारी के कामिनी रूप के प्रति आकर्षित होने के कारण ही नारद का पतन हुआ, दशरथ ने राम-जानकी-लक्ष्मण को वनवास दिया और रावण का सर्वनाश हुआ। उसके इस रूप की निंदा करते हुए उन्होंने निम्न बातें कही हैं–

काह न पावकु जरि सके काह न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ।[5]

तुलसीदास ने यह भी बताया है कि उस समय पुरुष नारी के काम के वशीभूत (स्त्रैण) होकर मदारी के बंदर की भाँति नाच रहे थे, यहाँ तक कि लोग अपनी बहन-बेटी को भी वासना का शिकार बना रहे थे। इसको लक्ष्य करते हुए उन्होंने लिखा है–

1. नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट-मर्कट की नाईं।[6]
2. अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा।
कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा।[7]

तुलसी के इन कथनों से तत्कालीन सामाजिक पथभ्रष्टता एवं नारी की दुर्दशा का पता चलता है कि कामवासना के उन्माद की चतुर्दिक व्याप्ति के कारण कहीं भी स्त्री के लिए सुरक्षित स्थान नहीं रह गया था। वासना के वशीभूत होने के कारण पारिवारिक आदर्शमयता भी विनष्ट हो रही थी। इसलिए तुलसी ने जहाँ भी नारी को अपने दायित्व से च्युत, सामाजिक मर्यादा के विरुद्ध एवं कुत्सित चरित्र तथा धर्म तप, निवृत्ति या मोक्ष में बाधक पाया है, वहाँ उसकी जमकर भर्त्सना की है। नारी के कामिनी रूप के कारण ही वे उसे स्वतंत्रता-हेतु प्रोत्साहन नहीं देते हैं और स्पष्ट रूप

से कहते हैं–

महावृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं।[8]

इस प्रकार उन्होंने कुलटा एवं अनिश्चित मनोवृत्तिवाली नारी को खूब लताड़ा है तथा यह माना है कि उसके छल से भरे हृदय के रहस्य को समझने में मानव तो क्या, विधाता भी समर्थ नहीं है। तुलसी भरत के माध्यम से माँ कैकेयी को धिक्कारते हुए कहते हैं–

विधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी।[9]

इस प्रकार तुलसी ने तत्कालीन समाज की परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों के प्रभाव से नारी को विलास की सामग्री मानकर उसको भला-बुरा कहा है तथा उसके उस रूप को त्याज्य माना है, जो पुरुष को पतित करनेवाली एवं अपनी कालाग्नि से दग्ध करनेवाली है। परंतु उनके अंतर्मन में किसी-न-किसी रूप में नारी मर्यादा एवं उसकी पवित्रता के पति श्रद्धा और आदर का भाव सतत बना रहा है।

गोस्वामी तुलसीदास की स्त्रीविषयक दृष्टि में इन दो कथनों पर विशेष रूप से आरोप-प्रत्यारोप लगाये जाते हैं और उनको नारीविरोधी करार दिया जाता है–

1. ढोल, गवाँर, सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।[10]
2. नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं।
   साहस, अनृत, चपलता, माया। भय, अबिबेक असौच, अदाया।[11]

यदि तुलसी के इन कथनों का विश्लेषण किया जाए तो, 'ढोल गवाँर सूद्र-पशु नारी' वाली उक्ति जड़ समुद्र ने प्रभु श्रीराम से अपनी दीनता प्रकट करने के लिए या अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से कहने के लिए की है। यहाँ 'ताड़ना' का अर्थ मारना न होकर भली प्रकार से देखना या शिक्षा देना तथा 'अधिकारी' का अर्थ आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग करना है। अर्थात् आवश्यकता पड़ने पर कुलटा नारी को शिक्षित करके या भली प्रकार से देखभाल के द्वारा रास्ते पर लाया जा सकता है। इसी प्रकार दूसरी उक्ति 'नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं' मोहग्रस्त रावण ने अपनी पतिव्रता पत्नी मंदोदरी के प्रति असहिष्णुता व्यक्त करने के लिए कही है। ये दोनों कथन खलनायक पुरुष पात्रों के द्वारा कहे गए हैं। इससे यह बात तो तय हो जाती है कि तत्कालीन परिस्थितियों में नारी की स्थिति इतनी दु:खद थी कि उसकी तुलना ढोल, गवाँर, सूद्र और पशुओं से की जा रही थी और उसके स्वभाव पर साहस, झूठ, चपलता, माया, भय, अविवेक, अपवित्र, अदाया इत्यादि आठ अवगुणों का आरोप मढ़ दिया गया था।

तुलसी के इन कथनों को खलनायकों का कथन कहकर खारिज तो किया जा सकता है, किंतु ऐसा नहीं है कि उन्होंने दुष्ट पात्रों के माध्यम से ही नारी की निंदा की है, बल्कि अपने आराध्य श्रीराम के मुख से भी ऐसे कथन कहलवाए हैं, जो स्त्री-विमर्श वालों को आज भी नागवार गुजरते हैं। जैसा कि तुलसी ने लिखा था–

1. जैहऊँ अवध कवन मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।
   बरु अपजस सहतेऊँ जग माँहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं।[12]
2. वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।
   ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।[13]

अर्थात् उस समय नारी का समाज में कोई विशेष मूल्य नहीं था, पुरुष बहुविवाह कर सकते

थे। उनके ऊपर किसी प्रकार के बंधन नहीं थे। जबकि नारी को अनेक प्रकार के बंधनों से जकड़ दिया गया था। उसके लिए यहाँ तक कहा गया था कि यदि वह वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अंधा, काना, क्रोधी एवं सब प्रकार से हीन पति का भी अपमान करती है, तो वह नरक में पड़ती है।

तुलसी के इन कथनों के माध्यम से उनके सामंतवादी दृष्टिकोण का पता चलता है। नि:संदेह, तुलसी नारी-चेतना के संदर्भ में अपने युग की सामाजिक सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर सके हैं, परंतु इन प्रसंगों या कथनों के आधार पर उन्हें नारी-विरोधी घोषित करना उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि उनका युग आज के युग से भिन्न था। उन दिनों अकबर के मीना बाजार में नारियों की क्या दुर्दशा होती थी, यह किसी से छिपा नहीं है। दूसरी प्रमुख बात यह है कि उन्होंने अधिकतर कुलटा या कामिनी नारी की ही बुराई की है। उनके उपर्युक्त कथनों से आदर्श एवं पतिव्रता नारी की गरिमा को तनिक भी खरोच नहीं आई है। इस संदर्भ में पंडित गंगाधर मिश्र ने लिखा है–'जो लोग इन कथनों द्वारा तुलसी पर स्त्री-निंदा का जघन्य आरोप करते हैं, उनमें नारी-शक्ति की चिरंतन महनीयता को न तो समझने की शक्ति है और न तो उसकी निरंकुश तामसी वासनाओं को हृदयंगम करने में ही ये लोग समर्थ हैं। पतंग की भाँति जीवन के सर्वस्व-पौरुष को तिलांजलि देने वाले ऐसे घरबसुआ लोगों का आक्षेप सर्वथा विवेकशून्य है।'[14]

गोस्वामी तुलसीदास पतिपरायण, कर्तव्यपरायण, शीलवती एवं सात्विक नारियों के प्रति सदैव नतमस्तक रहे हैं तथा उनके पतिव्रता रूप की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने उसको माता एवं जगज्जननी का दर्जा प्रदान किया है। उन्होंने नारी के इस रूप का शृंगार-वर्णन भी बहुत ही सधे शब्दों में किया है, जिसमें भोग-विलास की बू तक नहीं आई है। शायद यही कारण रहा है कि उन्होंने शिव-पार्वती-विवाह में माँ पार्वती के शृंगार का वर्णन बहुत ही आदर्शात्मक तरीके से किया है–

जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहऊँ बखानी।
करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गणन्ह समेत बसहिं कैलासा।[15]

दांपत्यप्रेम का दृश्य तुलसी ने बहुत ही मर्यादित और सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। सीता-राम के परम पुनीत प्रणय की प्रतिष्ठा, पति-पत्नी संबंधों की उच्चता और रमणीयता को उन्होंने इस तरह से प्रस्तुत किया है, जो दु:ख की परिस्थिति में भी प्रेम की शीतल छाया एवं सुखद अनुभूति कराता है। जब सीता राम के साथ वन जाती हैं, तो रामचंद्र जी उनका पूरा ध्यान रखते हैं। जिसका चित्रण तुलसीदास ने इन शब्दों में किया है–

पुर तें निकसी रघुवीर वधू, धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जल की, पुटि सूखि गए मधुराधर वै।
फिर बूझति है, चलनो अब केतिक, पर्नकुटि करिहौं कित ह्वैं।
तिय की लखि आतुरता पिय की, अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै।[16]

इतना ही नहीं, सीता के वियोग को प्रभु राम सहन नहीं कर पाते। वे उनको खोजने के लिए वन-वन भटकते हैं तथा बिलख-बिलख कर रोते हैं तथा पशु-पक्षियों से उनके बारे में पूछते हैं–

1. हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।[17]

2. सिय वियोग दु:ख केहि विधि कहऊँ बखानि। फूलबान ते मनसिज बेधत आनि।[18]

सीता जी के बिना राम अधीर एवं अधूरे हैं। विष्णु का अवतार होते हुए भी उन्हें पत्नी के

बिना डर लग रहा है। तभी तो वे कहते हैं–

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।[19]

इतना ही नहीं तुलसी ने नारी को आपत्तिकाल का संबल बताया है। सती अनुसूइया, सीताजी को उपदेश देते हुए कहती हैं कि विपत्ति के समय मनुष्य का सभी साथ छोड़ देते हैं, परंतु नारी साथ नहीं छोड़ती है। जिसको तुलसी ने मानस में इस रूप में शब्दबद्ध किया है–

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परखिअहिं चारी।[20]

सीताजी भी श्रीराम की अनुगामिनी, सहधर्मिणी एवं पतिव्रता नारी के रूप में जीवन व्यतीत करती हैं तथा अपने अस्तित्व को प्रभु के बिना अधूरा मानती हैं और कहती हैं–

प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।
जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधिगुनी।
निज कर गृहँ परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई।
जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ।
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं।[21]

इस प्रकार तुलसी ने दांपत्य-प्रेम के अद्‌भुत चित्र प्रस्तुत किए हैं। यद्यपि राजभवन में सेवा परिपाटी में सुलभ अनेक सेवक तथा सेविकाएँ हैं, परंतु सीताजी अपने हाथ से गृह का सारा कार्य करती हैं तथा मर्यादा सहित एवं गर्व से रहित होकर सभी सासुओं की सेवा करती हैं और प्रभु श्रीराम का अनुसरण करती हैं। वस्तुत: सियाराम के प्रेम में इतनी प्रगाढ़ता है कि कँटीले वन प्रदेश का पथ भी प्रसूनमय हो जाता है एवं प्रेम संजीवनी रस के रूप में प्रेमी के सारे जीवन एवं कर्मक्षेत्र को जगमगा देता है, जिसको लक्ष्य करते हुए विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है–'तुलसीदास ने जिस प्रेम की उद्‌भावना की है, वह लोक के मेल से चलनेवाला प्रेम था। वह समय के बहुत निकट है, उसे काल्पनिक, कृत्रिम आदि विशेषण नहीं दे सकते। उन्होंने जहाँ कहीं पति-पत्नी के प्रेम का रूप दिखाया है, मर्यादा की शृंखला में कसा हुआ है। तुलसीदास ने पागल कर देनेवाले प्रेम की कल्पना समाज के भीतर ही की है, उससे बाहर नहीं। न तुलसीदास के इस आदर्श प्रेम की रक्षा आगे के रामचरित लेखकों से बन पड़ी है। वह उन्हीं के साथ रहा और उन्हीं के साथ चला गया।'[22]

तुलसी ने नारी-शक्ति के मातृत्व प्रेम की अद्‌भुत छटा बिखेरी है। माँ की ममता के प्रति उनका आदर-भाव उभरकर एकदम ऊपर आ गया है। जब भगवान राम वन-गमन के लिए माता कौसल्या से आज्ञा लेने जाते हैं, तो वे कहती हैं–

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।[23]

यहाँ पर तुलसी ने पिता की अपेक्षा माता को महत्तर स्थान प्रदान किया है तथा पतिभक्ति की प्रतिष्ठा की है। इसमें सौत के प्रति भी एक आदर्शभाव का प्रस्तुतीकरण हुआ है। नारी-शक्ति के प्रति आराध्य भावना की अभिव्यंजना जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने की है, शायद उनके समकालीन किसी अन्य कवि ने उतनी सहृदयता से नहीं की है। उन्होंने सीताजी की माधुर्य भक्ति और पार्वतीजी के प्रति अपनी श्रद्धा-भावना को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है–

जय-जय गिरिबर-राजकिसोरी। जय महेस मुख चंद चकोरी।
जय गजबदन षडानन माता। जगत-जननि दामिनी दुति गाता।
नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना।
भव-भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्वबिमोहनि स्वबस-बिहारिनि।
सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायनी त्रिपुरारि पियारी।
देवि पूजि पद-कमल तुम्हारे। सुर-नर मुनि सब होहिं सुखारे।[24]

चूँकि तुलसी समाजसंपृक्त कवि थे, इसलिए वे नारियों की सामाजिक स्थिति के प्रति भी सदैव जागरूक रहे। उस समय समाज में बहुविवाह एवं सती-प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयाँ प्रचलित थीं। उन्होंने इन बुराइयों पर गहरा आघात किया तथा नारी के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए पुरुष के लिए एक पत्नीव्रत की धर्मसंहिता प्रस्तुत की, जिसको मानस में तुलसी ने इस रूप में चित्रित किया है–

एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।[25]

अर्थात् पुरुष एक नारी व्रत का पालन करते हैं और स्त्रियाँ मन, वचन और कर्म से पति का हित करनेवाली हैं। तुलसीदास की यह प्रमुख विशेषता ही थी कि उन्होंने नारी-पुरुष दोनों के लिए समान आदर्श एवं मानदंड निर्धारित किए हैं। यदि वे नारी से पतिव्रत होने की उम्मीद करते हैं, तो पुरुष से भी मर्यादा में रहने की आशा करते हैं और कहते हैं–

1. जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव विष तें विष भारी।[26]
2. जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।
   सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाई।[27]
3. परद्रोही परदार रत, परधन पर अपबाद।
   ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद।[28]

तुलसी अपने युग की वैचारिक सीमाओं को तोड़कर क्रांतिकारी ढंग से नारी-सुरक्षा की वकालत करते हैं तथा उसे माँ, बहन, बेटी के रूप में अत्यंत गरिमामय स्थान प्रदान करते हैं तथा इसकी उद्घोषणा करते हुए कहते हैं–

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।[29]

इस प्रकार विषम परिस्थितियों में भी तुलसी ने समाज-उद्धार का जो बीड़ा उठाया था, उसे पूरा करने का भरपूर प्रयास किया। उनके इस अवदान को रेखांकित करते हुए डॉ॰ इंद्रनाथ मदान ने लिखा है–'तुलसी समाज-सुधारक थे, समाज-व्यवस्था की दृष्टि से गुण-धर्म का प्रतिपादन भी उनका लक्ष्य था। अपने अध्ययन, सत्संग और संस्कारों के अनुसार उन्होंने परंपरावादी दृष्टिकोण अपनाया। उस क्रम में नारी-निंदा भी आ गई। इस माध्यम से कवि ने पुरुष-जाति के स्वभाव का भी उद्घाटन कर दिया है।'[30]

साररूप में यदि देखा जाय तो तुलसी की स्त्रीविषयक दृष्टि काफी संतुलित नजर आती है, क्योंकि उन्हें नारी में जहाँ भी अच्छाई दिखी है, उसकी प्रशंसा की है और जहाँ भी वह लोकमंगल या लोक-व्यवस्था में बाधक दिखी है, उसकी बुराई की है। इसलिए उन्हें स्त्री-निंदक नहीं कहा जा सकता है। इस बारे में टिप्पणी करते हुए पं॰ गंगाधर मिश्र ने लिखा है–'जहाँ तक नारी की

तामसी प्रकृति है, अथवा जहाँ तामसी प्रकृति के पुरुष द्वारा नारी की वशवर्तिता का साहस प्रदर्शन है अथवा जहाँ आत्मसाक्षात्कार की दिव्य साधना के लोकपावन संकल्प के प्रसंग में नारी की प्रमदा प्रकृति है, वहाँ नारी-निंदा का स्वर मुखरित हुआ है, किंतु जहाँ व्यक्ति मंगल तथा लोकमंगल की दृष्टि से उन पर विचार किया गया है, वहाँ तुलसीदास ने नारी के प्रति अपनी भक्ति और आत्मीयता की अभिव्यंजना की है। इसलिए तुलसी को स्त्री-निंदक नहीं कहा जा सकता है।'[31]

निष्कर्षत:, तुलसी के साहित्य में नारी के विविध व व्यापक आयाम दिखाई पड़ते हैं। कहीं वह परतंत्र और असहाय नजर आती है, तो कहीं पुरुष की सहधर्मिणी बनकर खड़ी है। अनगिनत उदाहरण पेश करके उन्होंने दिखाया है कि वैदिककाल से चली आ रही नारी का विकास कैसे हुआ है और कैसे होना चाहिए। साथ ही यह भी दिखाया है कि कोई भी पुरुष नारी के बिना महान नहीं हुआ। तुलसीदास जी स्वयं ही इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है–'हम तो चाखा प्रेम रस पत्नी के उपदेश।' उन्होंने जिस सहृदयता के साथ नारी-जाति का अभिनंदन किया है, वह सर्वथा स्तुत्य है। हमें आज तुलसी पर गर्व करने की जरूरत है, क्योंकि उन्होंने जिस नारी-दृष्टि को जन्म दिया है, वह अजेय और आज भी प्रासंगिक है। पत्नी, माँ, बहन का जो आदर्श उन्होंने प्रस्तुत कर दिया है, वह शायद हिंदी साहित्य में दुर्लभ है। वर्तमान में उसे घर-घर में जो सम्मान मिल रहा है, शायद वह तुलसी की ही देन है।

संदर्भ

1. मनुस्मृति, अध्याय-3, श्लोक 56, समर्पण शोध संस्थान गाजियाबाद, वि॰ संवत् 2053, पृ॰ 11
2. मनुस्मृति, अध्याय 8 श्लोक 3, समर्पण शोध संस्थान गाजियाबाद, वि॰ संवत् 2053, पृ॰ 9
3. तुलसीदास चिंतन और कला, डॉ॰ इंद्रनाथ मदान, राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण 1959, पृ॰ 77
4. श्रीरामचरितमानस (मूल मझला साइज) गोस्वामी तुलसीदास, अरण्यकांड, गीता प्रेस गोरखपुर, संस्करण संवत् 2067, पृ॰ 322-23
5. वही, अयोध्याकांड, पृ॰ 200
6. वही, उत्तरकांड, पृ॰ 521
7. वही , उत्तरकांड, पृ॰ 523
8. वही, किष्किंधाकांड, पृ॰ 359
9. वही, अयोध्याकांड, पृ॰ 247
10. वही, लंकाकांड, पृ॰ 396
11. वही, लंकाकांड, पृ॰ 407
12 वही, लंकाकांड, पृ॰ 430
13. वही, अरण्यकांड, पृ॰ 322
14. साहित्य-सम्राट तुलसीदास, पंडित गंगाधर मिश्र, सरस्वती मंदिर प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण संवत् 2016, पृ॰ 183
15. श्रीरामचरितमानस (मूल मझला साइज), गोस्वामी तुलसीदास, बालकांड, गीता प्रेस गोरखपुर, संस्करण संवत् 2067, पृ॰ 67

16. कवितावली, तुलसीदास, अयोध्याकांड, पृ॰ 11
17. श्रीरामचरितमानस (मूल मझला साइज) गोस्वामी तुलसीदास, अरण्यकांड, पृ॰ 340
18. वही, किष्किंधाकांड, पृ॰ 358
19. वही, अरण्यकांड, पृ॰ 322
20. वही, अयोध्याकांड, पृ॰ 208
21. वही, उत्तरकांड, पृ॰ 486
22. गोसाईं तुलसीदास, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण 1968, पृ॰ 49
23. श्रीरामचरितमानस (मूल मझला साइज), गोस्वामी तुलसीदास, अयोध्याकांड, गीता प्रेस गोरखपुर, संस्करण सं॰ 2067, पृ॰ 204
24. वही, बालकांड, पृ॰ 123
25. वही, उत्तरकांड, पृ॰ 485
26. वही, अयोध्याकांड, पृ॰ 234
27. वही, सुंदरकांड, पृ॰ 387
28. वही, उत्तरकांड, पृ॰ 493
29. वही, किष्किंधाकांड, पृ॰ 356
30. तुलसी प्रतिभा, डॉ॰ इंद्रनाथ मदान, लोकभारती प्रकाशन, तीसरा संस्करण, 1971, पृ॰ 142-43
31. साहित्य सम्राट तुलसी, पंडित गंगाधर मिश्र, पृ॰ 188

द्वारा श्री राजाराम आर्य, एडवोकेट
गांधी नगर, पोस्ट कुंडा
जिला प्रतापगढ़ (उ॰प्र॰) 230204
मो॰ 9473956210
mitrarby@gmail.com

जिप्सी जीवन की अंतर्यात्रा : खानाबदोश

डॉ॰ प्रकाश कोपार्डे
हिंदी विभाग प्रमुख, वैद्यनाथ कॉलेज, परळी वै॰
जिला बीड (महाराष्ट्र)

हिंदी आत्मकथा साहित्य की परंपरा भले ही समृद्ध परंपरा न रही, किंतु आत्मकथा के रूप में जो भी लिखा गया, वह साहित्य-जगत् को नई दिशा जरूर प्रदान करता आया है। इसी परंपरा में अजीत कौर की आत्मकथा 'खानाबदोश' स्त्री-लेखन को नई धारणाओं के साथ जोड़ती नजर आती है।

'गुलबानो', 'महिक की मौत', 'फालतू औरत', 'मौत अलीबाबा दी', 'अपने-अपने जंगल', धुप्पवाला शहर', 'पोस्टमार्टम', 'नवंबर चौरासी' सभी कहानी-संग्रह और उपन्यासों में 'गौरी', 'तकीए दा पीर', 'कूड़ा कबाड़ा' जैसी कृतियों से भारतीय साहित्य में अजीत नामचीन हो गई हैं। उसके उपरांत स्त्री-जीवन के दस्तावेज को खोलती एवं संवेदनशील मन को खँगालती उनकी आत्मकथा का हार्दिक स्वागत हिंदी साहित्य में हुआ, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि इस आत्मकथा को सन् 1986 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

लेखिका अजीत कौर अपने मंतव्य में लेखन की पीठिका को बाँधते हुए कहती हैं कि 'दर्द और अकेलेपन को हम चाहकर भी बाँट नहीं सकते। फिर भी आत्मकथा में आपको मेरा दर्द और निहायत अकेलापन बेतरतीब फैला हुआ दिखाई देगा।' अपनी जीवन-यात्रा का बयान 'आत्मकथा' को लेकर स्वयं कहती है, 'वीरान बेकिनार रेगिस्तान में मैंने जैसे जबरन लफ्जों की यह नागफनी बोई है। पर हर नागफनी के आसपास बेशुमार खुश्क रेत है, जो तप रही है, बेलफ्ज खामोश'[1] अर्थात् आत्मकथा में जितना शब्दों में बाँधा है, इससे कहीं अधिक शब्दों में समा नहीं पाया है। वह ऐसी बेसिर-पैरवाली भावनाएँ सिर्फ मन के कैनवास पर उतारती हैं और मिटाती भी हैं, समय के नासूर को अंधा करने का एक यही उपाय था, उनके पास। तकरीबन यहीं जीवनसत्य है स्त्री-जीवन का।

मुखपृष्ठ के फ्लैप पर लेखिका ने 'खानाबदोश' शीर्षक से कविता रची है, जो इस आत्मकथा के पठन मार्ग को प्रशस्त कर पाठक की जिज्ञासा को बनाती भी है एवं पुस्तक के प्रति एक दृष्टि एवं सोच भी प्रदान करती है। स्त्री-चेतना का आवेग कुछ इसप्रकार बयान करती है–

सुनती हूँ मैं उसकी नाभि से कान सटाए
तमाम छटपटाती चीखें
जख्मी चिड़िया-सी फड़फड़ाती है
पागल दरिया के ऊपर

 ISSN 0975-735X

खानाबदोश, जिप्सी दरिया।[2]

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि फ्लैप, मुखपृष्ठ, आवरण चित्र एक अत्यंत लघु, किंतु गर्भित वक्तव्य, रचना की श्रेष्ठता को आरंभ से बनाए रखते हैं। रचना की कलात्मकता के प्रति सजगता के परिचय-पग सटीक रखे गए हैं। आत्मकथा को कुल आठ छोटे-छोटे उपशीर्षकों में बाँधा गया है। वन जीरो वन, जरा साँस लेने दो, सफेद और काली हवा की दास्तान, खानाबदोश, हादसों का हुजूम, घोंघा और समुंदर, सात नीम-कश तीर, किस्सा एक कयामत का, सभी उपशीर्षक अपनी सार्थकता के साथ प्रतीक एवं संभावनाओं से भरपूर हैं, वहीं वे पठनीय उत्तेजना से भरे भी हैं।

आत्मकथा में परंपरागत शैली का अनुकरण नहीं किया गया है, न ही जीवन-वृत्तांत की तर्ज पर आरंभ से अंत तक का निर्वाह किया है। उम्र के बासठवें वसंत में अपने जीवनक्रम को अक्षरबद्ध करतीं अजीत कौर सन् 1974 की घटनाओं को 'वन जीरो वन' उपशीर्षक में हमारे सम्मुख रखती हैं। बड़ी बेटी अपर्णा, छोटी कैंडी और स्वयं तीन लोगों का परिवार। अपर्णा चित्रकार है और कैंडी को फ्रेंच में तीन माह के एक प्रोजेक्ट करने की स्कॉलरशिप मिली है। वे जिस घर में किराए पर रहते थे, उनके पड़ोस में सहगल रहते थे, जो शान-शौकत, पार्टियों एवं प्रदर्शनप्रियता में उलझे थे, किंतु उनका लड़का किताब-प्रेमी। जीत के घर किताबों और संगीत की अपनी दुनिया थी। इस कारण सहगल का बेटा कज्जन, कौर के घर पनाह पा गया। उसकी कैंडी से दोस्ती हो गई।

जीत का दोनों बेटियों से गहरा स्नेह था। वात्सल्य से सराबोर थी उनकी दुनिया। इसी कारण फ्रांस की प्लाइट सात दिन तक कैंडी जाकर रद्द करवा आती थी। उसके जाने के आयोजन से जीत दुःखी थी। तब कैंडी इससे गले लग सो जाती, किंतु जीत जानती थीं–'और मुझे पता होता था कि अपनी नींद के कारण नहीं, सिर्फ मेरे उनींदे के कारण वह मेरे गले लगकर सो गई है।'[3] माँ-बेटियों में इस हद तक समझदारी की जिंदगी फैली थी। एक बेटी माँ की समझ होती है। जिसने जीवन के वीराने में संबल बनना चाहा। कैंडी परिवेश के संघर्ष के कारण कम उम्र में ही समझदार हुई थी, कोई मनोवैज्ञानिक कारण नहीं होता कि स्त्री-पुरुषों से पहले क्यों समझदार होती है। वह तो पुरुष समाज की देन होती है। पुरुषी मानसिक बंवडर से किए संघर्ष का परिणाम होती है उनकी प्रौढ़ता। यही सत्य जीत जानती थी और इसकी बेटियाँ इसके के लिए यहीं थीं।

कुछ दिनों बाद कज्जन का फोन आता है कि कैंडी एक दुर्घटना में जली है, किंतु वह अस्पताल में है। दुनिया-जहान की सारी तैयारियाँ कर वह 'लिओ' के लिए निकली। वहाँ तक जाते-जाते उसके मन में अगगिनत विचार जन्मते एवं मरते रहे। वहाँ पहुँचकर वह सीधे अस्पताल गई। काँच के अंदर से बेटी को झाँका और माँ की व्याकुलता फूट-फूट रोने लगी। फ्रेंच एम्बेसी के दिलावर भरोसा देते रहे, किंतु वह अंतर में अनेक संशय के बवंडरों से घिरी रही। डॉक्टर इन हरकतों से गुस्सा है, कज्जन फ्रेंच में विनती करता है। यही क्रम कई दिनों तक चला। डॉक्टर गुस्सा होते, नर्सें चिढ़चिढ़ातीं, किंतु बस कैंडी से फोन पर ही बातचीत होती। माँ के मन का पेंच बेटी के लिए क्या होता है, इसके चित्रों का गहरापन यहाँ दर्ज होता है। जीवन विडंबनाओं का दौर कितना खौफनाक और अकेलेपन की ओर ले जाता है, वह भी एक स्त्री के लिए, क्षण-क्षण नए संजाल से बँधता जीवन यही तो है।

एक दिन ऐसी खबर मिली कि कैंडी मर गई। वे उसे लेने गए। इस समय माँ अजीत को लगा कि सब खत्म हो गया। डॉक्टरों, एम्बेसी में बेटी को बचाने की सारी कोशिशें नाकाम हुईं। दफनविधि वहीं होना था, दिलावरी ने सारी व्यवस्था की। कज्जन साथ ही था। एक लकड़ी के बॉक्स में वह थी। जानकारी लेने पर पता चला कि 'यहाँ तो कोई मर जाए, तो लोग कई-कई दिन मुर्दाघरों में रख छोड़ते हैं। जब कभी छुट्टी होती है, जाकर दफना देते हैं।'[4] एक पंजाबी संस्कारों में पली बढ़ी जीत, फ्रेंच भाषा का दुराग्रह और मृत्यु संस्कार के प्रति विदेशी समाज में बढ़ती संवेदनहीनता को देख सन्न थीं। जिस देश में मृत्यु संस्कार है, वहाँ इन दृश्यों को देख वह भी अपनी बेटी के साथ घटता, कौन माँ होगी जो फूट-फूटकर नहीं रोएगी। भट्टी में जाती अपनी बेटी को देख वह यही सोच रही थी–'अगर मैं तेरे पास होती मेरी बच्ची, तो मैं भी तुझे अपने साथ भींचकर तेरी आग बुझा देती। फिर हम दोनों आधी-आधी जल जातीं, आधी-आधी तकलीफ होती, आधी-आधी मरतीं।'[5] किंतु यह हो न सका। मातृत्व साझेदारी की आस पर टिका है, स्त्री का सृजन और स्त्रीत्व का सम्मान इस भारत में इतना ऊँचा क्यों है, इसका उत्तर उपर्युक्त दृश्य सशक्त रूप में बयान करता है।

कज्जन ने बताया था कि वह जलती हुई सीढ़ियों पर कंबल के लिए चीख रही थी और फायरब्रिगेड पुलिस उससे पासपोर्ट की माँग कर रहे थे। क्या यही 'वन जीरो वन' है? जिसने कैंडी को जलते देखा, मरने के लिए। बचाना जैसे उनकी ड्यूटी का हिस्सा था ही नहीं। रक्षा के प्रबंध देश हो या विदेश सिर्फ वर्दियों में बाइज्जत है, यही संकेत है।

'जरा साँस लेने दो' में बेटी की अकस्मात् मृत्यु वह भी उन्नीसवें वर्ष में, जैसे जीत के लिए 'काले नुकीले, पथरीले, खूँखार पहाड़' पर वह बैठी हो! कुछ ऐसे ही वीरान क्षण थे। खोखली जिंदगी, चिंदी-चिंदी कतरनों की गुदड़ी, जिंदगी के प्रति वह कहती है, 'मैला, मिट्टी रँगा कीचड़ रँगा, फकीरा चोला, जिससे मैले-घसमैले फीके पड़े रंगों के मटमैले, रुआँसे ऊँघते और उनींदे रंग फरियाद-सी करते लगते हैं।'[6] उनकी जिंदगी में कहीं स्थैर्य नहीं, दुर्घटनाओं के बवंडर हमेशा उन्हें विस्थापन के लिए मजबूर करते। जिप्सी जीवन आशा-आकांक्षाओं के मरुस्थल में घूमता।

'सफेद और काली हवा की दास्तान' में यौवन के पक्ष-प्रतिपक्ष को सामने रखा है। कॉलेज के दिनों का बलदेव (प्रोफेसर) का प्यार और उसकी रोमांशकारी घटनाओं का उल्लेख है। रिज पर जाकर बलदेव के हाथों में हाथ डाले प्रकृति के सौंदर्य में खोए घंटों बैठना, किताबें पढ़ने की ओर बलदेव के कारण ही रुझान होना आदि के साथ एक प्रोफेसर के साथ किया इश्क बेरोक-टोक स्वीकारती हैं वह। 'तब इन दिनों का हुस्न सँभाले नहीं सँभलता था' और दारजी (पिता) को पता चला। बलदेव ने इनसे मुलाकात की और ब्याह तय हुआ। किंतु वह आई॰पी॰एस॰सी॰ ट्रेनिंग के लिए माउंटआबू चला गया। खत पर खत लिखे गए, बलदेव लिखता–'अगर तू चाहती है तो'।

सब खत्म हुआ था, किंतु बलदेव को दिखाने के लिए ही उन्होंने पहली कहानी लिखी और पढ़ी। बाद में रामसिंहजी ने 'नई कीमतें' में इसे छापा! लगभग डेढ़ साल तक सफेद हवा की दास्तान चलती रही। रंगीन जिंदगी के रंग बलदेव के साथ जैसे कहीं खो गए हो। रंगों का आना और अचानक यौवन के चढ़ते आलेख में कहीं खो जाना, एक युवती के लिए उन सबका अर्थ है प्राकृतिक आपदा में जिंदगी की कमर टूट जाना। जीत की ख्वाहिशें खानाबदोश होने का सिलसिला

 ISSN 0975-735X

यहीं से आरंभ होता है, जो अंत तक चलता है।

'काली हवा' अजीत के जीवन में करनाल में हुए उसके ब्याह के साथ बहने लगी। मुर्गा, मछली और कबाब बनाने की सख्त हिदायत उसके खाविंद ने उसे दी थीं। बे-चेहरे की चीज (समाज) के मुगालते ऐसे ही थे। इसी बीच बलदेव का संदेशा आया कि दो तारीख को रात बारह बजे तक मैं माउंटआबू में मेरा इंतजार करूँगा। नहीं पहुँची तो पिस्तौल की गोली... वह गई। दोनों एक नई जगह गए। खामोश बैठे रहे, किंतु खामोशी में बहुत बातें हुईं। बलदेव के विछोह की पीड़ा अब हो रही थी, समय गुजरने के बाद। खामोशी ऐसी मानो समझा रही हो, दु:ख की भाषा मौत होती है! वे दोनों अपने-अपने रास्ते चले। वह उसके जीवन में एक स्वप्निल बवंडर-सा आ धमका था, जिसने उसके सोचने-समझने को बदल दिया था। अजीत कहती है कि 'विश्वास पतझड़ के पीले पत्तों की तरह बस एकबारगी जिंदगी के दरख्त से जो झड़ने शुरू हुए, तो सारी टहनियाँ नंगी होती चली गईं।'[7] समय के अंतराल ने उन्हीं नंगी टहनियों पर 'अपर्णा' का फूल खिलाया। बसंत का आगमन बेटियाँ होती हैं, और क्या कहना। बेमतलब, बेजार, हौवा जिंदगी को जैसे नई दिशा मिली हो। बेटी अपर्णा की बीमारी ने फिर एक बार उसे अंदर से हिलाया। उसी वक्त बलदेव की पत्नी सतवंत मिलने आई। इस दूसरी औरत को उसकी जिंदगी में देख जीत के मन में शोर बढ़ने लगा। यही काली हवा की दास्तान थी। तानसेन उत्सव में फिर एक बार बलदेव दिखा। दूसरे दिन भी वह गई, किंतु नहीं दिखा। बलदेव मिले तो दु:ख न मिले तो तड़प कैसी होती है स्त्री की जिंदगी। जिंदगी का अनकहा सफर और सफर में बिछे हजारों काँटें, वे भी बिना फूलवाले, वसंतहीन। इसी बीच 'नागमणि' में क्रमश: आत्मकथा छपनी शुरू हो गई।

'खानाबदोश' यह उपशीर्षक केंद्रीय है। जसवंत कौर की बेटी अजीत कौर के बचपन से आरंभ होता है 'खानाबदोश' यह उपशीर्षक। पीर मक्की की गली का मकान, जिसमें दादी की हिदायतें, छज्जों एवं खिड़कियों पर डाली चिक, बाहर झाँकना नहीं, रास्ते पर जाना नहीं, ऐसी हजारों पाबंदियों का कैदखाना पीर मक्की की गली का घर था। इस घर में टोने-जादूवाला एक कमरा था, जो मौसी के जाने बाद खुलता था, जिसे देखने नहीं दिया जाता। छज्जे और खिड़कियों से परे मैदान को देखने की इजाजत नहीं, फिर भी खिड़की से देखा 'कुछ पत्थर मैदान में उगे थे' बाद में पता चला वह कब्रिस्तान था। इस चार मंजिला इमारत में छत पर जाने की इजाजत न थी, किंतु छत उसका अपना आसमान था, वह चोरी-छिपे जाती। 'जब कब्रिस्तान के मायने उसे समझ में आए, तब घरों की चारों दीवारों का कोई मायना नहीं। सिर्फ कब्रिस्तान मायने खेज है।'[8] अर्थात् अजीत का बचपन अपनी सारी चाहतों में घर के पासवाले एक कब्रिस्तान में कैद, एक जिप्सी बचपन था।

पड़ोस की सहेली रोहिणी का घर इसे बहुत पसंद था। वहाँ गमले, पौधे सजे थे। उसकी जिंदगी रंगीन कपड़ों से सजी थी, किंतु दारजी के गांधीवादी होने के कारण जीत के यहाँ सादगी थी। भले ही दारजी डॉक्टर रहे हों। अजीत का बचपन उदासियों से भरा रहा। ममरी (लकड़ी रखने की जगह) ही ताजा चिरी लकड़ी की खुशबू के कारण पसंद की जगह थी। नीबू के हाथ पर मले पत्तों की खुशबू, गाय-भैंस के तबेलों से आती खुशबू, उसके लिए खुशबूदार थी। उसका बचपन बुरादों के टुकड़ों को खिलौना बनाकर खेलते बीता। अभावग्रस्त उदास पाबंदियों भरा बचपन। चहक-महकभरे बचपन को खोजता बाल-मन जिप्सी जीवन।

पड़ोसी मुआँ जब टी॰बी॰ के ठीक इलाज न करवाने के कारण मर जाती है, तब वह भी फकक-फकक रो पड़ती है। मुआँ लड़की थी, इस कारण इसका इलाज नहीं कराया था। इसने बीजी को कहते सुना था 'लड़का होता तो हजारों रुपए भी बहा देते, लड़की के लिए...।'[9] पंजाबी परिवार में लड़की का जन्म एक शाप ही है। बीजी कहती है, 'गलियों में आवारा बच्चों के साथ कभी नहीं खेलने दिया, घर के अंदर सँभालकर रखा है हमेशा।'[10] अजीत का बचपन 'बचपन की धरती का खारा समुंदर' बना था।

अजीत ने एक याद को परोपकार भाव के साथ कहा है। मुआँ की तरह दीनू नाम का लड़का जो उनके घर काम करता था, उसे टी॰बी॰ था। पहले अपनी बेटियों का खयाल आया और फिर 'मुआँ का चेहरा' फिर दीनू को उसने जतन से सँभाला जिंदगी का बेहतरीन सीन।

दारजी घूमने के लिए हिमालय ले जाते। वहीं प्रकृति से नाता जुड़ गया। वहीं कहीं चीड़, पेडों, पत्थर, पर्वतों की सफेद चादर में अपने घर को ढूँढती थी। बीजी हमेशा 'पराया घर' जाने की धमकियाँ देती। जीत को लगता पराए घर एक बाघड़ बिल्ला ही है।

इसके मामा ने भिन्न रंगोंवाली एक मछली उसे भेंट दी थी। जो लाहौर के घर में भीत के साथ टँगी थी, जीत को लगता कील में ठुकी वह मछली मैं ही हूँ। पानी से जुदा। मेले में पहनने दी मालाएँ भी वहीं टँगी थीं, आशाएँ, आकांक्षाएँ भी उन्हीं के साथ। स्कूली जीवन में इसने दोपहर के खाने के लिए दिए पैसों को बचाकर एक लॉकेट खरीदा, किंतु उसे ममरी में छिपा रखा। पहन न सकी। अर्थ स्पष्ट है—अनगिनत पाबंदियों भरा जीवन, सब जीत को नकारते। वह एक बदसूरत लड़की थी—'ऊँचा टीले जैसा माथा, मोटी भवें, जैसे छाज हो, गुब्बारे जैसे फूले गाल, और बाद में मेरे खाविंद के मुताबिक उलटी पड़ी जूती की तरह होठ।'[11] यही बदसूरती हिकारत पैदा करती रही, सभी की दृष्टि से।

फिर विभाजन हुआ, पाकिस्तान बना। दारजी की राहत कैंप में मदद आदि का विवरण आया है। वे शिमला आए, वहाँ संविदर से दोस्ती, घुमक्कड़ी होती, किंतु उससे अपनापन नहीं बना। वहीं संविदर बलदेव की पत्नी बनी। शिमला के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन एवं प्रकृति के साथ अपने भावो को एकमेव कर दिया है, उन्होंने।

शिमला से दारजी आए और जी॰टी॰ रोड जालंधर में घर बनाया। वहाँ वीश से उसकी दोस्ती और फिर सैर-सपाटे शुरू हुए। बाहर घूमना जीत को पसंद था, क्योंकि 'अपने घर में कोई जगह नहीं?' मात्र प्रश्न नहीं था, उसके भी आगे बहुत कुछ था। फिर वह 'अपने घर' करनाल गई। वहाँ शादी के पहली रात ही खाबिंद ने अपने इश्किया किस्से सुनाएँ। घर की लाज बचाने के लिए सतत प्रयास किए। फिर अपर्णा हुई। लड़की ही हुई इस कारण पिता के घर भेजा गया। फिर झगड़े धमकियाँ और बीजी के घर हर पाँच-छह माह बाद भेजना और ले जाना। सिलसिले चलते रहे। दारजी और खाविंद के बीच वह मात्र फुटबॉल बनी थी। सारी उम्मीदें कत्ल हो चुकी थीं और सारे सपने जिबह उम्मीदों और सपनों की भटकन जिप्सीपन। आखिरी बार वह अपनी इच्छानुसार घर छोड़ वर्किंग गर्ल्स होस्टल आई। अपर्णा, कैंडी और अजीत का घर (हमारा घर) सारी आजादी। वहाँ से 'अंकटैड बिल्डिंग', वहीं 'रूपी ट्रेड' का काम शुरू किया। पति से अलग निहायत अपनी जिंदगी 'अपना घर'। वहाँ से फिर ग्रेटर कैलाश, वहाँ से बहुत चक्करों बाद दो साल की पेशगी देकर नीति बाग में गोयल वकील के यहाँ शिफ्ट हुए। वहाँ कुछ दिन चैन और बाद में वकील की

बीवी के ताने सुनने पड़े। फिर घर खाली करवाने की केस लड़ने की त्रासदी अलग से। हाईकोर्ट से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक सभी वकील के साथ व्यावसायिक बंधुत्व निभाते दिखें। घर छोड़ने के विचार से घर देखना आरंभ किया कि सिख दंगों के कारण कोई घर ही नहीं दे रहा था। यहाँ तक कि गोयल ने कोर्ट में कहा, 'शी इज ए प्रॉमीनंट सरदारनी। मेरे घर को खतरा है। कोई आग लगा देगा। नीचे मैं रहता हूँ, मेरे दो बच्चों की जान खतरे में है।'[12] किंतु बच्चे शिमला में पढ़ रहे थे, यह सच्चाई थी। गोयल की रोज की सिरदर्दी से 1983 के सितंबर में सामूहिक इकरारनामा हुआ और फिर घर के लिए खानाबदोशी शुरू। इस समय लंबे चक्करों के बाद जाकिर हुसेन टॉवर के पास डॉ॰ रिफाकतअली खान (जमिया यूनिवर्सिटी, इतिहास विभाग प्रमुख) के यहाँ खानाबदोशी रुक गई। एक 'अपना घर' उन्हें मिला।

'हादसों का हजूम' यह फ्लैशबैक शैली में लिखा उपशीर्षक है। एडिया 72 का काम अजीत कर रही थी। दो राज्यों की व्यापारिक नीतियों को लेकर विदेशी भाषाओं में प्रकाशन करना था। हरियाणा के अधिकारी बीमार होते हुए भी, अस्पताल में मीटिंग करके प्रकाशन की मंजूरी दे देते हैं, इस कारण एस॰के॰ मिश्रा से जीत प्रभावित थी। पंजाब सरकार ने प्रकाशन के लिए हामी भर दी, किंतु अंतिम मुहर इंडस्ट्री विभाग से नहीं मिल रही थी। काफी प्रयास के बाद बात बनी तो लेख और विज्ञापन समय पर नहीं मिले। मेले के चौदह दिन पहले सामग्री मिली। दिन-रात काम करके समय पर प्रकाशन की दो हजार कापियाँ दीं, किंतु पेमेंट मेले के बाद मिल नहीं रहा था। इसी बीच समाचार छपने लगे कि दिल्ली की एक औरत ने पंजाब सरकार को उल्लू बनाया। जैलसिंह के साथ संबंध जोड़े। पंजाब असेंबली में इस पर प्रश्न उठे। बदनामी भी हुई और पैसा भी नहीं मिला। फिर मिलाप के रणबीरजी ने जैलसिंहजी से खुद बात की, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। इसके बाद एक अँग्रेजी अखबार के पत्रकार ने पैसे वसूलने का जिम्मा उठाया। परिणाम यह हुआ कि 72 का पैसा 75 होते-होते तैंतीस हजार बना, किंतु मिला नहीं।

'घोघा और समंदर' में ओमप्रकाश के साथ एवं इश्क की दास्तान वर्णित है। सन् 1965 में वह ओमा के संपर्क में आई। ओमा के साथ नजदीकी बढ़ी, जो धीरे-धीरे प्रेम में बदलती गई। सन् 1966 के बंबई बुक फेयर में साथ-साथ जाना, रात को समंदर की सैर, बलराज साहनी के घर खाना खाना, इंदिरा गांधी, मिडल क्लास, स्त्री-पुरुष संबंध और मध्यवर्ग तथा मार्क्स की क्रांति को लेकर ओमा, अजीत गौतम के बीच लंबी चर्चा का दौर, बरसोवा बिच से टैक्सी लेकर वेश्याओं के कोठे घूमना, वहाँ से आने के बाद ओमा का कोठों को लेकर संवेदनशील होकर बोलना है। यहीं अजीत के—समंदर जीवन में ओमा की लहरों का शोर आरंभ हुआ। वह एक बार पुनः प्रेम के वसंत में आस्यावन बनी, जिंदा संजीदा और आगे चलकर पेचीदा।

'सात नीम-कश तीर' उपशीर्षक जीत के संघर्षपूर्ण पत्तों का आख्यान है। बेटियाँ शिमला में पढ़ रही थीं। ओमी 'मुहब्बत की गुनगुनी धूप' बनकर जीवन में प्रवेश कर चुका था। ओमी जालंधर अपने घर जाता और कभी-कभी अजीत के घर रुकता। इस कारण खौफनाक अकेलापन इसे घेरे रहता। 'अकेलापन बर्फ की कतरों की तरह धीरे-धीरे टपकता रहता था।' एक रात ओमी आया, किंतु जीत बाहर गई हुई थी। वह वहीं स्ट्रीट लाइट पर बैठा था। ओमी-प्रेमी ओमी। जीत मन और देह से समर्पित। इसने अपने दैहिक संबधों को स्वीकारा है और फिर, जिस्म की अँधेरी गलियों में से गुजरकर रूह के रोशनाए आँगन तक पहुँच जाते थे।' देह में मन की यात्रा का बयान

यहीं है।

इसी बीच यू॰एस॰आई॰एस॰ ने तजुर्मे के खर्च और काम कम लिए फाकाकशी शुरू की। परिवार चलाना मुश्किल हुआ, किंतु वह अपनी शर्तों पर जीवन जी रही थी। बेटियों की फीस के बाद बचे पैसों से किताबें ही खरीदती। अपनी दशा का वर्णन करते हुए वह कहती है, 'जब दो आने की रोटी तंदूर से होती थी और साथ में दाल मुक्त की मिल जाती थी। और चुपचाप अपने भीतर के कमरे के कोने में बैठकर खा लेती।'[13] बेटियाँ भी इस सच्चाई को जानती थीं, सो अपनी बीमारी ज्यादा होते पर ही बनाती। स्थिति से सुलझना उन्होंने भी सीखा था। जीत को लगता कि ओमी की जिंदगी में ऐसी दखल माने 'यह चुराए हुए पल हैं' वे दोनों सिरिक्या अभयारण्य चले गए। वहाँ एक पुराना मंदिर देखा, जीत को मना करने के बाद भी वहाँ गई। इस बंजारन को वह खुद में महसूस कर रही थी। दोनों अकेलेपन के खंडहर की जिंदगी जी रही थी, वहाँ जाकर सदियों पुराने दर्द ने आश्रय प्राप्त किया था।

'किस्सा एक कयामत का' उपशीर्षक ओमी और जीत के बिखराव की कहानी है। दोनों एक लॉन में घूम रहे हैं, तब चोर पुलिस होने की धमकी देकर घड़ी और पर्स माँगते हैं। ओमी पुलिस थाने में इसका नाम अजीत के साथ न जुड़े सोचकर सब देता है। यह घटना जीत को प्रभावित कर सोचने को मजबूर करती है।

अचानक पाल के घर से फोन आता है, ओमी ने तुम्हें यहीं बुलाया है। दोनों बहुत शराब पीते हैं। अजीत भी इनके साथ पीती है। 'दूसरी औरत' होने का 'फैसला होना चाहिए' कह चीखती है। ओमी इसे बाहर लेकर जाता है। वह उसके साथ उसके घर जाना चाहती है, किंतु इस पर ओमी की कमीनगी-भरी नंगी ललकार दिखाई देती है। बहुत कुछ विवाद के बाद ओमी अकेला निकल जाता है, जीत बस इंतजार करती रह जाती है। फिर वह पाल और संविदर के घर रात-भर पागलों की तरह घूमती है।

वह ओमी को ढूँढने के लिए बंबई गई। बंबई से बंगलौर और फिर वहाँ से साईं बाबा आश्रम। तीन रातें और पौने तीन दिन हैंडपंप का पानी पीकर बिताए। फिर एयरपोर्ट जाकर दिल्ली अपने घर पहुँची। बिस्तर पर पहुचने के बाद बुखार आया। शायद इसके अकेलेपन और जिप्सी यात्रा का साथी बनने के लिए ही।

'खानाबदोश' यह आत्मकथा मूल रूप से पंजाबी में लिखा है। उसका अनुवाद स्वयं अजीत ने किया है। इसमें पंजाबी भाषा के शब्द और उर्दू की नजाकत यत्र-तत्र दिखाई देती है। भाषा में चित्रात्मकता एवं प्रकृति सौंदर्य के साथ अपनी भावनाओं को पिरोने में महारत हासिल की है। उदाहरण देखिए–

'इन बत्तियों को नहीं पता, इन लोगों को नहीं पता, नहीं तो सारा आला साँस रोककर खड़ा हो जाता'[14] (मानवीकरण)

'कागजों के जिस्म में छुपकर बैठी परवाज'[15] (बलदेव का पत्र)

'दुछिया कजराई राते'[16] (बलदेव के प्रेमपूर्ण दिन)

'बाड़ों के पत्ते कभी झड़ जाते रहे, और उनकी तराशी हुई टहनियाँ किसी लाश की अकड़ी हुई स्याह उँगलियों की तरह लगती रहीं, सभी पत्ते वापस उन्हें कफन की तरह ढँक लेते रहे।'[17] (मानवीकरण)

'मरिथल, मुसे, रद्दी कागज की तरह मरोड़े गए चेहरे। कूड़े के ढेर पर फेंक कचरे जैसे चेहरे'[18] (वेश्याओं का वर्णन)

भाषा की चित्रात्मक के यह उत्कृष्ट उदाहरण वही फ्लैशबैक शैली, वर्णनों में प्रवाहमयता एवं बयानगी सच्चाई, कलेवर को श्रेष्ठता प्रदान करती है। लघु वाक्य, प्रकृति के साथ तादाम्य छोटी-छोटी चीजों का वर्णन आत्मकथा को विरोधी बनाता है।

'खानाबदोश' शीर्षक इस आत्ककथा के लिए सार्थक है। एक जिप्सी की तरह अजीत जीवनभर संघर्ष करती रही। बचपन में इच्छाओं, आकांक्षाओं पर लगी पाबंदी मन का जिप्सीपन था। वहीं यौवन के वसंत में बलदेव का प्रेम और टूटता साथ उसे खानाबदोश बनाता है। रिश्तों का यूँ खोखला बंजर रेगिस्तान अजीत के लिए खौफनाक था। भाभी की पाबंदियों से भरी मन की भटकन, बलदेव के प्यार की तड़फ, ससुराल करनाल और दारजी के घर के बीच फुटबॉल की तरह इसका झूलना। कहीं कोई ठिकाना ही नहीं था। लाहौर, शिमला जालंधर, देवनगर ऐसे पिताजी के घर में बदलते घर, वहीं जब खुद 'अपने घर' के लिए भी वह अकटैड बिल्डिंग, ग्रेटर कैलाश, नीती बाग दौड़ती रही महज अपने घर के लिए।

अजीत की खानाबदोशी इसकी बेटी कैंडी के लिए लिओ (फ्रांस) तक चलती रही। वहीं आभावग्रस्त जीवन में 'रूपी ट्रेड' जैसी वाणिज्यिक पत्रिका वह चलाती थी। यह अपने-आपमें एक आश्चर्य था। शिमला और कश्मीर के सौंदर्य में उसे उसका घर जरूर दिखा, लेकिन वह भी सपनों की तरह ही। उसके जीवन में रोहिणी, संतवर और दीश जैसी सखियाँ भी पलभर के सपने जैसी थीं। कोई संगी साथी नहीं, न परिवार ने समझा, पति ने दुत्कारा, प्रेमी बलदेव ने भी नहीं स्वीकारा, बल्कि जिस ओमी के साथ इसके दैहिक संबंध थे उसने भी उसे बीच रास्ते में छोड़ा। उसे भी एक जिप्सी की तरह तीन दिन और पौंने तीन रातें भूखे रहकर कहाँ-कहाँ नहीं खोजा। एक जिप्सी की तरह अपनी शर्तों पर वह जिंदगी जीती रही। अपनी बेटी को भी इस यात्रा में उसने खो दिया।

यह आत्मकथा समय के संदर्भों को जरूर दर्ज करती है। पंजाबी परिवारों में लड़कियों की स्थिति, खिड़की छज्जों पर लगी चिकें प्रतीक हैं–पाबंदियों के पर्दों का। वहीं दारजी का गांधी की सादगी को अपनाना, विभाजन में राहत कैंपों के लिए काम करना, सन् 1983 में हुए दंगों के बाद सिक्खों के प्रति रवैया आदि घटनाओं को आत्मकथा में छुआ है। उपरोक्त तथ्य समय संदर्भो की सटीकता का बयान है।

बेटी का जन्म अपराध है। इस गलत भारतीय धारणा को जीत के माध्यम से दर्ज किया है। वहीं मध्यवर्गीय चेतना की बात भी कही है। गौतम कहता है कि मध्यमवर्ग ही सृजनात्मक और क्रांतिकारी है।

इस आत्मकथा में पंजाब के घर-परिवार की घटनाओं को समाजशास्त्रीय दृष्टि से अभिव्यक्त किया गया है, तो वहीं ओमी, बलदेव और जीत के प्रेम का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया गया है। फ्रेंच की दफनविधि, वहाँ के डॉक्टरों का व्यवहार और 'ब्लॅक पिपल' की हिकारत विश्व-संस्कृति को दर्ज करती है। फॉरेन एम्बसी, भारत विभाजन, ज्ञानी जैलसिंह (पंजाब सरकार) तथा वाणिज्य एवं व्यापार मेलों का कार्य आदि बातें राजनीति से आत्मकथा को जोड़ती हैं। वेश्याओं के कोठों पर घूमना यथार्थ की भूमि को और अधिक पुष्ट करता है।

इस आत्मकथा ने नई रचनाओं को प्रभावित किया है। स्त्री आत्मकथा लेखन को आकार

दिया है। 'कस्तूरी कुंडल बसे' तथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में मैत्रयी अपनी 'माँ' को केंद्र में रखती है, तो जीत विदेशी व्यापार के संघर्ष को दर्ज करती है। वहीं जीत रूपी ट्रेड और व्यापार संबंधों पर अपने पुस्तकों से जीवित बनती दिखती है। वह चंद्रकिरण सौनरेक्सा की तरह 'पिंजरे की मैना' बनी नहीं रही। बल्कि अपने घर की तलाश में एक जिप्सी जीवन जिया। ओमी के साथ दैहिक संबंध, प्रोफेसर के साथ शराब पीने तथा प्रेम संबंध आदि को वह बेबाक होकर स्वीकारती है।

संदर्भ

1. लेखकीय वक्तव्य से साभार - खानाबदोश- अजीत कौर
2. खानाबदोश, अजीत कौर, फ्लैप से साभार
3. वही, पृ॰ 14
4. वही, पृ॰ 25
5. वही, पृ॰ 32
6. वही, पृ॰ 35
7. वही, पृ॰ 49
8. वही, पृ॰ 58
9. वही, पृ॰ 63
10. वही, पृ॰ 62
11. वही, पृ॰ 70
12. वही, पृ॰ 95
13. वही, पृ॰ 141
14. वही, पृ॰ 13
15. वही, पृ॰ 44
16. वही, पृ॰ 45
17. वही, पृ॰ 58
19. वही, पृ॰ 131

मो॰ 9405814730

ISSN 0975-735X

वैश्वीकरण की अवधारणा और प्रवासी हिंदी साहित्य

प्रो॰ नवीनचंद्र लोहनी
विजिटिंग प्रोफेसर
शंघाई, इंटरनेशनल स्ट्रीज यूनिवर्सिटी, शंघाई, चीन
योगेंद्रसिंह (शोधार्थी, हिंदी विभाग)
चौ॰ चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

इक्कीसवीं सदी का समय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का समय है। सूचना एवं तकनीकी के विकास ने संपूर्ण विश्व को एक धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप संपूर्ण विश्व के देशों के बीच की दूरियाँ कम होती जा रही हैं। आज नए अवसरों की तलाश एवं नए दृष्टिकोण को मूर्त रूप देने की संकल्पना ने संपूर्ण विश्व को एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया है। वैश्विक धरातल पर नए अवसरों की उपलब्धता ने भिन्न-भिन्न देशों के नागरिकों के लिए संपूर्ण विश्व के द्वार खोल दिए हैं। जिस कारण संपूर्ण विश्व एक ऐसे वैश्विक गाँव का स्वरूप ग्रहण कर रहा है, जहाँ सभी के लिए अवसरों की समानता हो और जहाँ विश्व का प्रत्येक नागरिक बिना किसी रोक-टोक के एक देश से दूसरे में जाकर बस सके। अत: कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण की अवधारणा ने संपूर्ण विश्व को एक ग्लोबल गाँव के रूप में परिवर्तित कर दिया है।

इक्कीसवीं सदी में वैश्वीकरण की अवधारणा ने प्रत्येक देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, सांवेगिक, राजनीतिक एवं आर्थिक मान्यताओं को प्रभावित किया है। वैश्वीकरण ने समाज, संस्कृति एवं राष्ट्रों के बीच की दूरी को कम करके संसार को विश्व-ग्राम के रूप में परिवर्तित कर दिया है। आज जिस प्रकार विश्व की दूरियाँ सिमट रही हैं, ठीक उसी प्रकार संपूर्ण विश्व के देशों में प्रचलित शिक्षा, संस्कार, भाषा, कला एवं सांस्कृतिक मान्यताओं में भी तीव्रता से परिवर्तन हो रहा है। आज का विश्व विविधता में एकता के आदर्श वाक्य के अनुरूप एक नया स्वरूप धारण करता जा रहा है। विश्व के इस परिवर्तित स्वरूप के लिए वैश्वीकरण की अवधारणा को सबसे उत्तरदाई कारण माना जाता है।

प्रियंकासिंह वैश्वीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहती हैं–'भूमंडलीकरण संपूर्ण विश्व को एक ग्राम में तब्दील करने की अवधारणा है, जहाँ कोई सीमा, कोई सरहद, कोई दीवार नहीं। भूमंडलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसने पूरी दुनिया की तस्वीर बदल दी है। वर्तमान समय बाजारवाद का है। मानव मूल्य के साथ जीवन का प्रत्येक क्षेत्र बाजारवाद से प्रभावित है। प्रत्येक गतिविधि, व्यावसायिक दृष्टिकोण या तो स्वत: अपना रही है या अपनाने को मजबूर है। साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान, दर्शन सभी पर व्यावसायिकता का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई पड़ रहा

है। ऐसे में भाषा के वैविध्य पर भी असर पड़ना लाजमी है।'[1]

भूमंडलीकरण का सबसे घातक परिणाम औद्योगिकीकरण है, जिसके आर्थिक परिदृश्य ने पूरी दुनिया को बाजार बना दिया है। जहाँ पूँजीवादी देशों के द्वारा अपने उत्पादों को विश्व के विकासशील एवं तीसरी दुनिया के देशों में खपाने की होड़ लगी हुई है। विश्व के इन विकसित एवं पूँजीपति देशों के द्वारा अपने उत्पादों को इन विकासशील देशों तक पहुँचाने के लिए अनेक प्रकार के हथकंडे अपनाए जा रहे हैं। विश्व के इस बाजार में अपनी-अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने की इस प्रतिस्पर्धा ने एक होड़ पैदा कर दी है और ये पूँजीवादी देश बाजार पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने हेतु हरसंभव उचित एवं अनुचित साधन प्रयोग में ला रहे हैं। जिसके परिणामस्वरूप ये उत्पादक देश उपभोक्ता देशों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में भी अपनी पहुँच बना रहे हैं। जिसका सबसे बड़ा उदाहरण बाजार बन चुके इन देशों की भाषा को आत्मसात करना है, ताकि इन देशों की जनता तक आसानी से पहुँच बनाई जा सके।

विश्व बाजार को नियंत्रित करनेवाली वर्चस्ववादी शक्तियों ने इस तथ्य को भलीभाँति समझ लिया है कि किसी भी देश के बाजार तक पहुँचने का रास्ता उस देश के सामाजिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों से होकर जाता है। यही कारण है कि विश्व के इन पूँजीवादी देशों ने भारत के बाजार तक पहुँच बनाने के लिए भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों को ही आत्मसात नहीं किया है, अपितु भाषा को भी ग्रहण कर लिया है। कृष्णदत्त पालीवाल अपने लेख 'हिंदी को विश्वभाषा बनने का सपना कैसे पूरा हो?' में विश्व में हिंदी के बढ़ते वर्चस्व को इसप्रकार से रेखांकित करते हैं, 'नव-पूँजीवाद पूरी दुनिया को शॉपिंग कांप्लैक्स में बदल रहा है। हर चीज बिकाऊ है, चाहे औरत की देह हो, या कैमरा या साबुन। पूरा अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, बाजारवाद पर निगाह लगाए हैं। बीसवीं शताब्दी की समाप्ति पर बाजारवाद की अर्थव्यवस्था वैश्विक पूँजी, उपभोक्ता संस्कृति, मीडिया क्रांति, उच्च टेक्नोलॉजी सभी कुछ स्थिति-परिस्थिति के दबाव से भाषा को बदल रहे हैं। संस्कृति, संचार और संप्रेषण का क्षेत्र इस गति से बदल रहा है कि बदलाव को ठीक से परिभाषित करना कठिन हो गया है। अकेली हिंदी में ही न जाने कितने शब्द कंप्यूटर-मीडिया क्रांति से आ रहे हैं और हिंदी उन्हें हजम करके तगड़ी हो रही है।'[2]

आज की हिंदी इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रचार की मुख्य भाषा के रूप में उभरकर सामने आ रही है। आज हिंदीभाषा स्वयं को बाजार की जरूरतों के हिसाब से ढालकर निरंतर अपना दायरा विस्तृत कर रही है। वर्तमान परिदृश्य में हिंदी विश्व में सर्वाधिक बोली जानेवाली तीन प्रमुख भाषाओं में अपना स्थान बना चुकी है। इसप्रकार हिंदी इन विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा भारत से लेकर विदेशों तक यात्रा कर रही है। हिंदीभाषा को आत्मसात करने के पीछे चाहे इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों का उद्देश्य पूर्ण व्यावसायिक ही रहा हो, किंतु निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि बाजार के माध्यम से हिंदीभाषा विश्वपटल पर अपनी महत्ता सिद्ध कर रही है, जिसमें वैश्वीकरण का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

जिसप्रकार से विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा भारत में अपने व्यापार को बढ़ावा देने के लिए हिंदीभाषा को आत्मसात करके, उसे वैश्विकता प्रदान की गई है, ठीक उसी प्रकार से भारत से बाहर गए प्रवासी भारतीयों ने भी अपने साथ-साथ अपनी भाषा, संस्कृति एवं अपने संस्कारों की उपस्थिति विश्वपटल पर दर्ज कराई है। आज हिंदी किसी विशेष प्रदेश की भाषा न रहकर

समूचे देश एवं विश्वस्तर की भाषा बनती जा रही है। हिंदीभाषा के लगातार विस्तृत होते जा रहे इस दायरे के पीछे वैश्वीकरण की सबसे अहम भूमिका स्वीकार की जाती है। विदेशों में हिंदी के बढ़ते परिदृश्य के विषय में महावीरसरन जैन अपने लेख 'विदेशों में हिंदी भाषा और साहित्य का शिक्षण' में कहते हैं, 'प्रयोक्ताओं की संख्या की दृष्टि से हिंदी विश्व की तीन प्रमुख भाषाओं में से एक है। विश्व के लगभग 46 देशों में हिंदी के अध्ययन एवं अध्यापन की व्यवस्था है, जिन देशों में अप्रवासी भारतीयों की आबादी देश की जनसंख्या का 40 प्रतिशत से अधिक है, उन देशों में सरकारी एवं गैरसरकारी प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों में हिंदी का अध्ययन होता है। इन देशों के अधिकांश अप्रवासी भारतीय जीवन के विविध क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग करते हैं, एवं अपनी सांस्कृतिक पहचान की प्रतीक के रूप में हिंदी को ग्रहण करते हैं, जिन देशों के निवासी हिंदी को 'विश्वभाषा' के रूप में सीखते हैं, पढ़ते हैं तथा हिंदी में लिखते हैं, उन देशों की विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में प्राय: स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी शिक्षा का प्रबंध है।'[3]

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने जहाँ एक ओर बाजार के माध्यम से हिंदी की उपस्थिति विश्वस्तर पर दर्ज कराई है, वहीं दूसरी ओर विदेशों में रहनेवाले प्रवासी भारतीय अपने साहित्य के माध्यम से हिंदी साहित्य को वैश्विक साहित्य के रूप में पहचान दिलाने का कार्य कर रहे हैं। इसकी पुष्टि सुरेशकुमार अपने लेख 'भारत से दूर भारत में हिंदी' में इसप्रकार करते हैं, 'प्रवासिनी हिंदी अपनी जनशक्ति और निष्ठाशक्ति से विदेशी धरती पर अपना स्थान बनाने में सफल रही है, इसमें स्वैच्छिक प्रयास और शासकीय संरक्षण दोनों का योगदान है।'[4] अत: कहा जा सकता है कि प्रवासी भारतीयों के द्वारा प्रवासी साहित्य के माध्यम से हिंदीभाषा को वैश्विक रूप प्रदान किया जा रहा है और आज की हिंदीभाषा केवल किसी प्रदेश विशेष की भाषा न होकर वैश्विक हिंदी के रूप में अपनी पहचान स्थापित कर रही है। प्रवासी हिंदी साहित्य अंतरराष्ट्रीय फलक पर हिंदी को विशेष पहचान दिला रहा है, इसप्रकार हिंदीभाषा एवं साहित्य का दायरा विश्व में निरंतर बढ़ता जा रहा है।

यहाँ हमें यह भी समझने की आवश्यकता है कि बाजार ने हिंदी के दायरे को विस्तृत तो अवश्य किया है, किंतु उनके लिए हिंदीभाषा केवल बोलने एवं समझने वाली बहुसंख्यक जनता तक अपने उत्पादों को पहुँचाने का साधन मात्र है। हिंदीभाषा के वास्तविक स्वरूप को विश्व समुदाय तक सर्वप्रथम परिचय कराने का श्रेय गिरमिटिया मजदूर बनकर पुरा-प्रवासी देशों मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम आदि में गए प्रवासी भारतीयों को जाता है। इन प्रवासी भारतीयों ने इन देशों में रहने के पश्चात् भी अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक जुड़ाव को सदैव जीवित रखा है। इन प्रवासी भारतीयों के लिए अपने देश से हजारों मील दूर भी हिंदीभाषा केवल संवाद की भाषा नहीं, बल्कि यह उनको भारतीयता के एहसास से जोड़नेवाली एक मजबूत माला है, जिसका प्रत्येक मोती विश्व में फैला हुआ हर वह भारतीय है, जो हजारों मील दूर रहकर भी अपनी मातृभूमि से जुड़ा हुआ है।

श्री शंभूनाथ अपने लेख 'हिंदी : सभ्यताओं के संवाद की भाषा' में प्रवासी भारतीयों के हिंदी से जुड़ाव को इसप्रकार से अभिव्यक्त करते हैं, 'विश्व में सौ से अधिक देशों में प्रवासी भारतीय लाखों की संख्या में रहते हैं। वे निश्चय ही अपने कामकाज अँग्रेजी भाषा में करते हैं। फिर भी भारत को आत्मीयता से महसूस करने के लिए उन्हें हिंदी की जरूरत है। निश्चय ही हिंदी एक

विशाल समुदाय को उदात्त बंधुत्व से जोड़े रखने वाली भाषा है।'[5]

पुरा-प्रवास के देशों में मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, ट्रनीडाड एवं टुबैगो एवं नवप्रवासी देशों ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि देशों में गए प्रवासी भारतीयों के द्वारा अपनी बोलचाल, अपने संस्कार एवं अपनी जीवनशैली में हिंदीभाषा को इसप्रकार समाहित किया गया है कि इन देशों में हिंदी एक बहुसंख्यक जनसंख्या द्वारा बोली जानेवाली भाषा बन गई है। विदेशों में हिंदीभाषा के विस्तृत दायरे के विषय में डॉ॰ विमलेश क्रांति वर्मा इसप्रकार से प्रकाश डालते हैं, 'विदेश में बसे प्रवासी भारतीयों की संख्या आज दो करोड़ से ऊपर बताई जाती है। ये प्रवासी भारतीय विभिन्न भाषा समुदायों के हैं, विभिन्न धर्मों, विभिन्न खान-पान वाले तथा विभिन्न रीति-नीति वाले हैं, किंतु वे सभी आपस में हिंदी के माध्यम से जुड़े हुए हैं। वे हिंदी को अपनी राष्ट्रीय अस्मिता का प्रतीक मानते हैं, विदेश में सामुदायिक उत्सवों में आपस में हिंदी का ही वे प्रयोग करते हैं। वे अपने बच्चों को हिंदी सिखाना चाहते हैं, जिससे विदेश में उनकी अलग पहचान बनी रहे और सारे भारतीय आपस में भाषा और संस्कार से बँधे रहें। ये प्रवासी भारतीय जो विदेश में बसे हुए हैं एवं भारत की अंतरराष्ट्रीय छवि को बनाने में बड़ी भूमिका आज निभा रहे हैं और उन्हीं के प्रयत्नों से आज हिंदी विश्व की एक महत्त्वपूर्ण भाषा बन गई है।'[6]

वस्तुत: कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने विश्वपटल पर कई सकारात्मक एवं नकारात्मक परिवर्तन किए हैं, जिनमें हिंदी को वैश्विक स्वरूप प्रदान करना भी एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। विदेशों में रह रहे प्रवासी भारतीयों ने जिस प्रकार अपनी लेखनी के माध्यम से हिंदीभाषा की वैश्विक धरातल पर उपस्थिति दर्ज कराई है, वह निश्चय ही सुखद है, किंतु यहाँ इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता है कि पिछली सदी के अंतिम दशक में प्रारंभ हुई वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने विदेशों में रह रहे भारतीयों की संख्या में तीव्रता से वृद्धि की है एवं विश्वपटल पर अपनी पहचान स्थापित करने के लिए नए अवसर उपलब्ध कराने का कार्य भी किया है, जिसके परिणामस्वरूप आज विश्वस्तर पर प्रवासी भारतीयों की अपनी विशिष्ट पहचान बन गई है।

विश्वधरातल पर प्रत्येक क्षेत्र में भारत की नई पहचान स्थापित कर रहे इन प्रवासी भारतीयों को भारतीय मूल्य एवं संस्कार अपने पूर्वजों से प्राप्त हुए हैं, जबकि अपनी मातृभूमि से दूर विदेशों में पाश्चात्य संस्कृति एवं जीवनशैली उनके जीवन-निर्वहन का माध्यम बन गई है। दो भिन्न संस्कृतियों की यह टकराहट इन प्रवासी भारतीयों के समक्ष नए मूल्यों एवं नई जीवनदृष्टि के अवसर उपलब्ध करा रही है। इसप्रकार भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों परिवेशों के संस्कारों को आत्मसात किए हुए इन प्रवासी भारतीयों की सोच का दायरा निरंतर विस्तृत हो रहा है। परिणामत: इन प्रवासी भारतीयों के साहित्य में नई जीवनदृष्टि एवं नए परिवेश का प्रभाव सर्वथा देखा जा रहा है। अत: कहा जा सकता है कि प्रवासी भारतीयों द्वारा लिखा जा रहा हिंदी साहित्य, नई जीवनदृष्टि, नई संवेदना एवं नए संस्कारों को फलीभूत करने के कारण वैश्विक स्तर पर अपनी अलग पहचान स्थापित कर रहा है।

ज्योत्स्ना रघुवंशी हिंदी के इसी विश्व रूप को इसप्रकार से परिभाषित करती हैं, 'हिंदी का यह विश्व-मन किसी एक समुदाय, किसी विशेष मानव-जाति के लिए नहीं, वह संपूर्ण विश्व के मनुष्यों को आवाहित करता है। दरअसल, हिंदी जोड़ने को ही अपना मुख्य कर्म समझती रही है।

तोड़ने की शक्तियों की चुनौती स्वीकार करते हुए बराबर जोड़ने का कार्य किया है। उपर्युक्त क्षमताएँ हिंदी में हैं, इसलिए वह विश्वभाषा हिंदी के रूप में पहचानी जाती है।[7]

निष्कर्षत:, प्रवासी भारतीयों के द्वारा लिखा गया प्रवासी हिंदी साहित्य, हिंदी साहित्य की एक धारा के रूप में वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान स्थापित करने का प्रयास कर रहा है। प्रवासी साहित्यकारों के द्वारा लिखा जा रहा प्रवासी हिंदी साहित्य हिंदीभाषा को वैश्विक भाषा बनाने की भावना को साकार करनेवाला ऐसा साहित्य है, जिसके मूल में वैश्विक एकता एवं विश्व नागरिकता का भाव समाहित है।

संदर्भ

1. प्रियंकासिंह, भूमंडलीकरण से जूझती हिंदी, नेशनल दस्तक http://www.nationaldastak.com/story/view/opinionsofpriyankasingh
2. गवेषणा, हिंदी का विश्व, संपादक महेंद्रसिंह राणा, हिंदी को विश्वभाषा बनने का सपना कैसे पूरा हो, लेखक कृष्णदत्त पालीवाल, प्रकाशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा, अंक 106 (जनवरी-जून 2016), पृ॰ 44
3. विश्वभाषा हिंदी, संपादक वशिनी शर्मा, विदेशों में हिंदीभाषा और साहित्य का शिक्षण, लेखक महावीरसरन जैन, प्रकाशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा, संस्करण 1999, पृ॰ 25
4. विश्वभाषा हिंदी, संपादक वशिनी शर्मा, भारत से दूर भारत में हिंदी लेखक, सुरेशकुमार, प्रकाशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा, संस्करण 1999, पृ॰ 56
5. गवेषणा, संपादक महेंद्रसिंह राणा, हिंदी : सभ्यताओं के संवाद की भाषा, लेखक शंभूनाथ, प्रकाशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा, अंक 105 (जुलाई-दिसंबर 2015) पृ॰ 18
6. प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, संपादक विमलेशकांति वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृ॰ 11
7. गवेषणा, हिंदी का विश्व, संपादक महेंद्रसिंह राणा, वैश्विक हिंदी की प्रतिष्ठा के वर्तमान संदर्भ, लेखक ज्योत्सना रघुवंशी, प्रकाशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा, अंक 105 (जुलाई-दिसंबर 2015), पृ॰ 197

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री-संघर्ष

डॉ॰ प्रीति यादव

स्त्री-जाति ने प्राचीनकाल से ही अपने अस्तित्व, अस्मिता के लिए संघर्ष किया है, कभी सीता, कभी द्रौपदी तो कभी लक्ष्मीबाई बनकर। साहित्य ने भी स्त्री-संघर्ष को उसके अनुभव की प्रामाणिकता सिद्ध करने का अवसर दिया हैं। भिन्न-भिन्न लेखक, लेखिकाओं ने अपनी साहित्यिक रचनाओं में स्त्री-संघर्ष को केंद्र में रखा। वर्तमान में जबसे महिला सशक्तिकरण की आंधी चली है, तबसे प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से स्त्री के विकास की बात सोच रहा है, उसके उत्थान की बात कर रहा है। साहित्य के ज्वलंत मुद्दों में से एक स्त्री-विमर्श या स्त्री-संघर्ष है। लेखक, साहित्यकार, बुद्धिजीवी आदि सभी शोषित, दमित, हाशिए पर धकेली गई स्त्री को आगे लाने के लिए प्रयासरत हैं। पिछले कुछ वर्षों में स्त्री को लेकर अत्यधिक साहित्य का सृजन हुआ है। नारी अस्मिता, नारी के संघर्ष को समाज में मुख्य पहचान दिलाना स्त्रीवादी कथाकारों का मूल उद्देश्य रहा है। सामाजिक परिवेश और मध्यवर्गीय जीवनमूल्यों को केंद्र में रखकर जिन लेखिकाओं ने हिंदी कथासाहित्य को एक नई दृष्टि, दिशा और पहचान दी है, उनमें मैत्रेयी पुष्पा का नाम उल्लेखनीय है। उपन्यासकार के रूप में मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में वास्तविक जीवनानुभावों को कथारस की आस्वादपरकता के साथ प्रस्तुत कर आज की सर्वाधिक सशक्त रचनाकार होने का परिचय दिया है।

इन्होंने अपने उपन्यासों में नारी का चित्रण विविध रूपों में किया है। नारी के निरंतर बदलते आधुनिक जीवन, उसकी नवीन विचारधारा को अपने साहित्य में सार्थकता के साथ अंकित किया है। मैत्रेयीजी अपने लेखन के जरिए स्त्रियों को संघर्ष करने का हौसला प्रदान करती रही है। इदन्नमम्, चाक, झूलानट, अल्मा कबूतरी, त्रिया हठ, बेतवा बहती रही, अगनपाखी, कही इसुरी फाग, विजन आदि इनके प्रमुख उपन्यास हैं, जिनमें इन्होंने नारी-सशक्तिकरण पर जोर दिया है। मैत्रेयीजी के उपन्यासों का मुख्य विषय है–नारी का स्वयं की मुक्ति के लिए किया जाने वाला कड़ा संघर्ष। नारी-जीवन के संवेदनशील व गंभीर मुद्दों को उन्होंने बड़ी सहजता व सरलता के साथ उठाया है। उनके उपन्यासों में वर्तमान नारी की सामाजिक नियति, फलस्वरूप बनने वाली उसकी मानसिकता का सजीव चित्रण चित्रित हुआ है।

सर्वप्रथम हम बात करते हैं–इदन्नमम् की। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने तीन पीढ़ियों की स्त्रियों बऊ, प्रेम और मंदाकिनी को एक सूत्र में बाँधकर, इनके संघर्ष को प्रस्तुत किया है। मैत्रेयीजी मंदाकिनी के माध्यम से एक ऐसा पात्र उपस्थित करती हैं, जो आदर्श समाज की कल्पना में स्वयं को पूर्णतया विस्मृत कर देती है। डॉ॰ निर्मला जैन का इस विषय पर मत है–'वस्तुत यह उपन्यास औरत होने की लड़ाई का उपन्यास है, वही इसकी सफलता और पठनीयता का कारण भी है।....इस उपन्यास का सामर्थ्य है, उसके नारी-चरित्र और भाषा।

 ISSN 0975-735X

बुंदेलखंड के इस 'अंचल' में नारी-जीवन के अनेक पक्ष सजीव पात्रों के माध्यम से गहरी संवेदनशीलता और भावात्मक लगाव के साथ उकेरे गए हैं।'[1]

उपन्यास का केंद्रीय पात्र मंदाकिनी है। वह मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, राजनीतिक पक्ष पर आई हुई सभी समस्याओं से संघर्ष करती है। वह कपटपूर्ण समझौते की अपेक्षा कठिन संघर्ष करना पसंद करती है। उसका संघर्ष कथा के अंत तक यथार्थ रूप में चलता रहता है। इस संदर्भ में खगेंद्र ठाकेर ने लिखा है–'इदन्नमम् और चॉक दोनों ही उपन्यास में आधुनिक नारी शक्ति के उद्‌भव और विकास के संघर्ष का प्रतिनिधित्व करनेवाले चरित्र हैं।'[2] मंदा एक दृढ़संकल्पी नारी का व्यक्तित्व लेकर उभरी है। वह दोहरी लड़ाई लड़ती है, औरत होने की और वंचितों के अधिकारों की। बऊ (मंदा की दादी) भी इसी प्रकार का सशक्त पात्र है। मंदा की माँ 'प्रेमा' ऐसा चरित्र है, जिसका कदम-कदम पर आर्थिक व दैहिक शोषण होता है। मंदा के संघर्षरत जीवन के साथ लेखिका ने कई समस्याओं पर प्रकाश डाला है, यथा–विधवा-समस्या, विधवा-विवाह की समस्या, वेश्या-जीवन की समस्या, कुँवारी लड़की की समस्या आदि। इन समस्याओं से संघर्षरत नारी को देखकर कोई भी मनुष्य नारी को 'अबला' कहने की भूल नहीं करेगा। कुसुमा भाभी के पात्र को भी इस उपन्यास में क्रांतिकारी दिखाया हैं। मंदा सामंती व्यवस्था के शोषण से पीडित है, किंतु वह संगठन और परिश्रम के द्वारा शोषण तंत्र-सत्ता को चुनौती देती है। मैत्रेयीजी ने मंदा के माध्यम से शोषित, पीड़ित, निराश लोगों में आत्मबोध जगाया। मंदा के नारी-मन को सशक्त रूप में रंखांकित किया। उन्होंने अन्याय, अत्याचार, शोषण के विरोध में संघर्षरत नारी-चरित्रों का निर्माण कर स्त्री-चेतना को जाग्रत किया है।

'झूला नट' मैत्रेयीजी का लघु उपन्यास है। स्त्री-चेतना की अभिव्यक्ति को लेकर यह उपन्यास उनके अन्य उपन्यासों से भिन्न है। इसकी पारिवारिक कथा के पात्र हैं–माँ, शीलो, बालकिशन। माँ शीलो की सास है। शीलो का पुलिस-पति उसे जान-बूझकर तलाक नहीं देता। सास सामाजिक प्रतिष्ठा का हवाला देकर शीलो को बालकिशन को सौंप देती है। यहीं से शीलो का संघर्ष शुरू होता है। पैतृक संपत्ति के लालच के कारण शीलो-बालकिशन विवाह के कोई औपचारिक रीति-रिवाज भी नहीं किए जाते। लेखिका ने निम्नवर्गीय समाज में आ रहे नवीन परिवर्तनों पर लेखन केंद्रित किया है। इस खींचातानी में शीलो का दबंग चरित्र पाठकवर्ग के सामने उभरकर आता है। जिस प्रकार सुमेर (पुलिस-पति) शहर में एक बिन ब्याही औरत को रखता है, वैसे ही शीलो ने भी गाँव में बालकिशन को रख लिया। कानूनों, स्त्री-अधिकारों की पेचीदगी को समझती हुई नारी की स्वतंत्रता के लिए किया जा रहा संघर्ष, शीला के सशक्त-चरित्र से और अधिक सफल हो जाता है।

कबूतरा जनजाति की दबंग लड़की 'अल्मा' पर लिखा गया उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' चौंका देनेवाली रचना है। इस उपन्यास की नायिका अल्मा का चित्रण मैत्रेयीजी ने एक सशक्त, संघर्षरत पात्र के रूप में किया है। भारतीय समाज में निम्न व जनजातीय महिलाओं का जीवन विषादपूर्ण है। इस उपन्यास में कबूतरा जनजाति की स्त्रियों का जीवन अपमान की जीती-जागती तस्वीर है। इस उपन्यास की एक और प्रतिनिधि पात्र है–कदमबाई। कदमबाई के चरित्र को केंद्र में रखकर, लेखिका ने सभ्य समाज द्वारा किए जा रहे शोषण, अत्याचार, घृणा, धिक्कार आदि का चित्रण भी किया है। अपने पिता के हाथों दुर्जन के घर छोड़ देने के बाद से ही अल्मा का संघर्ष

आरंभ हो जाता है। दुर्जन अल्मा को बेच देता है। वह एक नेता सूरजभान के पास पहुँच जाती है। सूरजभान उसका इस्तेमाल करता है। यहाँ से आजाद होकर भी उसका संघर्ष खत्म नहीं होता। वह वर्तमान में समाज कल्याण मंत्री, जो कि पूर्व में डाकू था, के यहाँ फँस जाती है। वह भी अपने स्वार्थवश अल्मा का इस्तेमाल करता है। नेता की आकस्मिक मृत्यु के पश्चात् अल्मा को उस सीट का दावेदार माने जाना लगता है। यहीं पर उपन्यास की समाप्ति हो जाती है। चाहे स्त्री कबूतरा जाति की हो या सभ्य जाति की, शोषण सदैव उसी का होता है। अत: स्पष्ट है कि विवेच्य उपन्यास में उपेक्षित और हाशिए पर रही नारियों द्वारा अपना अस्तित्व सिद्ध करने का संघर्ष दिखाई देता है।

'विजन' उपन्यास की नारियाँ डॉ॰ नेहा और डॉ॰ आभा का व्यक्तित्व विद्रोही है। इसमें लेखिका ने कामकाजी नारी के संघर्ष को दिखाने का प्रयत्न किया है। डॉ॰ आभा अपने चिकित्सा के व्यवसाय में संघर्षरत नारी है। वह नेत्र-चिकित्सक है और इसके माध्यम से लेखिका ने दर्शाया है कि किस प्रकार सभी क्षेत्रों में पुरुष अपना वर्चस्व स्थापित कर देना चाहते हैं और स्त्री को हाशिए पर धकेल देते हैं।

घर, परिवार और आर्थिक दृष्टि से पति पर आश्रित नारी के रूप भी इनके उपन्यासों में दिखाई देते हैं। 'अगनपाखी' उपन्यास में मन्नू चंदर की माँ है और भुवन की बहन। वह अपनी समाज परंपराओं के साथ-साथ पति के बंधनों में रहकर जीवनयापन करती है। मन्नू की माँ भी परंपराओं में बँधकर रहनेवाली औरत है। वह अपने जीवन में आनेवाली कठिनाइयों, संघर्षों को अपनी नियति मान लेती है। बड़ा जमाई जब दूसरी बेटी की शादी एक अधपगले लड़के से कर देता है, तब भी वह अपने ही भाग्य को दोष देती है, न कि पितृसत्ता को। अत: इस उपन्यास में मैत्रेयीजी ने भारतीय संस्कृति के आधार पर बनी पुरानी मान्यताओं का निर्वहन करती नारी का चित्रण किया है।

'कही इसुरी फाग' उपन्यास की नायिका रजऊ विद्रोहिनी है। वह लोकगायक ईसुरी के साथ प्रेम करती है। इस उपन्यास की बऊ भी अंदर से विद्रोहात्मक है। बऊ ही निरंतर रजऊ को अपनी सीमाएँ लाँघकर विद्रोह करने का सुझाव देती है। मैत्रेयीजी के नारी-पात्रों में परंपराओं से विद्रोह कर 'वस्तु' से व्यक्ति होने की छटपटाहट दिखाई देती है।

'चाक' की मुख्य पात्र 'सारंग' स्त्रियों के प्रति हो रहे अत्याचारों को चुनौती देती है। वह नारी की परंपरागत मान्य बेड़ियों को तोड़ती हुई अपने प्रेमी से शारीरिक संबंध भी बनाती है। पुरुष-सत्ता को नकारते हुए और उसे चुनौती देने के लिए ग्राम पंचायत के चुनाव में प्रधान पद के लिए डॉ॰ गिरिजा राय ने लिखा है–'चाक की शुरुआत एक धमाके से होती है, जिसकी अनुगूँज उपन्यास के अंत तक पीछा करती है। नारी-जागरण का यह विलक्षण उपन्यास है। पहली बार स्त्री परंपरागत रूढ़ियों को झटककर पुरुष-वर्चस्व को सफलतापूर्वक चुनौती देती है। निश्चित रूप से 'चाक' अपने समय की श्रेष्ठ रचना है, इतनी कि मैत्रेयी के स्वयं के लिखे उपन्यास भी इससे काफी पीछे रह जाते हैं।'[3]

अत: कहा जा सकता है कि मैत्रेयीजी ने अपने उपन्यासों में समकालीन स्त्री-चरित्र का अत्यंत व्यापकता के साथ चित्रण किया है। नारी-संघर्ष को दर्शाते मैत्रेयीजी के उपन्यास पुरुष-प्रधान समाज को चुनौती देती महिलाओं के चित्रण के लौह दस्तावेज हैं।

संदर्भ

1. सं॰ डॉ॰ कल्पना वर्मा, स्त्री-विमर्श : विविध पहलू, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009
2. समकालीन साहित्य समाचार (पत्रिका), नवंबर 2010
3. डॉ॰ गिरिजा राय, हिंदी अनुशीलन (त्रैमासिक), लेख समकालीन सृजन परिदृश्य, पृ॰ 107

संदर्भ सूची

1. लता शर्मा, औरत अपने लिए, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
2. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती, प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
3. मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा बहती रही, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
4. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम्, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
5. मैत्रेयी पुष्पा, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली

1565, **सेक्टर** 4, **रेवाड़ी** 123401
(हरियाणा)
मो॰ 8059760360

डोगरी लोक-कत्थें च लोकविश्वास

डॉ॰ प्रीति रचना

'लोकविश्वास, द'ऊं शब्दें दे मेल कन्नै बने दा ऐ- 'लोक' ते 'विश्वास'। लोक दा अर्थ ऐ–आम जनता ते विश्वास दा अर्थ ऐ–भरोसा। कुसै गल्ल, विशे, माह्नू, देवी-देवता आदि दे सरबंधै च मनै च औने आह्ली एह् धारणा जे ओह् ठीक, स्हेई, सच्च ऐ जां इस्सी अस जनेहा समझनेआं असल च बी उयै जनेहा ऐ, बक्खरा नेईं।

लोकविश्वास, लोकवार्ता दा गै इक म्हत्तवूर्ण अंग ऐ। लोकविश्वास द'ऊं चाल्ली दे होंदे न–'इक ओह् विश्वास जेह्ड़े आस्था पैदा करने न ते जेह्दे लेई तर्क जां वास्तविक प्रमाण दित्ते जाई सकदे न। दूआ, जिं'दे पर आस्था ते होंदी ऐ पर उं'दे लेई कोई तत्थपूर्ण अधार जां प्रमाण कट्ठे नेईं कीते जाई सकदे।'[1] लोकविश्वास दे सरबंध च जिन्ने बी उल्लेख मिलदे न ओह् सारे प्राचीन काल थमां पाए जंदे न। लोकें दी आस्था दे प्रतीकें कन्नै जुड़े दे केईं लोकविश्वास साढ़े समाज च प्रचलत न। इ'नें लोकविश्वासें दी नरोई झलक डोगरी लोक-कत्थें च बी द्रिश्टीगोचर होई दी ऐ। डोगरी च लगभग 27 लोक कत्थें दे संग्रैह प्रकाशित होई चुके दे न ते इ'नें संग्रैहें च बी केईं चाल्ली दे लोकविश्वास नज़री औंदे न। जि'यां कर्मफल ते विधाता सरबंधी लोकविश्वास, भूत-प्रेत सरबंधी, परियें सरबंधी, जादू-टोना ते टोटका सरबंधी, होनी सरबंधी, सुक्खन सरबंधी, शराप आदि सरबंधी लोक विश्वास।

1. **कर्मफल ते विधाता सरबंधी लोकविश्वास**

डुग्गर जनमानस दा कर्मफल पर ते विधमाता पर बड़ा विश्वास ऐ। ओह् मनदे न जे माह्नू गी अपने कर्मे दा फल भोगना गै पौंदा ऐ ते विधमाता बारै बी उ'नेंगी विश्वास ऐ जे विधी माह्नू दे लेख माह्नू दे जनम दे कन्नै गै लिखी दिंदी ऐ जिसगी सवाए विधमाता दे दूआ कोई नेईं मेटी सकदा। डुग्गर दे लोकें दा एह् विश्वास डोगरी लोक-कत्थे च बी द्रिश्चीगोचर होए दा ऐ। जि'यां–

'दो लुहाई' कत्थै च इक लुआई गी ओह्दे कर्में दा फल थहोंने दा जिकर आए दा ऐ। लुआइयै दुकानै पर दुद्ध पींदे इक कुत्ते गी लक्के च डांगै दी दित्ती ही, जेहदे करी कुत्ता तड़फी-तड़फी मरेआ हा। 'फ्ही उयै कुत्ता लुआइयै दे घर पुत्तर बनियै औंदा ऐ ते भर जुआनी च मरी जंदा ऐ। मरने शा पैह्लें ओह् लुआइयै गी सनाई बी जंदा ऐ जे ओह् पिछले जनमै च उयै कुत्ता हा ते उस लुआइयै गी एह् ओह्दे कर्में दा फल गै थ्योआ करदा ऐ–

'जागत आखन लगा...ओ कुत्ता तड़फी-तड़फी मरी गेआ हा। तुंदे कन्नै मेरा जेह्ड़ा स्हाब-कताब हा ओ इयै हा जियां तुसें मेरा लक्क त्रेड़ेआ हा उ'यां गै अज्ज अऊं बी तुंदा लक्क त्रेड़ी चलेआं।'[2]

'शिवें दी मैह्मा' कत्थै च बी कर्मफल दा जिकर आए दा ऐ–

'माता गौरां ने शिवें दे संग इक नग्गरै दा चक्कर लाया ते आखन लगी–म्हाराज ए के गल्ल ऐ जे किश लोक पक्के मैह्लें च रोहा करदे न किश का–रूक्खें दे कुल्लें च। भगवान शिव बोले–पारवती ए पिछले जनमें दे कर्में दा फल ऐ।'[3]

मनुक्ख बडा डाह्डा, दानी विश्नोदास, कनीती दा फल, कर्में दा फल, करनी दा फल, लालचै दा फल बगैरा कत्थें च बी इस विश्वास दे प्रमाण मिलदे न।

'विधमाता दे लेख' कत्थै च विधमाता आपूं कुसै गी गलांदी ऐ जे ओह्दे आसेआ लिखे दे लेख अनमिट होंदे न।

'देवी ने परता दित्ता–में विधमाता आं। में सभनें दे भाग बनानी आं, मेरे बनाए दे भागें गी कोई भेटी नईं सकदा।'[4]

इस्सै नां–दी इक होर कत्थै च धर्मराजा इक भूतै गी गलांदा ऐ जे विधमाता दे लेखें गी बदलेआ नईं जाई सकदा ते भूत बी इस गल्लै गी मन्नी लैंदा ऐ ते एह्दे बारे च इक जागतै गी गलांदा ऐ–

'धर्मराजा होर आखदे न–'विधमाता जे जो लिखे दा ऐ ओ पुट्ठे हत्थ लिखे दा ऐ ते ओह्दा लिखे दा ओ (धर्मराज) घड़ी-पल बी नां बधाई सकदा ऐ ते नां घटाई सकदा ऐ।'[5]

भविक्खवाणी, करनीकार ते लेखें दे लखैंत, भागें दी खेड, संजोग बलवान, विधमाता दे अंकूर, विधमाता दे लेख आदि कत्थे च बी इस लोकविश्वास दे प्रमाण मिलदे न।

भूत-प्रेत सरबंधी लोकविश्वास

डुग्गरवासियों दा भूत-प्रेते च बी बड़ा विश्वास ऐ। ओह् मनदे न जे जेकर कोई कुआरा मरै तां ओह् भूत बनदा ऐ ते जेकर अकाल मृत्यु मरै तां प्रेत।

भूत-प्रेते प्रति विश्वास दी नरोई झलक डोगरी लोक-कत्थें च बी द्रिश्टीगोचर होई दी ऐ। जि'यां–

'मक्खी चूस शाह्', कत्थै च इक भूतै दा जिकर आए दा ऐ, जिन्नै इक राजकुमारी दे शरीरै च डेरा लाए दा हा ते उस्सी दुख दिंदा हा–

'सप्प भूतै गी आखन लगा जे तो अपने आपै च के समझी लैता दा ऐ तो राजे दी कुढ़िऐ च प्रवेश करिऐ उस्सी बमार करी ओड़े दा ऐ पर जेकर तुकी कुत्ते ते बिल्ली दा गंद संगा तां तूं नसदा जन्नां।'[6]

'भूत ते पन्त' कत्थै च बी इक बड़ै दे रुक्खै पर भूतै दे रोह्ने दा जिकर आए दा ऐ–

'उस बड़ै दे बूह्टे पर इक्क भूत रौह्दा हा। आने-जाने आलें गी ओह् मता गै डरांदा हा।'[7]

भला ते बुरा, भूतें दी जान्नी, बड़ भूत, विधमाता दे लेख, भूतै दी कूल, भूले दा घर, भूत बगैरा कत्थै च बी एह्दा उदाहरण मिलता ऐ।

परियें सरबंधी लोकविश्वास

डुग्गर लोकमानस विश्वास करदा ऐ जे परियां होदियां न। ओह् कदें-कदें इस धरती पर बी औंदियां न ते जेह्ड़ा ने माह्नू उ'नेंगी पसंद आई जा उस्सी अपने लोक लेई जंदियां न। इस विश्वास दे प्रमाण बी डोगरी लोक-कत्थें च लभदे न। जि'यां–

'चार परियां' कत्थै च परियें दा जिकर आए दा ऐ, जेह्ड़ियां इक माह्नू शा डरदे ओह्दी

मदद करदियां न।

'उनें परियें सलाह् कीती ते उस्सी आखन लगियां-भाई लूं असेंगी खायां नईं ते अस तुकी इक बकरी दिन्नेयां जेड़ी सुन्ने दियां मीड़ना करदी ऐ।'[8]

'गुलनार परी' कत्थै च इक राजकुमार ते परी दे ब्याह् दा वर्णन मिलदा ऐ

'राजकुमार ने परी कन्नै ब्याह् करी लेया ते उत्थै गै रौह्न लगी पेया।'[9]

परियां, राजा मदन ते मालती परी, लाल परी, ड्डिउ हत्थ मान्हू ते ढाई हत्थ लम्मी दाढ़ी, सब्ज घमंडी परी, तोता, मैना ते गान्नी, सेली-डंडा आदि कत्थें च बी इस विश्वास दा जिकर मिलदा ऐ।

जादू-टोना ते टोटना सरबंधी लोकविश्वास

जादू-टोना ते टोटके दियां जड़ां बी लोकमानस च बड़ियां गैह्रियां न। लोक विश्वास ऐ जे डैना जादू-टोना करदियां न ते लोकें दा अनिश्ट करदियां न। टोटके बी केईं चाल्लीं दे प्रचलित न जि'यां-बच्चे गी बुरी नजरीशा बचाने लेई काला टिक्का लाना, कुसै दे घरञयाणा नईं होने पर साधु-म्हात्मा आसेआ भभूत मैत्रियै देना आदि। जादू-टोने ते टोटके सरबंधी लोकविश्वास बी इ'नें डोगरी लोक-कत्थे च लभदा ऐ। जि'यां–

'राजा मंडलीक' कत्थै च गौड बंगाल दे जादू दा वर्णन होए दा ऐ-

'गोड बंगालै दा जादू मश्हूर गै ऐ। राज-कुमारी जादू आला चौपड़ लेई आई...राजे ने ओ बाजी बी हारी।'[10]

'भूपत जोगी' कत्थै च इक जोगी, इक जनानी गी जादू कन्नै मक्खी बनांदा लभदा ऐ–

'भूपत जोगी आया। सुन्दरी गी दिक्खियै ओदा मन ललचोई गेआ। उन्न उस्सी मक्खी बनाया ते झोले च पाइयै उत्भुआं नस्सी गेआ।'[11]

'दो राजकुमार' कत्थै च टोटके दा वर्णन मिलदा ऐ। राजे-रानी दे घर लुआद नईं ही इस्सै करी इक साधु उ'नेंगी फल दिंदा ऐ, जेह्दे परैंत दा जनम होंदा ऐ–

'साधु उसलै किश खुशी च हा। आखन लगा-एह् लैओ दो फल, इक्क आपूं खाई लैओ। दूआ रानी गी खलाओ। किश दिनें बाद रानी गर्भवर्ती होई गेई।'[12]

'राजा मंडलीक' कत्थै च माता बाशला आसेआ साधु शा भभूत लैने दा जिकर होए दा ऐ, जेह्दे कन्नै माता बाशला दे घर राजा मंडलीक दा जनम होंदा ऐ–

'माता बाशला हीरें बारां ब'रे गुरु गोरख-नाथें दी सेवा कीती। नाथ होरें परसिन्न-होइयै माता होरें गी आखेआ कल्ल दुद्ध न्हेरै आइयै फल देने आली भभूत लेई जानी...गुरु गोरखनाथ...पुत्तर प्राप्ति आला फल माता गी दित्ता।'[13]

होनी

डुग्गर दे ग्रांईं जीवन च होनी बारै बी बड़ा दृढ़ विश्वास ऐ। ओह् मनदे न जे होनी जिसलै कुसै पर औंदी ऐ तां ओह् आइयै गै रौंह्दी ऐ टलदी नईं। ते जिसलै कुसै पर होनी औंदी ऐ तां उस माह्नू दे जीवन च सिर्फ दुख-तकलीफां, औखां-अडचनां गै औंदियां न। खुशी जां सकून नईं। इस विश्वास दा जिकर बी किश डोगरी लोक-कत्थें च द्रिश्चीगोचर होए दा ऐ। जि'यां–

'होनी' कत्थै च राजे पर होनी औने करी बारहां ब'रें दुख भोगने दा वर्णन मिलदा ऐ। 'होनी

इक्क दिन आई ते मैह्लें चा सारे लाल ते लालड़ियां गुआची गे। ...राजा इन्ना गरीब होइया जे उदे कश फक्का बी निं रेया, होंदे-होंदे इस्सै चाल्ली बारां बरहे बीती गे।'[14]

'अनमिट लेख' कत्थै च बी इक राजे गी होनी बीतने करी दुख-कश्ट झलदे दस्सेआ गेदा ऐ।[15]

'होनी ते विधाता' कत्थै च इक जागतै, गी बाह्रां ब'रे होनी बरतने दा उल्लेख मिलदाऐ–

'पंत होरें पत्री कड्डी ते आखन लगे, इस जागताई बारां साल होनी बरतनी ऐ। ...होनी... आखन लगी... अम्मी तेरे लिखे मताबक गै मानु गी भोगी सकनी आं।'[16]

सुक्खन

डुग्गर दे जनजीवन च सुक्खन प्रति बी बड़ा विश्वास ऐ। सुक्खन, देवी-देवते, पीरें-फकीरें दे थाह्रै पर बड़ी शरदा-भगती कन्नै जाइयै कीती जंदी ऐ जे जेकर साढ़ी कामना पूरी होग तां भेंट चाढ़गे। एह् बी विश्वास कीता जंदा ऐ जे जेकर मनोकामना पूरी होने पर सुकखन नईं चढ़ाई जा तां देवी-देवते नराज होंदे न ते दुख, कश्ट दिंदे न। इ'नें कत्थें च इस विश्वास दी झलक बी केईं थाह्रें नज़री औंदी ऐ।

'भोला ब्राह्मन', कत्थै च इक ब्रैह्मनै आसेआ अपनी गौ गुआची जाने पर भगवान कृश्ण दे मंदर सुक्खन करने दा उल्लेख मिलदा ऐ।

'इक थार कृश्ण माराज दा इक मंदर आया। बरैह्मनै मंदर मत्था टेकियै सुक्खन कीती जेकर गौ लब्बी जाग तां उसी बेचियै सारे गै पैसे तेरै जाङ।'[17]

शराप

डुग्गर दे लोकें च शराप दी भावना बी बड़ी परानी ऐ। लोकविश्वास ऐ जे जेकर कुसै साधु-म्हात्मा, देवी-देवता, ब्राह्मण, गुरू गी नाखुश करी देओ तां ओह् शराप दिंदे न जेह्ड़ा सच्च बी साबत होंदा ऐ। डोगरी लोक कत्थें च बी इस लोकविश्वास दा जिकर मिलदा ऐ। जि'यां –

'करनी दा फल', कत्थै च इक सेठै गी साधु दा नरादर करने दा शराप भुगतने दा उल्लेख मिलदा ऐ।

'...उस सेठ गी ऐ शराप देई गेआ जे समां बड़ा बलवान होंदा ऐ ते समां औग जे तेरे इन्हें मैह्लें गी अग्ग लगी जाग...समां आया ते चानचनक गै सठ हुंदे मैह्ले गी अग्ग लग्गी गेई।'[18]

निश्कर्श दे तौर पर एह् गलाया जाई सकदा ऐ जे डोगरे लोकें आसेआ अपने घर-परोआर ते जीव-जैंतुएं प्रति फिकर, उं'दी नरोई सेह्त ते सुख-समृद्धि दी कामना आस्तै मन्ने गेदे एह् लोकविश्वास जि'नेंगी जनमानस शुरू थमां स्वीकारदा आवा दा ऐ एह् विश्वास डोगरी लोक-कत्थें च बी नजरी औंदी न। इ'नें विश्वासें दे अलावा किश होर लोकविश्वास बी इ'नें कत्थें च लभदे न। जि'यां-नागपूजा सरबंधी, ग्रैह्-गोचर पुच्छने सरबंधी, साधु-म्हात्मा प्रति आस्था-विश्वास, दान-पुन्न प्रति विश्वास। एह् सब्भै लोकविश्वास एह् सिद्ध करदे न जे इ'नें लोकविश्वासें दा माह्नू जीवन कन्नै अटूट रिश्ता ऐ। एह् कुसै-न-कुसै रूपै च उपयोगी सिद्ध होंदे न की जे एह् मनुक्खी मनै दी डोरी कन्नै बज्झे दे होंदे न।

संदर्भ

1. अवधी का लोकसाहित्य, डॉ॰ सरोजनी

2. बनें दियां मिंजरां, भाग-11, श्री ओम गोस्वामी, पृ॰ 86, 88
3. बनें दियां मिंजरां, भाग-12, श्री ओम गोस्वामी, पृ॰ 72
4. नौ लखिया हार, शिवराम दीप (संपादक), पृ॰ 56
5. बनें दियां मिंजरां, श्री ओम गोस्वामी (संपादक), पृ॰28
6. देनदार केहरिसिंह मधुकर (संपादक), पृ॰ 16
7. नागबनी, ओम गोस्वामी, पृ॰ 107
8. देनहार, केहरिसिंह मधुकर, पृ॰ 84
9. इक डंलिया मैह्ल, ओम गोस्वामी (संपादक), शिवराम द्वीप, पृ॰ 14
10. लक्क टुनुं-टुनुं, केहरिसिंह मधुकर, शिवराम द्वीप, पृ॰ 25
11. उ'ऐ, पृ॰ 43
12. नागबनी, ओम गोस्वामी (संपादक), पृ॰ 177
13. लक्क टुनुं-टुनुं, केहरिसिंह मधुकर, शिवराम द्वीप, पृ॰ 22, 23
14. नागबनी, ओम गोस्वामी (संपादक), पृ॰ 110, 111
15. उ'ऐ, पृ॰ 162
16. भागें दी खेड, केहरिसिंह मधुकर (संपादक), पृ॰ 96,100
17. बनें दियां मिंजरां, ओम गोस्वामी (संपादक), पृ॰ 120

गाँव बकोर, तहसील अखनूर
जिला जम्मू-181202
मो॰ : 9906902973
preetirachna2@gmail.com

 ISSN 0975-735X

डोगरी क्हानियें च परिवारिक ते धार्मिक कदरां

शिवकुमार खजूरिया (शोधकर्ता)
डोगरी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

मनुक्खी जीवन भी सुचारू ढंगै कन्नै चलाने आस्तै किश माप-दंड निर्धारित कीत्ते गेदे न ते उंदे अधार उप्पर गै किश अवधारना बनी दियाँ न, जि'नेंगी समाज-शास्त्रिये 'मूल्य' नां दी संज्ञा बी दित्ती दी ऐ। 'मूल्य' गी डोगरी च 'कदरां' गलाया जंदा ऐ। इस आस्तै अँग्रेजी च 'वेल्यू' शब्द दा प्रयोग कीता जंदा ऐ। इ'नें कदरें गी पीढ़ी-दर-पीढ़ी ते युगें-युगें थमां परखेआ गेदा ऐ। इं'दें उप्पर गै अच्छे परिवार ते समाज दी नीह् टिकी दी होंदी ऐ। एह् कदरां मनुक्खी जीवन गी शैल ते सौखा बनाने व मद्दगार, साबत होंदियाँ न। मौजूदा दौर च कदरें दा प्रयोग, परिवारिक, समाजिक, आर्थिक ते धार्मिक रूपै च बी होन लगी पैदा ऐ।

परिवारिक कदरां

परिवार समाज दी सारे थमां लौह्की ते मूल इकाई ऐ। समाज व परिवार गी सारें थमां महत्त्वपूर्ण थाह्र हासल होए दा ऐ। एह्दे उप्पर गै कुसै बी समाज दा बजूद निर्भर करदा ऐ। जनम लैंदे गै ज्याना परिवार दा सदस्य बनी जंदा ऐ। परिवार उसी मनुक्ख बनांदा ऐ। जनम कोला लेइयै मरने तगर मनुक्ख परिवार दा हिस्सा बनियै रौंह्दा ऐ। परिवारिक वातावरण दा प्रभाव मनुक्ख उप्पर ता-उमर रौंह्दा ऐ। परिवार च रौंह्दे होई मनुक्खै गी इक समे उप्पर केईं रिश्ते निभाने पौंदे न। इक समें उप्पर मते रिश्ते निभाना कोई सौखा कम्म नेईं ऐ। कीजे हर रिश्ते दी बक्खरी पंछान ते ऐह्मीयत दे कन्नै-कन्नै बक्खरियाँ समस्या बी होंदी ऐ। परिवार च रौंह्दे होई परिस्थितियाँ ऐसियाँ बनदियाँ न जे कदरें दा विकास बी होंदा ऐ ते ह्रास बी। डोगरी कहानियें च बी परिवारिक कदरें दी नरोई झलक दिक्खने गी मिलदी ऐ। जेह्दे च इ'नें क्हानियें दे पात्तर परिवारिक कदरां बनांदे ते त्रेड़दे नज़री आए दे न। जिं'दे बारै तफसीली चर्चा इस चाल्लीं कीती गेदी ऐ–

'ओह्दा मांह्भारत' क्हानी च पात्तर रोह्लू राम ऐ। ओह् जलेबिएं दी रेह्ड़ी लांदा ऐ। पर, ओह्दे नूंह्-पुत्तर अक्सर उसी रेह्ड़ी लाने थमां रोकदे रौंह्दे न। इक ते रेह्ड़ी उप्पर होने आह्ली कमाई मती घट्ट ऐ ते दूआ कम्म निक्का होने करी नूंह्-पुत्तरें गी शर्म औंदी ऐ। पर, रोह्लू राम दा मनन्ना ऐ जे कम्म कोई निक्का-बड्डा नेईं होदा ऐ। चोरी करना गुनाह् ऐ पर, कम्म करने च कोई शर्म नेईं ऐ। तंगी च जिस कम्म नै उसी रूऋी दित्ती, टब्बरै दे पालने उसदा साथ दित्ता ओह् कम्म निक्का कि'यां होई सकदा ऐ? क्हानी च रोह्लू राम दे एह् बोल परिवारिक कदरां बनाई रक्खने दी पुश्टी करदे न–

'अज्ज एह् कम्म तुंदी वेसती करादा ऐ। पर इस्सा कम्मा तुसें गी पाली-पोसिए एह् रंगेजियाँ फारसियाँ मारने जुगा बनाया ऐ।'[1]

'बिखड़ी बत्ता दी चाननी' क्हानी च मुक्ख पात्तर संतराम ऐ। ओह्दे जीवन दे किश असूल न। ओह् म्हेशां सच्चाई ते इमानदारी दी बत्तै उप्पर चलना गै अपना धर्म समझदा ऐ। नौकरी दौरान ओह्दी घरै-आह्ली इमानदारी दी कमाई कोला संतुश्ट नेईं होंदी ते म्हेशां उसी बेइमानी करने आस्तै उकसांदी, तान्ने मारदी ते लड़दी रौंह्दी ऐ। पर, सन्तराम दा मनना ऐ जे इमानदारी दी कमाई च गै बरगत होंदी ऐ ते नेक कमाई करने कन्नै गै घरै दे दूएं जीवें उप्पर चंगा असर पौंदा ऐ। गल्त तरीके कन्नै कीती गेदी कमाई दा दुशपरिणाम भुगतना गै पौंदा ऐ। इसकरी संतराम असूलें गी नेईं छोड़दा जिनेंगी उ'न्नै अपनी जीवन च सूखें दा मूल मंत्र मन्ने दा होंदा ऐ। क्हानी च आए दे संतराम दे एह् बोल दिक्खो–

'जेकर स्टोर कीपर होइयै मियें चोरियाँ करन लगदा ताँ उस कमाई दा पता नीं कनेहा माड़ा असर पौना हा। तेरी लुआद दिक्ख किन्नी सुथरी होई ऐ। सारे सत्थे-आने, कोई नुक्स नेईं उ'नेंगी-केह् पता एह् उस्सै नेक कमाई दी बरकत ऐ।'[2]

'शुरुआत' क्हानी च अमरनाथ देश गी अजाद करोआने च अपना योगदान दिंदा ऐ। देश अजाद होने दे बाद ओह् अपना पूरा जीवन समाज सेवा च समर्पित करी दिंदा ऐ ते लोकें दी सेवा मेह्नत, लगन ते इमानदारी कन्नै करदा ऐ। पर, ओह्दा अपना पुत्तर कमल एम॰एल॰ए॰ बनियै लोकें गी लुट्टना शुरू करी दिंदा ऐ। अमरनाथ, कमल गी गल्त तरीके कन्नै कमाई नेईं करने दी सलाह् दिंदा ऐ। ओह्दा मनन्ना ऐ जे लोकं दा प्रतिनिधि उं'दी सेवा करने आस्तै बनेआ जंदा ऐ, नां के उं'नेगी लुटने आस्तै। ओह् अपने एम॰एल॰ए॰ पुत्तर गी तंज कराइयै सधेरने दा जनत करदा ऐ तां जे उसदा जागत वेवस लाचार लाकें गी लुट्टना छोड़ी देऐ ते सेही मैह्ने च सेवा करै। क्हानी च आई दियां एह् सतरां दिक्खो–

बेईमानी ते लूट-खसूट जिनें पादी तुमी उंदै च शामल होई गेआं।

तुंदे देह् लुटेरे जिस देसै च न, उस देसै दा केह् बनना–ऐं? मिगी लगदा ऐ अजादी बेमतलबी होई गेई ऐ।[3]

ओह् अपने तरीके कन्नै कम्म करदा रौंह्दा ऐ जिसकरी अमरनाथ बड़ा दुखी ऐ।

'कोलें दियां लीकरां' ते 'गर्जदे बदल मिल्कदी बिजली' कहानिएँ च पारिवारिक कदरां त्रुटदियां लभदियां न। इक च फिसरू ते ओह्दी घरै-आह्ली विधवा नूंह् गी जिम्मेवारी नेईं मनदे ते नां गै बढ़ापे दे दिनें च उसी अपने स्हारे दे रूपै च दिखदे न। दौंने गी लगदा ऐ जे एह् साढ़ा अपना खून नेईं ऐ इसकरी उ'नेंगी नूंहा कन्नै कोई लगाऽ नेईं ऐ। ओह् दोऐ जीऽ नूंहाँ दे नां-नुक्कर करने पर बी उसी त्रै-सौ रपे च इक फौजी गी बेची दिंदे न। ओह् दोऐ जीऽ इस चाल्ली मिट्ठे बनियै हामी भराई लैंदे न जे ओह् उंदे फैसले दा विरोध बी नेईं करी सके। फिसरू दे पुच्छने पर ओह्दी लाड़ी दे एह् बोल उंदी भावनात्मक मक्कारी गी गुहाड़ने आह्ले न–

'गलाना केह् हा? इयै जे तेरे सौरिएं–प्योकियें दे कुल्लें दा कोई'

रेआ नेईं, परतौरा तेरा बृद्ध, में बमार, कुस बेल्लै स्वास मुक्की जान, कोई पता नेईं। 'ही तेरा कु'न्न रेहा।'[4]

दूई क्हानी च प्योऽ ते धीऽ दे रिश्ते च कदरां त्रुटदियां लभदियां न। प्योऽ अपने नशे दी पूर्ती आस्तै धीऽ गी अट्ठ सौ रपेऽ च मुल्लें बेची दिंदा ऐ। ऐसा करदे नां ते उसी शरम औंदी ऐ ते नां गै अफसोस होंदा ऐ। ओह् अपनी धीऽ गी जिम्मेबारी नेईं समझदा ते नां गै ओह्दे कन्नै अपने रिश्ते

 ISSN 0975-735X

दी गरीमा गी समझने दा जतन करदा ऐ। ओह् धीऽदी खुशी कोला बी बद म्हत्व अपनी बेमतलब दी जरूरतें गी दिंदा ऐ। क्हानी च आए दे धीऽ दे एह् बोल दिक्खो जेह्दे च ओह् प्योऽ कन्नै अपने मनै गा बुआल कड्डै करदी ऐ-

'किन्न रपेंऽ मेरा सौदा कीता ऐ बापू? इनें रपे कन्नै किन्ने चिर तेरी शराब चलग? पैसें दा गै लालच हा तां मिगी पुच्छी ते लैना हा बापू? इ'न्ने सारे रपेंऽ कुश्वा भीमू बचारा बी कुतों दा चाड़ी-चुक्कियै आनी छिंदा। ए सूबेदार तेरा हानी-सानी ऐ बापू। धिऊ दा मुलल करदे नां तुसेईं लज्जा आइ, नां उसी शर्म आई।'[5]

'सुक्के अत्थरूं'[6] क्हानी च परिवारिक कदरें दा ह्रास होए दा मिलदा ऐ। प्रस्तुत क्हानी च सकीना दी मां मुक्ख पात्तर ऐ। ओह् जिस्फरोशी दा धंधा करदी ऐ। जुआनी दे दिनें च ओह् अपना ते धियें दा गुजारा इस्सै चाल्ली करदी ऐ। ओह् अपनी धीऽ सकीना गी बी जबरदस्ती इस्सै धंधे च लाई दिंदी ऐ। ओह् धियें कन्नै बखले आह्ला वरताऽ करदी ऐ। उ'नेंगी पढ़ाने-लखाने ते चंगे संस्कार देने दे ब्जाए उल्टा इस बदनामी आह्ले दलदल च पाई दिंदी ऐ। जेह्दे कन्नै उं'दा भविक्ख पूरी चाल्ली खराब होई जंदा ऐ। ऐसा करने कन्नै उसी रती-भर बी बसोस नेईं होंदा ते नां गै ओह् समाज दी परवाऽ करदी ऐ।

इसदे इलावा 'जींदा श्हीद' ते 'कसूरवार' क्हानियें च परिवारिक कदरा त्रुट्टदियां लबदियां न।

धार्मिक कदरां

धर्म मनुक्खै दी उस प्रबुद चेतना गी जगांदा ऐ जेह्दे च व्यक्ति नां ते पूरी चाल्ली संसारिक होई पांदा ऐ ते नां गै ओह् संसार गी त्यागने दे बारे च सोचदा ऐ। धर्म ऐसी कदरें दी पुश्टी करदा ऐ, जेह्दे च माह्नू अपनी असमाजिक कश्तियें उप्पर काबू करदे होई मनुक्खी-मर्यादाएं दी स्थापना करदा ऐ। धार्मिक कदरें दा पालन करने आह्ला मनुक्ख इस गल्लै उप्पर चिंतन करदा ऐ जे ओह् अपने सुआर्थ गी सामनै रक्खियै कुसै दुए दा हक्क ते नेईं मारा दा। अपने भौतिक ते अध्यात्मिक जीवन च संतुलन बने दा ऐ जा नेईं। मनुक्ख जाति दी मूलभूत अनुभूतियें दा इक सुंदर स्वरूप धार्मिक कदरां न। जेह्ड़ियां मनुक्खै गी पशु थमां मनुक्खै आह्ली श्रेणी च लेआंदियां न। डोगरी क्हानियें च बी धार्मिक कदरें आह्ले गुण स्पश्ट तौरा पर लभदै न। जिंदी तसीली चर्चा अग्गै कीत्ती गेदी ऐ।

'परछामें' क्हानीं च मुक्ख पात्तर जानकी बड़ी लौह्की बरेसै च विधवा होइयै प्यौके आइयै रौह्न लगी पौंदी ऐ। प्यौके बी ओह्दे साक-सरबंधी तौले गै ईश्वर गी प्यारे ही जंदे न। इसकरी बूआ घरै च इक्कली गै रेही जंदी ऐ। इक्कले रौह्ने करी ओह्दे कोल समां बत्थेरा होंदा ऐ ते ओह् अपना ज्यादातर समां भगवान दा नां* जपने च गजारना सुरू करी दिंदी ऐ। कास्ती ते पुन्नेआं दा म्हातम बी उसी खरी चाल्ली पता ऐ। इसकरी जानकी कोई बर्त-नत्त नेईं खंझांदी ऐ। क्हानी च जिसलै बी कोई जागत जां कुड़ी जानकी गी सद्दने आस्तै औंदा ऐ तां ओह्दा म्हेशां इ'यां जबाव होंदा ऐ-

''ते बुआ बड़ी तश्प्त होइयै आखदी, 'तूं चल कुड़िये। औं बिन्द विश्णु सहस्सर नाम मकाइयै पुज्जनी आंख्र ''तूं चल बच्चुआ ते औं तुलसी गी जल ढालियै औंनी आं।''[7]

'रबारा बदली गेआ' क्हानी च मुक्ख पात्तर सारिका दी मां ऐ। मां पिछले केई ब'रें थमां सारिका दा ब्याह् नेईं होने करी परेशान ऐ। उसी सारिका आस्तै हान मेल नेईं मिला करदा ऐ। जेकर

कुतै चंगा घर ते शैल जागत मिली बी जंदा ऐ तां टिबड़ा नेईं मिलदा ऐ। इसकरी ओह् दुखी रौंह्दी ऐ। सारिका दी मां अपनी परेशानी दूर करने आस्तै धीऽ दा टिबड़ा पंतै गी दसदी ऐ। तां जे ओह्दे जीवन च चलै करदी ग्रैहें दी माड़ी चाल दे असर गी दूर कीता जाई सके। क्हानी च आए दे पंत दे एह् बोल जेह्दे च ओह् सारिका दे उपाऽ बारै ओह्दी मां गी दस्सा करदा ऐ–

'चूँकि ग्रैंह्-दशा किश सारी चला करदी ऐ। कन्नै गै जन्म-पत्तरी दे स्हाबें बी एह् समां नीच ग्रैंहे करी प्रभावत ऐ, इसकरी कुड़ी गी सोमबारें बडलै पौ फटने शा पैह्लें शिवें गी जल ढालना पौग...। बरत रखना पौग ते कन्नै कुसै पंतै गी भोग लोआना पौग। रोजाना अद्धा घैण्टा बड्लै ते अद्धा घैण्टा स'ञं लै शिव दी अराधना करनी पौग। दान-पुन्न करन तां होर बी चंगा।'[8]

'होर के करदी?' क्हानी च मुक्ख पात्तर बामदेव ऐ। बामदेव इक गरीब ब्रैह्मण ऐ। ओह् पंतेआई करियै घरै दा खर्चा चलांदा ऐ। ओह्दी इक धीऽ बी ऐ। बामदेव दे गरीब होने कारण ओह्दी धीऽ दा रिश्ता नेईं होआ करदा ऐ। इसकरी बामदेव परेशान ते दुखी ऐ। मते थाह्रै हत्थ-पैर मारने पर बी कुतै गल्ल नेईं बनदी तां ओह् दुख दे निवारन आस्तै भगवान अग्गै प्रार्थना करदा ऐ। क्हानी च आदियां एह् सतरां दिक्खो–

'भगवान गै मेरी एह् चिंता दूर करङन तां गै होग। हे हलाहल पीने आह्ले शंकर प्रभु। मेरे कालजे च जाले पाने आह्ला चिंता दा एह् बिस्स बी किसै चाल्ली दूर करो।'[9]

'भलाई दी बत्त' क्हानी दा पात्तर रामसरन नेक सोच ते धार्मिक बचारें आह्ला माह्नू ऐ। ओह्दी कोई लुआद नेईं ऐ। "ही बी ओह् नराश नेईं होंदा ऐ ते नेकी दी बत्तै उप्पर चलदा रौंह्दा ऐ। नौकरी दौरान उसी धार्मिक थाह्रें उप्पर जाने दा समां नेईं मिलदा ऐ। इसकरी ओह् नौकरी थमां रटैर होने परैंत तीरथें जाने दी इच्छा रखदा ऐ। क्हानी च आई दियां एह् सतरां दिक्खो–

'बढ़ेपे च हुन माश्टर हुंदी इक्के प्रवल इच्छेआ ही जे ओह् घरै-आह्ली कन्नै तीर्थ न्हाई औन।'[10]

इसदे इलावा 'शाह्', 'प्राचित', 'शम्भु जी', 'एयरपोट' ते 'परशामें' क्हानियें च धार्मिक कदरां बनदियां लब्भदियां न।

निश्कर्श दे तौर पर गलाया जाई सकदा ऐ जे इ'नें क्हानियें च परिवारिक कदरां त्रोड़दे ते कदरां बनाई रखने आह्ले पात्तर द्रिश्टीगोचर होए दे न। इ'नें क्हानियें दे पात्तर अपने नीजि सुआर्थ, ऐशोअराम ते नशे दी पूर्ति आस्तै परिवारिक कदरां त्रोड़दे लभदे न। ओह् नूहें-धिएं गी अपनी जिम्मेदारी नेईं समझियै भार-जन समझदे न ते किश क्हानियें दे पात्तर परिवारिक कदरें गी बनाई रखदे न। परिवार गी चलाने आस्तै औह् हर कम्म करने गी त्यार रौंह्दे न। ओह् कम्मै गी कम्म समझियै करदे न बड्डा जां निक्का समझियै नेईं। परिवार दे आर्थिक हालात ठीक होने पर बी उस कम्मै गी नेईं छोड़दे। परिवार लक्ख विरोध करै, 'क्ही बी ओह् कदरें गी बनाई रखने च जकीन रखदे न। दुए पास्सै इ'नें क्हानियें दे पात्तर तीर्थ जात्तरा, जंत्र-मंत्र ते पूजा-पाठ पर अपनी श्रद्धा रखदे न। जीवन दियें उलझने थमां बाह्र निकलने आस्तै पूजापाठ ते देवी-देवतें दा स्हारा लैंदे नजरी औंदे न।

संदर्भ

1. न्हेरै घिरी दी इक पुली, ओम गोस्वामी, पृ॰ 55,56
2. बिखड़ी बत्ता दी चाननी, ओम गोस्वामी, पृ॰ 89

3. शशोपंज, शिवदेव सिंह सुशील, पृ॰ 49
4. कोले दिया लीकरां नरेंद्र खजूरिया, पृ॰ 9,10
5. बदनामी दी छां, रामनाथ शास्त्री, पृ॰ 34,35
6. सुर ते ताल, कृष्णा प्रेम
7. मील पत्थर, बंधु शर्मा, पृ॰ 95
8. खौ'दल, राजेश्वरसिंह राजू, पृ॰ 32
9. बदनामी दी छाऽ, रामनाथ शास्त्री, पृ॰ 15
10. खुशी दे अत्थरूं, कृष्ण शर्मा, पृ॰ 45

पंडोरी ब्राह्मणा, तहसील विश्नाह्
जम्मू (जम्मू कश्मीर) 181132
मो॰ 9596813122, 9419157558
Shivkhajuria04@gmail.com

Rambeti: My Mother and The First Teacher of Moral Values

Dr. M.S.Vimal
Asstt. Professor of English
Govt. P.G. College, Niwari, District Tikamgarh (M.P.)

"If a country is to be corruption free and become a nation of beautiful minosQ, I strongly feel there are three key societal members who can make a difference. They are the father, the mother and the teacher."1 -

A. P. J. Abdul Kalam

Introduction:- "Moral values are the standarosQ of good and evil, which govern an individual's behavior and choices"2. Rambeti, my mother and the first teacher of moral values, I do not know her date of birth and there is no recorded document relating her early childhood, but it is sure that she was born in the summer season of the year 1953. Likewise the other people of Dalit communities, her parents were also illiterate and not capable to send their children in school for education. Belonging to a very poor background, her parents were not lucky enough even to provide them proper food, clothes, and shelter. Dhanuk ka pura, a small village, is the birth place and parental home of my mother where she spent her childhood. She is the first child of her parents. Her father's name was Maniram, and mother's name was Premwati. They were parents of two daughters and two sons. The names of daughters are Rambeti and Sudha and the names of sons are Amritlal and Balram.

Unfortunately, leaving behind him four children immature, innocent and helpless wife, Maniram passed away in young age. The entire burden of household responsibilities was on the head of Premwati who herself did not know what she should do for looking after her children. There was none to support her. Her husband was already poor and landless, in such a situation, the children were supposed to be orphans. But Premwati did not lose her courage and hope. By doing work hard, she could get success in saving the life of her children as well as her own. Being the first child, Rambeti was a very loving child to her mother. I have seen her love and affection towarosQ my mother as I have spent plenty of days there in my mother's company with Nani (mother of mother). Her profound love and affection towarosQ my mother was up to such an extent that at the arrival of my mother, after a span of time, my Nani's eyes were full of tears of happiness. Having seen such a great love between both, I would unnerve for a moment. In my childhood, I have seen that the parental family of my mother, although was poor but it was appropriately neat and

 ISSN 0975-735X

clean. My maternal uncles used to manage their home with great care.

Moral Message of My Mother:-My mother taught me moral values right from my childhood. When I went for playing with my frienosQ, she used to say, “Go and play with care, do not quarrel with children, Baba will chide you." She would always remind me that I should not touch the things of others. She inculcated the virtues of honesty in my innocent mind. I dared not disobey her as she was also harsh in temperament. If she found me guilty, she herself chided and threatened, even beaten giving warning not to repeat my mal deed again. Keeping this all in mind, I did not try to fall into bad habits. She was not literate but she knew very well the importance of education that's why she always motivated me for reading and writing. Although, she had to work hard in the household duties, yet she spared her time regularly for my breakfast making me ready for school.

On account of her will power and perfect care, I could get early education with great maturity and sincerity. If she had not given her proper attention on me and my brothers' education, neither of us would have got good higher education. Today, we three brothers are postgraduate and one graduate. We are well settled. Her dedication towarosQ our studies was indescribable. Due to poverty, she could not provide us with good clothes and shoes but she provided us such a love that we did not feel the requirements of these things. She did not let us play too much. The discipline maker of my family was my grandfather whose worosQ were the law for us, even to my father. No one could resist upon him. Being a mother of four sons, my mother never tried to dissuade the discipline of my grandfather. My grandmother Ramdulari was so innocent and gentle lady that she did not give evens a chance of single moment to my grandfather to be angry.

My father's name is Ramdin. He is also an illiterate person but he is rich in moralities and great virtues. Being an epitome of honesty, he did not make compromise with his circumstances. Once upon a time, he was mercilessly beaten by dacoits but he did not lose his courage. Cruel dacoits had left him dead like. Luckily, today he is hale and healthy. Its credit goes to the virtues and morality of my parents and grandparents. It is truly said that slow and steady wins the race. This saying is completely applicable on my family. There was a time when we were not lucky enough to have the bread of wheat-flour, but today, there is no such problem. My mother reminosQ us about the earlier days so that we should not fall in to bad habits and over confidence. I have many remembrances in my mind that are associated with the roots of my developments. The poor background could not stand before the virtues of my makers. My father even today works hard because he believes in work, work and work. He does not like to spend even a single moment in vain. He does not like those persons who keep on sit without work.

So is the case of my mother, she never takes rest even in old age. She cooks food, cleans the house and pats animals. She also assists in the hard tasks of my

father in field's related works like crops growing and other things.

Her Liberty from Superstitions:- My mother is totally free from the clutches of superstitions. As we know that in rural areas, most of the ladies are victim of superstitions and other psychological vices. In my village too, almost all the ladies and gents are victim of these vices. I have literally seen that the villagers are still victim of superstitions. Jabare Bona, Bhagtaai Karana, Bandovasti Karana, Ghar Kilwana, Nadi me Paise Faikna, Savaiya Pooja, Paseri Pooja, Bakra Chadhana, Medha Chadhana, Taabij Bharwana, Ganda Bandhwana, Devta Ki Esthapna Karana, Devta Khelna, Tutka Karana, Paani Gadhna, Kokh Bandhna, Bhains Utkana, Bhoot Lagjana, Chudail Lagna, etc.are the symbols of superstitions still prevalent in rural society of India. Due to these psychological vices, villagers could not improve their social status. Due to ignorance, they wasted their money in these considerations. Even today, most of the people are tied with these chains.

Fortunately, we escaped from these social and mental vices. My mother did not fall in to these things. She thought of education. She prepared me and my brothers by using her wit and wisdom. She critically laughed over the above vices of others. When I was in my childhood, she would worship sometimes that was only occasional, for example Maha Laxmi Pooja, Nav Durga Pooja, Bheetar Ki Pooja and Padari Baba Pooja. These were traditional and there was no much mental and psychological harassment in these things. These were confined up to own family only. The main purpose behind these Poojas was to make delicious food for family and relish it. There was no waste of money and there was no mental suppression. But further all these things too have gone away. As soon as my grandfather came in contact with the Buddhist philosophy, he discarded this all. We embraced Buddhism and liberated from these occasional Poojas too.

Buddhism brought drastic change in our life. My grandfather was a renowned singer, debater, rational and a man of self-respect feelings. His influence can be seen in every person of my family. My mother is also one of such family members. She is full of logic and reason. She is the staunch supporter and follower of Buddhism. She encourages us to convey the messages of the enlightened Buddha in our society so that the entire society should be made well cultured, well mannered, and well civilized.

Her Skills of Singing, Weaving, and Creative Activities:- My mother is well versed in several household and intellectual activities. She is a good singer of folk songs. On all the social occasions, she had sung her songs. She sings with great zeal. Even in the night of dacoits, she was singing songs with her sister in-law Dhama(Sarojrani). All of a sudden dacoits attacked on my father and came in to that house in which we were sleeping. It was the dark and chilly night of November-December. Cruel dacoits attacked on my parents mercilessly. They left them dead like and kidnapped me. At that time, I was in class third. Dacoits threatened my parents for ransom but there was no wealth to give them, ultimately they released

 ISSN 0975-735X

me without avail. As a singer my mother is rightly talented. She knows all the songs of all the occasions. Sohare,Daadare, Banna-Banni, Achari, Jyonar, Languria,Faag, Keertan, Malhar, Chunari, etc. are the types of songs sung in the rural areas. These all types of the songs were sung by my mother. I was highly interested in these songs. I would listen to them with great curiosity.

It is my mother who taught me to sing songs. She inspired me to compose some new songs relating Buddha and Babasaheb since in those days ladies used to sing vulgar songs of which there was no poet and sense. Following her wish, I took interest in composing songs in local language. Today, my songs are being sung by the people in the society. As a poet, I am invited in the social programs. Its entire credit goes to my mother and grandfather. Both of these are my first teachers, motivators and everything. What I am today is the result of their inspiration and moral support of them.

If we talk of other intellectual activities of my mother, it is to say that she is well versed in embroidery, weaving, and making several domestic things like Bijna, Khatia, Khatola, Dharaiya, Chulha, Chakia ki Bhir, Dharia, Kuthilia, Kuthla, Pidhi, Naad, Chaka, Chakari, Hathi, Ghoda etc. She made several other useful things. She made sweater of several designs. Out of the other ladies of her age group, she is the first lady in the village who is well versed in the art of weaving sweater. I myself have worn sweater, and stocks made by my mother. She is the best cook. She makes delicious food. In the rural areas, the traditional attractive eatables were Puri, Guna, Gujhiya, Gojha, Paratha, Papatiya, Pakodi, Migora, Besan ki Kadi, Bhaat-pachheyar Halua, Kheer, Daal, Shabji, Raita, Jhabra, Harira, Seera, Lapsi, Thopa, Meetha Dalia, Saag etc. These are prepared well by my mother.

Another quality of my mother is that she is well skilled in the practice of eye treatment. Several villagers have been treated by her who were badly suffered from the eye sickness. I have seen such patients in large scale whose eyes were red and painful. They would cover their faces with Neem ka Jhounras. It was believed that the leaves of Neem tree were useful for curing eye disease. In the villages people used to say Chhot Na Padjaye. It was the scientific treatment. Chhot is to be supposed the attack of bacteria of eye disease. My mother has treated those eyes that were quite red and blood-shedding. She used a golden jewel either ring or other item. Mostly, she used her own Dhulania which she would wear in her neck. Here, it is necessary to mention that during the dacoit-attacks on my parents, they were forcing to give them the same Dhulania. It means that the dacoits were none than the people of surrounding area.

Conclusion:- Hence, it can be concluded that my mother is my first teacher of moral values. It is truly said that mother is the first teacher of her child. My mother proved this dictum completely. It is sure that all the ladies can make their children great if they properly utilize their motherhood. Not only my mother, there are several ladies in the villages that are full of such virtues mentioned above, but it is regretting

fact that most of the ladies are not using their talent and virtues in the right direction. They are wasting their time and money in superstitions, and unnecessary traditions. If they save their money properly and guide their children for right and rational education, they can be counted as the great mothers. My mother has done so. She is the great mother. By sacrificing her own pleasures, she saved her money coins with coins and invested in the caring and education of her sons. Today, I am a successful citizen of the nation rendering my services to the department of higher education having achieved the degree of 'Doctor of Philosophy in English'.

My younger brother Santosh Kumar is serving in Jawahar Navoday Vidhyalaya. He has achieved the degree of 'Master of Arts in English'. In the same way, my third brother Ashok Singh has done M.A. in English, B.Ed, L.L.B. and rendering his services in the educational and social fielosQ. My fourth brother Shivram Singh is a brave soldier serving in C.R.P.F. of India. He has done graduation. We, the four brothers have got higher education from Jiwaji University, Gwalior, M.P. India.

Its entire credit goes to my mother and grandfather whose untiring efforts and encouragement have not let us be back. Especially, as a first teacher she has inculcated in us the feelings of honest working and perfect devotion. Having embraced Buddhism, they brought us on the right path of knowledge and wisdom. Having introduced us with the work and wisdom of our Messiah Babasaheb Ambedkar, my grandfather did the great deed. My grandmother and father taught us the lesson of honesty and optimism; I pay my heartfelt gratitude to all of them. I hope that may all the children get such great parents and grandparents.

References

1. www.brainyquote.comèkquotes
2. www.allabout philosophy.orgèkmoral-values-faq.htm

 ISSN 0975-735X

Biographical Sketch of an Ideal Teacher: Ramanand Dohare

Dr. M.S.Vimal
Asstt.Professor of English
Govt. P. G. College, Niwari, District-Tikamgarh(M.P)

'A good teacher can inspire hope, ignite the imagination, and instill a love of learning.'[1]

- Brad Henry

Introduction

Dr. A. P. J. Abdul Kalam said, 'Teaching is a very noble profession that shapes the character, caliber, and future of an individual. If the people remember me as a good teacher, that will be the biggest honour for me.'[2] Mr. Ramanand Dohare, an ideal teacher, inspiring social worker, well wisher of the poor, is born on 8th of January, 1953 in a small village of Etawah district (U.P.) known as Bidauri. This village is located in the ravines of Chambal and Yamuna rivers, generally known as the land of dacoits. In this very region is the famous place Pachnada(the place where meet five rivers together; Chambal, Yamuna, Sindh, Pahuj and Kunwari). His father's name was Siyaram and mother's name was Kantibai. His grandfather's name was Chhutkaiprasad and grandmother's name was Batasibai. The elder brother of Chhutkaiprasad was Harchand who had no son and daughter. He loved and cared Ramanand by the core of his heart. Ramanand spent his happier days of childhood in the lap of Harchand, his loving Bade Baba. If we talk of the productivity of this land, it is highly fertile. The major crops of this region are Wheet, Bajra, Arahar, Jwar, Moong, Udad, Mustard, and so many other minor crops like Month, Sugarcane etc. are also well found. Kishun Kumar, Mahendra Pratap and Brijendra Pratap are his three younger brothers, well educated and well obedient towarosQ their elder brother.

There is a good and desirable mutual understanding among the four brothers. Their cousins are also of good thinking and mutual understanding. Mr. Bhanupratap is one of them. He is in government service.

Education: Mr.Dodare got primary education in the government school of his native village. For further education, he went to Bhind where he got the education up to graduation. In his education, there is a great role of his maternal uncles; Maintain and Chhotelal Mehrotra of Nande ka Pura, Bhind. He took admission in Govt. M.J.S.College, Bhind from where, he achieved the degree of Bachelor of

Arts. Although, he studied science up to higher secondary level, but he chose the subjects of Art group and did further education in this very discipline. He did M.A. in Political Science as a private student from Govt.P.G. College, Guna, M.P.

His Family Status: As being a householder, he is having with a flowering, hail and healthy family. He was married with Gyankunwar. She is the daughter of a very simple family of village Tejpura, Lahar, Bhind. As a wife, she played very remarkable role in her life. On account of her devotion towarosQ her husband, she managed her household duties as well as her responsibilities towarosQ the care of children. It resulted that they are parents of three postgraduate offspring. They have two sons and a daughter. Daughter is the eldest of all children .Her name is Shashi Prabha. She is an M.A., Ph.D in Hindi with NET qualified, so now, she is Dr. Shashi Prabha Gautam. Sons- are Dr. Devendra Kumar, B.D.S. and Vikash Kumar, M. A. (History) and research scholar of Ph. D. Shashi is married with Vimlesh Kumar Gautam. He is a talented teacher of Chemistry (P.G.T.) in Jawahar Navoday Vidhyalaya, Sheopur, M.P. Hence, Mr. and Mrs. Dohare are parents of two doctors and third is about to be doctoral degree holder. In this way, they would be called as the parents of three doctors, which would be the cent- percent contribution of a couple to have given three doctors to the nation.

As a Well Wisher of Society: Mr. Dohare is a true well wisher of society. What he has done for society is really inspiring. In this concern, he taught motivational lessons not only to the teachers but also to all human beings. Right from his student life, he was fond of teaching. He lived in Bhind and did graduation. Here, he lived in Mehra family that is the family of his maternal uncle; Dhan Singh Mehra. Subedar Rambharose Lal, the younger son of Dhan Singh Mehra was in military service. Here, Dohare ji played the role of patron to the four nephews; Ram Prakash, Jai Prakash, Mahendra Pratap, and Raj Kumar(sons of Subedar Mr. R.B.Lal). As a senior to all, he cared them accordingly. He taught them all, moral values and the lesson for building up good character. It resulted that all the four persons are well-educated and leading a revered life.

When he was posted in a village of Bhind district, he came in contact with a poor family of Matadeen. His son Gayaprasad was talented but due to some social and economic problems, his father was unable to bear the expenses of his education. Dohareji decided to help that child and took him under his shelter. He provided him good education. At present, Mr. Gayaprasad is a bank manager. He is now well settled having hail and healthy family. He is fully faithful and affectionate towarosQ Dohare family. There is great mutual understanding between both families. This creeper of healthy relationship is increasing in to next generation too. It is better to say that both families have become one. This is the best example of social understanding. Having been successful person of society, Mr. Gayaprasad is also paying his gratitude by supporting to Dohare family. Mr. Dohare has supported to other four children in the same manner as like he supported to Mr. Gayaprasad.

 ISSN 0975-735X

During my interview with him, he said that he had taken an oath to support five children. He was very happy to narrate the stories how he performed his duties keeping in his mind his oath. He proved himself to be a serious oath- taker.

As we know that to take an oath is a very easy task but to fulfill it is very difficult. Mr. Dohare has fulfilled his oath literally. He feels eternal happiness in rendering such services.

As an Ideal Teacher: Mr. Dohare has started his career as a teacher. He became upper division teacher, head master, lecturer and principal. For more than three decades, he rendered his appreciable services to the nation. During his service period, he had stamped his name in the chain of ideal teachers. Of course, he is an ideal teacher. He fulfills all the essential qualifications of an ideal teacher; intact and solid knowledge of his subjects, strong in character, cordial in behavior, well-wisher of society, high in morality, successful motivator, praiseworthy administrator, and dynamic personality. Being a man of political science, he taught his subject with great zeal and full devotion. Apart from this, he taught other subjects of Social Science, particularly, his interest was in Geography. The other classes he took were concerned with Social Science. During his teaching hours, he certainly taught about the common sense and moral values. He boldly stressed on manners and character building.

His students as well as their parents would revere to him by the core of their hearts. Indeed, he was fully dedicated towaros his profession.

His working Places: As a teacher, he worked mostly in Guna district of Madhyapradesh. For some time, he worked in Bhind district too. Govt.Middle School, Kalabagh, Guna, Govt.H.S.Ishagarh, Guna, Govt.Middle School, Haripur, Guna, Govt.Middle School, Doniyapura, Bhind, Govt. H.S.Chanchoda, Guna, and Govt. High School, Bhadora, Guna are the main places where he rendered his educational services. It is the Bhadora School, where he took retirement from, in January, 2015. His popularity as a teacher can be understood with a fact that on the occasion of his retirement, teachers, students as well as the public of Bhadora village gave a splendid farewell party in which more than eight hundred people were gathered. It was a memorable festive occasion in which all the eight hundred people were given delicious feast. Almost all the officers of education department, public representatives and administrative were present there. Mr. Dohare was gifted with a dress, sweet and other formal things that are traditionally gifted on the occasion of farewell by the school staff and many other gifts from students and public side in his reverence.

Even after retirement, he is fond of reading, writing and teaching. Several students of his neighborhood come to take advice pertaining to their career. He enthusiastically entertains them and tries to motivate them accordingly. He feels very much happiness when someone comes to meet him for the purpose like obtaining career guidance.

His Nature and Behavior: As being a teacher, I have understood his nature and behavior with the heart and mind of a teacher. He is a man of simple living and high thinking. His generosity and modest behavior cannot be described in worosQ. He is a man of reserved nature, also jolly natured up to the extent as much as a teacher should be. Nobody can feel bored in his company. It is but natural that a teacher is always live in the company of children. In real sense, a teacher's world is children. He also fully enjoyed the company of children. As a mentor, he managed desirable distance from the students for the sake of maintaining discipline. As a Head Master and Principal, several times, he had to take hard and strict decisions, but he never became harsh and intolerable.

His Interaction with Me: I am very lucky to have his company. Right from my student life, I am familiar with him. In social relation, he is uncle of my wife Rajkumari. In respect, she calls him "Achchhe Chacha" means, "Good Uncle". Right from beginning, I have seen him in generous and polite nature. He is a truth speaker. When we meet in social occasions, we talk about the social, political, religious, and educational issues. We seldom talk about here and there. From the in-laws side, I am highly impressed with some persons. He is one of them. The other persons are Mr. Ramprakash Mehra, Mr. Ramcharanlal Mehrotra, and Mr. Ramprakash Mehrotra.

My Latest Meeting with Him: As being a writer, I am fond of writing biographical sketches of good and inspiring persons. The main motif behind this work is to bring out such people in the light of the new generation, because as far as my personal observation is concerned, my opinion is that there are very few people in our society like Mr. Dohare. It is truly said that a teacher is always teacher whether he is inside the premise of school or outside in society. In this broad definition of teacher, he is fully fit and proved. I wanted to write about him too, so one day, I found that opportunity. Here, it is to be noted that he has built up a good house in Guna. He is presently well settled there. On 18th of September, 2016, I had to participate in a social program in Bhopal. I made my plan to go via Guna. I did so. In this way, I met and stayed with him for one night. We took dinner together. At that time, there were three members in his family; he himself, aunty, and their younger son Vikash Babu. Their elder son Dr. Devendra Kumar, his wife and a small kid are already settled in Gwalior.

During my short-time journey, I could meet only with few people. Due to next-day program, I had to take leave from them early in the morning. Vikash Babu dropped me at the Railway station. He made me sit down in the seat and bade farewell. Incidentally, in the opposite seat, a couple of husband-wife was sitting. They were having a child in mother-lap. We talked one other and mixed up very soon because they were neighbors of Dohare uncle. Vikash has already introduced them with me. They were very happy to know that I was the guest of Dohare Sir. In conversation, they also talked about his gentleness and generosity.

Train was up to Byabra only, so I had to take bus for Bhopal. Luckily, I found a bus ready for being started. I boarded in that and once again, I found a man who was familiar with Dohare uncle. We both were in the same seat. As soon as we conversed, we introduced to each other. He introduced himself as Santosh Shrivastava working as a teacher. He told me that he had also attended the farewell party of Dohare Sir. He appreciated his work and behavior.

Conclusion: It is impossible to describe the whole life and virtues of an ideal teacher, so I am also incapable to do so. I intended to focus on some facts that I could understand. A man full of virtues is fully aware towarosQ his duties. As being an ideal teacher, he had done a number of inspiring tasks and still doing. Officially, he is retired but mentally, intellectually and emotionally, he is not retired. His enthusiasm and devotion towarosQ his nation would always remain alive. I am highly inspired with him. I am sure that he would keep on himself busy in social welfare. Wishing for him and his entire family bright, prosperous and healthy life, I conclude this biographical sketch of Mr. Dohare that he is a praiseworthy teacher, inspiring father, and well wisher of society. As a man of social interest, he is not only sympathetic but also empathetic. By virtues, he is a man of rational stream, the follower of Buddha, Fule and Babasaheb Dr. B.R.Ambedkar.

There, I also met with my school mate Mr. Ramkishor Dohare. He is also posted there in Agriculture department. I also interacted with other fellows who take interest in social works.

References

1. www.quora.com
2. www.brainquote.com

Ramprakash Mehra and His Social Contribution

Dr. M.S.Vimal
Asstt. Professor of English
Govt. P.G. College
Niwari, Tikamgarh (M.P.)

'When you do it' 'right, Social Work is a feeling that is larger than you own life.'[1]

Introduction

According to B. R. Ambedkar, 'Society is always composed of Classes. Their basis may differ. They may be economic or intellectual or social, but an individual in a society is always a member of a class. This is a universal fact and early Hindu society could not have been an exception to this rule, and, as a matter of fact, we know it was not. So what was the class that first to make itself into the caste, for class and caste, so to say, are next door neighbors, and it is only the span that separates the two.'[2] Ramprakash Mehra is one of the most famous names in the chain of social workers, especially the workers of Buddhist stream. He is born on 20th December, 1959 in a small village known as Kanikpura, District Bhind M.P. He has got primary and secondary education from Bhind, the district heaoq Quarters. Further, he has graduated from Govt. M.J.S. P.G. College, Bhind (Jiwaji University Gwalior) in 1982. He is the first son of Nayandevi and Rambharose Lal Mehra. His father was a well repudiated person. He had rendered his praiseworthy services in Indian Army in the capacity of Subedar Major. His grandfather Dhan Singh Mehra was also a well known personality, people called him Jagjiwanram.

As we know that in those days, Jagjiwanram was a leader of Congress. He was from the Dalit-background. Mehra family also belongs to this community. It is but natural that Dhan Singh Mehra, as an active social worker was directly or indirectly associated with Jagjiwanram, that is why he was called Jagjiwanram. It can be said that the seeos of leadership were sown by his grandfather who had worked for the welfare of his men. He had to face numerous challenges due to caste problems, but he did not compromise with his circumstances. Geographically, Kanikpura village is situated in the ravines of Chambal valley. There was no road facility in those days when Ramprakash Mehra was born.

As being a military officer, Rambharose Lal has shifted his wife and children at Chaturvedi Nagar, Bhind where his all the four sons (Ramprakash, Jayprakash,

 ISSN 0975-735X

Mahendrapratap and Rajkumar) got education. Right from his early childhood, Ramprakash was interested in social activities. In school days also, he came forward to solve the problems of his colleagues. In college life, he took an active part in collegiate politics and became class representative by contesting the election of 'Student Union'. As being a successful student leader, he has worked for the proper unity of SCèkST students. This success moved his mind towaros open politics. Although, he was selected for government service as a teacher, but his social interest did not allow him to go in government service.

Glimpses of His Social Works

Right from his student life, he had started to work for his people. He was impressed with Manyawar Kanshiram Saheb, the great social worker of Bahujan movement. Mehraji has earned great fame and popularity by doing his untiring efforts to convey his people the message of the Buddha, Phule and Babasaheb. In those days, only few people in Bhind district knew the name of these great men. The Dalit people were nearly ignorant towaros the Buddhist philosophy. This thing he learnt from his father. After getting retirement, his father wanted to become a Buddhist monk but destiny has not allowed him to do so. Due to early death he could not fulfill his dream. He taught his sons the lesson of Buddhism. His support to Mehraji in political and social works was so open that he himself used to attend the programs of his son.

There are a number of social issues Mehraji dealt with. Ramsaran's murder case is one of them. He came forward in support of the parents of Ramsaran Dohare who committed suicide due to the corporal punishment given by police. He jumped in to a well and died. The then leaders of B.S.P. raised this case. Ramprakash Mehra played the significant role in that issue. He put the dead body on the road and shouted slogans against the police administration. Due to this reason, he was sent to central jail, Gwalior. He spent more than three weeks in the central jail Gwalior for the sake of his people. Actually, it was the case of Nayagaon village, near Umri, Bhind. Ramsaran belonged to Nayagaon. He was culprit in a case; I don't know what that case was. He was caught by the police and beaten bitterly. The then Inspector of Police was Hemant Sharma. The entire expedition led by Mehraji was solely against Hemant Sharma.

The public co-operated this movement up to great extent. People used to come from all the villages from surrounding areas. There was a great unity in public. Its credit goes to Mehraji. As being daring and fearless leader, he delivered his thought provoking speech in such a manner that the audience was fully convinced and started to shout the slogans in bold sound. His arguments were fully convincing. His speeches impressed his followers. As an honest man, he worked with full devotion sacrificing his own pleasures. People, even today, appreciate his selfless social devotion.

As a Buddhist

As a Buddhist, Mehraji has stamped his name among his people. For a Buddhist, it is necessary to lead his personal life following Punchshilas suggested by the Buddha. These Punchshilas are thoroughly applied by him in his personal life. As we know that Buddhism is based on the practical and scientific knowledge. There is no room for impractical things. The Buddha says, 'Do not believe in traditions merely because they have been handed down, for many generations and in many places. Do not believe in anything because it is rumored and spoken by many. Do not believe because the written statement of some old sages is reproduced. Do not believe in fancies, thinking that because they are extraordinary, they must have been implanted by a Deva or a wonderful being. Only after careful observation and analysis, when a thing agrees with reason and is conductive to the good and benefit of one and all, accept it and live up to it.'[1]

Mehraji follows the above guidelines of the Buddha up to great extent. He not only follows the principles of Buddhism, but also motivates others too. He has spent his more than four decades in conveying the message of the Buddha and Babasaheb. Mehraji not only speaks among his own people, he also conveys the message of Babasaheb in Hindus too. It was the desire of Babasaheb that Hindus should change their attitudes and eradicate all the evils from Hinduism. He said, "If you wish to protect the Hindu-system, the Hindu-culture, and the Hindu-society, do not hesitate to remove the evils that have crept in to them. This will intenosQ nothing beyond removing such evils.'[2]

At one place, Babasaheb has appealed his people to live with self-respect. He says, 'Learn to live in this world with self-respect. You should always cherish some ambitions to do something in this world. They alone rise who strive. Some of you nurse the wrong notion that you will not rise in this world. But remember that the age of helplessness has ended. A new epoch has set in. All things are now possible because of your being able to participate in the politics and legislatures of this country.'[3]

His Courage and Fearlessness

Mehraji is a courageous and fearless person. He has proved this quality several times. Here, I like to quote an incident taken place in 1989-90. It was the case of those days when dacoit Meharwan Singh was threatening the people. His name was enough to calm down crying and weeping children. Dalit people were highly horrified by his name. Hukumpura is a village located in the ravines of Kuanri-Chambal. It has been the shelter of dacoits for centuries. The people of that village arranged a social program on the occasion of inaugural of Babasaheb's statue. Mehraji was invited as a chief guest. Accepting the invitation, he visited there with his fellow men. As soon as he reached nearby the village, a man informed him that the gangue of Meharwan Singh was planning to disturb the program. The dacoits might go up to any extent; hence he should go back without attending the program.

Mehraji listened to him carefully but he did not like to be back. He attended the program and delivered his bold speech without hesitation. His entire speech was concentrated on the social exploitation, Manubad and dacoit problem of Chambal valley. In his speech he asserted that naturally, no mother sees dream to make her son a dacoit. No father dreams that his son should become a dacoit. But this Chambal valley is never free from dacoits. Who makes dacoits? Giving the answer of this question he has said that these dacoits are made by the social exploiters, particularly by the hippocrates and orthodox people belonging to Chaturvarna Vyavastha in which there is no room for humanity. Due to social exploitation, some victims have to adapt the way of ravines and become rebellions against the social, mental and physical exploitation. It results dacoit problem in Chambal valley.

This speech was also being heard by the dacoits who were Thakur by caste. They were highly impressed with the speech because it was the reality. Having been impressed with speech, the dacoits, through his one man distributed Batase (a kind of sweet of pure sugar) among the audience. Hence, the fearlessness and daring character of Mehraji come out in our focus.

Conclusion

In this way, we can say that Ramprakash Mehra is really a pure social worker and one of the great messengers of the Buddha, Phule and Babasaheb Ambedkar's social, religious, political and economic movements. His main motive is to remind the message of these great men born for the social justice and underprivileged's emancipation. His social work has brought drastic change in Bhind and surrounding areas of Chambal Valley. He is one of those people of the country who is voluntarily working for the welfare of the depressed classes' people. Babasaheb Ambedkar wanted that each man who has knowledge should work in this stream so that the Dalit- Backward people should get mental and economic liberation. Especially, Bhind is supposed to be the land of dacoits. Here, there are a number of social problems that make man's life very bitter and critical.

Reference

1. Ogden W. Rogers, Beginnings, Middles, & Enos Sideways Stories on the Art Soul of Social Work
2. Sanjay Kumar Pandagale's article Social Philosohphy of Dr. B.R. Ambedkar on wikieducator.org
3. Dr. Ambedkar, Life and Mission, Keer, 2nd Edn, page 247.
4. ibid, P. 266
5. ibd, P. 288

डॉ॰ राजेन्द्र मिश्र की रचनावली का प्रकाशन

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)

सभी ग्यारह खंडों का मूल्य 11,000 रुपए, पृष्ठ संख्या 6000

सुविख्यात साहित्यकार और हिंदी साहित्य में आजकालीन साहित्य की अवधारणा को स्थापित करने वाले डॉ॰ राजेन्द्र मिश्र की रचनावली ग्यारह खंडों में प्रकाशित हो चुकी है। राजेन्द्र मिश्र मूलत: कवि हैं और उनकी रचनावली के 1 से 4 खंड में उनकी कविताओं का प्रकाशन किया गया है। खंड 5 में निबंध, खंड 6-7-8 में उपन्यास, खंड 9 में उपन्यास और नाटक, खंड 10 में कहानियाँ और एक कविता संकलन, खंड 11 में निबंध और डायरी प्रकाशित हैं।

राजेन्द्र मिश्र ने कविता में समय की अवधारणा को केंद्र में रखा है। खंड 1 में उनके कविता-संकलन, 'अपने समय में', 'अपने समय में नहीं', 'अपने समय का वर्तमान' एक अँगरेजी कविता-संकलन 'टाइम फ्लोज़', 'अपने समय के सामने', 'युद्ध अपने ही शिविर में', 'अधूरी यात्राएँ' और 'तुम अपने' संकलित हैं। 'तुम अपने में' सारी कविताएँ प्रेमकेंद्रित हैं। 'अपने समय में नहीं' में सारी कविताएँ आपातकाल के विरोध में हैं।

रचनावली का दूसरा खंड एक नए मोड़ पर लाता है। 'समय की जंग' में कवि ने आतंकवाद के विरोध में कविताओं की रचना की है। 'समय पिघल रहा है' में आत्मसंवेदना के व्यापक परिवेश को स्वर मिला है। 'अपने भूगोल में' वह समय को भूगोल तक ले गया है। अनेक साइबर कविताएँ इसमें रची गई हैं। 'तुम्हारे लिए' में प्रेम-कविताएँ हैं। 'तुम अपने' में जहाँ प्रेम का स्त्रीपुरुष फलक पर सृजन है, वहीं 'तुम्हारे लिए' में यह संबोधन बन गया है। 'युयुत्सु' लंबी कविता है, जिसमें महाभारत के पात्र का मिथक समसामयिक भारतीय परिदृश्य को अंकित करता है। इस खंड के अंत में 'आज कविताएँ' हैं, जो उसकी आज कविता की अवधारणा का सृजन करती हैं।

रचनावली के तीसरे खंड 'समय के भूगोल में' अपने अतीत के परिदृश्य को वह वर्तमान से जोड़ता है। 'असाबिया' में अरब क्रांति की कविताएँ हैं। राजेन्द्र मिश्र हिंदी के अकेले कवि हैं, जिन्होंने इस संकलन को रचकर अपने आपको वैश्विक परिदृश्य से जोड़ा है। हिंदी में अरब क्रांति पर यह अकेला संकलन है। 'आठवाँ राग' भी उनकी लंबी कविता है और उसमें मनुष्य-संवेदना के साथ भविष्य की कविता का संसार रचा गया है। इस खंड के अंत में 'सदियाँ गुजर रही हैं' में कवि जीवन-यात्रा के अंतिम पड़ाव को जीवन के परिदृश्य के साथ जोड़कर अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति देता है।

रचनावली के चौथे खंड में उनके गीत हैं। कवि 'शब्दराग' से आरंभ करता है, फिर वह 'गीतराग' पर आता है। उसके बाद 'मीतराग' है। इस तरह यह गीतसृजन की विकास-यात्रा है और यही आजगीत की भूमिका है। इसके बाद 'यादों का सफर' है। फिर 'खत्म हुआ सफर' है। जिंदगी, गीत से जुड़ जाती है। अंत में 'हवाएँ खामोश हैं', जहाँ कविता और गीत में कोई अंतर नहीं रहता।

रचनावली के पाँचवें खंड में 'आज कविता' है। इसमें आज कविता की अवधारणा दी गई है। नई

 ISSN 0975-735X

कविता के बाद विस्तार से कविता के नए संदर्भ को पहली बार इसमें अंकित किया गया है। यही 21वीं सदी का सृजन है। इसके बाद 'साहित्य का भविष्य' में उत्तर-आधुनिक मनुष्य के विविध संदर्भ हैं। 'संपर्क भाषा और लिपि' में हिंदी और नागरी को केंद्र में रखा गया है। 'कविता का गद्य' में नए विश्व के ललित निबंध हैं। रचनाकार भारत की सबसे प्राचीन हिंदी मासिक पत्रिका 'वीणा' का संपादक भी रहा है। 'मेरे संपादकीय' में उनके सभी संपादकीय संकलित हैं, जिनमें समसामयिक संदर्भ के विषय लिए गए हैं।

रचनावली के खंड छह में उनके दो उपन्यास 'ठहरा हुआ पल' और 'अपनी परिधि में' संकलित हैं। 'ठहरा हुआ पल' अगर आत्मकथात्मक है तो 'अपनी परिधि में' स्त्री-पुरुष का संघर्ष इस सच का सामना करता है कि उनकी अपनी-अपनी परिधि होती है। वे विश्व-परिदृश्य के संदर्भ में अपने कथानकों की रचना करते हैं, जिसमें अंतर्विरोध के साथ ही अंतर्दृष्टि की चुनौतियाँ होती हैं। इस अर्थ में उनके उपन्यास अत्यंत रोचक और उत्तेजक भी होते हैं। खंड सात में भी उनके दो उपन्यास हैं, 'पिंजरे के पंछी' और 'ल्हासा का चाँद'। 'पिंजरे के पंछी' में उनके केंद्र में आज का मनुष्य है, जो विश्व के पिंजरे में बंद है। वह स्वतंत्र होकर भी स्वतंत्र नहीं है। 'ल्हासा का चाँद' तिब्बत पर लिखा उनका उपन्यास है। यह हिंदी में पहला ही उपन्यास है, जो रचनाकार को विश्व-परिदृश्य में रख देता है। तिब्बत का दमन और स्वतंत्राता के लिए संघर्ष इसके केंद्र में है। खंड आठ में भी उनके दो उपन्यास हैं, 'इतिहास की आवाज' और 'पाँचवाँ स्तंभ'। इतिहास की आवाज में आतंकवाद के साथ ही मुस्लिम महिलाओं की समस्याओं को उभारा गया है, जो तीन तलाक और बहुविवाह की वजह से सारी जिंदगी आतंक में जीती हैं। आज जिस तरह वे जागरूक होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही हैं, वह इस उपन्यास में भी है। साथ ही कश्मीर-समस्या और धारा 370 के संदर्भ को भी उपन्यास में रखा गया है। 'पाँचवाँ स्तंभ' उपन्यास में जनता ही 'पाँचवाँ स्तंभ' है। इसमें 5 वर्ष में एकसाथ संसद और विधानसभा के चुनाव की बात की गई है। पुलिस को राजनीति से अलग करना आवश्यक है। इन उपायों से ही भ्रष्टाचार, कालाधन और अपराधों पर अंकुश लग सकता है।

रचनावली के खंड नौ में एक उपन्यास 'जिंदगी की सरहद' में पुरुष के समान ही स्त्री की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया गया है। इसमें तीन नाटक भी हैं। 'अधूरा नाटक' में आतंकवाद की पीड़ा अंकित है, जो जीवन को अधूरा करती है। 'औरत की जंग' में विवाहपूर्व अनुबंध को लिया गया है। इससे स्त्री-पुरुष की समानता ही अंकित नहीं है, बल्कि इस बात का भी समाधान है कि आज के युग में अलगाव के बाद होनेवाली त्रासदी से भी बचा जा सकता है। 'प्रजापथ' में नागरिक सुरक्षा और नागरिक अधिकारों के लिए संघर्ष की बात की गई है।

रचनावली के खंड दस में तीन कहानी-संकलन हैं। 'खत्म नहीं होती कहानी', 'विस्थापन का दर्द' और 'लड़की हँस रही है।' इनमें रचनाकार आज कहानी की अवधारणा और सृजन को स्वर देता है। वह रंगमंच के नए प्रयोग भी करता है। साथ ही कहानी का रंगमंच भी इसमें निर्मित हो गया है। इस खंड के अंत में उसका लघु प्रबंधकाव्य 'रत्नावली प्रसंग' भी है, जिसमें उस स्त्री के मिथक को रचा गया है, जो हिंदी के महाकवि तुलसी और उनकी पत्नी रत्ना पर आधारित है। इस ग्रंथ की रचना कवि ने अपने जीवन में सबसे पहले की थी और इसके लिए उन्हें राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का वह पत्र भी मिला था, जिसे इस पुस्तक में उसी रूप में रखा गया है।

रचनावली के ग्यारहवें और अंतिम खंड में 'सृजन और साहित्य' में उनके नए आलोचना-परिदृश्य के दर्शन होते हैं, जो सृजनात्मक निबंधों के रूप में है। 'जनभाषा हिंदी' के सभी निबंधों में हिंदीभाषा से जुड़े सारे आधुनिक आयाम मिल जाते हैं। इसके बाद 'लेखक की डायरी' है। इस डायरी में उनके सृजनात्मक

विकास के आंतरिक रचनात्मक दृश्य हैं। इस खंड के अंत में रचनाकार ने एक नया प्रयोग किया है। 'रचनावली से संवाद' में रचनाकार से रचनावली बातचीत करती है, जो एक संवाद के रूप में है। साक्षात्कार की इस प्रणाली का किसी रचनाकार ने पहली बार ही प्रयोग किया है। इसमें कोई अन्य व्यक्ति संवाद नहीं करता, रचनावली ही रचना के संबंध में अपने रचनाकार के सामने खड़ी हो जाती है।

राजेन्द्र मिश्र की अब तक 86 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। सृजनात्मक पुस्तकों के साथ ही आलोचना, मीडिया और शिक्षा पर भी उनकी अनेक पुस्तकें हैं। उनकी आलोचना सृजनात्मक होती है। इस रचनावली में उनकी विविध विधाओं में लिखी 48 सृजनात्मक कृतियों का समावेश किया गया है। रचनावली से संवाद के अलावा जो केवल रचनावली के लिए ही लिखा गया है, उनकी अन्य सारी पुस्तकें, जिनका इस रचनावली में समावेश है, पुस्तक के रूप में पहले ही प्रकाशन हो चुका है। राजेन्द्र मिश्र ने हिंदी साहित्य के आधुनिककाल के बाद के समय को उत्तर आधुनिककाल कहा है। इस तरह यह रचनाकार समकालीनता से आगे आजकालीनता की संवेदनात्मक विचारयात्रा से जुड़ा है। उसकी एक राष्ट्रीय पहचान है। यह रचनावली इस अर्थ में रचनाकार को जानने का सबसे सशक्त माध्यम है। राजेन्द्र मिश्र 20वीं सदी के उत्तरार्ध से 21वीं में अब तक के समय का रचनाकार हैं, जिनके साहित्य में वर्तमान अतीत से जुड़ते हुए भविष्य की संभावना की तलाश करता है।

 ISSN 0975-735X

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की रचनावली का प्रकाशन

संपादक

डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका

डॉ॰ मीना अग्रवाल

प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)

सभी ग्यारह खंडों का मूल्य 10,000 रुपए, पृष्ठ संख्या 6000

सभी खंड एक साथ मँगाने पर डाक-व्यय सहित मूल्य 6000 रुपए

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की रचनावली का संपादन और प्रकाशन हर्ष का विषय है। गीत और कविताओं से आरंभ करके साहित्य की विविध विधाओं में साहित्य-सृजन उनकी लेखन-क्षमता का पुष्ट प्रमाण है। इसी आधर पर उनकी रचनावली को ग्यारह भागों में प्रकाशित किया गया है—1. ग़जल समग्र; 2. काव्य समग्र दो (कविताएँ, गीत, मुक्तक, दोहा); 3. कहानी समग्र; 4. गद्य समग्र (निबंध, साहित्यिक अनुभव, शोध, समीक्षा आदि); 5. जीवनी समग्र; 6. नाटक समग्र एक (बाल-नाटक); 7. नाटक समग्र दो (हास्य-नाटक, सामाजिक नाटक, नुक्कड़ नाटक); 8. व्यंग्य समग्र एक; 9. व्यंग्य समग्र दो; 10. भूमिका समग्र; 11. बालसाहित्य समग्र।

गिरिराजशरण की सबसे प्रिय विधा ग़जल है। गजल के उनके छह संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें 500 से अधिक ग़जलें संकलित हैं। ग़जल के विषय में डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ने स्वयं लिखा है—'गजल हृदय की अनुभूति की सूक्तिमय शैली है।' उनकी ग़जलों की सबसे बड़ी विशेषता है—आशावाद।

गिरिराजशरण अग्रवाल समग्र के द्वितीय खंड में डॉ॰ अग्रवाल की कविताएँ (अक्षर हूँ मैं), हास्य कविताएँ (मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ), मुक्तक (बूँद के अंदर समंदर) रूबाइयाँ, दोहे (जिनमें मुहावरा दोहे तथा पर्यायवाची दोहे भी सम्मिलित हैं) संगृहीत किए गए हैं। इसी खंड में अप्रकाशित रूबाइयाँ, दोहे (इनमें पर्यायवाची दोहे तथा मुहावरा दोहे प्रमुख हैं) तथा गीत (जो समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं) तथा हास्य-व्यंग्य शैली की ग़जलें भी संगृहीत हैं।

इस रचनावली का तीसरा खंड कहानियों का है। इस खंड में डॉ॰ अग्रवाल द्वारा लिखी गई 82 कहानियाँ संकलित हैं। इनमें से कुछ कहानियाँ उनके पूर्व प्रकाशित कहानी-संग्रहों—जिज्ञासा एवं अन्य कहानियाँ, छोटे-छोटे सुख, आदमी और कुत्ते की नाक में भी प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त उनकी अप्रकाशित कहानियाँ भी इस खंड में सम्मिलित हैं। डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका के अनुसार 'डॉ॰ अग्रवाल कहानी लिखने की कला में तथा कहानी को जीवन के उच्च सरोकारों से जोड़ने में पूर्णत: पारंगत हैं। इस खंड में उनकी व्यापक जीवन-दृष्टि से परिपूर्ण कहानियाँ संगृहीत हैं।'

चौथा खंड गद्य समग्र का है। इस खंड में गिरिराजशरण अग्रवाल के 'सवाल साहित्य के' (साहित्य में लेखक के अनुभव) के साथ उनके समय-समय पर प्रकाशित लेख संगृहीत हैं। डॉ॰ अग्रवाल सन् 2001-2002 में रोटरी अंतर्राष्ट्रीय के मंडल 3100 के मंडलाध्यक्ष थे। मंडलाध्यक्ष के रूप में दिए गए उनके उद्‌बोधन और प्रकाशित आलेख भी इसी खंड में रखे गए हैं। इनके अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण आलेखों का संग्रह भी इस खंड में किया गया है, जिसमें डॉ॰ अग्रवाल के चिंतन, मनन, विवेचन तथा उनकी शोधवृत्ति के दर्शन होते हैं। निबंधें की भाषा सहज, सरल, संप्रेषणक्षम है।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल समग्र के पाँचवें खंड में भारतीय साधकों, संतों, महापुरुषों, राजनेताओं

और स्वतंत्रता-सेनानियों, साहित्यकारों की जीवनियाँ, क्रांतिकारी सुभाष के जीवन पर आधरित जीवनीपरक उपन्यास 'क्रांतिकारी सुभाष', लेखक का आत्मचरित (आत्मकथ्य) संयोजित किया गया है। 'क्रांतिकारी सुभाष' जीवनीपरक उपन्यास है, जो महान देशभक्त और स्वतंत्राता-सेनानी सुभाषचंद्र बोस के जीवन को आधर बनाकर लिखा गया है। आत्मकथ्य में डॉ॰ गिरिराजशरण ने अपने जीवन की उन घटनाओं का उल्लेख किया है, जो सामान्यत: पाठकों के सामने बाहरी व्यक्ति द्वारा नहीं आ सकतीं।

खंड छह और सात में डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा लिखित बाल-नाटकों, हास्य-व्यंग्य एकांकियों, समाज तथा राजनीति से जुड़े एकांकियों तथा नुक्कड़ नाटकों को संगृहीत किया गया है। डॉ॰ अग्रवाल ने प्रभात प्रकाशन, दिल्ली के लिए एकांकी नाटकों की एक बड़ी शृंखला का संपादन किया था। इस शृंखला में विषय-क्रम से एकांकियों का संकलन किया गया था। तब भी उन्होंने प्रत्येक खंड के लिए एकांकियों की रचना की थी। उसके बाद तो उनके एकांकियों के अनेक संकलन प्रकाशित हुए। इनमें प्रमुख हैं—नीली आँखें (जो बाद में 'मंचीय सामाजिक नाटक' नाम से प्रकाशित हुआ), ग्यारह नुक्कड़ नाटक, मंचीय व्यंग्य एकांकी, बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक, बच्चों के हास्य नाटक, बच्चों के रोचक नाटक। इन सभी पुस्तकों में प्रकाशित एकांकी नाटकों को इन दोनों खंडों में संयोजित किया गया है।

खंड आठ तथा नौ में डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के 202 व्यंग्य संकलित हैं। हास्य और व्यंग्य के क्षेत्राा में डॉ॰ अग्रवाल का कार्य इतना व्यापक है, ऐसा कम लोगों को ही ज्ञात है। उनके व्यंग्य के पाँच संकलन प्रकाशित हुए हैं—बाबू झोलानाथ, राजनीति में गिरगिटवाद, मेरे इक्यावन व्यंग्य, आदमी और कुत्ते की नाक तथा आओ भ्रष्टाचार करें। हास्य-व्यंग्य-लेखन की एक विशिष्ट शैली को विकसित करने में डॉ॰ अग्रवाल का योगदान विशेष सराहनीय है। उन्होंने स्वयं कहा है—'विसंगतियों और विडंबना-विकारों के रहते हुए व्यंग्य हास्यशून्य नहीं हो सकता और हास्य भी व्यंग्य के बिना अपना अस्तित्व बनाकर नहीं रख सकता।'

खंड दस भूमिका खंड है। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ने सन् 1986 से 2004 तक प्रत्येक वर्ष की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाओं का संपादन किया। इनके अतिरिक्त विषय-आधारित कहानियों के ग्यारह खंडों, एकांकियों के दस खंडों, व्यंग्य के दस खंडों का संपादन किया। इन सभी खंडों में विषयानुसार भूमिकाएँ लिखीं। पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी, पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ, पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ संपादित कीं। इन सभी भूमिकाओं को दसवें खंड में सम्मिलित किया गया है। 'शोध दिशा' त्रैमासिक के जुलाई 2006 और उसके बाद लिखे गए महत्त्वपूर्ण संपादकीय भी दसवें खंड में सम्मिलित हैं।

गिरिराजशरण अग्रवाल की रचनावली के खंड ग्यारह में उनके द्वारा रचित बालसाहित्य को सम्मिलित किया गया है। उन्होंने बच्चों के लिए एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी 'मानव-विकास की कहानी', जो पहले 'आओ अतीत में चलें' नाम से प्रकाशित हुई थी और जिस पर उत्तर प्रदेश हिंदी संस्था के 'सूर पुरस्कार' सहित अनेक संस्थाओं ने पुरस्कार देकर प्रतिष्ठा की मुहर लगाई थी। इस पुस्तक में डॉ॰ अग्रवाल ने मानव-सभ्यता का इतिहास रोचक कहानी के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी खंड में डॉ॰ अग्रवाल द्वारा लिखी हुई 29 बालकहानियाँ भी सम्मिलित हैं। इनमें कई कहानियाँ वैज्ञानिक और बालमनोविज्ञान के दृष्टिकोण से लिखी गई हैं।

यह डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली के ग्यारह खंडों का संक्षिप्त विवरण है। इन सभी खंडों में आप उनके व्यक्तित्व से उनके साहित्य की और साहित्य से उनके व्यक्तित्व की पहचान कर सकते हैं। डॉ॰ अग्रवाल एक तपस्वी साहित्यकार हैं, मौन साधक हैं, ज्ञान के जिज्ञासु और प्रसारक हैं। उनका काम बड़ा और विस्तृत है। यह रचनावली उनके जीवन की सार्थकता का प्रमाण है और इसका भी कि संभल या बिजनौर जैसे एक छोटे नगर से कोई कैसे राष्ट्रीय बनता है और अपनी पहचान को स्थायी बनाता है।

हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

- **निश्तर ख़ानक़ाही एवं डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

ग़ज़ल और उसका व्याकरण	250.00

- **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल**

बृहत् हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश	1500.00
हिंदी तुलनात्मक शोधसंदर्भ	995.00
हिंदी शोध : नई दृष्टि	800.00
हिंदी शोध के नए प्रतिमान	800.00
शोधसंदर्भ-भाग-1	500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2	550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3	525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4	595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5	895.00
शोधसंदर्भ-भाग-6	1500.00
हिंदी तुकांत कोश	300.00

रचनावली

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)

राजेन्द्र मिश्र रचनावली-1 (कविता खंड एक)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-2 (कविता खंड दो)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-3 (कविता खंड तीन)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-4 (कविता खंड चार)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-5 (निबंध खंड)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-6 (उपन्यास खंड एक)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-7 (उपन्यास खंड दो)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-8 (उपन्यास खंड तीन)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-9 (उपन्यास-नाटक खंड)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-10 (कहानी खंड)	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली-11 (निबंध-डायरी खंड)	1000.00

डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया (संपादक)

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (एक)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (दो)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (तीन)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (चार)	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (पाँच)	700.00

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (छह) 700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (सात) 700.00

डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल (संपादक)

गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (एक) 950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (दो) 950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (तीन) 950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (चार) 950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (पाँच) 950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (छह) 950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (सात) 950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (आठ) 950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (नौ) 950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (दस) 950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (ग्यारह) 500.00

समीक्षा एवं समालोचना

सवाल साहित्य के • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00
हिंदी सिनेमा और दांपत्य संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल** 500.00
सिनेमा और साहित्य का अंत:संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल** 200.00
सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • **नवलकिशोर शर्मा** 150.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक • **धर्मेंद्र उपाध्याय** 300.00
डॉ॰ कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान • **डॉ॰ अंजु भटनागर** 500.00
अमरकांत का कथासाहित्य • **डॉ॰ योगेश गोकुल पाटिल** 400.00
नारी-समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन • **डॉ॰ अनुभूति** 450.00
राजस्थानी चित्रशैली में आखेट दृश्य • **डॉ॰ सुषमा सिंह** 250.00
भोपाल के संग्रहालयों की चित्रकला • **डॉ॰ सुषमा सिंह** 250.00
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध • **डॉ॰ ज्योति सिंह** 150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न • **डॉ॰ ज्योति सिंह** 300.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा • **डॉ॰ मिथिलेश माहेश्वरी** 300.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य • **डॉ॰ मनोजकुमार** 250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर • **डॉ॰ दीपा के॰** 250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत)• **डॉ॰ मीना अग्रवाल** 450.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह** 350.00
साठोत्तरी हिंदी-ग़ज़ल : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान
• **डॉ॰ अनिलकुमार शर्मा** 350.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा •
डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी 450.00

हिंदी ग़शल और डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ● **डॉ॰ पूनम अग्रवाल**	595.00
ग़शल संस्कृति और भीतर शोर बहुत है ● **भागीनाथ वाकले**	400.00
हिंदी कथासाहित्य में नारी-विमर्श ● **प्रा॰ अमृता भरत पाटिल**	540.00
लोकरंगमंच के विविध आयाम ● **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	200.00
लोकनाट्य सांग : कल और आज ● **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	700.00
हरियाणा के लोकगायक ● **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	400.00
हरियाणा के लोककवि ● **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	300.00
देवबंद की स्वांग-परंपरा ● **डॉ॰ सुरेंद्र शर्मा**	200.00
एक साक्षात्कार : पं॰ अमृतलाल नागर के साथ ● **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
ग़ज़ल : सौंदर्य और यथार्थ ● **अनिरुद्ध सिन्हा**	150.00
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) ● **डॉ॰ ज्योति व्यास**	150.00
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व ● **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	300.00
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार ● **डॉ॰ अशोककुमार**	350.00
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन ● **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	500.00
आस्थावाद एवं अन्य निबंध ● **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित**	300.00
साहित्य और संस्कृति ● **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित**	300.00
हिंदी व्यंग्य-निबंध : स्वतंत्रता के बाद ● **डॉ॰ आशा रावत**	350.00
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य ● **डॉ॰ प्रेम जनमेजय**	500.00
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष ● **विनोदचंद्र पांडेय**	300.00
हिंदी बालसाहित्य : डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम का योगदान ● **डॉ॰ स्वाति शर्मा**	450.00
भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव ● **डॉ॰ पी॰आर॰ वासुदेवन**	300.00
हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति ● **अविनाश वाचस्पति, रवींद्र प्रभात**	495.00
हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास ● **रवींद्र प्रभात**	300.00
सूरदास का सौंदर्य-चित्रण ● **डॉ॰ विजय इंदु**	250.00
हरिऔध का सौंदर्य-चित्रण ● **डॉ॰ विजय इंदु**	500.00
साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन ● **डॉ॰ मीनल रश्मि**	250.00
समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक चेतना ● डॉ॰ शीला गहलौत	500.00
संत रविदास ● **डॉ॰ सुदेश कुमारी**	300.00
हरिवंशराय बच्चन के काव्य में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ ● डॉ॰ राजकुमार जमदग्नि	500.00
साहित्य और संस्कृति का अंत:संबंध ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	400.00
मोक्षशास्त्र का माहात्म्य ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	400.00
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष ● **डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
फिजी में प्रवासी भारतीय ● **डॉ॰ शुचि गुप्ता**	300.00
मुक्तिबोध का रचना-संसार ● **डॉ॰ शिवृांकर लधवे**	200.00
नाटककार पंडित राधेश्याम कथावाचक ● डॉ॰ अशोक उपाध्याय	200.00
यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक चेतना ● **डॉ॰ अनीता रानी**	400.00

सृजन और साहित्य • **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र**	400.00
समालोचना के फलक • डॉ॰ बागेश्री चक्रधर	300.00
शिक्षा की समस्याएँ और हिंदी कथासाहित्य • **डॉ॰ शशिप्रभा**	450.00
ललित निबंध : परंपरा और चिंतन • **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे**	300.00
ललित निबंध्कार डॉ॰ श्यामसुंदर दुबे • **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे**	300.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की ग़ज़ल दृष्टि • **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे**	300.00
रुहेलखंड के परंपरागत लोकगीत • **श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	200.00
हिंदी कहानी के नए प्रतिमान • **डॉ॰ अभयकुमार खैरनार**	500.00
हिंदी नाटक के नए प्रतिमान • **डॉ॰ मनोजकुमार**	400.00
हिंदी उपन्यास के नए प्रतिमान • **प्रा॰ जसपालसिंह वळवी**	550.00
जनसंख्या अवधारणा एवं लैंगिक संरचना • **डॉ॰ विश्वनाथ पांडेय**	500.00
भारत में सांप्रदायिक सद्भाव • **डॉ॰ गीता यादव**	500.00
एक इंद्रधनुषी व्यक्तित्व • **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	600.00
साठोत्तर व्यंग्य और श्रीलाल शुक्ल • **डॉ॰ रमेश तिवारी**	400.00
स्वातंत्रायोत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य • **डॉ॰ शेरजंग गर्ग**	700.00
कुछ व्यंग्य की कुछ व्यंग्यकारों की • **डॉ॰ हरीश नवल**	300.00
राष्ट्रीयता, संस्कृति और साहित्य • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	700.00
साहित्यिक निबंध : मूल्य और मूल्यांकन • **डॉ॰ निशा तिवारी**	400.00
जनमानस के पक्षधर हिंदी नुक्कड़ नाटक • **डॉ॰ पी॰वी॰ कोटमे**	400.00

हास्य-व्यंग्य

मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
बाबू झोलानाथ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	60.00
राजनीति में गिरगिटवाद • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	100.00
आदमी और कुत्ते की नाक • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
आओ भ्रष्टाचार करें • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
दूध का धुला लोकतंत्र • **गोपाल चतुर्वेदी**	150.00
आधुनिक बेताल कथाएँ • **गिरीश पंकज**	200.00
भज्जी का जूता • **महेशचंद्र द्विवेदी**	150.00
क्लियर फंडा • **महेशचंद्र द्विवेदी**	120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग • **महेशचंद्र द्विवेदी**	170.00
वीरप्पन की मूँछें • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
वसीयतनामा • **पं॰ सूर्यनारायण व्यास, सं॰ राजशेखर व्यास**	150.00
नो टेंशन • **डॉ॰ सुरेश अवस्थी**	200.00

 ISSN 0975-735X

काका की विशिष्ट रचनाएँ • **काका हाथरसी**	300.00
काका के व्यंग्य-बाण • **काका हाथरसी**	200.00
कक्के के छक्के • **काका हाथरसी**	200.00
लूटनीति मंथन करी • **काका हाथरसी**	200.00
खिलखिलाहट • **काका हाथरसी**	200.00
पैसे कहाँ से दें • **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह • **डॉ॰ आशा रावत**	100.00
नमस्कार प्रजातंत्राा • **महेश राजा**	150.00
ए जी सुनिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
नमस्ते जी • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
अब हँसने की बारी है • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल	
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ	300.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ	300.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी	300.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य • **डॉ॰ शिव शर्मा**	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ शिव शर्मा**	300.00
अपने-अपने भस्मासुर • **डॉ॰ शिव शर्मा**	250.00
प्रतिनिधि व्यंग्य • **दामोदरदत्त दीक्षित**	200.00
हँसते-हँसते कट जाएँ रस्ते • **मधुप पांडेय**	200.00
धमकीबाशी के युग में • **निश्तर ख़ानक़ाही**	200.00
ला ख़र्चा निकाल • **गजेंद्र तिवारी**	200.00
जलनेवाले जला करें • **गजेंद्र तिवारी**	200.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं • **सूर्यकुमार पांडेय**	100.00
ये है इंडिया • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	220.00
आँखों देखा हाल • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	250.00
सच का सामना • **हरीशकुमार सिंह**	150.00
लिफ़्ट करा दे • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	200.00
देवेंद्र के कार्टून • **देवेंद्र शर्मा**	200.00
कार्टून कौतुक • **देवेंद्र शर्मा**	120.00
लिफ़ाफ़े का अर्थशास्त्र • **डॉ॰ पिलकेंद्र अरोरा**	200.00
अजगर करे न चाकरी • **बाबूसिंह चौहान**	200.00
जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग • **डॉ॰ लालित्य ललित**	200.00
विलायतीराम पांडेय • **डॉ॰ लालित्य ललित**	200.00
नो कमेंट • **सुमित प्रताप सिंह**	200.00

सावधान पुलिस मंच पर है • **सुमित प्रताप सिंह**	200.00
चुनिंदा व्यंग्य : आलोक पुराणिक • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : आशा रावत • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : गिरिराजशरण अग्रवाल • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : गोपाल चतुर्वेदी • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : प्रेम जनमेजय • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : महेशचंद्र द्विवेदी • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : श्रवणकुमार उर्मलिया • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : सुभाष चंदर • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : सुशील सिद्धार्थ • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00
चुनिंदा व्यंग्य : हरीशकुमार सिंह • **सं॰ डॉ॰ रमेश तिवारी**	300.00

कहानी

एक सपना मेरा भी था • **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
एक थी माया • **विजयकुमार**	200.00
सरहदों के पार • **सुरेशचंद्र शुक्ल**	200.00
छोटे-छोटे सुख • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
कथा जारी है • **बाबूसिंह चौहान**	250.00
इक्कीस कहानियाँ • **सत्यराज**	200.00
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	250.00
कुत्तेवाले पापा • **मीना अग्रवाल**	150.00
क्या अच्छा क्या बुरा • **मीना अग्रवाल**	200.00
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ • **डॉ॰ दिनेशचंद्र बलूनी**	200.00
एक बौना मानव • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
लव जिहाद • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
इमराना हाशिर हो • **महेशचंद्र द्विवेदी**	150.00
हैं आस्माँ कई और भी • **नीरजा द्विवेदी**	200.00
कौन कितना निकट • **रेणु 'राजवंशी' गुप्ता**	120.00
लघु कथाएँ • **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	150.00
कमरा नंबर 103 • **सुधा ओम ढींगरा**	150.00
कहानियाँ अमेरिका से • **सं॰ इला प्रसाद**	150.00
अंतराल • **संगीता**	200.00
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ • **सं॰ डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	150.00
लघुकथाएँ जीवनमूल्यों की • **सं॰ सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'**	150.00
पंद्रह सिंधी कहानियाँ • **सं॰ देवी नागरानी**	200.00
दर्द की एक गाथा • **सं॰ देवी नागरानी**	300.00
भाँति-भाँति की मानुसी • **अंशु त्रिापाठी**	250.00

 ISSN 0975-735X

लड़की हँस रही है • **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र**	300.00
आत्मकथा का कोलाज • **नीलम चतुर्वेदी**	200.00
ऐसा प्यार कहाँ • **नीतू मुकुल**	250.00
रेल कहानियाँ • **कृपासागर साहू**	300.00

उपन्यास

इतिहास की आवाश • **राजेन्द्र मिश्र**	450.00
अनोखा उपहार • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
आसरा • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	100.00
तीन बीघा शमीन • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
मन के जीते जीत • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
कुल का चिराग • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
नया सवेरा • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
जागृति • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	450.00
कालचक्र से परे • **श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	200.00
शांतिधाम • **श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	250.00
भीगे पंख • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
मानिला की योगिनी • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
और लहरें उफनती रहीं • **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध**	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ शिव शर्मा**	300.00
अराज-राज • **डॉ॰ मोहन गुप्त**	200.00
सुराज-राज • **डॉ॰ मोहन गुप्त**	350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी • **डॉ॰ आशा रावत**	250.00
एक चेहरे की कहानी • **डॉ॰ आशा रावत**	250.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
एक फरिश्ता ऐसा देखा • **प्रेमसागर तिवारी**	250.00
रोशनी का पहरा • **डॉ॰ आरती लोकेश**	300.00

एकांकी-नाटक

• **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

मंचीय हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
मंचीय सामाजिक एकांकी	200.00
बच्चों के हास्य नाटक	200.00
बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00
बच्चों के उत्तम नाटक	200.00
भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00

प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
बच्चों के अनोखे नाटक • **प्रकाश मनु**	200.00
हास्य-व्यंग्य के बाल-नाटक • **प्रकाश मनु**	200.00
संसार : एक नाट्यशाला • **बाबूसिंह चौहान**	250.00
ग्यारह एकांकी • **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	200.00
संस्कार एवं अन्य नाटक • **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	300.00
दमन • **रामाश्रय दीक्षित**	100.00
स्वप्न पुरुष • **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**	250.00
अफलातून की अकादमी • **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00
औरत की जंग • **राजेन्द्र मिश्र**	200.00
प्रजापथ • **राजेन्द्र मिश्र**	200.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले • **निश्तर ख़ानक़ाही**	125.00
यादों का मधुबन • **कृष्ण राघव**	150.00
समय के चाक पर • **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	125.00
समय एक नाटक • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	160.00
दर्पण झूठ बोलता है • **बाबूसिंह चौहान**	60.00
मकड़जाल में आदमी • **बाबूसिंह चौहान**	80.00
उफनती नदियों के सामने • **बाबूसिंह चौहान**	100.00
अनुभव के पंख • **चंद्रवीरसिंह गहलौत**	250.00
मेरे साक्षात्कार • **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी**	250.00
आधी हकीकत आधा फसाना • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
फूलों की महक • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	200.00
संवाद साहित्यकारों से • **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त बरसैंया**	200.00

गीत-ग़ज़ल, कविता

निश्तर ख़ानक़ाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	500.000
ग़जल मैंने छेड़ी (ग़जल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	80.00
ग़जलों के शहर में (ग़जल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	200.00
मेरे लहू की आग (ग़जल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	150.00
कोई आवाज देता है • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	250.00
दिन दिवंगत हुए • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	250.00
कुँअर बेचैन के नवगीत • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	250.00

पर्स पर तितली (हाइकु) • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	200.00
मातृभूमि के लिए • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	200.00
संघर्ष जारी है • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	170.00
जीवन-पथ में • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
देश हम जलने न देंगे • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
तुम भी मेरे साथ चलो • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
झरनों का तराना है • **लक्ष्मी खन्ना सुमन**	200.00
अहसासों के ताने-बाने • **लक्ष्मी खन्ना सुमन**	200.00
समय के भूगोल में • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
असाबिया • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
आठवाँ राग • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
हवाएँ खामोश हैं • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
सदियाँ गुजर रही हैं • **राजेंद्र मिश्र**	300.00
शब्द ही नहीं हैं • **राजेंद्र मिश्र**	300.00
सप्त स्वर • **राजेंद्र मिश्र**	400.00
आपातकालीन कविताएँ • **राजेंद्र मिश्र**	300.00
शमा हर रंग में जलती है • **रामेश्वरप्रसाद**	150.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
ख़ुशबू सा बिखर जाऊँगा (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
प्रतिनिधि ग़ज़लें • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
बूँद के अंदर समंदर (मुक्तक) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मान भी जा छुटकी • **गीतिका गोयल**	150.00
आदमी के हक़ में (ग़ज़ल-संग्रह) • **रामगोपाल भारतीय**	100.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) • **रमेश कौशिक**	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) • **रमेश कौशिक**	150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य) • **आर्यभूषण गर्ग**	200.00
राधेय (खंडकाव्य) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
असितचंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
शिंदगी गाती तो है/ (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
आसमान मेरा भी है (ग़ज़ल-संग्रह) • **किशनस्वरूप**	100.00

बूँद-बूँद सागर मैं (ग़ज़ल-संग्रह) • **किशनस्वरूप**	100.00
आँचल-आँचल खुशबू (ग़ज़ल-संग्रह) • **कर्नल तिलकराज**	200.00
ज़ख़्म खिलने को हैं (ग़ज़ल-संग्रह) • **कर्नल तिलकराज**	200.00
अग्निसुता • **राजेंद्र शर्मा**	150.00
सीतायनी • **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
गंगापुत्र भीष्म : शर-शैया से • **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	250.00
तिराहे पर (ग़ज़ल-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	250.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
कुछ भी सहज नहीं (नवगीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
त्रिवर्णी (नवगीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
युवाओं के गीत • **शचींद्र भटनागर**	400.00
गुलमुहर की छाँव में (ग़ज़ल-संग्रह) • **मनोज अबोध**	100.00
मेरे भीतर महक रहा है (ग़ज़ल-संग्रह) • **मनोज अबोध**	150.00
तारा प्रकाश समग्र • **तारा प्रकाश**	600.00
उजियारा आशाओं का • **तारा प्रकाश**	150.00
बुलंदी इरादों की • **तारा प्रकाश**	150.00
चलने से मंशिल मिलती है • **तारा प्रकाश**	200.00
इंद्रधनुष • **तारा प्रकाश**	200.00
संवेदनाओं के रंग • **तारा प्रकाश**	200.00
सुरों के ख़त • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनहरे मंत्र का जादू • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनते हुए ऋतुगीत • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00
सुबह की अंगूठी • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
धूप अपने पन की (मुक्तक-संग्रह) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
एक मुट्ठी धूप • **नीरजा सिंह**	100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर • **डॉ॰ कमल मुसद्दी**	150.00
फ़ासले मिट जाएँगे (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
भीतर का संगीत (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
सुख के बिरवे रोप (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00

 ISSN 0975-735X

इंद्रधनुष के रंग (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
प्यार के गुलाल से (हाइकु) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
हारना हिम्मत नहीं (मुक्तक) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
मानव तू जग में सुंदरतम • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
रिश्ते नए अब जोड़िए (ग़जलें) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
बहती नदी हो जाइए (ग़जलें) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	150.00
आँधियारों से लड़ना सीखें (ग़जलें) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
अनजाने आकाश में • **महेशचंद्र द्विवेदी**	170.00
बातें कुछ अनकही • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
मैंने देखा है • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
हौसला तो है • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
जिंदगी रुकती नहीं • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
जज्बात की धूप • **धूप धौलपुरी**	250.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ • **नवलकिशोर शर्मा**	180.00
जब चाँद डूब रहा था • **नवलकिशोर शर्मा**	200.00
एड्स शतक • **पूरणसिंह सैनी**	150.00
श्रीगोगाचरित (महाकाव्य) • **पूरणसिंह सैनी**	300.00
श्रीकृष्णचरित (महाकाव्य) • **पूरणसिंह सैनी**	800.00
खोजें जीवन सत्य (दोहे) • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	200.00
राष्ट्र-शक्ति • **सलेकचंद संगल**	150.00
माँ तुझे प्रणाम • **सलेकचंद संगल**	150.00
लहरों के विरुद्ध • **डॉ॰ रामप्रकाश**	200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता • **महेंद्र कुमार**	200.00
पीड़ा का राजमहल • **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**	200.00
मैं एक समुद्र • **डॉ॰ तारादत्त 'निर्विरोध**	200.00
उड़ान जारी है • **विनोद भृंग**	200.00
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) • **हरिराम पथिक**	200.00
जो जिया वो रचा (मुक्तक-संग्रह) • **हरिराम पथिक**	200.00
धनुषभंजक राम • **चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'**	200.00
एक कुल्हड़ चाय • **स्वर्ण ज्योति**	200.00
सूर्यनगर की चाँदनी • **रामेश्वर वैष्णव**	150.00
रात • **दामोदर खड़से**	200.00

स्मृतियाँ ● **सुषमा अग्रवाल**	200.00
कविताएँ फेसबुक से ● **लालित्य ललित**	200.00
दुनिया इतनी भी बुरी नहीं ● **लालित्य ललित**	200.00
बचे रहेंगे केवल शब्द ● **लालित्य ललित**	200.00
मेरे लिए तुम्हारा होना ● **लालित्य ललित**	250.00
सब पता है ● **लालित्य ललित**	250.00
आँगन घर में टहलेगा ● **लालित्य ललित**	250.00
घर उदास है ● **लालित्य ललित**	300.00
अपने में से तुम्हें देखना ● **लालित्य ललित**	200.00
आदत सी तुम्हारी ● **लालित्य ललित**	250.00
चुप्पी में से उद्घोष ● **लालित्य ललित**	300.00
चुप हैं शब्द और उनके अर्थ ● **लालित्य ललित**	200.00
कभी सोचता हूँ कि ● **लालित्य ललित**	250.00
इतना होने के बाद भी● **लालित्य ललित**	250.00
विरमाल गीत समग्र ● **सं॰ डॉ॰ पंकज विरमाल**	500.00
विस्थापित मन ● **आस्था नवल**	200.00
रंगारंग कविताएँ ● **बलवंत रंगीला**	300.00
सिद्धांत सतसई ● **डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचण्डिया/संपादन डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया**	300.00
क़तरा-क़तरा सागर ● **प्रेमसागर कालिया**	300.00
श्रीमद्भगवद्गीता (पंजाबी कविता अनुवाद) ● **अनुवादक प्रेमसागर कालिया**	200.00
समकालीन महिला ग़ज़लकार ● **हरेराम 'समीप'**	300.00
कविताओं के मन से ● **विजयकुमार**	495.00
सोच की चिंगारियाँ ● **चमनलाल**	200.00
मेरी समग्र कविताएँ ● **प्रहलाद तिवारी**	950.00
कवि नहीं हूँ, फिर भी ● **सुरेंद्रकुमार यादव**	400.00
माट्टी की आवाज ● **रामकुमार आत्रेय**	250.00

आत्मकथा-संस्मरण, साक्षात्कार, पत्र

मेरा जीवन : ए-वन ● **काका हाथरसी**	300.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक ● **धर्मेन्द्र उपाध्याय**	250.00
आत्मसरोवर ● **ओम्प्रकाश अग्रवाल**	125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु ● **नीरजा द्विवेदी**	200.00
स्विट्ज़रलैंड के वे 21 दिन ● **नीरजा द्विवेदी**	200.00
कुछ अपनी कुछ जगबीती ● **नीरजा द्विवेदी**	250.00
सफ़र साठ साल का ● **डॉ॰ अजय जनमेजय (सं)**	400.00
यादों की गुल्लक ● **गीतिका गोयल, डॉ॰ अनुभूति (संपादक)**	300.00

आधी हक़ीक़त आधा फ़साना ● **डॉ॰ बलजीतसिंह**	150.00
मेरे साक्षात्कार ● **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी**	250.00
संवाद : साहित्यकारों से ● **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'**	200.00
उत्तरोत्तर ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)**	250.00
श्रद्धांजलि ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)**	250.00

बाल-साहित्य

गधा बत्तीसी ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
ईनी-मीनी की मजेदार दुनिया ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
चिड़ियों की दुनिया रंगीन ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
कविताओं में पंचतंत्रा ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	250.00
छुटके-मुटके जंगल में ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
नन्हे-मुन्ने गीत सुहाने ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
मैं भी स्कूल जाऊँगी ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
नन्ही-मुन्नी बाल ग़जलें ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
Tiny -Tots in Forest ● **Laxmi Khanna 'Suman'**	200.00
Adventures of the Laughing Donkey ● **Laxmi Khanna 'Suman'**	200.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) ● **गीतिका गोयल**	200.00
बातूनी कहानियाँ ● **गीतिका गोयल**	200.00
धरती पर चाँद (पुरस्कृत) ● **शंभूनाथ तिवारी**	200.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) ● **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) ● **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) ● **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
दिन बचपन के (बालगीत) ● **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
जादूगर बादल (बालगीत) ● **विनोद भृंग**	200.00
आटे-बाटे दही चटा के (शिशुगीत) ● **बालकृष्ण गर्ग**	200.00
बालकृष्ण गर्ग के बालगीत ● **बालकृष्ण गर्ग**	500.00
किशोर मन की कहानियाँ ● **डॉ॰ सरला अग्रवाल**	200.00
चलो आकाश को छू लें ● **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध**	200.00
मानव-विकास की कहानी ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
पार्टी गेम्स ● **चाँदनी कक्कड़**	125.00
कागज की नाव ● **डॉ॰ सरोजनी कुलश्रेष्ठ**	200.00
शिक्षाप्रद बालकहानियाँ ● **डॉ॰ अशोक कुमार**	200.00
भारतीय लोकजीवन की कहानियाँ ● **डॉ॰ तारा प्रकाश**	200.00

विविध

उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन ● **डॉ॰ सरिता शाह**	200.00

• **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल**	
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
नारी : कल और आज	300.00
• **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे	300.00
हिंसा : कैसी-कैसी	300.00
दंगे : क्यों और कैसे	300.00
• **रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन • **डॉ॰ गिरिराज शाह**	200.00
गुरु नानकदेव • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
अमृतवाणी • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
वेद-वेदांत दर्शन • **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व • **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
कन्हैया गीता • **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	900.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स • **डॉ॰ गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर**	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी • **मनोज भारद्वाज**	300.00
समुद्री दैत्य सुनामी • **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	300.00
डगर पनघट की • **सुधीर गुप्ता**	200.00
था सुंदरतम की • **महेंद्र शर्मा**	200.00
Ecosystem in The Central Himalyas • **Dr.Vikram Singh IPS**	200.00

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 **साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)**

फोन : 01342-263232, 09557746346, 07838090732

गुड़गाँव कार्यालय

बी-203, पार्क व्यू सिटी 2, सोहना रोड, गुड़गाँव 122018

0124-4076565

 ISSN 0975-735X

केंद्रीय हिंदी संस्थान

मानव संसाधन विकास मंत्राालय, भारत सरकार

संपर्क : हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा 282005, फोन : 0562-2530684,
वेबसाइट : www.hindisansthan.org, www.khsindia.org

संक्षिप्त परिचय

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा 1961 ई॰ में स्थापित एक स्वायत्त शैक्षिक संस्था है। इसका संचालन स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा किया जाता है। संस्थान का मुख्यालय आगरा में स्थित है और इसके आठ क्षेत्रीय केंद्र–दिल्ली, हैदराबाद, गुवाहाटी, शिलांग, मैसूर, दीमापुर, भुवनेश्वर तथा अहमदाबाद में हैं।

संस्था के प्रमुख उद्देश्य

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुपालन में अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिंदी का विकास करते हुए इसके विकास और प्रसार की दृष्टि से उपयोगी शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की प्रस्तुति एवं संचालन ■ विभिन्न स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण हिंदी-शिक्षण का प्रसार, हिंदी-शिक्षकों का प्रशिक्षण, हिंदीभाषा और साहित्य के उच्चतर अध्ययन का प्रबंधन, हिंदी के साथ विभिन्न भाषाओं के तुलनात्मक भाषावैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन और हिंदीभाषा एवं शिक्षण से जुड़े विविध अनुसंधान कार्यों का आयोजन ■ अपने विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए परीक्षा-आयोजन तथा उपाधि-वितरण ■ संस्थान की प्रकृति एवं उद्देश्यों के अनुरूप उन अन्य संस्थाओं के साथ जुड़ना या सदस्यता ग्रहण करना या सहयोग करना या सम्मिलित होना, जिनके उद्देश्यों से मिलते-जुलते हों और इन समान उद्देश्यों वाले संस्थानों को संबद्धता प्रदान करना ■ समय-समय पर नियमानुसार अध्येतावृत्ति (फैलोशिप), छात्रवृत्ति और पुरस्कार, सम्मान पदक की स्थापना कर हिंदी से संबंधित कार्यों को प्रोत्साहन आदि।

संस्थान के कार्य

शिक्षणपरक कार्यक्रम :

(1) विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी-शिक्षण, (2) हिंदीतर राज्यों के विद्यार्थियों के लिए अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, (3) नवीकरण एवं संवर्द्धनात्मक कार्यक्रम, (4) दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम (स्ववित्तपोषित), (5) जनसंचार एवं पत्रकारिता, अनुवाद अध्ययन और अनुप्रयुक्त हिंदी भाषाविज्ञान के सांध्यकालीन पाठ्यक्रम (स्ववित्तपोषित)

अनुसंधनपरक कार्यक्रम :

(1) हिंदी-शिक्षण की अधुनातन प्रविधियों के विकास के लिए शोध, (2) हिंदीभाषा और अन्य भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन, (3) हिंदीभाषा और साहित्य के क्षेत्र में आधारभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान, (4) हिंदीभाषा के आधुनिकीकरण और भाषा प्रौद्योगिकी के विकास के उद्देश्य से अनुसंधान, (5) हिंदी का समाजभाषावैज्ञानिक सर्वेक्षण और अध्ययन, (6) प्रयोजनमूलक हिंदी से संबंधित शोधकार्य। अनुसंधानपरक कार्यों के दौरान द्वितीय भाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी-शिक्षण के लिए उपयोगी शिक्षण-सामग्री का निर्माण।

शिक्षण-सामग्री निर्माण और भाषा-विकास :

(1) हिंदीतर राज्यों और जनजाति क्षेत्र के विद्यालयों के लिए हिंदी-शिक्षण सामग्री निर्माण, (2) हिंदीतर राज्यों के लिए हिंदी का व्यतिरेकी व्याकरण एवं द्विभाषी अध्येता कोशों का निर्माण, (3) विदेशी भाषा के रूप में हिंदी-शिक्षण पाठ्यपुस्तकों का निर्माण, (4) कंप्यूटर साधित हिंदीभाषा शिक्षण सामग्री का निर्माण, (5) दृश्य-श्रव्य माध्यमों से हिंदी शिक्षण-संबंधी पाठ्यसामग्री का निर्माण, (6) हिंदी तथा हिंदीतर भारतीय भाषाओं के द्विभाषी/ त्रिभाषी शब्दकोशों का निर्माण।

संस्थान के प्रकाशन :

हिंदीभाषा एवं साहित्य, भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन, भाषा एवं साहित्य शिक्षण, कोशविज्ञान आदि से संबद्ध विभिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन। अब तक 150 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न स्तरों एवं अनेक प्रयोजनों की पाठ्यपुस्तकों, सहायक सामग्री तथा अध्यापक निर्देशिकाओं का प्रकाशन। त्रैमासिक पत्रिका–'गवेषणा', 'मीडिया', और 'समन्वय पूर्वोत्तर' का प्रकाशन।

पुस्तकालय :

भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषाशिक्षण और हिंदी साहित्य के विभिन्न विषयों की पुस्तकों के विशेषीकृत संग्रह की दृष्टि से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक। लगभग एक लाख पुस्तकें। लगभग 75 पत्र-पत्रिकाएँ (शोधपरक एवं अन्य)

संस्थान से संबद्ध प्रशिक्षण महाविद्यालय :

हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के स्तर को समुन्नत करने तथा पाठ्यक्रम में एकरूपता लाने के उद्देश्य से उत्तर गुवाहाटी (असम), आइजोल (मिजोरम), मैसूर (कर्नाटक), दीमापुर (नागालैंड) के राजकीय हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालयों को संस्थान से संबद्ध किया गया है।

योजनाएँ :

भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो में सिंहली विद्यार्थियों के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के पाठ्यक्रम की 2007-08 से शुरुआत, ■अफगानिस्तान के नान्गरहर विश्वविद्यालय (जलालाबाद) में संस्थान द्वारा निर्मित बी॰ए॰ का पाठ्यक्रम 2007-08 से प्रारंभ, ■विश्व के कई अन्य देशों (चेक, स्लोवानिया, यू॰एस॰ए॰, यू॰के॰, मॉरिशस, बेल्जियम, रूस आदि) के साथ शैक्षणिक सहयोग और हिंदी पाठ्यक्रम संचालन के संबंध में संवाद जारी ■हिंदी के बहुआयामी संवर्धन के लिए हिंदी कॉर्पोरा परियोजना, हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना, भाषा-साहित्य सीडी निर्माण परियोजना, पूर्वोत्तर लोकसाहित्य परियोजना तथा लघु हिंदी विश्वकोश परियोजना पर कार्य।

डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका
उपाध्यक्ष, कें॰हिं॰शि॰मं॰
kkgoyanka@gmail.com

प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय
निदेशक
nkpandey65@gmail.com

 ISSN 0975-735X